त्याग का भोग





त्याग का भोग

इलाचन्द्र जोशी

३१२८

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए महात्मा गाधी मार्ग इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५ ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

•

द्वितीय संस्करण
मार्च १९६७

•

मूल्य १२ ५०

आवश्यकता महसूस होने पर पुस्तक का नाम बदलने की प्रथा महाभारत-काल से ही चली आ रही है। महाभारत का नाम उसके रचयिता ने प्रारंभ में जय रखा था फिर 'भारत' रखा और अन्त में उसे भी बदल कर महाभारत रख दिया। तुलसीदास के बारे में भी कहा जाता है कि उन्होंने पहले अपनी प्रमुख कृति का नाम भाषा रामायण रखा था, पर समयान्तर में कुछ सोचकर उसे बदलकर 'रामचरित मानस' रख दिया। रवीन्द्रनाथ ने भी अपनी कुछ प्रारंभिक पुस्तकों के नाम बाद में बदल दिये थे।

नामों के बदले जाने की इस परम्परा के बावजूद मुझे अपने इस उपन्यास के नये संस्करण में उसका नाम बदलने में कुछ संकोच हो रहा है। संकोच का कारण केवल इतना है कि मेरी रचनाओं के जो प्रेमी इस कृति को जिप्सी नाम से पढ़ और जान चुके हैं वे इस नये नाम से शायद संतुष्ट न हों। मैं उन्हें केवल शेक्सपियर की इस बात से सांत्वना देता हूँ कि व्हाट्स देयर इन ए नेम ?—नाम में क्या रखा है। 'गुलाब को यदि सुलाब' कहा जाय तो उसकी गंध और उसके रूप में कोई अन्तर नहीं आयेगा। यह नया नाम (त्याग या भोग) मुझे नायक की विभिन्न चक्रजालपूर्ण गति-

त्याग का भोग

पूर्वकथा

उस वर्ष मैं गरमियों में मसूरी गया हुआ था—अकेला। जिस होटल में मैं ठहरा हुआ था वहां से देहरादून की तरफ का विस्तृत दृश्य स्पष्ट दिखायी देता था। एक दिन मैं दोपहर का खाना खाने के बाद कुछ देर धूप खाने के इरादे से बाहर बरामदानुमा आंगन में एक आराम-कुर्सी पर बैठा हुआ देहरादून की ओर मुंह किये हुए नीचे दूर तक फैले हुए ढालुओं के विस्तार का दृश्य देखने में तल्लीन था। देहरादून से मसूरी तक मोटर की जो सड़क सर्पगति से चक्कर खाती हुई नीचे से ऊपर को चली जाती थी उस पर चलने वाली मोटरें बच्चों के खिलौनों की तरह दिखाई दे रही थीं। दूर, राजपुर के पास, छोटे-छोटे पहाड़ी खेत सीढ़ियों की तरह नीचे से ऊपर को कतार बांधे हुए थे। कुररी पक्षियों का अविराम करुण-स्वर चारों ओर के एकांत पहाड़ी वातावरण को एक निराली, मोहक वेदना से मग्न कर रहा था। सहसा पीछे से किसी ने मेरा ध्यान भंग करते हुए कहा—'नमस्कार!'

मैंने घूमकर देखा तो एक सज्जन, जिनकी आयु प्रायः तीस और पैंतीस के बीच की होगी और जो नीचे लकलाट का चूड़ीदार पाजामा और ऊपर सफेद कमीज के ऊपर कत्थई रंग की गरम बनियाइन पहने थे, प्रेमपूर्वक मुस्करा रहे थे। उनसे मेरा कोई पूर्व परिचय न होने से उनका वह प्रेमभाव मुझे कुछ विचित्र-सा लगा। मैंने शिष्टाचारपूर्वक उनको

और हाथ जोड़ दिये और विनम्रता के साथ कहा—
"क्षमा कीजियेगा, मैंने आपको नहीं पहचाना। आपका शुभनाम ?"

"मेरा नाम नृपेन्द्ररंजन है। बुलन्दशहर जिले में रहता हूँ। हवा बदली के इरादे से आज ही यहाँ आया हूँ।"

"बड़ी प्रसन्नता हुई आपका परिचय पाकर। पर क्या आपने मुझे पहचान कर नमस्कार किया था ?"

"मैंने पहचान कर ही आपको नमस्कार किया है," एक अजीब सी मुसकान मुख पर झलकाते हुए मेरे नव-परिचित मित्र बोले।

"पर यह संभव कैसे हो सकता है ?"

"होटल के दफ्तर में होटल के निवासियों की जो सूची लगी रहती है उसमें सब नाम कल शाम मैंने कौतूहलवश पढ़ डाले थे। उसमें एक नाम के सम्बन्ध में मेरी दिलचस्पी जागी। मैनेजर से पूछा। उसने कमरे का नम्बर और हुलिया बता दिया। आपको ठीक उसी नम्बर के कमरे के आगे बैठा देखकर मैं आपके पास चला आया।"

"ठीक है, ठीक है मिस्टर निगम। पास वाली कुर्सी ले लीजिये!"

आगन्तुक सज्जन—उर्फ श्री रंजन—ने कुर्सी खींच ली और मेरी बगल में बैठ गये।

"कहिये मसूरी का पहाड़ी वातावरण आपको कैसा पसंद आया ?"

"मुझे यह स्थान बहुत प्रिय है," श्रीयुत रंजन बोले—"पिछले कुछ वर्षों से मैं गरमियों में कम से कम एक महीने के लिये यहाँ अवश्य चला आता हूँ।"

और धीरे धीरे हम दोनों के बीच काफी घनिष्ठता हो गयी। साहित्य के प्रति रंजनजी की विशेष रुचि का परिचय मुझे मिला। मैंने देखा कि वह केवल एक साधारण रसग्राही नहीं, बल्कि कला-मर्मज्ञ भी हैं, हालाँकि उन्होंने कभी एक शब्द भी लिखकर किसी पत्र में नहीं छपाया था। लिखने के प्रति उनकी यह विरक्ति मुझे और अधिक आकर्षक लगी। मेरी जो जो कहानियाँ या उपन्यास उन्होंने पढ़े थे उनके नायकों के चारित्रिक विश्लेषण सम्बन्धी बातों में वह

काफी देर तक मुझे उलझाये रहे। जब साहित्य-चर्चा कुछ ढीली पड़ने लगी तब वह बोले—'चलिये कहीं टहला जाय। यहाँ बैठे-बैठे क्या कीजियेगा ?'

मैं दोपहर में घूमने का आदी नहीं था। केवल शाम को एक बार अकेले हवाखोरी के लिये निकल पड़ता था। होटल के निवासियों से मेरी घनिष्ठता केवल बाहरी बोलचाल तक ही सीमित थी। उस दिन पहली बार मुझे एक साथी मिला जिसने मुझे इस हद तक अपनी ओर खींच लिया कि दोपहर को टहलने का प्रस्ताव भी मैं टाल न सका।

अपने अपने कमरे में जाकर कपड़े पहन कर हम दोनों निरुद्देश्य भ्रमण के इरादे से बाहर निकल पड़े। जब हम लोग ऊपर बड़ी सड़क पर पहुँचे तब दोनों ने मिलकर इस बात पर विचार किया कि किस ओर निकला जाय। अन्त में यह तय हुआ कि इस समय लघार बाजार की सैर की जाय, नाज का माल की ओर चलें। प्रायः दो फर्लांग तक की चढ़ाई तय करने पर सड़क के बायें किनारे पर बिसाती की कुछ खुली दुकानें पास-पास सजायी हुई दिखायी दीं, कुछ नेपाली लड़कियाँ उन दुकानों का सञ्चालन कर रही थीं। मेरे मित्र एक 'दुकान' के पास खड़े हो गये और बड़े गौर से वहाँ सजायी गयी प्रत्येक छोटी से छोटी चीज का निरीक्षण करने लगे। सस्ते किस्म की छुरियाँ, कंघियाँ, सुई-तागा, सिन्दूर की पुड़ियाँ, छोटी-छोटी चम्मचें अलुमिनियम की बनी हुई चाय की छन्नियाँ, बच्चों के खेलने के लिये बने हुए लकड़ी के रङ्गीन लट्टू, आदि ऐसी चीजें वहाँ सजायी हुई थीं जो स्पष्ट ही मेरे मित्र के किसी विशेष काम की नहीं थीं। जिस दुकान के पास हम लोग खड़े थे वहाँ पर बैठी हुई लड़की सूरत-शक्ल से कुछ-कुछ ईरानी सी लगती थी। उसकी उम्र पाँच-पन्द्रह वर्ष से अधिक न होगी। उसकी आँखें बड़ी चञ्चल लगतीं थी और वह बड़ी उत्सुकता से रञ्जनजी की ओर देख रही थी। रञ्जनजी ने नीचे झुक कर एक छोटी-सी कंघी उठा ली और उसका दाम पूछने लगे। लड़की ने अत्यन्त उत्साहित होकर जो दाम बताया वह स्पष्ट ही बाजार की दर से दूना था। पर रञ्जनजी ने बिना मोल-तोल किये

ही उसे मुँहमाँगा दाम दे दिया और कैंची जेब में डालकर उन्होंने मुझसे आगे बढ़ने का संकेत किया। लड़की पीछे से बोली—'बाबूजी, यह बढ़ियावाला चाकू भी खरीद लीजिये!'

'कल खरीदेंगे,' पीछे की ओर न देखकर रञ्जनजी बोले।

जब हम लोग कुछ आगे बढ़े तो मैंने कहा—'आपने कैंची यहाँ खरीद कर बड़ी भूल की। आगे चलकर किसी बड़ी दुकान में आपको इससे कईगुना अच्छी कैंची इतने ही दामों में मिल जाती। और यह कैंची आपके किस काम आयेगी मैं नहीं समझा। नाखून तक इससे नहीं कटेगा।'

'आप ठीक कहते हैं, पर चूँकि मैं दुकान पर खड़ा हो गया था, इसलिये कुछ-न-कुछ खरीदना लाजमी था।'

मैं फिर इस संबंध में कुछ न बोला।

दूसरे दिन फिर रञ्जनजी ने दोपहर को टहलने का प्रस्ताव किया, उस दिन भी हम लोग लघोर की ओर निकल पड़े। रञ्जनजी ठीक उसी दुकान पर खड़े हो गये जहाँ वह पिछले दिन खड़े हुए थे। उनके खड़े होते ही वही चपल-स्वभाव ईरानी लड़की बड़ी फुरती से एक चाकू हाथ में उठाकर बोल उठी—'बाबूजी, यह लीजिये वह चाकू जिसे आपने खरीदने को कहा था।'

रञ्जनजी उसकी यह हड़बड़ी देखकर कुछ क्षणों तक मन्द मन्द मुस्कराते रहे। मैंने देखा, उनकी उस सुगम्भीर मुस्कान में एक अस्फुट करुणा और मार्मिकता छिपी हुई थी। बिना किसी बहस के उन्होंने वह चाकू ले लिया और मुँहमाँगा दाम दे दिया। इसके बाद वह मेरा हाथ पकड़ कर आगे बढ़ गये। वह चाकू स्पष्ट ही उनके किसी भी काम का न था। उसका हत्था लकड़ी का बना था और फल एकदम कुन्द था। छोटे छोटे बच्चों के खेलने के काम का था। पर आज मैंने उस सम्बन्ध में कोई प्रश्न उनसे नहीं किया। तब तक मेरे आगे यह बात बिलकुल साफ हो गयी थी कि वह उस दुकान से कोई चीज किसी उपयोगिता की दृष्टि से नहीं खरीदते हैं, बल्कि कोई विशेष मनोभाव ही उन्हें उस दुकान पर ठहरने के लिये प्रेरित करता है। पर वह मनोभाव क्या हो सकता है? क्या उस खानाबदोश ईरानी लड़की की शारीरिक

सुन्दरता का उसमें कोई सम्बन्ध है ? क्या उनके समान साहित्य-कला ममज्ञ और जीवन के गहरे अनुभवों में शिक्षा प्राप्त (जैसा कि उनकी बातों से पता चलता था) व्यक्ति भी इस तरह के ओछे मनोभावों से परिचालित हो सकता है ? ८-

उसी रात को डाइनिंग रूम में रञ्जनजी के साथ ही भोजन करने के बाद जब मैं अपने कमरे में जाकर आराम करने का विचार कर रहा था तब भी उन्होंने मुझे नहीं छोड़ा और बोले—"आपके कमरे में कुछ देर गपशप की जाय। अभी जल्दी है। अभी से सोकर क्या कीजियेगा !"

मैं केवल शिष्टतावश उनके प्रस्ताव का विरोध न कर सका अन्यथा उस दिन मैं बहुत थका हुआ था और गपशप करने की न तो मुझमें शक्ति ही रह गयी थी न प्रवृत्ति ही।

कमरे में पहुँच कर ठंडी हवा से बचने के लिये भीतर से किवाड़ फेर-कर मैं अपने बिस्तर पर लिहाफ के भीतर दुबक गया—केवल मुंह खोले रहा। रञ्जनजी पास ही एक सोफा पर आराम से बैठकर सिगरेट फूंकने लगे।

मेरा 'मूड' खराब हो गया था और उसी खीझ की मनःस्थिति में मेरे भीतर दबा हुआ व्यङ्ग्य बरबस उभर उठा। सहसा मैंने ईरानी लड़की की दुकान की चर्चा छेड़ते हुए कहा—'जो चाकू आज आपने खरीदा था उससे आप क्या काम ले सकेंगे मैं समझा नहीं !' ~

रञ्जनजी ने केवल मन्द मन्द मुस्कराते हुए सिगरेट से एक कश ली। उस प्रश्न का कोई प्रभाव उन पर न पड़ते देखकर मैंने अपनी जबान को और अधिक सान पर चढ़ाते हुए कहा—"उस ईरानी लड़की के प्रति आप बड़े सदय मालूम होते हैं। कल कौन सी चीज खरीदने का विचार है—चाय की छननी ?' ~

रञ्जनजी ठठाकर हँस पड़े। जब उनका वह हास्यभाव ठंडा पड़ा तब मैंने व्यंग और परिहास का भाव त्यागकर सहज भाव से कहा—"मैं बहुत उत्सुक हूँ यह जानने के लिये—'

"कि मैं उस ईरानी लड़की से चाकू और कैंची क्या खरीदता हूँ ?

६ यही बात है न ? यदि आपको कुतूहल इस सम्बन्ध में सचमुच इतना अधिक बढ़ गया है तो मैं उसका निवारण करने को तैयार हूँ। किस्सा लम्बा है, मुझे सुनाने में कोई आपत्ति नहीं है। पर एक शर्त है—आप चुपचाप सुनते जायें बीच में कोई प्रश्न करके मुझे टोकें नहीं!"

मैंने सूचित किया कि मुझे उनकी शर्त मंजूर है। उसके बाद रतन जी ने अपना किस्सा सुनाना प्रारम्भ किया। किस्सा बड़ा दिलचस्प था। सारी रात बीत गयी पर वह समाप्त न हुआ। उसके बाद कई दिनों तक यह किस्सा चला। जब भी हम दोनों अवकाश पाते मैं उनसे उनकी जीवन कथा को आगे बढ़ाने का अनुरोध करता रहता। उनके उस लम्बे आख्यान को मैं [illegible] परिच्छेदों में लिपिबद्ध कर रहा हूँ।

१

मसूरी मे उस दिन जिस ईरानी जिप्सी लडकी की दुकान मे मैंने चाकू खरीदा उसमे मेरी कोई खास दिलचस्पी नही थी। पर वह एक ऐसी लडकी की याद मुझे अक्सर दिलाती रहती है जो कुछ ही वर्ष पहले तक उसी स्थान पर उसी की तरह बिसाती की दुकान खोले रहती थी और वैसी ही चचल और ढीठ थी। उम्र भी उसकी प्राय उतनी ही थी जितनी ईरानी लडकी की। फिर भी दोनो की आकृति प्रकृति मे बहुत अतर था। ईरानी लडकी के मुख पर एक ऐसा रूखापन छाया हुआ है जो मेरे मन को बरबस पीछे को ढकेलता है, पर उस लडकी के मुख से एक ऐसी स्निग्ध, सरस और सरल सहृदयता का भाव टपका पडता था जो किसी भी पथ भूले हुए पथिक को अपनी ओर खीचता था और बिना कुछ बोले ही उसे सान्त्वना देता था। विशुद्ध शारीरिक दृष्टि से भी दोनो मे बहुत अतर था। ईरानी लडकी का चेहरा कुछ लबा है, पर जिस लडकी की बात मैं कहने जा रहा हू, उसका मुह कुछ गोल था। उसकी आँखें कुछ छोटी थीं और अपनी सरलता के भीतर ही किसी अज्ञानित रहस्यलोक का आभास छिपाये हुए थी। ईरानी लडकी की नाक लबी है और उसका सिरा एकदम तीखा है। पर उस लडकी की नाक अपेक्षाकृत छोटी और सिरे पर गोलाई लिये हुए थी। ईरानी लडकी के मुख की अभिव्यक्ति से मेरे मन मे यह विश्वास जमने लगता है कि वह जन्म-जात अपराधिनी

और सूर्य-वर्णिणी है। पर जिस लड़की का किस्सा मैं कहने जा रहा हूँ उसकी ओर एक झलक देखने से ऐसा बोध होने लगता था कि उपनिषत्कार ने शुद्ध अपापविद्धम् की कल्पना उसी के समान किसी लड़की का चेहरा देखकर ही की होगी। ईसा की माता मेरी के सम्बन्ध में ईसाई कवियों ने जिस इम्मेक्युलेट कन्सेप्शन की बात कही है उसका पहला अनुभव मुझे उसी लड़की को देखने पर हुआ।

वह लामा स्त्रियों का सा लहँगा पहने रहती थी और उन्हीं की तरह सिर पर एक विशेष ढंग का कपड़ा बाँधे रहती थी। पर उसकी आकृति से यह विश्वास नहीं होता था कि वह लामा जाति की हो सकती है। उसकी आँखें छोटी अवश्य थीं और नाक भी किसी कदर छोटी और गाल भी पर इस हद तक नहीं कि उसे मंगोल जातीय कहा जा सके। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि वह साड़ी पहने होती तो उसके पूर्णतः भारतीय होने में किसी को रत्तीमात्र भी सन्देह न होता।

मैं उस साल पहली बार मसूरी आया हुआ था। एक दिन यों ही टहलते हुए जब मैं ठीक उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ वह ईरानी लड़की बैठी हुई थी तब सहसा मेरी दृष्टि उस लामा वेषधारिणी लड़की पर जाकर ठहर गयी। उसके असाधारण रूप-रंग ने मुझे इस कदर आकर्षित किया कि मैं उसकी दुकान के पास आकर ठहर गया। लड़की ने नागर की तरह तीव्र किन्तु स्निग्ध और मधुर स्वर में कहा—"बाबूजी, क्या चाहिये?"

मेरा हाथ बरबस एक चाकू पर चला गया। "यह ६ आने का चाकू है मेरे साहिब बाबूजी! इतने कम पर आपको इस लाइन की किसी भी दुकान पर नहीं मिलेगा।" विशुद्ध हिंदी में बिना किसी विदेशी उच्चारण के लड़की ने कहा। उस लाइन में जिप्सी (खाना-बदोश) लड़कियों की चार-पाँच दुकानें और लगी हुई थीं। मैंने वह चाकू ले लिया और उसके बाद दूसरी चीजें देखने लगा। जिस तरह की चीजें वहाँ थीं उनमें से किसी भी खास चीज से मेरी कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती थी। पर मुझे लड़की से बातें करने का बहाना ढूँढना था। दूसरी बार सिन्दूर की एक बन्द पुड़िया पर मेरा हाथ रुका

गया। तत्काल लड़की बोल उठी—"यह बहुत मशहूर सिंदूर है, बाबूजी, ले लीजिये। बीबीजी को यह बहुत पसन्द आयगा। यहां की सब औरतें यही सिंदूर खरीदती हैं।"

मैं लड़की से कम कहना कि मेरे घर में कोई 'बीबीजी' नहीं है, मेरा विवाह ही नहीं हुआ है।

वह कहती चली गयी— दूसरी तरह के सिंदूर जब मांग में भरे जाते हैं तो उनसे सिर में दर्द होने लगता है ऐसा मैंने सुना है। पर इस सिंदूर के बारे में अभी तक कोई शिकायत सुनने में नहीं आयी है।

मैंने मौका पाकर कहा— 'तुम्हें कैसे मालूम कि सिंदूर मांग में भरा जाता है? हिन्दू औरतों के यहां के रीति रस्मों की जानकारी तुम्हें कैसे हो गयी? तुम तो तिब्बती हो न?

लड़की मुस्करायी। उस निश्छल मुस्कान की मादकता का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूं क्योंकि मैं कोई कवि नहीं हूं। वह बोली—"मैं तिब्बती नहीं हूं। मेरा जन्म यहीं हुआ है और हिन्दू घर में ही मैं बड़ी हुई हूं।'

मैंने पूछा—

"पर तुम यह तिब्बती पोशाक क्यों पहनती हो?

"इसलिए कि मेरा बाप तिब्बती था।"

और मां?

'मां यहीं की थी। राजपुर में उसका जन्म हुआ था।

राजपुर मसूरी के नीचे एक छोटा सा पहाड़ी स्थान है। मेरा कौतूहल उसके सम्बन्ध में घटने के बजाय बढ़ गया। मैं और भी बहुत-सी बातें पूछना और जानना चाहता था पर बीच सड़क में दुकान खोलकर बैठनेवाली लड़की से उसके जन्म, कुल और जीवन के सम्बन्ध में अधिक बातें करना अशोभन जानकर मैं अनिच्छापूर्वक वहां से उठकर जाने लगा। दो कदम आगे बढ़ा हूंगा कि लड़की पीछे से दौड़ी आयी और मुझे याद दिलाती हुई बोली—"आप यह सिंदूर नहीं ले गये बाबूजी। सकोच मैंने सिंदूर की पुड़िया उसके हाथ से ले ली और जा

दाम उसने माँगा वह देकर मैं चला गया। एक बार इच्छा हुई कि सिंदूर की उस पुड़िया को नीचे खड्ड में फेंक दूँ। पर न जाने किस अज्ञात कारण से मैं रह गया और पुड़िया को कोट की जेब में डाल कर अनमने भाव से सदर बाजार की ओर बढ़ा। मन में एक अजीब सी बेचैनी समा गयी थी—ऐसी बेचैनी जैसी जीवन में दो ही एक बार अत्यन्त असाधारण परिस्थितियों में ही संभव होती है।

घटना केवल चार ही वर्ष पूर्व की है। पर चार वर्ष पूर्व मेरे मन में और शरीर में जो स्फूर्ति थी वह आज कल्पनातीत सी हो गयी है। तब मैं अपने को पूर्ण युवा अनुभव करता था। मैं समस्त सामाजिक उत्तरदायित्वों से रहित था, मेरा स्वास्थ्य भी अच्छा था। पहाड़ पहली बार आया हुआ था। पहाड़ का शुभ्र समुज्ज्वल प्राकृतिक वातावरण और साथ ही आनन्दवादी नर-नारियों से घिरा हुआ और रंगमय वातावरण मिलकर मेरे मन में जीवन के नव नये ही रस की धारा तरंगित कर रहे थे। अपनी इसी मनःस्थिति में जब उस लड़की को मैंने पहली बार देखा तब उस नये रस में भी एक अनोखी मथन सी आरम्भ हो गयी और मैं समझ ही न पाया कि मेरे भीतर की कौन रहस्यमयी प्रवृत्ति इतने दिनों तक निष्क्रिय अवस्था में निश्चल पड़ी रहने के बाद आज सहसा किस असाधारण की प्रेरणा से परिपूर्ण विस्फोट के साथ उमड़ उठी है। न जाने वह विस्फोट मुझे कहाँ लाकर पटकेगा।

दूसरे दिन ठीक उसी समय मैं उस लड़की की दुकान पर पहुँचा जिस समय पिछले दिन पहुँचा था। मुझे देखते ही उल्लास से उसका सुंदर गोरा-सा चेहरा तमतमा उठा—बस, मेरी आँखों को ऐसा ही लगा। 'आइए बाबूजी, आइए! बीबीजी को वह सिंदूर पसंद आया या नहीं?' उसने कहा।

मैं उसके उस प्रश्न का क्या उत्तर देता। पर कुछ तो कहना ही था। बोला—'सिंदूर अच्छा था।' और फिर छड़ी के सहारे नीचे झुककर दुकान पर सजी हुई चीज़ों को देखने लगा।

मेरे उत्तर से लड़की का उत्साह स्वभावतः दुगना बढ़ गया। उसने उल्लास भरे स्वर में कहा—"और क्या चाहिये, बाबूजी ?"

अनमने भाव में मेरा हाथ एक छोटी सी पुस्तिका पर गया। किसी सस्ते प्रेस में छपी हुई उस पुस्तिका के आवरण पृष्ठ पर बड़े बड़े अक्षरों में छपा हुआ था—"डाकुओं का सरदार।"

लड़की झट बोल उठी—"बड़ी अच्छी किताब है, बाबूजी, इसे खरीद लीजिये। इसमें डाकुओं के एक बड़े बहादुर सरदार की कहानी है जो गरीबों की मदद किया करता था।"

मैंने उस पुस्तिका को खरीदने के उद्देश्य से बाएँ हाथ में रख लिया। उसके बाद एक दूसरी पुस्तिका पर हाथ लगाया। वह भी उसी प्रेस में छपी हुई मालूम होती थी। ऊपर बड़े बड़े अक्षरों में नाम छपा था—"नौलखा हार।

लड़की पहले की ही तरह सहज भाव से बोली—"इसमें बहुत अच्छी कहानी है। एक राजा एक गरीब किसान की खूबसूरत लड़की को प्यार करने लगा था। उस लड़की से शादी करके उसने उसे अपनी पटरानी बना दिया और नौ लाख अशर्फियों की कीमत का एक जड़ाऊ हार उसे भेंट किया—'

इस बार मैंने उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखा—यह जानने के लिये कि प्यार की बात करते हुए उसके मुंह पर कोई नया रंग आता है या नहीं। एक विशेष प्रकार की चमक का एक बहुत ही हलका—प्रायः अव्यक्त सा—आभास मुझे उसकी आँखों के कोने में झलकता दिखायी दिया। मैं कह नहीं सकता कि वह चमक उसकी बात से किसी भी अंश में संबंधित थी या नहीं।

मैंने पूछा—'क्या तुम पढ़ना जानती हो ?"

उत्साहित होकर उसने कहा—"हाँ बाबूजी, मैंने छठे दर्जे तक ग्राम कन्या पाठशाला में पढ़ा है।"

मेरे भीतर जो तूफानी भाव रह रहकर हिलकोरें उठे थे, उन्हें बाहर तनिक भी प्रकट न होने देने के लिये मैं पूरा प्रयत्न कर रहा था। ग्राम

सड़क पर उसके पास अधिक देर तक बैठे रहना भी शोभन नहीं था, विशेषकर जब दूसरे कुतूहली ग्राहक मेरे पीछे और आस-पास में खड़े थे। इसलिए उस दिन भी उससे अधिक बातें न करके मैं उन दो पुस्तिकाओं के दाम उसे देकर उठ खड़ा हुआ और चल दिया।

उस दिन दिन भर और रात भर मैं अज्ञात हृदय से यह सोचता रहा कि किस उपाय से उसे अपने निकट संपर्क में लाया जाय। समस्त सांसारिक बंधनों से रहित मेरे युवा प्राणों में जो रोमानी रङ्ग पूरे प्रवेग से चढ़ा हुआ था उसने एक विचित्र सूझ मेरे मस्तिष्क को दे दी।

२

दूसरे दिन मैं सन्ध्या को सदर के आस-पास चक्कर लगाता हुआ उस अवसर की प्रतीक्षा करता रहा जब किशोरी अपनी दुकान उठाकर जाने के लिए उद्यत होने लगती है। सड़क की बत्तियाँ जलते ही मैंने देखा कि वह अपना सामान उठाने की तैयारी करने लगी है। उस समय कोई ग्राहक वहाँ पर नहीं था। मैं कुछ ही दूर पर कुछ देर तक अनिश्चय की स्थिति में खड़ा रहा। अन्त में अपने चेहरे पर भारी हिचक से मुस्कान लाकर मैं उसके पास पहुँच गया। सड़क की बत्ती के प्रकाश में मुझे पहचान कर वह बोली—"बाबूजी नमस्ते!"

मैंने कहा— नमस्ते! क्या दुकान उठाकर जा रही हो?

"हाँ बाबूजी, अब डेरे पर जाकर दाल रोटी का जुगाड़ करूँगी। आपको कोई चीज चाहिए क्या?"

क्षण भर मैं मन में हिचका। उसके बाद मैंने वह प्रस्ताव पेश कर ही डाला जिसके संबंध में प्रायः ३० घंटों से मैं निरंतर विचार कर रहा था। मैंने कहा— मैं तुम्हारी दुकान की कुल चीजें एक-साथ खरीदना

चाहता हूँ। तुम कुल चीजा का दाम जोड लो। मैं दे दूँगा।
पर एक शत है। तुम्हे इन सब चीजा को मेरे यहा—होटल मे—पहुँचाना होगा, क्या तुम अभी पहुँचा सकती हो ?"

क्षण भर के लिय लडकी स्तब्ध खडी रही—आश्चय से, अविश्वास से या किसी दूसरी ह्चिक से, मैं कह नही सकता। पर दूसरे ही क्षण वह सहज भाव से बोली—"अच्छी बात है बाबूजी, चलिय, मैं अभी आपके साथ चलती हूँ।"

मैंने कहा—"तब चलो !"

उसने कुल सामान उसी कपडे म लपट लिया जिसम सजाकर वह बचा करती थी, और फिर उसे अपने बाएँ कधे पर झुलाकर वह बोली—'चलिय।'

मैं आग आगे चलने लगा और वह पीछे से मेरा अनुसरण करती हुई चलने लगी। मेरे मन मे तरह-तरह की भावनाएँ उठ रही थी। यदि होटल म किसी को भी मेरी इस खामखयाली का पता चल जाय तो बात किस कदर बढ सकती है, यह विचार भी मेरे मन म उठा। और फिर उस लडकी को अपने यहा बुलाकर यदि मैं उसके जीवन के सम्बध म अपने कुतूहल का निवारण कर भी लू तो तस किस ? एक बार इच्छा हुइ कि लडकी को कुछ रुपया देकर मय सामान के रास्त से ही वापस भेज दूँ। पर न जाने प्राणो की कौन अदम्य आकाक्षा मुझे दुस्साहसिकता की ओर अधिकाधिक ढकेलती चली जाती थी। -

होटल म सबसे नीचे वाली मंजिल मे मैं रहता था। मेरे पास दो कमरे थे, जिनम स एक रसोई के काम के लिय लिया गया था—यद्यपि मैं होटल का ही खाना खाता था। अपने कमरे का ताला खोल कर मैंने भीतर प्रवेश किया और बत्ती जलायी। मेरे अगल-बगल के सहवासी सभी टहलने गय हुए थ। इसलिय कुतूहली आखो का भय—कम स कम उस समय के लिये—जाता रहा। मैंने लडकी को जो अभी तक बाहर खडी थी, सम्बोधित करके कहा—"चली आओ !"

बिजली की बत्ती के प्रकाश मे मैंने देखा, लडकी कुछ सहमे हुए पगा

 में भीतर आयी। मैंने उसका छोटा-सा बोझा अपने हाथ में ले लिया और पासवाली मेज पर रख दिया।

मैंने कहा—'इन चीजों का हिसाब लगा लो। मैं रुपया गिन दूँगा।'

लच्छी ने कपड़ा खोला और चीजों को गिनने लगी। गिनने के बाद बोली—"कुल ५५ चीजें हैं।"

"कितना दाम हुआ?" मैंने पूछा

'अब इतना हिसाब मुझसे न हो सकेगा। आप जो ठीक समझें, दे दें।

मैंने अपना बटुआ खोल कर उसमें से तीन नोट दस-दस के निकाले। उन्हें लच्छी को थमाते हुए कहा—"इन्हें गिन लो।

लच्छी प्राय काँपते हुए हाथों से गिनने लगी। शायद इतना रुपया एकमुश्त उसने जीवन में पहले नहीं देखा था। जब वह गिन रही थी तब मैं बड़े गौर से उसके सोने की तरह पीले और सुन्दर मुख की ओर देखता रहा। मैं देख रहा था, उसके मुख का पीलापन धीरे धीरे ललाई में बदलता जा रहा है। क्या वह अप्रत्याशित घटना का प्रभाव था? या कोई दूसरी ही मनोभावना उन रुपयों के समय न उसके भीतर जग रही थी? मैं कह नहीं सकता।

जब वह गिन चुकी तो उसने एक विचित्र दृष्टि से मेरी ओर देखा। १०० वर्ष का दानि वा र मल्य से प्रकाश में आज पहली बार मैंने उसके मुख की यह अभिव्यक्ति देखी जिसमें सहज-स्वाभाविकता नहीं थी। मैंने इस बात पर भी ध्यान दिया कि पहली बार उसे देखने पर जो 'मुग्ध मनोविभ्रम' वाली कल्पना मेरे मन में जगी थी वह निर्भ्रान्त नहीं थी। उसकी दोनों आँखों के निचले भागों में, नाक के सिरे के दोनों छोरों में और ओठों के दोनों किनारों पर उस समय जो मुद्रा परिस्फुट हो उठी थी उससे मेरे मन के बहुत भीतर अज्ञानित भय की एक लहर दौड़ गयी—यद्यपि मैंने इस बात पर भी गौर किया कि वह अभिव्यक्ति ममान्तक रूप से सम्मोहक थी।

मैंने कुछ सहमे हुए स्वर में पूछा—"गिन लिया?

उसने दबी हुई आवाज में उत्तर दिया—"जी हाँ !"

"कितने हैं ?" मैंने पूछा ।

उसने उसी धीमे स्वर में उत्तर दिया—"दो सौ हैं ।" और तत्काल, सहसा अपनी आवाज में तीखापन भरती हुई वह बोली—"पर इतने रुपये तो बहुत हैं, बाबूजी ! इतने रुपये लेकर मैं क्या करूँगी ?"

मैंने कहा—"तब तुम कितना रुपया अपनी कुल चीजों का आँकती हो ?"

"ज्यादा से ज्यादा तीस चालीस रुपया ।"

मैंने कहा—"पर मैं इतना कम दाम देना अपनी इज्जत के बाहर की बात समझता हूँ । मैंने जो कुछ दिया है ठीक ही दिया है । तुम इन रुपयों का जैसे चाहो खर्च कर सकती हो ।"

लड़की फिर उसी स्तब्ध और गंभीर दृष्टि से मेरी ओर देखती रही जिसने मेरे भीतर एक कारणहीन भय की अनुभूति जगा दी थी । वह सरल, स्निग्ध, सहृदयतापूर्ण, मधुर मुस्कान, जिसने मुझे पहली ही दृष्टि में अपनी ओर खींच लिया था, एकदम गायब हो गयी थी । पर आश्चर्य की बात यह थी कि उसका वह एकदम बदला हुआ नया रूप मुझे उसके पिछले रूप से कुछ कम आकर्षक नहीं लगा, बल्कि और अधिक मोहक मालूम हो रहा था ।

सहसा मुझे जैसे कोई भूली हुई बात याद आयी । मैंने कहा—"पर तुम खड़ी क्यों हो ? बैठ जाओ ।

वह मेरी ओर से दृष्टि न हटाकर धीरे से बगलवाले सोफा पर बैठ गयी, मैंने देखा कि उसके मुख से वह भयानकता धीरे धीरे विलीन होने लगी थी जिसने कुछ समय के लिये शरत्काल के हल्के, उड़नशील अस्थायी काले बादल की तरह उसकी सहज, सरल अभिव्यक्ति को ढक लिया था, और फिर से स्वाभाविक सौंदर्यपूर्ण अकलुष भाव उसके मुख पर उभरने लगा था ।

कुछ क्षणों तक कमरे में सन्नाटा रहा । सहसा काले बादल से मुक्त पूर्णचंद्र की तरह उसका चेहरा खिल उठा । बड़ी ही प्यारी मुस्कान मुख पर झलकाती हुई वह बोली—"अच्छा बाबूजी, यह बताइये कि

आपने इतना रुपया मुझे क्यों दिया और इतनी सब चीजें मुझसे क्यों खरीदीं ? आप न तो कोई व्यापारी हैं—क्योंकि अगर आप व्यापारी होते तो इतनी कम कीमत की चीजों का इतना रुपया न देते। और न आप कोई गरीब देहाती किसान या शहराती मजदूर हैं जिन्हें चीजों के ठीक ठीक दाम नहीं मालूम रहते। ये चीजें आपके किसी काम में आ सकेंगी यह भी मैं नहीं सोचती। तेल भरने के टीन के कुप्पों से आप क्या करेंगे ? बच्चों के खेलने की गोलियाँ आप के किस काम की ? फिर भी आपने सब चीजें खरीद ली हैं। मेरी कुछ समझ में नहीं आता बाबूजी।''

उसके प्रश्न से मुझे लगा जैसे उसके निर्द्वन्द्व जीवन में पहली बार द्वन्द्व का काँटा चुभ आया, उसके स्वाभाविक रूप से सरल और सुलझे हुए मन में पहली बार उलझन की गाँठ पड़ गयी। मैं उत्तर में कुछ न बोला। उसकी परेशानी को तनिक भी दूर करने का प्रयत्न मैंने नहीं किया। जानबूझकर दुष्टतापूर्वक मैं केवल मंद मंद मुस्कराता हुआ चुप हो रहा। कुछ क्षणों के लिए कमरे में एक रहस्यमय सन्नाटा छाया रहा। उसके बाद मैंने घंटी का बटन दबाया। होटल का एक नौकर तत्काल उपस्थित हो गया। मैंने उससे एक ट्रे में चाय और दो व्यक्तियों के लिए कुछ ताजा बने हुए खाने का आदेश दिया।

लम्बी चुप थी। उसकी विभ्रांत मौन दृष्टि जैसे मेरे ऊपरी व्यक्तित्व का आवरण चीरकर भीतर की वास्तविकता का पता लगाने के लिए अधीर और आतुर हो रही थी। पर अपने प्रयत्न में विफल होने के कारण उसकी खिन्नता और अधिक बढ़ती जाती थी ऐसा अनुभव मैंने किया।

सन्नाटा भंग करते हुए मैंने बहुत ही धीमे स्वर में पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?

मुझसे भी धीमी और सहमी आवाज में वह बोली—मनिया।

"नाम तो बहुत ही अच्छा है" मैंने कहा—"तुम रहती कहाँ हो ?"

"बच्चरखाने मे एक छोटी सी कोठरी है उसी मे रात काट लेती हूँ।"

"तुम्हारे माँ-बाप ?"

"कोई नहीं हैं।"

"तुम अकेली हो ? कोइ भाइ बहन भी नहीं ?"

'नहीं।"

"तुम्हारा आदमी ? "

इस बार लडकी कुछ चौंकी। "कौन आदमी ? कैसा आदमी ?"

'मेरा मतलब है, तुम्हारी शादी "

सहसा वह खिलखिला उठी—वन विहगी की तरह। हँसी का दौर जब कुछ शान्त हुआ तब बोली—'आपका मतलब समझ गयी। मैं अकेली हूँ, मेरा कोइ आदमी नहीं है।' और फिर उसी साँस मे बोली— अच्छा, अब मैं चलती हू, बाबूजी। देर हो गयी, मुझे दूर जाना है। कहकर उठने लगी।

अरे बैठो तो सही। चाय आ रही है। चाय पी जाओ और खाना भी यहा खाकर जाओ। अभी जल्दी क्या है। एक दिन कुछ देर ही सही।"

इतने मे नौकर चाय ले आया। "बैठो, बैठो!" मैंने दुगना जोर देकर लडकी से कहा।

वह कुछ देर असमजस मे खडी रही। मैंने जब फिर एक बार आग्रह किया तो बैठ गयी। ब्वाय ने उसके आगे एक मेज लगाकर एक प्याले मे चाय बनाकर रख दी और चाप कटलेट, सलाद और छुरी काँटे से युक्त एक प्लेट भी वही पर रख दिया। सिरका, नमक, पिसी हुई गोल मिर्च आदि की छोटी छोटी शीशियां भी एक बर्तन मे सजाकर रख दीं। स्फटिक के गिलास मे पानी और धोबी के यहाँ से ताजा धुला हुआ एक झाडन भी एक कोने पर रख दिया। उसी तरह मेरे लिये भी उसने सब चीजें सजाकर रख दीं। लडकी वह सारा आडम्बर देखकर कुछ देर तक चकित अवस्था मे निश्चल बैठी रही। कभी वह मेज को देखती थी कभी मेरी

ग्रार। मैंने छुरी-काँटे से चाप काटते हुए उससे आग्रह भरे स्वर में धीरे से कहा— खाओ!"

उसने छुरी-काँटा धीरे से हटाकर प्लेट में रख दिया और हाथ से एक-एक टुकड़ा तोड़कर खाने लगी। खाती हुई वह सहमी हुई दृष्टि से मेरी ओर देखती जाती थी।

मैंने उसे ढाढ़स बँधाने के उद्देश्य से कहा— बड़े-बड़े टुकड़े मुँह में डालो। इतने छोटे टुकड़ों से कैसे काम चलेगा। अभी तो खाना मँगाया ही नहीं। और मैंने होटल के नौकर से पूरा 'कोर्स' लाने के लिये कहा।

जब खाना आया तब वह संकोच त्याग चुकी थी। बड़ी वतवरलुफी के साथ उसने खाना आरम्भ कर दिया। स्पष्ट ही वह भूखी थी। इसके प्लेट पर प्लेट खाना चला गया और वह मेरी ओर तनिक भी न देखकर उन्हें साफ करती चली गयी। मैं केवल शिष्टता निभाने के लिये उसका साथ देने का स्वांग रचता रहा।

जब अन्तिम कौर के बाद एक गिलास पानी पीकर उसने अपना हाथ खींच लिया तब मैंने कहा— अभी तुम्हें और खाना पड़ेगा। मीठा डिश अभी बाकी है।

उफ! खूब खा चुकी हूँ। बड़ा भूख लगी थी, बाबूजी। सच मानिये पिछले कई दिनों से मैं आधा पेट खाकर ही रह जाती थी। कभी कभी तो मारे आलस के मैं रात में खाना बनाती हो नहीं भूखी सो जाती हूँ। आज भी अगर आप खाना न खिलाते तो मैं घर जाकर बिना खाये ही सो जाती। पर आपने आज बहुत खिला दिया।'

जब मीठा डिश आया तो उसे भी उसने बड़ी फुर्ती से साफ कर दिया। और फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली— 'सोचती थी कि अब पेट में जगह नहीं है। पर वह सब भी मैं खा गयी!'

मैंने कहा— और मँगाऊँ?

'न न, न! अब नहीं। अब अगर एक टुकड़ा भी मैं खाऊँगी तो मर जाऊँगी।' कहकर वह कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई। इसके

न उसके हाथ धुलाये और एक साफ तौलिया हाथ पोछने के लिये दे दिया।

जब वह हाथ पोछ चुकी तब हाथ जोड़ती हुई बोली—"अच्छा बाबूजी, नमस्ते ! अब जाती हूं। आपको बहुत—बहुत—बधाई !"

मैं हँसी न रोक सका। उसने बताया था कि उसने छठे दर्जे तक पढ़ा है और किस्से-कहानियों की पुस्तकें भी वह कभी-कभी पढ़ लिया करती थी, यह भी उसने बताया था। अपने उस सीमित ज्ञान-कोष से कृतज्ञता प्रकाशन के लिये शब्दावली टटोलते हुए उसे स्पष्ट ही बड़ी कठिनाई से एक शब्द मिल पाया था—'बधाई !' धन्यवाद के बदले उसने अनजाने में मुझे जो बधाई दी वह क्या भविष्य में सफलीभूत होगी ? मैंने अपने अन्तमन से यह प्रश्न किया।

मैं उठ खड़ा हुआ और पलटे में मैंने भी उसके प्रति हाथ जोड़ दिये। मुंह से एक शब्द भी मैं न बोला। जब वह जाने लगी तो उसकी दृष्टि में एक विशेषता मैंने पायी। मुझे लगा कि एक मीठी उदासी भरी उत्सुकता उसकी छोटी, किंतु कटारी की तरह तीखी आँखों में बरबस छा गयी है। यह मेरा भ्रम हो सकता है। यह भी संभव है कि चूंकि मेरा मन उसकी आँखों को उसी रूप में देखना चाहता था, इसलिये मेरी आँखों ने जानबूझकर उस भ्रम को सत्य मान लिया। पर वास्तविकता चाहे जो भी रही हो मनिया के चले जाने के बाद उसकी वह (काल्पनिक अथवा वास्तविक) उदास दृष्टि रह रह कर मेरे मन में एक अपूर्व अनुभूत चुभन पैदा करने लगी। और—आप विश्वास करें या न करें—जब मैं बत्ती बुझाकर सोने के उद्देश्य से पलँग पर लेट गया तब उसकी 'बधाई' देने के समय की सरल सौहार्दपूर्ण मुख मुद्रा को याद करते हुए मेरी आँखों से दो बूंद आँसू टपक पड़े।

३

दूसरे दिन मैं कुछ जल्दी ही फिर उसी सड़क पर चक्कर लगाने के इरादे से बाहर निकला जहाँ मनिया दुकान बिछाया करती थी पर मेरी निराशा का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि और सभी जिप्सी स्त्रियाँ वहाँ पर दुकान बिछाये बैठी हैं केवल मनिया नहीं है। यह सोचकर कि शायद अभी जल्दी है और उसके दुकान खोलने का समय अभी नहीं हुआ होगा और सम्भवतः कुछ देर बाद वह आ पहुँचेगी मैंने अपने आपको कुछ धैर्य दिया। कुछ देर तक इधर उधर चक्कर लगाने के बाद मैं फिर उसी स्थान पर पहुँचा। पर मनिया तब भी नहीं आयी थी। हताश होकर मैं फिर लौट चला। कमन्स वक रोड से होकर लाइब्रेरी बाजार गया। वहाँ कुछ देर एक बेंच पर बैठा रहा। उसके बाद फिर पन्नल मधीर की ओर चल पड़ा। निश्चित स्थान पर पहुँचने पर मैंने देखा मनिया का कोई चिह्न वहाँ न था।

मेरा हृदय धक से रह गया। कारण क्या हो सकता है इस सम्बन्ध में तरह-तरह की कल्पनाएँ मेरे मन में उठने लगीं। इस बात की ओर मेरा ध्यान भी नहीं गया कि उसकी कुल चीजें मैं खरीद चुका हूँ, और नये सिरे से दुकान जमाने के लिए समय चाहिये।

फिर मैंने सोचा, शाम में कुछ अधिक सर्दी लगने के कारण कहीं वह बीमार तो नहीं हो गयी है? यदि ऐसी बात है तो उसकी परिचर्या करना मेरा कर्तव्य है। पर वह रहती कहाँ है? मुझे अपनी इस भूलना पर बहुत पछतावा हुआ कि मैंने उसके मकान का नम्बर नहीं पूछा। जो जिप्सी स्त्रियाँ वहाँ बैठी हुई थीं उन्हें उसका हाल और पता निश्चय ही मालूम होगा। यह सोचकर मैंने साहस बटोर कर उनमें से एक से पूछा—'नम्बरी सूरंगा पहने हुए जो लड़की कल तक यहाँ बैठा करती थी वह आज क्यों नहीं आयी?'

'हमें पता नहीं है!' बड़ी रुखाई से उसने उत्तर दिया।

मैंने फिर एक बार साहस बटोरा—'वह रहती कहाँ है?'

'ऐसा कहना पहचान वालों सिवा लड़की के लिए एक झूठ-मूठ

धारी बाबू को इस कदर उत्सुक देखकर ग्राहकों को निश्चय ही कुतूहल हो रहा होगा, यह सोचकर मैं अपने ही भीतर सिमटा जा रहा था।

उत्तर मिला—"हम नही जानते, किसी दूसरे से पूछो।"

अब तो मेरी घबराहट का ठिकाना न रहा। अंतिम आशा पर तुषारपात होते देख कर मैं समस्त संकोच त्यागकर दूसरी जिप्सी स्त्री के पास गया। उसने भी रुखाई से कहा कि उसे मनिया के मकान का पता मालूम नही है। एक एक करके सबसे मैंने वही प्रश्न पूछा—अगल बगल के ग्राहकों की कुतूहली आँखों की तनिक भी परवाह न करके। पर कोई फल न हुआ। अंत में एक लड़की ने बताया कि मनिया खच्चरखाने में रहती है। मुझे भी याद था कि मनिया ने खच्चरखाने का उल्लेख किया था। पर खच्चरखाने में कहाँ उसे ढूंढा जाय!

अँधेरा हो चला था। मैं अपने होटल में वापस चला गया। उस दिन मुझे जुकाम ने पकड़ लिया। संभवतः मेरी मानसिक खिन्नता ही मेरी उस अस्वस्थता का कारण रही हो। दूसरे दिन उसी जुकाम ने इन्फ्लुएंजा का रूप धारण कर लिया। होटल का मैनेजर भला आदमी लगा। उसने तत्काल एक योग्य चिकित्सक को बुलाया और नौकरों को आदेश दिया कि मेरी परिचर्या में कोई त्रुटि न रहने पावे। प्रायः एक सप्ताह तक मैं ज्वर की स्थिति में बिस्तर पर पड़ा रहा। उसके बाद धीरे धीरे आराम का क्रम आरम्भ हुआ। पूरे चक्कर में प्रायः दो सप्ताह का समय लग गया।

ज्वर-जनित दुर्बलता की स्थिति में मनिया बार बार मुझे याद आती रही। जब मैं पूर्णतः स्वस्थ होकर बाहर टहलने योग्य हो गया तब मनिया की कोई स्मृति ही जैसे मेरे मन में नही रही। कुछ अद्भुत और अस्वाभाविक स्वप्न ऐसे होते हैं कि नींद टूटने पर उनको याद करने की चेष्टा करने पर भी वे किसी तरह याद नहीं आते केवल उनकी एक अत्यन्त अस्पष्ट—प्रायः हवाई—अनुभूति मनोवातावरण में अज्ञात रूप से विचरती रहती है। ठीक वैसी ही अनुभूति बीमारी से स्वस्थ होने के

बाद मनिया के सम्बन्ध में मेरे भीतर शेष रह गयी थी। उसके अतिरिक्त उसकी कोई स्मृति मेरे सचेत मन में नहीं थी। उस बीमारी के बाद मेरा मन जैसे पहले से भी स्वस्थ और सबल हो उठा। विपुल जीवन की जो आकांक्षाएँ और अनुभूतियाँ इधर कुछ समय से मेरे मन के भीतर रुद्ध पड़ी हुई थीं उनके द्वार जैसे एक एक करके खुलने लगे थे और उन द्वारों से होकर जीवन के विविध पहलुओं से सम्बन्धित जो व्यापक और विराट दृश्य मेरी भीतरी आँखों को दिखाई दे रहे थे उनमें कहीं भी मनिया के लिये कोई स्थान न था।

केवल एक ही सप्ताह मुझे अन्तर्लोक के अद्भुत शक्तिशाली रूप से प्रस्फुटित, जीवन और जगत् की कल्पनाओं से सम्बन्धित उन असीम प्रसारित महान् दशाओं में रमे हुए बीता होगा। पर वह एक सप्ताह मुझे एक विराट युग के बराबर लगा। जैसे कई शताब्दियाँ उस एक सप्ताह के गर्भ में सिमट कर एकाकार हो गयी थीं और उन पूरी शताब्दियों में मैं पृथ्वी के साधारण जीवन से बहुत दूर चला गया था और बहुत ऊँचा उठ चुका था।

उसी मानसिक स्थिति में मैं एक दिन नाश्ता कर चुकने के बाद प्रातः भ्रमण के लिये निकल पड़ा। सब चक्कर के बाद जब होटल वापस आया तब प्रायः बारह बज चुके थे। ज्योंही मैं नीचे के हिस्से में (जहाँ मेरा कमरा था) बरामदानुमा दालान में पहुँचा त्योंही मैंने देखा, मनिया अत्यन्त उत्सुक और व्याकुल दृष्टि से नीचे देहरादून से आने और वहाँ को जाने वाली मोटरों की ओर देख रही है। उसके मुख के भाव में इतना परिवर्तन हो गया था कि यदि उसका निजी लहँगा और सिर पर बँधा हुआ कपड़ा न होता तो मैं उसे पहचान ही न पाता। मुझे ऐसा लगा कि वह इस बीच बहुत ही दुबली हो गयी है जैसे वह भी मेरी ही तरह किसी बीमारी से अभी अभी उठी हो।

मनिया को देखते ही जैसे किसी ने मुझे तत्काल जीवन की ऊँची उड़ान से पृथ्वी की मिट्टी पर लाकर पटक दिया। मैं बिजली के-से द्रुत पगों से उसके पास पहुँचा और धीमे किंतु सुस्पष्ट स्वर में उसके कान के पास जाकर मैंने पुकारा—"मनिया!

अभी तक वह एकदम अनमन भाव से नीचे की ओर मुह किये हुए थी। मेरी आवाज सुनकर उसे जैसे बिजली की चिनगारी सहसा छू गयी। चौंककर उसने मेरी ओर देखा। कैसे आश्चर्यजनक रूप से अबोधगम्य उसकी वह मौन, गम्भीर और उदास दृष्टि थी! मैंने आशा की थी कि मुझे देखते ही उसके मुख पर परिपूर्ण उल्लास की चमक आ जायगी। क्योंकि इतना तो स्पष्ट ही था कि वह उस होटल मे—और ठीक मेरे कमरे के पास—केवल मुझ से ही मिलने के इरादे से आयी हुई थी और मेरे कमरे में ताला बन्द देखकर इतनी देर तक वह निश्चय ही केवल मेरा ही इन्तजार कर रही होगी। पर मुझे देखने पर भी उसके क्षीण, रक्तहीन, धुली हुई चादर की तरह सफेद मुख पर जब मैंने न तो हर्ष और उल्लास का तनिक आभास देखा और न किसी प्रकार के सकोच या लाज की ही रंगीनी की कोई झलक पायी तब मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। मैंने मर्माहत होकर देखा कि उसकी छोटी-सी आंखो की उस रहस्यमयी दृष्टि मे केवल गहन विषाद की गहरी छाया ही नही घिरी हुई है, केवल एक जड़ निश्चेष्टता ही वर्तमान नही है, बल्कि जीवन और जगत के प्रति—और सभवत मेरे प्रति भी—एक मार्मिक रूप से तीखी घृणा का भाव भी सम्मिलित है। उस भरपूर दुपहरी का मुझे ऐसा लगा जैसे कोई प्रेतात्मिका छाया मेरे किसी अज्ञात अपराध के लिये मुझे अभिशाप करने के इरादे से किसी रहस्यमय लोक से सहसा आ धमकी हो। मैं भयभीत होकर सोचने लगा कि मेरा वह अपराध क्या हो सकता है? अन्तर्जीवन लोक की गहराइयो, समुन्नत चोटियो और विराट प्रसारो मे मैं जो पिछले कुछ दिनो से विचरण कर रहा था क्या उसी की प्रतिक्रिया के रूप मे वह अभिशापदायिनी प्रेतात्मा अभ्यन्तर लोक के किसी अजानित नियम क्रम से मेरे पास आयी थी? क्षण भर के अन्तर मे मेरे मनोवातावरण मे इस प्रकार की अद्भुत भाव-तरंग उठकर तत्काल विलीन भी हो गयी।

मेरा सचेत मन, स्थिति की यथार्थता को यथार्थ ही रूप मे ग्रहण करके, यथार्थ ही उपायो द्वारा सुलझाने के लिए तत्पर हो उठा।

मैंने कहा—"मनिया, तुम यहाँ क्या खड़ी हो? चलो भीतर चलें।" और यह कहकर मैं कमरे का ताला खोलने के लिए चला गया।

जब ताला खुल चुका तब मैंने देखा, मनिया तब भी वहीं पर पत्थर की मौन-मूर्ति की तरह खड़ी थी। अत्यन्त खिन्न होकर मैं फिर उसके पास गया और व्याकुल आग्रह भरे स्वर में उससे फिर एक बार भीतर चलने के लिये प्रार्थना की। मेरे अगल बगल के सहवासी अच्छा तमाशा जानकर हम दोनों की ओर घूर रहे थे। पर उनकी परवाह करने के लिए मेरे पास अवकाश नहीं था।

इस बार मेरी व्याकुल प्रार्थना का प्रभाव मनिया पर पड़ गया और वह धीरे निर्विकार और उदासीन पगों से मेरे साथ मेरे कमरे की ओर बढ़ी।

भीतर जाकर मैंने उसे एक सोफा पर बैठने को कहा। जब वह बैठ गयी तब मैंने बाहर की ओर के पर्दे को ठीक तरह से दोनों ओर से खींच लिया जिससे कोई भी भाग खुला न रहे।

४

जब मैं भी इत्मीनान से उसके सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गया तब मैंने अत्यन्त गम्भीर भाव से प्रश्न किया—'इतने दिनों तक तुम कहाँ रहीं? जहाँ तुम दुकान लगाकर बैठा करती थीं वहाँ भी तुम नहीं थीं और पूछने पर भी तुम्हारे मकान का पता मैं न लगा पाया। मैं बहुत चिन्तित था।

मनिया कुछ देर तक उसी विचित्र, मर्मच्छेदी और भयानक रूप से गम्भीर दृष्टि से मेरी ओर देखती रही। उसके बाद सहसा उसके दायें ओठ के ऊपर एक कुंचन सा बन गया, जो स्पष्ट ही तीव्र व्यंग की मुद्रा का द्योतक था। अपना मौन भंग करती हुई वह धीरे-से, किन्तु

न्ना भरे स्वर मे, बोली—"तो तुम क्या मेरी सारी दुकान
रीद चुकने के बाद भी यह उम्मीद कर रहे थे कि मैं फिर
ाई दुकान खोलकर बठूंगी ?'

जिस इतमीनान से उसने आज पहली बार मुझे 'आप' के बदले 'तुम' वनाम से सम्बोधित किया था, और कोई समय होता तो वह मुझे नेश्चय ही प्रिय लगता। पर उसकी दिल दहलाने वाली व्यंगात्मक मुद्रा के बाद उस सम्बोधन से मैं भीत ही हुआ, प्रसन्न नहीं।

अकपट आश्चर्य से मैंने पूछा—"क्या ? तुम्हीं ने तो कहा था न कि जितना रुपया मैंने दिया था वह तुम्हारी कुल चीजों की कीमत से कहीं अधिक था। क्या उन रुपयों से तुम और ज्यादा चीजें खरीद कर दुकान नहीं खोल सकती थी ?"

"तुम्हारे वे रुपये !"—एक एक शब्द में कटुता घोलती हुई वह बोली—"तुम निश्चय ही यह समझ रहे होगे कि उतने ज्यादा रुपये मेरी चीजों के लिये मुझे देकर तुमने एक गरीब के ऊपर बड़ी भारी दया की है। अपने को बड़ा दानी समझ कर तुम मन ही मन फूले नहीं समाते हो ! पर मैंने कभी तुमसे किसी तरह का दान चाहा था क्या ? "

मैं कुछ भी न समझकर अत्यन्त भ्रान्त दृष्टि से उसकी ओर ताकता रह गया। आंतरिक पीड़ा का अनुभव करता हुआ बोला—"पर तुम्हें आज हो क्या गया है मनिया ? आज तुम इस अनोखे ढंग से क्यों बातें कर रही हो ? मुझसे यदि गलती हुई है तो तुमने उसी समय क्यों नहीं बता दिया ? मैं तो समझता था कि तुम अपनी इच्छा से, अपनी खुशी से, वे सब चीजें मेरे हाथ बेच रही हो। यदि तुम्हें उन्हें बेचना नहीं था तो तो तुमने क्या तुम मेरे साथ खुशी-खुशी होटल में चली आयी थीं ? मैंने जबरदस्ती से वे चीजें तुमसे छीनी तो नहीं थीं, तब ? "

उसका हृदय दुखाने की तनिक भी इच्छा न होने पर भी मेरे शब्दों में निश्चय ही रुक्षता प्रकट हो रही होगी, यह मैं समझ रहा था। पर उसने ऐसी अस्वाभाविक परिस्थिति में मुझे डाल दिया था कि बिना रुक्षता के अपनी बात समझाने में मैं अपने को असमर्थ पा रहा था।

मेरी बात से उसके मुख की मार्मिक अभिव्यक्ति में तनिक भी कमी नहीं आयी, बल्कि वह और अधिक तीव्र हो उठी। ऐसा लगता था जैसे वह मेरे अंतर के भी अन्तर को चीर चीर कर देखने के लिये प्राणपण से प्रयास कर रही है पर उस प्रयास में सफल न होकर, व्याकुल जिज्ञासा से छटपटाती हुई अधिकाधिक खीझ उठती है। मेरे प्रश्न का कोई उत्तर उसने नहीं दिया। केवल एकटक मेरी ओर घूरती रही।

उसकी दृष्टि के उस तीखेपन की आँच सहन न कर सकने के कारण मैं सहमा उठ खड़ा हुआ और भीतर जाकर वही गठरी उठा लाया जिसमें उसकी दुकान की सभी चीजें अभी तक ज्यों की त्यों रखी हुई थीं। गठरी को यथाशक्ति शांत भाव से धीरे से उसके आगे रखते हुए मैंने कहा—"मुझे मेरी गलती के लिये क्षमा करो। यह लो इस गठरी में वे सब चीजें वैसी ही पड़ी हुई हैं जिन्हें मैंने तुमसे खरीदा था।"

मनिया ने गठरी खोलकर एक बार बड़े गौर से उन चीजों की ओर देखा। और फिर सहसा प्रचण्ड आवेग से एक एक चीज को उठाकर उसने भीतर के कमरे की ओर पटक-पटक कर फेंकना आरम्भ कर दिया। मैं भयभीत होकर केवल कहता रहा— मनिया! मनिया! यह तुम क्या कर रही हो? तुम्हें क्या हो गया है? पर उसने मानो मेरा एक भी शब्द नहीं पहुँचा। वह उसी क्रम से चीजों को फेंकती चली गयी।

जब सब चीजों को फेंक चुकी तब सहसा दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँपकर मेरा के हृदय पर अपना सिर रखकर फफक फफक कर बेअख्तियार रोने लगी। इस तरह की परिस्थिति से मुझे इसके पहले कभी वास्ता नहीं पड़ा था, और किस उपाय से उसे शांत किया जाय, मेरी समझ ही में नहीं आता था। मेरी परेशानी इस बात से अधिक बढ़ी हुई थी कि उसके हिस्टीरिया के दौरे का कोई संगत कारण ही मेरी जानकारी में नहीं था।

मेरी बुद्धि ने उस संकट की अवस्था में जब तनिक भी साथ देने से इन्कार कर दिया तब मेरी अंत प्रवृत्ति मेरी सहायता के लिये आगे बढ़ी।

ससे प्रेरित होकर मैं मनिया के बिलकुल पास बैठ गया और उसकी पीठ पीछे से थपथपाता हुआ पुचकार भरे शब्दो से उसे सात्वना देने की चेष्टा करने लगा।

कुछ देर तक वह मेरा 'दुलार' सहन करती रही—सभवत सकोच से। पर शीघ्र ही मेरा हाथ हटाकर वह उठ बैठी और अपने सिर पर बँधे हुए कपडे के छोर से चुपचाप आँसू पोछने लगी।

मैंने कहा—"मैं बहुत दु खित हूँ, मनिया, मेरे कारण तुम्हे इस कदर कष्ट उठाना पडा।" वह फिर भी कुछ न बोली। उसे अपने आप ही शात होने का अवसर देना श्रेयस्कर समझकर मैं फिर चुप हो रहा। घटी बजाकर मैंने नौकर को बुलाया और चाय लाने को कहा।

मनिया आँखें पोछती चली जाती थी। आसू यद्यपि भली भाँति पुछ गये थे, तथापि वह कपडे से आखो के कोनो को साफ करती जाती थी। मैंने देखा, रोने के कारण इसके मुख पर इतनी देर तक घिरी हुई भारी भयावनी—प्राय हिंसक—और व्यगात्मक छाया जैसे धुल गयी थी, और अब उसका वही सुदर, सहज, सरल सौहार्दपूर्ण रूप निखर आया था जिसने पहले दिन पहली ही दृष्टि मे मुझे एक अलौकिक जादू के से आकर्षण से बरबस अपनी ओर खीच लिया था।

चाय आयी। हम दोनो के बीच मे एक मेज लगाकर 'ब्वाय' ने 'ट्रे' उठा कर रख दिया। मैं क्षण भर के लिये डरा कि कही मनिया होटल के प्याला और तश्तरियो को भी पटक न दे। पर तत्काल ही अपनी उस निर्मूल आशका पर मैं मन ही मन हँसा। दोनो प्याला मे चाय डालते हुए मैंने मीठी चुटकी लेने के इरादे से कहा—"कही इन प्यालो को भी पटक न देना मनिया। ये होटल की चीजें हैं।"

मैंने पुलकित होकर देखा, इस बार मनिया की आँखो मे एक अत्यत मधुर मुसकान झलक उठी। कुछ देर तक वह जैसे अपने को बरबस रोकती रही पर बाद मे अधिक न रोक पायी और खिलखिलाकर हँस पडी। उसकी उस कारणहीन छुतहा हँसी का ऐसा प्रभाव मुझ पर पडा कि मैं भी अकारण ही ठठाकर हँस पडा। और कुछ देर तक हम दोनो मिलकर हँसी की ऐसी फुलझडियाँ और पटाखे छोडते

रहे कि अगल बगल के कमरों में लोग हमारे कमरे के बाहर आकर इकट्ठा हो गये—पर्दे पर पड़ने वाली छाया-मूर्तियों से मैंने यह अनुमान लगाया। हँसना बंद करके मैं अपनी आँखों से हँसी के आँसू पोंछने लगा।

जब मनिया एक घूँट चाय पी चुकी, तब मैं अपने मुँह की ओर इशारा करते हुए बोला—'सचमुच आज तुम्हारा रंग ढंग देखकर मैं बहुत घबरा उठा था!'

उसका मुख फिर एक बार गंभीर हो आया पर इस बार की गंभीरता तनिक भी भयावनी नहीं थी बल्कि दयनीय ही थी। बोली—'मैं जब यहाँ आयी थी तब तुम्हारे ऊपर मन ही मन बहुत बिगड़ी हुई थी। और सच पूछो तो तुमने मेरी दुकान उजाड़कर मुझे कहीं का न रखा। सच!' कहकर उसने अपनी दोनों आँखें मूँद लीं और एक लंबी साँस खींची।

'पर क्यों? तुम मुझपर इस तरह का अनोखा—और गलत—इलज़ाम क्यों लगा रही हो, जब कि तुम्हीं ने मुझे बताया कि मैंने तुम्हारी चीज़ों के ज्यादा दाम चुकाये हैं? मैं समझा नहीं मनिया, और तब से सोच रहा हूँ कि बात क्या है। तनिक समझाओ तो सही!' बड़े ही खिन्न स्वर में मैंने कहा।

मनिया ने आँखें खोल दी थीं। पर आँखें खोलने पर भी वह जैसे कुछ भी नहीं देख पा रही थी। अपनी दोनों छोटी-छोटी पुतलियों को एक अजीब ढंग से ऊपर की ओर घुमाती हुई वह जैसे किसी दूसरी ही दुनिया में पहुँच गयी थी, वहाँ का अस्पष्ट छायाभास किसी अज्ञात कारण से उसे समझने में बड़ा ही नयापन लग रहा था। उसकी आँखों की इस अभिव्यक्ति देखकर मेरा हृदय फिर एक बार सहम उठा।

मैंने फिर कहा—

'मनिया, कुछ बताओगी तो सही! मुझसे सब बातें साफ-साफ कहने में तुम्हें किस बात की शर्म हो रही है?'

इस बार मेरी बात जैसे उसके भीतरी कानों में पहुँची। फिर एक

बार लंबी साँस भरकर वह बोली—"मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ !
मैं खुद भी नहीं समझ पा रही हूँ !'

"फिर भी '

"यह सुनकर भी न समझना कि मुझे तुम्हारे रुपयों से तनिक भी मोह था, पर किस्सा यह है कि तुमने उस दिन जो रुपये मुझे दिये थे उन्हें मैंने अपने घर—खच्चरखाने के एक छोटे से गंदे मकान की एक छोटी-सी गंदी और अँधेरी कोठरी में—पहुँचने पर अपने सिरहाने बिस्तर के नीचे दबाकर रख दिया था। रात में मुझे बहुत देर तक नींद नहीं आयी। तरह-तरह की बातें मेरे मन में उठती रहीं। मुझे लगा कि उन रुपयों में ही कोई खराबी है—कुछ जादू-टोना किया गया है, क्योंकि जब-जब मैं सब कुछ भूलकर सो जाने की कोशिश करती तब-तब रह-रहकर तुम्हारी ही याद मुझे आने लगती और मैं बेचैन हो उठती। तंग आकर मैंने रुपयों की उस पोटली को अपने सिरहाने से हटाकर पैताने रख दिया—बिस्तर के नीचे खटिया की मूज को कसने वाली रस्सी पर। और तब मैं बेखबर सो गयी। सुबह बहुत देर से मेरी आँखें खुलीं। तब रुपयों की मुझे कोई याद नहीं थी, और तुमसे मिलने की बात भी मैं बिल्कुल भूल गयी थी। रोज की तरह मैं चाय के लिए चूल्हा जलाने के इरादे से उठी, और तब मैंने देखा कि बाहर का दरवाजा खुला है। मैं घबरा उठी। सोचने लगी कि क्या किसी ने रात में दरवाजा तोड डाला ? या मैं ही दरवाजा बन्द करना भूल गयी ? हो सकता है, रात में बेचैनी के कारण मैं इस हद तक बेखबर हो उठी थी कि दरवाजा बन्द करना ही भूल गयी हूँगी। दरवाजे के पास बाहर जाकर मैंने देखा कहीं कुछ भी टूटा हुआ नहीं था। अचानक मुझे उन रुपयों की याद आयी जो तुमने मुझे दिये थे। मैं दौड़ी हुई खटिया के पास लौटी। बिस्तर उठाकर पैताने में देखा पोटली गायब थी। उसी दम मेरी नजर नीचे गिरे हुए कपड़े पर पड़ी जिसमें रुपया बँधा था। कपड़ा खुला हुआ पड़ा था और एक भी नोट उसमें नहीं था। मेरा कलेजा धक से रह गया। कुछ देर तक मुझे जैसे काठ मार गया। मैं वहीं की वहीं खड़ी रही। जब चक्कर आने लगा तो धम्म से खटिया पर

 बठ गयी, ग्रौर सोचने लगी कि यह सब कसे सभव हुआ।

बहुत सोचने पर मेरे मन म यह बात आयी कि चोरी रात म नहीं बल्कि सुबह ही हुई होगी। पोटली खटिया की रस्सी के बीच की खाली जगह के नीचे से रात म गिर गयी होगी, और सुबह दरवाजा खुला देखकर कोई आदमी भीतर घुसा होगा और मुझे गाढी नींद में सोई हुई देखकर और नीचे एक पोटली गिरी हुई देखकर उसने उसे उठा लिया होगा। कुछ लोग मनसुआ होते हैं, और बिना देखे ही जान जाते हैं कि किस चीज म रुपया छिपाया गया है। पोटली खोलकर रुपया निकालकर बाकी कपडा वहीं छोड गया होगा। कपडा क्यों छोड गया मैं यह नहीं समझी। शायद वह कोई हँसोड रहा होगा। मेरी समझ म नहीं आया कि क्या किया जाय। अपनी घबराहट की हालत म मैं सीधे कोतवाली म गयी। थानेदार ने जाँच के लिए दो कान्स्टेबल भेज दिये। मुझसे पूछा गया कि मेरे यहाँ किन किन लोगों का आना-जाना अक्सर रहता है। मेरे यहाँ मकान मालिक और उसकी स्त्री जो ऊपर की मजिल म रहते थे, कभी कभी आया करते थे और कभी-कभी पास ही दिन म एक छोटे से गैड म रहनेवाला, सडकों पर पत्थर तोडनेवाला एक पहाडी मजूर चिलम के लिए या चूल्हा जलाने के लिए आग माँगने आया करता था। इन तीनों के सिवा और किसी का आना मेरे यहाँ नहीं था। मैंने पुलिस के आदमियों को यही बताया। मजूर उस समय अपने गैड म नहीं था, शायद काम पर चला गया था। इसलिए पुलिसवालों ने मकान मालिक की तलाशी लेनी शुरू कर दी। मकान मालिक है बडा दुष्ट और कमीना भी। इसलिए पुलिसवालों ने जब उसे तग किया तो पहले तो मुझे खुशी ही हुई। पर बहुत ज्यादती की जाने लगी तो मुझे उस पर तरस आया। मैंने कान्स्टबलों के पाँव पकडकर यह प्रार्थना की कि उसे छोड दिया जाय और कहा कि मुझे अब रुपया के लिए कोई शिकायत नहीं है। पर कॉस्टेबल यों ही छोडने वाले नहीं थे। मकान मालिक से कुछ लेकर ही उन्होंने उसे छोडा। मुझे चोरी का शक मजूर पर ही अधिक था। पर मकान-मालिक की दुर्दशा देखने के बाद म यह नहीं चाहती थी कि उस पर भी किसी तरह की मार

पडे। इसलिये मैंने दोनो कान्टेबलो से कहा कि अब वे अपनी तलाशी बद करें और मजूर को किसी तरह भी परेशान न करें। मैंने उन्हे यह धमकी दी कि अगर वे लोग मजूर को तग करेंगे तो मैं पुलिस के बडे-से-बडे अफसर के पास उनके घूस लेने की शिकायत करूँगी। मेरी धमकी से हो चाहे और किसी सबब से हो, पुलिसवालो ने फिर मजूर को तग नही किया। मेरा रुपया गया सो गया, उसकी मुझे उतनी चिंता नही थी। मैं जानती थी कि मुझे भूखो मरना पडेगा, पर उसके लिये मैं सब समय तयार रहती हूँ। पर जो एक नयी आफत मेरे सिर पर टूट पडी उससे मैं बुरी तरह घबरा उठी। आदमियो के चले जाने के बाद मकान-मालिक ने अपना बदला चुकाने की ठान ली, और मुझे उसी दम मकान खाली करने को कहा। जो थोडा सा सामान मेरे पास था उसे उठा-उठाकर वह बाहर फेंकने लगा। मैंने फिर पुलिस मे शिकायत करने की धमकी दी, पर उसने एक न सुनी। उसकी जबदस्ती के आगे हार मान-कर मैं दोनो हाथो से माथा थामकर बाहर बैठ गयी। दिन भर मैंने न कुछ खाया न कुछ पाया, न मैं कही गयी। बाहर सीढियो पर या तो बैठी रही या लेटी रही। रह रहकर तुम्हें और तुम्हारे रुपयो को कोसने लगी। मेरा इतने बरसों से जमा-जमाया कारोबार, जिसकी बदौलत मैं बिना किसी की मुहताज हुए अपने दो जून के खाने का बदोबस्त बडे आराम से कर लेती थी और अपनी गरीबी मे भी सुखी और निश्चित थी, तुमने अपने पैसो और मीठी मीठी बातो के बलपर एक ही दिन मे उजाड दिया। यह कितना बडा अन्याय तुमने किया, जरा सोचो तो सही "

कहते-कहते मनिया की आँखो मे आँसू उमड आये, हालाकि उसके ओठो पर हँसी थी। वह बडी बडी बूदें गिराती जाती थी और पोंछती जाती थी। मैं एकाग्र मन से उसका किस्सा सुन रहा था। उसकी अन्तिम बात से मेरे मन को बडी मार्मिक चोट पहुँची। मैंने कहा—"पर तुम्हारा वह रुपया अगर खो गया है तो उसके लिये तुम इतनी चिन्तित क्या हो! मैं उससे दुगना रुपया तुम्हें अभी देता हूँ। इन्हें लो और फिर

ने दुकान खोला और अपने उजड़े हुए कारोबार को जमाया। यह कहकर मैं अपने बटुवे से रुपया निकालने लगा।

उसके मुख पर एक मार्मिक व्यंग भरी मुसकान धीरे धीरे एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गया। बोली— हूँह! तुम क्या यह सोचते हो कि मैं अब भी दुकान खोल सकती हूँ? तुम अब दो सौ क्या दो हजार रुपया भी दो तो मेरे किसी काम के नहीं। मेरा जी उचाट हो गया है और अब इस जीवन में मैं न दुकान खोल पाऊँगी न और किसी काम में मेरा जी लगेगा।

तब तुम क्या करने का विचार करती हो?' मेरे मुँह से बरबस प्रश्न निकल पड़ा।

इस बार वह खुलकर मुस्करायी। बिना लेशमात्र व्यंग के, सहज प्रसन्न भाव से बोली— भीख माँगूगी। यही काम मेरे लिये आसान पड़ेगा— भैया गरीब, लाचार को एक पैसा दो! भूखी हूँ, दो दिन से कुछ नहीं खाया! भगवान तुम्हारा भला करे! यही कहती हुई सड़कों पर घूमा करूँगी। और वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

उसने एक नाटकीय ढंग से भिखारियों की नकल उतारी थी कि मुझे भी हँसी आये बिना न रही। पर तत्काल मेरी हँसी रुक गयी। इस कल्पना से मैं आतंकित हो उठा कि कहीं सचमुच वह जानबूझकर अपने को उस असहाय स्थिति में न डाल दे! अत्यंत गंभीर भाव से मैंने कहा— तुम इस तरह की बात क्या सोचती हो, मनिया! मेरा दिया हुआ रुपया स्वीकार करने में तुम क्या भीख माँगने से अधिक अपमान समझती हो?

इस बार उसका चेहरा सहसा तमतमा उठा। मेरे प्रति उसका जो रोष इतनी देर तक दबा हुआ था वह उसके मुख पर उभर उठा। आवेश में बोली— तुम मेरे कौन लगते हो जो मैं तुम्हारा दिया हुआ रुपया स्वीकार करूँ? तब मैं भीख माँगूगी तब मैं न तो मनिया... जाऊँगी न कोई दुकानदारिन जो कुछ महीने दामों पर चलने फिरने वालों को चीज बेचकर दुकानदारी में अपनी गुजर करती थी और जिस पर

अपनी खास मेहरबानी दिखाने के लिए एक बाबू ने सारी दुकान खरीद ली। तब मैं सभी भिखमंगों की बराबरी में आ जाऊँगी और किसी की खास मेहरबानी का कोई सवाल नहीं रहेगा। जैसे सभी भिखारियों की ओर लोग कुछ टुकड़े फेंक देते हैं वैसे मेरी ओर भी कुछ टुकड़े फेंक ही देंगे, और इस बात का विचार नहीं करेंगे कि यह मनिया दुकानदारिन है या कोई और। भीख मांगने के सिवा अब मेरे लिये और कोई चारा नहीं रह गया है, यह तुम सच मान लो।'

एक ऐसा रोमांचक, पारलौकिक भाव उसकी शून्य दृष्टि में समा गया था जो किसी उदासीन दर्शक को भी हिलाये बिना न रहता। उसकी उस अनोखी दुराग्रही मनोवृत्ति को ठीक से समझ पाने में मैं अपने को निपट असमर्थ पा रहा था। क्या वह इस हठ का छोड़ नहीं पाती थी कि यदि अब उसे दो हजार रुपया भी मिल जाय तो भी वह दुकान नहीं खोल सकेगी, और क्या उसके दिमाग के भीतर यह बात जम गयी थी कि भीख मांगने के सिवा और कोई चारा उसके लिये नहीं है, जब कि वह निश्चय ही जान गयी होगी कि मैं हर तरह से उसकी आर्थिक सहायता के लिये तैयार हूँ? किस प्रकार के निराले पागलपन की वह निराली धुन थी, जिसने उसके मन को शिकंजे की तरह जकड़ लिया था? मैं सोच-सोचकर परेशान था। मुझे लगता था कि वह अन-जाने में ही इस बात के लिये अपने जीवन की बाजी लगाये बैठी है कि मेरे अन्तर्मन में यह विश्वास जमा दे कि मैंने उसकी सारी दुकान खरीदकर उसके प्रति घोर घातक और अक्षम्य अपराध किया है और अपने उस अपराध की तीव्र अनुभूति से मेरी आत्मा सब समय असह्य ग्लानि और परिताप की भावना में दग्ध होती रहे। पर इस प्रकार की मानसिक प्रतिहिंसात्मक भावना की सफलता से उसकी अवचेतन मन किस रहस्य-मयी प्रवृत्ति की तुष्टि करना चाहता है? उसकी अर्द्धसुप्त चेतना क्या यह भी जान गयी थी कि वह जब सचमुच निःस्व और निराश्रित अवस्था में दर-दर भीख मांगती फिरेगी और 'बाबा, इस गरीब लाचार को एक पैसा दे दो' कहती हुई, निपट अनाथ और असहाय की-सी अपनी आर्त और करुण पुकार लगाती हुई मसूरी की आम सड़कों में फिरती रहेगी,

और कहीं न कहीं मेरे सामने से होकर भी गुजरेगी, तब निश्चय ही मेरे भीतर अपने अपराध की ज्वाला और अधिक तीव्रता से धधक उठेगी। यह ठीक है कि सचेत रूप से वह कभी इस तरह की बातें नहीं सोच सकती थी और उसके स्वभाव में साधारणतः किसी प्रकार के कपट का कोई लेश भी वर्तमान होगा, ऐसा मैं नहीं सोचता था, पर साधारण से साधारण और दबने में भोले मनुष्य के स्वभाव की ऊपरी परत के बहुत भीतर असाधारणता और अस्वाभाविकता कैसे भयावने, जटिल और उलझे हुए रूप में वर्तमान रह सकती है जीवन की साधारण परिस्थितियों में इसका अनुमान लगाना कठिन है और केवल असाधारण परिस्थितियों में ही इस बात की ओर लोगों का ध्यान जाता है — इस तरह का तर्क मनियों की समझ में न आनेवाली हठकारिता से मेरे मन में उठने लगा।

यह बात मेरी समझ में आ गयी कि उसके मन की उस हठी प्रवृत्ति को किसी प्रकार के तर्क से सीधा कर सकना असम्भव है। इसलिये उस तरह का वाद प्रयोग करने का इरादा मैंने छोड़ दिया। उसके किस्से के सूत्र को पकड़कर मैंने पूछा— 'जब मकान मालिक ने तुम्हें जबरन बाहर निकाल दिया तब क्या फिर किसी दूसरे मकान की तलाश तुमने नहीं की? क्या इतने दिनों तक रात में भी तुम बाहर ही पड़ी रहीं?'

'नहीं। शाम को जब नजर आया तो मैंने उसके पाँवों पड़कर प्रार्थना की कि जब तक मेरे रहने का कोई दूसरा ठिकाना नहीं हो सकता तब तक वह मुझे अपने 'गराज' के एक किनारे पर पड़े रहने दे। मैंने उसे रुपया खाये जाने की कोई बात नहीं बतायी। पहले तो वह आनाकानी करने लगा, पर बाद में मेरे बहुत रोने धोने पर वह राजी हो गया। इतनी रातें मैंने उसी गराज में बितायी हैं।

९

मैंने घंटी बजाकर नौकर को बुलाया और उसे दो आदमियों के लिये पूरा खाना ले आने का आदेश दिया। जब खाना आया तो मनिया का मुरझाया [illegible]ा मुख जैसे बरबस खिल उठा। भोजन के प्रति उसके भूखे प्राण किसी [illegible]कार भी उदासीनता प्रकट न कर सके। उसकी अभिमानी प्रकृति भूख [illegible] आग पराजित हो उठी। यह स्पष्ट था कि मजर के यहां उसे भरपेट [illegible]ोजन नहीं मिला था। मेज पर परोसा लगते ही उसने एक बार लल-[illegible]नी हुई आखों से विविध व्यजनों की ओर देखा और फिर मेरी ओर [illegible]खने लगी। मैंने जब कहा—'शुरू करो!' तब वह तश्तरियों पर टूट [illegible]ी। मैं उसका साथ अंत तक देते रहने के लिये थोड़ा थोड़ा करके खाता [illegible]हा। होटल के नौकर को मैंने आदेश दिया कि जितनी भी चीजें बनी [illegible]ा नमूने के लिये थोड़ा थोड़ा सभी में से ले आवे। मैं भोजन के लिये मनिया [illegible]ा उत्साह बढ़ाता हुआ प्रत्येक नयी चीज को चखते रहने के लिये उससे आग्रह करता जाता था। जब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि उसे भर-पूर तृप्ति हो चुकी है, और उसका निषेध आतरिक है, तब मैंने आग्रह करना छोड़ दिया। पानी की अंतिम घूंट पीकर हाथ धो चुकने के बाद मनिया सोफा पर अधलेटी अवस्था में बैठ गयी। बोली—"आज उस दिन से भी ज्यादा पेट भर गया है जिस दिन मैंने पहले पहल यहां खाना खाया था। क्या करती, भूख जो लगी थी! इतने दिनों तक एक जून चना और गुड़ खाकर पानी पीती रही हूं। कल से मैं तुम्हारे इस होटल में नहीं आऊँगी। यहां शैतान का डेरा है। क्या सोचकर मैं यहां आयी थी, पर शैतान ने मुझे सब कुछ भुला दिया। मैंने सोचा था कि तुम्हें खूब कसकर गालियां दूँगी, कड़ी-कड़ी बातें सुनाऊँगी और धिक्कार कर लौट चलूंगी। पर पहले तो तुम्हारी चाय ने और तुम्हारे खाने ने मुझे ललचा कर मेरी मति ही फेर दी है, और अब मुझे कुछ याद ही नहीं आता कि तुमने मेरा क्या बिगाड़ा था। लाओ एक सिगरेट भी मुझे दो। अब यही क्यों बाकी रह जाय! इसे पीने से शायद पेट कुछ हलका हो जाय!" मुझे सिगरेट जलाते हुए देख कर वह उठ बैठी।

मुझे यद्यपि आश्चर्य नहीं होना चाहिये था, क्योंकि निम्नी लड़कियों

को बीड़ी सिगरेट पीते हुए मैंने कई बार देखा था, फिर भी मनिया ने जब सिगरेट माँगी तब मेरे मन को एक हल्की सी ठेस पहुँची। मैंने उसे सिगरेट दी और एक दियासलाई जला कर उसके मुँह के पास ले गया। जब सिगरेट जल गयी तब एक लम्बी कश खींचकर वह फिर सोफा पर आधा लेट गयी।

कुछ देर तक हम दोनों मौन भाव से धुआँ निकालते रहे। केवल दोनों के भीतर अलक्ष्य में उठने वाली चिन्ता-तरंग कमरे के बद्ध वातावरण में अलक्ष्य ही रूप से एक-दूसरे से टकराती हुई एक वर्णनातीत अभौतिक स्पन्दन उत्पन्न कर रही थी। उस मनोतरंगजाल के मार्मिक प्रभाव से छुटकारा पाने के लिए मैंने मौन भंग किया। एक बात की जिज्ञासा पिछले कई दिनों से मेरे मन में थी। मैंने पूछा— तुमने बताया था कि तुम्हारा बाप तिब्बती था और तुम्हारी माँ यहीं की थी। यह कैसे सम्भव हुआ? तिब्बती लोग तो अपनी ही जाति बिरादरी में शादी-ब्याह किया करते हैं?

यह ठीक है। पर सभी तिब्बती इतने कट्टर नहीं होते कि वे दूसरी जाति वालों के साथ शादी-ब्याह करते ही नहीं। फिर भी हाँ, जिस तिब्बती के घर माँ गयी थी, उसका स्वभाव कुछ दूसरी ही तरह का था। जब वह अपनी जाति बिरादरी वालों के साथ रहता था तब भी उसका हेलमेल बाहर के लोगों के साथ ही ज्यादा रहता था—ऐसा मेरी माँ ने मुझे बताया था। हर साल जाड़े के दिनों में जब वह तिब्बत से आता था तब वह रामपुर में भी जीबू (सुगन्धित घास) कस्तूरी, चँवर गाय के दूध का सुखाया हुआ पनीर आदि चीजें बेचने लाया करता था। माँ भी उससे जीबू खरीदा करती थी। माँ का कहना था कि वह जवान था और बड़ा रँगीला। उस पर मान मनाना करके कम दामों पर भी वह ज्यादा जीबू दे दिया करता था। माँ भी तब जवान थी, विधवा थी, अकेली थी। ना सान-चार छोटे छोटे पहाड़ी खेत पति के बाद उसके हिस्से में आये थे उन्हीं में मेहनत करके वह अपना गुजर किया करती थी। पास-पड़ोस वाले माँ के स्वभाव व चरित्र की बड़ी तारीफ किया करते थे। न उनका किसी से बैर था न किसी से नाता। यद्यपि

अपने काम से मतलब रखती थी। पर उस रँगीले तिब्बती ने उस पर खास मेहरबानी दिखा दिखाकर अपनी मीठी-मीठी बातों से उस पर न जाने क्या जादू फेर दिया कि एक दिन माँ गाँव छोड़कर उसके साथ भाग निकली। पहले वर्ष वह उसे अपने साथ तिब्बत ले गया। वहीं मैं पैदा हुई। मा का कहना था कि तिब्बती लामाओं के बीच में रह कर कुछ महीनों तक वह दिन रात रोती रही। पर बाद में उसने अपना जी कड़ा कर लिया। दूसरे वर्ष जाड़ों में जब मेरे माँ बाप लौटकर गढ़वाल आये तब मैं दो महीने की बच्ची थी। मैं ठंड से अकड़ कर रास्ते में ही क्या न मर गयी इस बात का मा को बड़ा आश्चर्य था। मेरा बाप मसूरी जाना चाहता था पर मा ने इसलिये मना कर दिया कि वहां अपने पहचान के लोगों के बीच में वह नहीं रहना चाहती थी। गरमियों में बाप मा को और मुझे साथ लेकर तिब्बत को लौट जाना चाहता था। पर मा ने कहा कि वह वहाँ जाने से गले में फांसी लगा कर मर जाना पसंद करेगी। बाप ने बहुत हठ किया, डराया धमकाया पर माँ टस से मस न हुई। आखिर बाप को भी श्रीनगर—गढ़वाल—ही बस जाना पड़ा। दूसरे घुमक्कड़ तिब्बतियों से थोक भाव पर तिब्बती चीज़ें खरीद कर उसने श्रीनगर में एक छोटी-सी दुकान खोल दी। पर उन चीज़ों से कुछ विशेष आय नहीं हुई। इस-लिये उसने धीरे-धीरे परचून की दुकान खोल ली। छः वर्ष तक हम लोग श्रीनगर में रहे। मुझे वहां की बहुत ही धुमली-सी याद है। उसके बाद फिर मसूरी चले आये। तब तक मा के मन से अपने जान-पहचानी आदमियों का संकोच दूर हो चुका था। मसूरी में भी मेरे बाप ने परचून की ही दुकान खोली, और वहां आय श्रीनगर से चौगुनी बढ़ गयी। माँ का कहना था कि मसूरी आने पर हम लोग बड़े सुख के दिन बिताने लगे थे। केवल एक ही भारी दुःख मा को था। मेरे बाद दो बच्चे हुए थे और वे दोनों ही पैदा होने के कुछ ही महीने बाद जाते रहे। और फिर कोई बच्चा नहीं हुआ। मैं माँ-बाप की इकलौती लड़की थी, इसलिये बड़ी दुलारी थी। बाप मुझे बहुत प्यार करता था। मैं उससे 'बब्बा' कहा करती थी। दुकान से छुट्टी पाते ही वह कभी मुझे अपने सिर पर

चक्कर नचाता था, कभी अपनी पीठ पर रखकर अनोखी ढंग से तिब्बती गाना गाकर खुद नाचने लगता था। कभी ...मा लगा की एक ऊँची तिब्बती टोपी सिर पर डाल कर एक ... जाता हुआ नाचता और गाता था। मैं हँसते हँसते लोट पोट हो जाती। वह मुझे भी तिब्बती नाच-गाना सिखाने लगा। रात में वह मुझे तिब्बती किस्से सुनाया करता था। माँ को यह सब अच्छा नहीं लगता था। वह नहीं चाहती थी कि मुझमें तिब्बतीपन की बू भी आये। इस लिए उसने मुझे गाँव की कन्या पाठशाला में भरती करा दिया। पर मेरा मन पढ़ने में बिलकुल नहीं लगता था और दिन भर गायों में खेलने कूदने की इच्छा होती थी। अक्सर मैं पाठशाला से भागकर यक्सों के पास दुकान चली जाती। अक्सर माँ को मालूम न होने देती। पर जब कभी माँ को पता चल जाता कि मैं पाठशाला से भाग आयी हूँ तब मुझ पर बड़ी मार पड़ती। पाठशाला में पूरे दो वर्ष बीतने पर मुझे अक्षरों का ज्ञान हो पाया। पर बाद में मेरा जी स्कूल की पढ़ाई में लगने लगा और पाँचवीं कक्षा तक मैं बराबर पास होती चली गयी। छठी कक्षा में मैंने पाँव रखा ही था कि एक ऐसी बात घट गयी जिससे मुझे वहीं का न रखा।

मैं तन्मय होकर एकांत मन से उसके विगत जीवन की स्मृतियाँ सुन रहा था। जब वह रुकी तब मेरे मुँह से बरबस एक लम्बी साँस निकल गयी। मैं चाहता था कि वह उसी मनःस्थिति में और कुछ समय तक अपने को भूली रहे। उसकी सिगरेट खतम हो चुकी थी और शेष टुकड़ा उसने फेंक दिया था। मैंने तपाक से एक दूसरी सिगरेट उसकी ओर बढ़ायी। वह बोली—बस अब मैं न पीऊँगी।

मैंने अपनी सिगरेट जलायी। 'हाँ, तो फिर क्या हुआ? वह क्या घटना थी जिसका जिक्र तुमने अभी किया?'' एक क्षण सोचते हुए मैंने कहा।

वह ठीक से बैठ गयी। उसके मुख पर एक अँधेरी-सी छाया घिर आयी थी। कहने लगी—कस्बा के पास जाड़ों में अक्सर बहुत-से तिब्बती आकर अड्डा जमाया करते थे। कस्बा उनके पास गाँव में तिब्बती

चीजें खरीदता था। तिब्बती भाषा में न जाने क्या बातें वे
लोग करते। मैं देखती थी कि मां को उन तिब्बतियों का आना तनिक भी नहीं भाता था। मेरे आगे वह बडबडाती भी और कहती थी—'इन भूतों से न मालूम किस जनम में मेरा पिंड छूटेगा।' पर बब्बा के आगे वह उन लोगों के खिलाफ एक शब्द भी नहीं बोलती थी। उस वर्ष बब्बा से मिलने वाले तिब्बतियों के दल में एक जवान तिब्बती लडकी भी आयी। मैं देखती थी कि बब्बा बडे प्यार से बडी मीठी मीठी बातें उससे करता था। लडकी भी उसकी बातों के उत्तर में कभी लजाती हुई मुस्कराती थी और कभी खिलखिला उठती थी। बब्बा क्या कहता और लडकी क्या उत्तर देती, यह मैं नहीं जानती, क्योंकि मैं तिब्बती भाषा नहीं समझती थी। पर दोनों के हाव भावों पर मैं बडी दिलचस्पी से ध्यान देती रहती। तब मैं करीब बारह वर्ष की हो चुकी थी, और दुनिया की बातों को थोडा थोडा समझने लगी थी। पर उस लडकी के साथ बब्बा की मीठी मीठी बातों का कोई दूसरा अर्थ मैं नहीं लगा पायी। मैं सोचती थी कि जिस तरह बब्बा मेरे साथ दुलार भरी बातें करता है वैसे ही उस लडकी से भी करता होगा। उस लडकी की उम्र सत्रह अठारह वर्ष के करीब रही होगी। जो भी हो, उन दोनों के बीच इस कदर हेलमेल बढ गया कि वह लडकी समय-समय पर अकेले ही बब्बा के पास आने लगी। यहां तक कि उसने न सिर्फ दुकान ही में बल्कि हमारे घर के भीतर भी आना शुरू कर दिया। हमारा मकान दुकान से ही मिला हुआ था। नीचे दुकान थी और ऊपर मकान। मां निश्चय ही ऊपर से लडकी का दुकान पर आना और खास ढंग से मुस्कराना देखती रही होगी। उसके लिये वह बब्बा को बीच बीच में मुस्कराते हुए ताना देती थी। बब्बा भी हँस देता था। पर जब लडकी ने हमारे घर के भीतर भी सुबह शाम, मौके-बेमौके आना शुरू कर दिया, और बब्बा के साथ तिब्बती भाषा में उसकी खुसर-फुसर चलने लगी, और दोनों के मुस्कराने, खिलखिलाने और ठठाकर हँसने का नियम-सा बन गया, तब मां के मन में उस बात का कुछ दूसरा ही असर पडा। मां तिब्बती भाषा के कुछ शब्द समझती भी थी। पता नहीं, उसने क्या देखा, क्या सुना और

क्या समझा। पर मैं देखती थी कि तब से उ
लेकर नित्य माँ और बब्बा के बीच चखचख
के ताने से बात शुरु होती। बब्बा हँसी में बात को ट
रता। माँ की खीझ और बढ़ जाती। बब्बा तब बढ़े
समझान-बुझान लगता। पर बढ़ते-बढ़ते बात यहाँ त
दोनों के बीच गालीगलौज और कभी-कभी हाथाप
जाती। रोज शाम का यही सिलसिला रहता। पर
काई फर्क देखने में न आता, क्योंकि लड़की का घर में आना-जाना उसी
तरह जारी रहा। लड़की के आने पर बब्बा पिछले दिन की सारी बातें
भूल जाता और दोनों के बीच फिर हँसी-खुशी की बातें शुरु हो जाती।
उस लड़की को देखते ही मेरा कलेजा धक-से रह जाता क्योंकि मैं माँ
और बब्बा के बीच होने वाली बड़ाई की बात भूल न पाती थी।

एक दिन माँ ने साफ लफ्जों में बब्बा से कह दिया कि अगर अब
दूसरे दिन से वह लड़की फिर आयी तो या तो मैं खुद छुरी से अपना गला
काट डालूँगी या उस लड़की का ही गला काट कर उसका काम तमाम
कर डालेगी। माँ की वह प्रतिज्ञा सुनकर बब्बा पर क्या असर पड़ा मैं
कह नहीं सकती पर मैं दहल उठी। बब्बा के पाँवों पर गिड़गिड़ा कर
मैंने रोते हुए कहा— कल से उस लड़की को घर में आने से रोक सको
कर दो बब्बा। अच्छा अच्छा कह कर बब्बा ने लड़की को दरवाजे
से भीतर आने दिया। उसका हाथ पकड़ कर उसे सड़क पर कुछ दूर
तक पहुँचा आया फिर वापस चला आया।

उस दिन से वह लड़की फिर न दुकान में आयी न मकान में। पर एक
नयी बात पैदा हो गयी। तब से बब्बा घर से बाहर रहने लगा। रात में
ग्यारह एक बजे के पहले कभी घर न लौटता। कभी-कभी दिन में भी दुकान
से गायब रहता। ऐसा पहले कभी नहीं देखा गया। माँ की बेचैनी बहुत
बढ़ गयी। उसका स्वभाव एकदम बदल गया और उसमें चिड़चिड़ापन
आ गया था। वह अब मुझसे भी सब समय झिड़क कर बोलती थी।
दिन भर या तो रोती रहती, या अपने आप बड़बड़ाया करती, या लड़कि
पर सन्देह न जाने क्या सोचा करती। बब्बा के घर आने पर दोनों

नित्य चखचख और गालीगलौज होती रहती थी। दोनो ऐसी विकट गालियाँ मुह से निकालते थे कि मुझे कान बद कर लेने की इच्छा होती थी।

६

"एक दिन तग आकर बब्बा ने यह धमकी दी कि 'मैं तिब्बत चला जाऊँगा और मनिया को भी अपने साथ लेता जाऊँगा। इस बात से मा आग-बबूला हो गयी। बोली—तू अभी चला जा, मुझे तेरी इतनी भी परवा नही है। पर मनिया को तू कैसे ले जाता है यह मैं देख लूगी। मनिया तेरी कुछ भी नही लगती। उसे घर से बाहर ले जाने का कोई अख्तियार तुझे नही है। तेरे जैसे भकुआ की मर्दानगी मैं बहुत देख चुकी हू।' उसकी आखो से आग के गोले निकल रहे थे और वह दातो को किटकिटा रही थी। उसका ऐसा भयावना रूप मैंने पहले कभी नही देखा था। बब्बा पहले तो सचमुच डर कर दो कदम पीछे हट गया, पर बाद मे उसके सिर पर न जाने क्या भूत सवार हुआ उसने मा के झोटे पकड पकड कर उसे बुरी तरह पीटना शुरू कर दिया। मा भी पलट मे उसके हाथ को दातो से काटने की कोशिश करती हुई उसके मुह को अपने तेज नाखूनो से उधेडती गयी। मैं असहाय-सी रोती हुई दोनो के पाँव पकड कर शात होने की प्रार्थना करती रही। बडी मुश्किल से दोनो एक-दूसरे से अलग हुए।

"उसी रात की बात है। मैं बिना कुछ खाये पिये सोयी हुई थी और बडे बडे भयानक सपने देख रही थी। अचानक एक चीख सुनकर मैं नीद से चौंक उठी। वैसा भयकर शब्द मैंने कभी नही सुना था। जब घबराकर मैं रोती हुई उठ बैठी तो बब्बा के कमर से पहली चीख से भी विकट कराह सुनने मे आयी। 'क्या हुआ बब्बा, क्या हुआ?' कहती हुई मैं धाडे मार-मार कर रोने लगी। पर न बब्बा ने मेरी बात का कोई जवाब दिया न

माँ ही कुछ बोली। मैं घबरा कर और भी ऊँची आवाज में रोने लगी। चीखना एकदम बंद हो गया था और मेरे रोने की आवाज ही चारों ओर गूंज कर मुझे डरा रही थी। इतने में मैंने अपने कमरे के घुप अंधेरे में अपनी खटिया के पास किसी के फुसफुसाने की आवाज सुनी। मुझे लगा कि निश्चय ही कोई भूत आ गया है। मैंने बड़े जोर की चीख मारी। जिसे मैं भूत समझे बैठी थी उसने तत्काल अपने हाथ से मेरा मुँह बंद करके फुसफुसाते हुए कहा— चुप कर! चुप कर! कोई सुन लेगा। मैंने तेरे बाबा के पेट में छुरा भोंककर उसका काम तमाम कर डाला है। अब चल हम दोनों रात ही रात कहीं निकल चलें, नहीं तो सुबह होते होते पुलिस हमें घेर लेगी। चल जल्दी कर!

'सच मानो माँ की यह बात सुनकर मुझे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। पर मेरी घबराहट सौगुना बढ़ गयी। मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा— 'माँ, माँ क्या तुम सचमुच माँ हो! कोई भूत तो नहीं हो?

'चुप! चुप! माँ ने फिर मेरा मुँह बंद करते हुए फुसफुसाकर कहा— उठो! अभी निकल चलो!'

मेरा रोना न जाने कहाँ गायब हो गया था। सिर से लेकर पाँव तक सिहरती हुई मैं भी फुस फुस करके बोली— इस अंधेरी रात में हम बाग घर छोड़कर कहाँ जायेंगे! मुझसे मारे जाड़े और डर के बिस्तर छोड़ते नहीं बनता! और सचमुच मेरे दाँत अपने आप किटकिटा रहे थे— जाड़े से या डर से मैं कह नहीं सकती।

'माँ ने मेरा हाथ खींच कर बिस्तर से मुझे जबरजोरी उठाया और मेरे कान में बोली—'पगली, पुलिस वाले आवेंगे तो तू कहीं की नहीं रह जायगी। मुझे अपने लिए तनिक भी डर नहीं है पर तेरी क्या दुर्गति होगी तू नहीं जानती। चल उठ। एक चादर सिर पर डाल ले बस!'

मैंने कठपुतली की तरह बिना कुछ सोचे-समझे एक चादर सिर पर डाल ली। माँ मेरा हाथ पकड़ कर बाहर ले जाने लगी। जब मैं बब्बा के कमरे के पास पहुँची तब अंधेरे में ही उस ओर झाँकती हुई धीरे से माँ से बोली— क्या बब्बा सचमुच मर गया है, माँ? माँ खीझकर एकदम दबी हुई आवाज में बोली—'हाँ, हाँ, पगली, चली चल! बात करो

का समय नहीं है।' और मुझे वह सीढ़ियों के नीचे घसीटती-हुई सी ले गयी।

"बाहर आकर मैंने चुपके से कहा—'क्या मकान पर बाहर से ताला नहीं लगाओगी? कोई चोर आकर सब कुछ चुरा ले जायगा!' अपने उस भोले प्रश्न पर आज मुझे हँसी आती है।' और मनिया इतना कह-कर हँसती हुई भी रो पड़ी।

भरी दुपहरी में वह प्रत्यक्ष अनुभूत जीवन का जो लोमहर्षक विवरण सुना रही थी, वह मुझे आधी रात में कही गयी भूत की कहानी की तरह लग रहा था। मेरे पांवों का सारा खून सचमुच जम गया था। लगता था कि वे पांव मेरे नहीं हैं, बल्कि मेरे असली पांवों से बँधे हुए एक एक मन के दो पत्थर हैं। चार-पांच झटके जमीन पर मारने के बाद तब जमे हुए रक्त का संचार आरंभ हुआ।

मनिया जब अपनी आंखें पोंछ चुकी तब मैंने पूछा—'उस आधी रात में तुम्हारी मां तुम्हें कहां ले गयी?"

अपने दाहिने हाथ को सोफा की दाहिनी बांह पर ठीक तरह से अड़ाकर वह अपने विगत जीवन के रोमांचकर अध्याय का छूटा हुआ सूत्र फिर से पकड़ कर कहने लगी—

"बिजली की रोशनीवाली सड़कों को छोड़कर मां मेरा हाथ पकड़-कर पिछवाड़े के रास्ते से एक कच्ची सड़क पर ले गयी, जहां तारों की रोशनी के सिवा और कोई रोशनी न थी। कुछ दूर जाने के बाद वह मुझे पश्चिम की ओर नीचे जानेवाली एक ऊबड़-खाबड़ पगडंडी में ले गयी। वह ऐसा विकट रास्ता था कि तनिक भी पांव फिसलने पर कम से कम तीन सौ गज नीचे खड्ड में जाकर ही कोई रुक सकता था, जहां चकनाचूर हुई हड्डी-पसलियों का कहीं नाम निशान मिलना भी मुश्किल था। पर वह बंदरों की सी सफाई से सँभल कर चल रही थी और वैसी ही फुर्ती से। वह कसकर मेरा हाथ पकड़े थी और मैं उसी के सहारे कठपुतली की तरह चली जा रही थी। क्या अनर्थ हो चुका है और आगे क्या होने वाला है, इसकी कोई चिंता उस भाग-दौड़ में मेरे मन में नहीं उठ रही थी।

'तीन सौ गज की उतराई पार कर चुकने के बाद जब हम नीचे की कच्ची सड़क पर पहुँचे तब माँ दक्षिण की ओर मुझे खींच ले गयी थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। कोई कुत्ता तक वहाँ नहीं भूँक रहा था। हम लोग बेतहाशा चले जा रहे थे और तन-बदन की सुध हमें नहीं थी। चलते चलते जब हम लोग एक पहाड़ी गाँव के पास पहुँचे तब माँ धीरे से बोली—'अब चिंता की कोई बात नहीं। अब हमने मसूरी का अहाता पार कर लिया है।'

माँ के मुँह से यह सुनकर कि अब चिंता की कोई बात नहीं है, मैंने एक लंबी साँस ली। कंकर-पत्थरों पर बड़ी तेजी से चलते रहने से मेरे पाँव छिल गये थे। मैंने माँ से कुछ देर आराम करने के लिये कहा। एक स्थान पर चीड़ के तीन चार पेड़ पास पास खड़े थे। उन्हीं के नीचे मैं धम्म से बैठ गयी। माँ कुछ देर अनमनी सी खड़ी रहीं। मैंने उसका हाथ खींचकर उसे भी बिठाया। मैं बहुत थक गयी थी। जब माँ बैठ गयी तो मैंने उसकी गोद में अपना मुँह छिपा लिया। तब तक मैं भागने की हड़बड़ी में बच्चों की बात एकदम भूली हुई थी, माँ की गोद में मुँह छिपाते ही जब फिर उसकी याद आयी तब मैं आधी रात में उस सन्नाटे में करुण गुहार मार कर रो पड़ी—बच्चा! बच्चा! माँ तुमने क्या कर डाला! मेरे बच्चों के पास मुझे पहुँचा दो! अब मैं कैसे अपने बच्चों का मुँह देखूँगी! बच्चा! बच्चा! माँ बहुत घबराकर 'चुप! चुप!' कहती रही पर मैं किसी तरह भी चुप न हो पाती थी। माँ ने अपने सिर का कपड़ा उतार कर मेरे मुँह में उसे ठूँस कर मुझे चुप किया। मैं बहुत देर तक फफकती रही। उसके बाद न जाने कब नींद आ गयी।

जब माँ ने धक्का देकर मुझे जगाया तो मैंने देखा कि पौ फट चुकी थी। माँ ने मेरा हाथ खींच कर हड़बड़ायी हुई आवाज में धीरे से कहा—'उठ! उजाला होने से पहले ही दूसरे गाँव में पहुँच जाना है। चलो फिर चल पड़।' कुछ दूर चलने पर हम मोटर की सड़क पर पहुँच गये जो सीधी सहस्रधारा की ओर गयी है। उसी रास्ते से होकर ऊपर की ओर चलते रहे। दोपहर से कुछ पहले एक गाँव में पहुँचे। मालूम हुआ कि वहाँ माँ की पहचान के कुछ लोग रहते हैं। जिस आदमी के घर माँ मुझे ले गयी

उसन और उसके परिवार वालो ने हम लोगा की वडी खातिर की। दिन भर और रात भर हम वहीं पड रहे। मुझे वहा भी सब समय यह चिंता लगी रही कि न जाने पुलिस वाले किस समय माथे वहाँ पहुँच जायें।

"दूसर दिन एक मोटर बस पर सवार हो गये, जो चकराता जा रही थी। माँ अपने साथ काफी रुपया बाँध लायी थी। इतने वर्षो स उसने जो कुछ जमा कर रखा था वह सब साथ ले आयी थी। मोटर का किराया ल्त हम मैन और मा ने भी मिलिटरी की सी वर्दी पहन हुए एक आदमी का बडे गौर से देखा—कही वह बदले हुए भेस म पुलिस का आदमी ता नहा है? चकराता पहुँचन तक मेरा कलेजा धक धक करता रहा। मा का भी निश्चय ही वही हाल था।

चकरात म माँ के एक सगे भाई रहते थे। वह जगलात म चौकी दारी के काम पर नौकर थे। उन्ही के यहाँ हम लोग रहने लग। मा ने अपने भाई का बताया कि किसी आदमी ने बबा का खून कर दिया है, इसालिय वह भाग आयी है।

"मा बहुत ही अनमनी और उदास रहती थी और रात म अक्सर भयानक सपना देखकर नींद मे ही चिल्लाने लगती थी। मैं बार बार 'मा! मा!' कहकर उसे जगाती रहती थी। हम चकराता पहुँचे करीब दो हफ्त हुए हाँगे। एक दिन मा ने मामा को रुपया की सारी पाटली सहज दी और कहा—'भया मैं बहुत बीमार हूँ और मेरी जिन्दगी का कोई ठिकाना नही है। न जाने किस क्षण दम बद होकर मेरा काम तमाम हो जाय। यह छोकरी अब तुम्हारे ही शरण म है। इसकी देख भाल करते रहना। और वह फूट-फूटकर रो पडी। उसके बाद मुझे गले लगाती हुई बोली—तू बडी अभागिन है, मैं क्या करूँ, मैं कभी एक दिन क लिये भी तुझम प्यार म न वाली। राज झिडकती रही। मुझे माफ करना, बिन्निया! और फिर रा पडी। मुझसे भी रहा न गया और मैं भी फूट पडी। 'मा! माँ!' के सिवा और कोई बात मेरे मुह से नहा निकलती थी। मुझे फिर किसी दुर्घटना की शका होने लगी थी।

"शाम का मामी ने मुझसे आटा सानने के लिय कहा। मा कुछ देर

"तीन सौ गज की उतराई पार कर चुकने के बाद
हम नीचे की कच्ची सड़क पर पहुँचे तब माँ दरिया की
मुझे खींच ले गयी थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। बाद
तक रहा नहीं गया था। हम लोग बतरस में चल जा रहे थे
तन-बदन की सुध हम नहीं थी। चलते चलते जब हम लोग एक पह
गाँव के पास पहुँचे तब माँ धीरे से बोली— अब चिन्ता की बात
नहीं। अब हमने सरहद का इलाका पार कर लिया है।

माँ के मुँह से यह सुनकर कि अब चिन्ता की कोई बात नहीं
मैंने एक लम्बी साँस ली। कंकड़-पत्थरों पर बड़ी तेजी से चलते रह
मेरे पाँव छिल गये थे। मैंने माँ से कुछ देर आराम करने के लिए क
एक स्थान पर चीड़ के तीन-चार पेड़ पास-पास खड़े थे। उन्हीं के
मैं धम्म से बैठ गयी। माँ कुछ देर अनमनी-सी खड़ी रहीं। मैंने उ
हाथ खींचकर उन्हें भी बिठाया। मैं बहुत थक गयी थी। तब माँ
गोद थी मैंने उनकी गोद में अपना मुँह छिपा लिया। तब तक मैं
की जल्दी में बाबा की बात एकदम भूली हुई थी। माँ की गोद में
छिपाने पर जब फिर उनकी याद आयी तब मैं आधी रात के सन्नाटे
में बरबस पुकार मार कर रो पड़ी— बाबा! बाबा! माँ तुमने
कर डाला! मेरे बाबा के पास मुझे पहुँचा दो! अब मैं कैसे अपने
का मुँह देखूँगी! बाबा! बाबा! माँ बहुत घबराकर चुप! चुप
कहती रहीं पर मैं किसी तरह भी चुप न हो पाती थी। माँ ने
सिर का कपड़ा उतार कर मेरे मुँह से उसे दूर कर मुझे चुप किया
बहुत देर तक सिसकती रही। उसके बाद न जाने कब सो गया।

जब माँ ने घबरा कर मुझे जगाया तो मैंने देखा कि पौ फट
थी। माँ ने मेरा हाथ खींच कर हड़बड़ायी हुई आवाज में धीरे से कह
उठ! उजाला होने के पहले ही दूसरे गाँव में पहुँच जाना है।' दोनों
चल पड़े। कुछ दूर चलने पर हम मोटर की सड़क पर पहुँच गये जो
मरदाना की ओर गयी है। उस रास्ते से होकर ऊपर की ओर
रहे। दोपहर में कुछ पहले एक गाँव में पहुँचे। मालूम हुआ कि वह
की पहचान के कुछ लोग रहते हैं। जिस आदमी के घर माँ मुझे ले

उसने और उसके परिवार वालो ने हम लोगा की वडी खातिर की। दिन भर और रात भर हम वहा पडे रहे।
मुझे वहा भी सब समय यह चिंता लगी रही कि न जाने पुलिस वाले किस समय साधे वहां पहुँच जायें।

"दूसरे दिन एक मोटर बस पर सवार हो गय, जो चकराता जा रही था। मां अपने साथ काफी रुपया बांध लायी थी। इतने वर्षों स उसने जो कुछ जमा कर रखा था वह सब साथ ले आयी थी। मोटर का किराया देते हुए मैंने और मां ने भी मिलिटरी की-सी वर्दी पहन हुए एक आदमी का बडे गौर से देखा—कहीं वह बदले हुए भेस म पुलिस का आदमी तो नहा है? चकराता पहुँचने तक मेरा कलेजा धक-धक करता रहा। मा का भी निश्चय ही वही हाल था।

'चकरात म मां के एक सग भाई रहते थे। वह जगलात म चौकी दारी के काम पर नौकर थे। उन्ही के यहाँ हम लोग रहने लगे। मा ने अपने भाई का बताया कि किसी आदमी न बच्चा का खून कर दिया है, इसलिये वह भाग आयी है।

मा बहुत ही अनमनी और उदास रहती थी और रात म अक्सर भयानक सपना देखकर नीद म ही चिल्लान लगती थी। मैं बार-बार 'मां! मा!' कहकर उसे जगाती रहती थी। हम चकराता पहुँच करीब दो हफ्त हुए होंगे। एक दिन मा न मामा को रुपयो की सारी पोटली सहज दी और कहा—'भया मैं बहुत बीमार हूँ, और मेरी जिन्दगी का कोई ठिकाना नहा है। न जाने किस क्षण दम बद होकर मेरा काम तमाम हो जाय। यह छोकरी अब तुम्हारे ही शरण म है। इसकी देख भाल करते रहना।' और वह फूट फूटकर रो पडी। उसके बाद मुझे गले लगाती हुई बोली—'तू बडी अभागिन है, मैं क्या करूँ, मैं कभी एक दिन के लिये भी तुमसे प्यार म न बोली। रोज झिड़कती रही। मुझे माफ करना, बिन्दिया! और फिर रो पडी। मुझसे भी रहा न गया और मैं भी फूट पडी। 'मां! मां!' के सिवा और कोई बात मेरे मुह से नहीं निकलती थी। मुझे फिर किसी दुर्घटना की शका होने लगी थी।

"शाम को मामी ने मुझसे आटा सानने के लिये कहा। मा कुछ देर

स दिखायी नही दे रही थी। सोचा कि पानी लाने या और किसी काम से गयी होगी। मैं आटा सान कर हाथ धो रही थी कि अचानक मामा घबराये हुए आये और मामी से बोले—'अनर्थ हो गया—भवानी मोटर से दब गयी' मेरी माँ का नाम भवानी था। मेरे हाथ से लोटा झन्न से नीचे गिर पडा और मैं 'माँ! माँ!' कहती हुई पागलों की तरह बाहर को दौड पडी। मामा ने मुझे रोकना चाहा, पर मैं धक्का देकर आगे बढ गयी। मामा और मामी भी मेरे पीछे दौडे आये। सारे गाँव में शोर मच गया था और लोग सड़क की ओर दौडे चले जा रहे थे।

"भीड को चीरकर लाश के पास जाकर मैंने देखा—न आँख की जगह पर आँख थी न नाक की जगह पर नाक। खोपडी से गूदा बाहर निकल गया था, और पेट में अंतडियाँ भी। मैं कुछ देर तक पागलों की तरह एकटक लाश की ओर देखती रही। उसके बाद मुझे चक्कर आने लगा और मैं वहीं पर बेहोशी की हालत में गिर पडी।

"बाद में पता चला कि माँ सडक के किनारे एक पेड की ओट में छिप हुई खडी थी। जब मोटर पूरी रफ्तार से मसूरी की तरफ से चली रही थी तब माँ ने अचानक ठीक इंजिन के सामने अपने को गिरा दिया

माँ के मरने के बाद मैं करीब तीन वर्ष चकराते में मामा के ही रही। मामी का व्यवहार अच्छा नहीं था। दिन भर वह मुझे न किसी काम में जोते रहती। कभी मैं चक्की पीसती कभी धान कभी दूर से पानी लाती कभी लकडी काटती कभी खेत में काम पर खाने को आधा पेट भी मुझे नहीं मिलता था। मामा कभी छिप थोडा सा चना और गुड मुझे दे जाते थे मामी अगर देख एक काण्ड मच जाता। सब समय वह मुझे डाँटती फटकारती रहती

'तीसरे वर्ष मैं एक दिन भागकर मसूरी चली आयी। महीने मैंने सडकों की मरम्मत के काम में लगे हुए मजदूरों के करके किसी तरह गुजर की। पेट काटकर मैं कुछ कुछ पैसे बचा जब कुछ रुपये जमा हो गये तब मैंने बिसाती की दुकान

विचार किया। तब से मैं यही काम करती आ रही थी, और अब वह भी खतम हो गया लाइए, अब एक सिगरेट दीजिये!"

७ मैंने उसे एक सिगरेट दी। मैं उसे जलाने जा रहा था, पर उसने मेज पर से दियासलाई उठाकर स्वयं जला लिया। उसके बाद वह सोफा के बगल वाले कौच पर जाकर, उसकी बाँह पर सिर रखकर लेट गयी और अत्यन्त उदासीन भाव से पीने लगी, जैसे उसने अभी एक बहुत ही साधारण किस्सा मुझे सुनाया हो। पर मेरी आँखों के आगे एक समूची दुनिया का नक्शा घूम गया था। जैसे एक सम्पूर्ण ग्रह पिंड मेरे आगे प्रत्यक्ष रूप में अपने समस्त हलके और गहरे रङ्गों के साथ अपनी धुरी पर एक बार पूरा चक्कर लगा गया हो। एक अपूर्व-कम्पित रोमांचकर अनुभूति मेरी समस्त ज्ञानेन्द्रियों में सुरसुरा रही थी, और अर्द्ध रात्रि का-सा एक दुःस्वप्न मेरी विस्मय विभ्रान्त आत्मा (शारीरिक और मानसिक दोनों) में घनीभूत हो उठा था। कुछ देर तक स्तब्ध दृष्टि से सामने कौच पर लेटी हुई उस रहस्यमयी नारी को सहज-स्वाभाविक मुद्रा में सिगरेट पीते हुए देखता रहा, जो जीवन के भयंकर से भयंकर, असाधारण से असाधारण और जटिल से जटिल अनुभवों को भी अत्यन्त सहज और सीधे रूप में, निश्चिन्त और निर्विकार भाव से, परिपूर्ण आत्म विश्वास के साथ ग्रहण करने की आदी हो चुकी थी। कुछ ही समय पहले उसे सिगरेट पीने को इच्छुक देखकर मेरे मन को ठेस पहुँची थी, पर अब उसकी जीवन-कथा सुनने के बाद मुझे लगा कि जिस लड़की का जीवन ऐसी विकट और अस्वाभाविक परिस्थितियों में होकर गुजरा हो, और जो जीवन की सारी अस्वाभाविकता अथवा असाधारणता को सम्पूर्ण स्वाभाविक और साधा-

रूप से स्वीकार कर चुकी हो, वह चाहे सिगरेट पीये, चाहे शराब, चाहे सड़कों पर भीख माँगे, चाहे महलों में राजरानी होकर रहे—उसके तीव्र धारा धौत स्फटिक की चट्टान के समान स्वच्छ तथापि दृढ़ स्वभाव पर न तो किसी भी 'अच्छी' या बुरी आदत का और न किसी सभ्य या असभ्य परिस्थिति का कोई स्थायी प्रभाव पड़ सकता है।

जब मैं किसी दूसरी दुनिया के धरातल से एक दूसरे ही परिप्रेक्ष्य में उसे देख रहा था तब वह भी अपनी पार्थिव आँखों को मेरी ओर एक टक गड़ाये हुए न जाने किस निराले लोक की मार्मिकता भरी तीव्र अन्तर्भेदिनी दृष्टि से मुझे देख रही थी।

कुछ समय के लिये एक अलौकिक रूप से रहस्यमय सन्नाटा मेरे चारों ओर के पार्थिव वातावरण में छा गया। समस्त पार्थिवता चेतना के एक अपूर्व अनुभूत स्तर के अतल से ऊपर उठ आने पर उसके नीचे तत्काल के लिये जैसे एकदम दब गयी थी। वह नयी अनुभूति भयावह थी या सुखद इसका कोई भान न मुझे उस समय हो रहा था, न इस समय याद करने पर ही उसका कुछ अनुमान लगाने में मैं समर्थ हूँ। सम्भवतः वह इन दोनों प्रकार की अनुभूतियों के परे थी।

मैं चेतना के उस असाधारण स्तर की अपार्थिव अनुभूति में खोया ही हुआ था कि सहसा मनिया उठ बैठी और अधजली सिगरेट को राखदानी में फेंक कर बोली—"अब मैं चलती हूँ। तुम्हारे साथ बैठे-बैठे सारा दिन गप-शप में ही बीत गया।"

गप-शप! अपने जीवन के मर्मान्तक अनुभवों की पूरी चमक में दहकते हुए अंगारों की तरह मेरे आगे रखने पर—जिनकी आँच से अभी तक मेरी आत्मा झुलस रही थी—उन्हें वह केवल 'गप-शप' बता रही थी!

मेरी पार्थिवता तत्काल लौट आयी। मुझे याद आया कि मैंने उसे निश्चल कर लिया है—जैसी कि उसकी धारणा है और वह धारणा बद्धमूल हो चुकी है यह भी निश्चित है। 'तुम दो सौ क्या, दो हजार रुपया भी मुझे दो तो भी मैं अब दुकान नहीं खोल सकती।' उसने कहा था। तब क्या उसके इस विचित्र हठ के प्रति आत्म-समर्पण करके मैं उसे

छोड दूँ। "बाबा, कोई गरीब, लाचार को एक पैसा दे दो। भगवान तुम्हारा भला करे!" और क्षण भर के लिये मेरी भीतरी आँखों के आगे उसका वह निस्सबल, निस्सहाय रूप, वह मर्म विदारक दयनीयता और निपट दीनता भरी म्लान मुख छवि प्रत्यक्षवत् नाच गयी। अतल व्यापी वेदना की एक तीव्र हिलोर से मेरा हृदय सिहर उठा। "न! न! यह संभव नहीं हो सकता! चाहे मुझे उसके हठ के निवारण के लिये अपने प्राण ही क्या न देने पड़ें, मैं कभी उसे इस अकिंचन अवस्था मे और आत्म निपीडक मानसिक स्थिति मे नहीं जाने दूँगा" अपने मन से मैंने कहा। और तत्काल, जाने कहाँ से, एक ऐसा अद्भुत आत्मिक बल, एक उदात्त स्फूर्ति मेरे भीतर जाग पडी, जिसने इतने देर तक की मेरी उस मानसिक जडता को पल में विलीन कर दिया जो मुझे उसके प्रबल हठ के आगे एकदम नि शक्त बना रही थी और जिसके कारण अपने विरोध मे सफल होने का आत्म विश्वास ही मुझ में नहीं जग पा रहा था।

वह नयी स्फूर्ति पाने पर मैं कुछ देर तक स्थिर और गंभीर दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। उसके बाद सहसा अत्यन्त दृढता के साथ बोला—"देखो मनिया, तुम अब कहीं नहीं जा सकती!" यह कहने के बाद भी मैं परिपूर्ण आत्म विश्वास भरी और आभ्यन्तरिक आदेश से प्रेरित दृष्टि को उसी सुगंभीर निश्चलता के साथ एकटक उसकी ओर गडाये रहा।

मनिया कौच पर से उठने जा रही थी, सहसा मेरी वह असाधारण मुद्रा देखकर और असाधारण ही आदेश सुनकर वह कठपुतली की तरह बैठ गयी, और स्कूल में गुरु के कठोर आदेश से त्रस्त भोली बालिका की तरह तन्मय भाव से मेरी ओर देखती रह गयी। उसने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। न 'क्या?' कहा न 'किसलिये?' केवल जैसे मेरे अगले आदेश की प्रतीक्षा करती हुई वह अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों को मेरी ओर केन्द्रित किये स्तब्ध सभ्रम से मौन बैठी रही।

आज उस दिन की उस घटना पर जब मैं एकांत भाव से विचार करता हूँ तब मुझे ऐसा लगता है कि हिप्नोटिज्म की जो कला वास्तविक

रूप से प्रभावोत्पादक सिद्ध होती है वह किसी के सिखाये से या पराधीन नहीं होती, कुछ विशिष्ट बाह्य नियमों के यथारूप पालन से वह सच्चे रूप में फलित नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ विशेष असाधारण क्षण ऐसे आते हैं जब अन्तश्चेतना की कोई विशेष सुप्त भाग सहसा स्वतः जागरित हो उठता है और उस उदात्त अवस्था में वह इच्छित व्यक्ति पर जैसा भी प्रभाव डालना चाहता है उसमें निश्चित रूप से सफल होता है तब जो भी आदेश उसके भीतर से निकलता है उसे प्रमाणित करने की शक्ति किसी बिरले ही योग निष्ठ व्यक्ति में होती हो।

कुछ देर बाद जब मुझे यह विश्वास हो गया कि मेरी सद्य जाग्रत अन्तर शक्ति का परिपूर्ण प्रभाव उस पर पड़ चुका है तब मैंने और अधिक दृढ़ता भरे शब्दों में कहा— 'तुम आज से यह न सोचना कि तुम अपनी इच्छा से जहाँ चाहो जा सकती हो। तुम्हारा मन इस समय से एकदम मेरे वश में हो चुका है यह जान लो। मैं तुमसे जैसा करने को कहूँगा वैसा तुम्हें करना होगा। मेरा साथ छोड़ कर अब तुम तब तक नहीं जा सकती जब तक मैं स्वयं तुमसे जाने को न कहूँ। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे साथ तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा और तुम सुख से रहोगी।'

वह उसी तरह, विस्मित और भ्रान्त दृष्टि से मेरी ओर टकटकी बाँधे हुए थी जैसे मेरे सम्बन्ध में उसे कोई एक नया इलहाम—एक नये ज्ञान की प्रेरणा हुई हो। आज तक वह मुझे जिस दृष्टि से देखती आ रही थी, वह इस समय जैसे मूलतः बदल गयी थी। स्पष्ट ही मेरे व्यक्तित्व के सतेज रूप की कोई कल्पना ही इतने दिनों तक उसने नहीं की थी।

हम दोनों की आँखें लड़ रही थीं जैसे इस बात की होड़ लगी हो कि कौन, किसका कितनी गहराई से जानने की अन्तरीण समझ रखता है। मैं निश्चित आत्म विश्वासपूर्वक यह जानता था कि उस लड़ाई में अन्ततः मेरी विजय निश्चित है—वरन् मैं विजय पा चुका हूँ।

कुछ देर बाद मनिया की आँखें मृदु मन्द और स्निग्ध हासाभास से

उज्ज्वल हो उठी। जैसे अमावस्या की गाढ़ अंधकारमयी कालरात्रि के बाद—जिसके सम्बन्ध में निद्राविहीन आंखों को यह विश्वास ही नहीं होता कि वह कभी बीतेगी—पूर्व दिशा में उषा की नवोज्ज्वल रेखा का प्रथम प्रभास फूट पड़ा हो। उसकी पुलकित पलकें झुक गयीं और आंखें मुंद गयीं। वह सहसा मेरे पास आकर बैठ गयी और मेरे कंधे पर कनक लता की साथ अपना दायां हाथ रख कर पुचकार भरे स्वर में बोली—

"क्या तुम सचमुच यह सोच रहे थे कि मैं तुम्हें छोड़कर चली जाऊंगी? मैं अगर इस समय चली भी गयी होती तो भी तुम्हें न छोड़ती। तुमसे निश्चय ही मेरा पूर्व जन्म का कोई नाता है, यह मैं पहली बार तुम्हें देखते ही समझ गयी थी। तुम अगर मुझे छोड़ना भी चाहो तो भी मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती।" उसकी आंखें प्राय पूरी मुंद गयीं और उसने मेरे बायें कंधे पर अपना सिर रख लिया। कैसा सहज सुखद, स्निग्ध स्नेहरस से संदीप्त उसका वह सहज ममतापूर्ण स्पर्श था—अपने मृदु-मंद ताप से उस की तरह जमे हुए हृदय को भी पिघला देने वाला!

मेरे मन में उसी के मुंह से सुनी हुई उस घटना का चित्र सजीव हो रहा था जब वह अपनी हत्यारी मां के साथ आधी रात में भागने के बाद अत्यंत थकित अवस्था में मां की गोद में लेटकर सो गयी थी। क्या आज भी वह उसी तरह की थकान का अनुभव कर रही थी? उस दिन तो निश्चय ही उसके बाबा की हत्यावाली घटना ने केवल उसके शरीर या मन को ही नहीं, बल्कि उसकी आत्मा को भी थका दिया होगा। क्या आज भी उसका शरीर, मन और आत्मा तीनों थकित हैं? उस दिन उसके बाबा की हत्या हुई थी, तब क्या आज भी किसी की हत्या हुई है? ठीक है! आज भी निश्चय ही किसी की हत्या हुई है। क्या आज उसके पिछले व्यक्तित्व की हत्या नहीं हुई है? पर बाबा की हत्या के बाद एक विभीषिकामयी, भयानक अनुभूति में उसका जीवन विषमय बन गया था, और आज? आज क्या उसका जीवन अमृतमय बनने जा रहा है? संगमरमर की सुंदर मूर्ति की तरह उसकी मुंदी आंखों की ओर देखता हुआ मैं कुछ समय तक इसी तरह के विचारों में मग्न रहा।

सहसा मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि वह सचमुच सो गयी है। मैंने सोचा क्या यह वही सुषुप्तावस्था है जिसे अंगरेजी में कहते हैं हिप्नोटिक स्लीप ? मैंने उसे हिलाया डुलाया पर वह नहीं जगी। दोनों हाथों से उसे सहारा देते हुए मैं कौच पर से उठा और उसके बाद मैंने उसे धीरे से उसी कौच पर चित अवस्था में लिटा दिया। उसके बाद अपनी समस्त गुप्त यौगिक शक्तियों को पूर्ण प्रयत्न से जगाकर मैंने अत्यंत दृढ़ और गंभीर वाणी में, आज्ञा के स्वर पुकारा—"मनिया !

वह उसी सोयी हुई अवस्था में बोल उठी— 'हाँ ! '

"मैं कौन हूं ?

'रंजन बाबू !'

और कोई समय होता तो इस बात पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहता कि उसने मेरा नाम कैसे जान लिया। पर चूंकि उस समय मेरी मानसिक स्थिति असाधारण स्तर पर पहुँची हुई थी इसलिए मैंने अत्यंत सहज रूप में उसके उत्तर को ग्रहण किया, और उसी गंभीरता के साथ प्रश्न करता चला गया—

"सच बताना मनिया, तुम क्या मुझे चाहने लगी हो ?"

मैं तुमसे बहुत डर गयी हूं। तुम मुझे साक्षात् काल की तरह लगते हो। मेरी रूह तुम्हें देखकर कांप उठी है। मैं तुमसे छुटकारा चाहती हूँ, पर छूटने का कोई उपाय आज नहीं पाती। मुझे बचाओ ! मुझे बचाओ !' और वह उसी सम्मोहन की निद्रावस्था में ही फफक फफक कर रोने लगी।

उसका यह उत्तर ऐसा था जिसे सुनकर साधारण अवस्था में मैं हतबुद्धि हो गया होता। पर मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं उस समय मन के असाधारण स्तर पर पहुँचा हुआ था।

मैंने अपने मन को एकमात्र भावना की ओर केंद्रित करके अपने स्वर में और अधिक दृढ़ता और गंभीरता भरते हुए आदेश पूर्वक कहा— "तुम्हें छुटकारा तभी मिलेगा जब मैं चाहूंगा। मैं चाहे तुम्हारा काल हूँ चाहे और कुछ पर हर हालत में मैं तुम्हारा प्यार चाहता हूं। आज से

यह जान लो कि मुझे प्यार करने के सिवा तुम्हारे जीवन की और कोई सार्थकता नहीं है। मुझे प्यार करो, उसी में डूब जाओ और उसी में अपनी सारी जिन्दगी को खपा दो, बस! बोलो, करोगी मुझे प्यार ?"

"हाँ!"

"फिर बोलो कि मुझे प्यार करोगी और खुश रहोगी ?,,

"हाँ प्यार करूँगी और खुश रहूँगी।'

"अब तो मैं काल की तरह नहीं लगता हूँ ?'

"नहीं।'

"तब नींद से उठ बैठो।'

और वह सचमुच तत्काल उठ बैठी—आँखें मलती हुई। आँखें मल चुकने के बाद उसने मेरी ओर देखा—कैसी निश्छल प्यार भरी मृदु मुसकान उसकी अलसायी आँखों में, उसके ओठों पर उसके गालों के इर्द-गिर्द, उसकी ठुड्डी की पंखुड़ियों में खिल उठी थी! फिर एक बार उसने आँखें मलीं और उसके बाद अँगड़ाई लेने लगी। रात भर की नींद के बाद की सहज स्वाभाविक शिथिलता की-सी वह अँगड़ाई बड़ी ही मादक, बड़ी ही मोहक लग रही थी। जम्हाई लेती हुई वह बोली—"मैं क्या कई घण्टे से सोया हुई थी? आपने मुझे जगा भी नहीं दिया! अच्छी गँवार निकली मैं जो इतनी देर तक यहाँ सोयी रह गयी!" और फिर एक बार प्यार से लबालब छलकती हुई आँखों से मेरी ओर देखकर वह खिल खिला कर हँस पड़ी। कैसी कोमल, कैसी तरल हँसी थी वह! मेरे पुलकित हृदय में एक अपूर्व हर्ष हिलोर उमड़ उठी। तत्काल मैं कौच पर उसकी बगल में जाकर बैठ गया। वह अपने दोनों प्यारे-प्यारे हाथों से मेरे सिर के बाल सहलाने लगी। उसके बाद दायें हाथ से मेरी ठुड्डी पकड़कर मेरी आँखों में इस तरह देखने लगी जैसे शीशे में अपना मुँह देख रही हो। कुछ देर तक एकटक देखते रहने के बाद पुचकार भरे स्वर में बोली—"तुम बहुत ही भले हो! बड़े प्यारे। मुझसे नाराज तो नहीं हो न ?' और फिर मेरी भौंहों के ऊपर अपनी कोमल-कोमल उँगलियाँ फेरने लगी। —

मैं उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा, जैसे अज्ञात में उसे दिलासा देता होऊँ, घबराहट की मनोदशा में उसको ढाढ़स बँधाता होऊँ हालाँकि उस समय उसकी किसी भी बात में या हाव भाव से किसी भी प्रकार की घबराहट का लेशमात्र चिह्न प्रकट नहीं हो रहा था।

पीठ पर हाथ फेरते हुए मैंने मृदु मन्द मुस्कराते हुए कहा—"इस समय तो तुम मुझे बहुत भला आदमी बता रही हो पर अभी कुछ ही समय पहले, नींद की हालत में तुम क्या कह रही थी जानती हो?"

अत्यन्त उत्सुकता और कुछ कुछ उत्कंठा से उसने पूछा—"क्या?"

"तुम मुझसे कह रही थी कि मैं तुमसे बहुत डर गयी हूँ—तुम मुझे साक्षात् काल की तरह लगते हो।"

वह खिलखिला उठी—एक हलके विस्फोट के-से स्वर में—ठीक जिस प्रकार दियासलाई के डिब्बे में दियासलाई जलाने पर शब्द होता है। खिलखिलाती हुई वह बोली—"आप क्या सच कहते हैं? हँसी तो नहीं करते? क्या सचमुच मैंने नींद में इस तरह की बात कही थी?"

"विश्वास मानो मैं सही बात कह रहा हूँ।

"अच्छा! यह खूब रही!" और वह फिर खिलखिला उठी।

"तुम्हें क्या बिलकुल याद नहीं आता कि तुमने नींद में क्या क्या कहा?" मैंने पूछा।

"नहीं। मैं तो ऐसी गाढ़ी नींद में सोयी थी कि मैंने नींद में कुछ भी कहा होगा, इस बात पर मुझे विश्वास ही नहीं होता।

'तुम्हें क्या किसी प्रकार का सपना देखने की-सी भी याद नहीं है?'

"नहीं, मैंने कोई सपना नहीं देखा। मैं तो बेखबर सो गयी थी। इधर कई दिनों से रात में अच्छी तरह नींद नहीं आयी इसलिये शायद यहाँ मुझे ऐसी गहरी नींद आ गयी।'

ऐसे भोले भाव से उसने यह बात कही कि मुझे उसके ऊपर तरस आने लगा। मैंने कहा—"अच्छा, एक काम करो। मुझे लगता है कि तुम्हें सचमुच नींद की बड़ी जरूरत है। चलो, उस कमरे में चल कर मैं तुम्हारे आराम से सोने का प्रबन्ध किये देता हूँ।'

मेरे कंधे पर अपना सिर रख कर वह बोली—नहीं,
मैं सो चुकी हूँ, अब नहीं सोऊँगी।'

"मेरी बात मान लो। तुम्हारे लिये इस समय आराम बहुत जरूरी है। कुछ देर भीतर पलँग पर आराम से सो जाओ। तुम्हारी इतने दिनों की सारी थकावट हवा हो जायगी।" और मैं उसका हाथ पकड़ कर हौले से खींचने लगा। बच्चों की तरह एक बार "न!" कहने पर भी वह उठ खड़ी हुई। मैं उसे दूसरे कमरे में ले गया जो उस कमरे में मिला हुआ था जहां हम लोग अभी तक बैठे हुए थे।

८

मेरे पलँग पर रेशमी गद्दा बिछा था जिसके भीतर रुई के स्थान पर किसी चिड़िया के बहुत मुलायम और चुने हुए पर भरे हुए थे। चादर भी रेशमी ही थी, और परों से ही भरे हुए तकिये का झालरदार गिलाफ भी रेशमी ही था। उस पर मैंने धीरे से मनिया को लिटा दिया। ऊपर से साटिन का लिहाफ ओढ़ाता हुआ बोला—"अब तुम दो-तीन घण्टे एकदम निश्चिन्त होकर सो जाओ।"

मैं देख रहा था, उसकी आँखें फिर से अलसाने लगी थीं। उसने कहा—"तुम खड़े क्यों हो? तुम मेरे सिरहाने बैठकर मेरे सिर पर हाथ रख रहो तब मुझे नींद आयगी।"

मैं बैठ गया और उसके सिर पर हाथ रखकर उसके कई दिनों से रूखे पड़े हुए बालों पर धीरे से अपनी उँगलियां फेरने लगा। कुछ ही देर बाद वह गाढ़ी नींद में सो गयी। गहरी सांस लेने के कारण उसका सारा शरीर जैसे हिल रहा था। मैं कुछ देर तक गौर से प्रायः चुम्बक के से आकर्षण से, उसके मुख की वह शांत सुप्त छवि देखता रहा। मैंने 'शांत' कहा? पर निर्मम निपीड़न की-सी जो अँधेरी छाया उसके निद्रित, मौन,

म्लान और करुण मुख पर पड़ी हुई थी उससे शांति की संभावना का अनुमान कैसे किया जा सकता था ! मेरे आंसू निकल आये। वह निदारुण रूप से म्लान छाया बता रही थी कि निखिल संसार में अकेली वह निपट अनाथ और असहाय लड़की जिन घोर आतंककारी और लोमहर्षक अनुभवों के बीच में अग्रसर हुई है वे कुछ ऐसी वज्र की-सी लकीरें उसके जीवन में खींच गये हैं जो कभी मिट नहीं सकतीं। चाहे वह रेशमी गद्दों और मखमली तकियों पर ही क्यों न लेटी रहे उन वज्र रेखाओं से वह सदा बँधी रहेगी और उन्हें लाँघकर उस पारवाले आनन्द और प्रकाशमय जीवन की अनुभूतियों को वह कभी छू तक नहीं सकती—ऐसे वज्र अभिशाप से वह घिरी हुई है। उसके मुख की उस सुप्त अभिव्यक्ति को देखकर ऐसा अनुमान मेरी अन्तश्चेतना ने क्यों लगाया मैं कह नहीं सकता। पर उस समय मुझे यह बात वज्र मणि के प्रकाश की तरह सुस्पष्ट लगी।

मैं वहाँ से उठ नहीं पाता था। उसके मुख पर से मेरी आँखें हट नहीं पाती थीं। वह प्रगाढ़ निद्रा में मग्न थी, किन्तु उसके कपाल की नम पलकों का स्नायु-तन्त्र ओठों की त्वचा जैसे किसी अज्ञात अनुभूति से प्रतिपल नयी नयी चेष्टाओं के साथ चालित हो रहे थे। कभी वह अपनी भौंहों को सिकोड़ती थी, जैसे किसी निर्मम पीड़ा से कराहना चाहती हो। कभी उसके कपाल की नसें एक त्रिकोण के रूप में उभर उठती थीं, कभी उसके ओठों के इर्द गिर्द घृणा की-सी रेखा घिर आती थी और कभी समस्त मुख पर भय और आतंक की अनुभूति अभिव्यक्त हो उठती थी। स्पष्ट ही उसके मन के अतल में, और उस अतल के भी नीचे ऊपर और अगल-बगल के स्तरों में दबी हुई भूत वर्तमान और भविष्य की सहस्रों भावनाएँ स्वप्नों के रूप में उभर-उभर कर उसके समस्त सुप्त अथवा अर्ध चेतनशील व्यक्तित्व को तीव्र रूप से आन्दोलित कर रही थीं। पर उन असंख्य स्वप्नानुभूतियों में से एक भी अनुभूति ऐसी नहीं थी जो कभी एक क्षण के लिये भी उसके मुख पर हास्य की झलक ला देती। मैं उसी झलक की आशा से एकटक उसकी ओर देख रहा था, पर उसका कोई सूक्ष्मतम चिह्न भी मुझे नहीं दिखा

देता था। सोने के पहले वह किस कदर खिलखिलाती रही थी! कभी स्निग्ध मुस्कान उसके मुख पर छायी हुई थी! पर सोने के बाद वह न जाने कपूर की तरह कहाँ विलीन हो गयी थी, एक लघुतम क्षण के लिये भी उसका कोई नाम निशान मुझे नहीं दिखाई देता था। उसके निद्रित जीवन की जो अस्फुट अभिव्यक्ति उसके मुख पट पर प्रतिपल बदलते हुए रूपों में प्रतिफलित होती चली जा रही थी उसे देखकर मैं पहले तो आतंक की अनुभूति से सिहरता रहा। पर बाद में एक निस्सीम करुणा की भावना मेरे प्राणों के एक छोर से दूसरे छोर तक उमड़ उठी और मेरी दोनों आँखों में बरबस आँसू छलक आये। उन आँसुओं को पोंछे बिना ही मैं और कुछ देर तक निपट अन्य मनस्क भाव से उसके सिरहाने बैठा बैठा न जाने क्या सोचता रहा। उसके बाद उठकर बाहर के कमरे में चला आया और कौच पर लेटे लेटे मानवीय अति चेतना से सम्बन्धित कोई एक अंगरेजी पुस्तक पढ़ने का प्रयत्न करने लगा। पर एक आध परिच्छेद पढ़ते-न पढ़ते मेरे आगे यह बात स्पष्ट हो गयी कि उस पुस्तक में अति-चेतना के सम्बन्ध में खोज की चाहे कितनी भी बड़ी-बड़ी, भारी भरकम बातें विद्वान् लेखक ने लिखी हों, वे मेरे उस प्रत्यक्ष अनुभव के आगे एकदम फीकी और निस्सार पड़ जाती हैं जो मैंने अति चेतना, उप चेतना अथवा अव-चेतना के सम्बन्ध में उस दिन मनिया के विगत जीवन की असाधारण घटनाओं का विवरण सुनकर और उसका असाधारण व्यवहार और आचरण देखकर प्राप्त किया है।

पुस्तक के कुछ ही पन्ने पढ़ने के बाद मेरा जी ऊब गया। आज के सारे घटनाचक्र के कारण मैं यों ही थकावट मालूम करने लगा था। उस पुस्तक की नीरस बातों ने मुझे और अधिक थका दिया। मेरी आँखें झपने लगीं। केवल दो मिनट के लिये मैं सोया हूँगा कि मुझे लगा जैसे कोई गला फाड़ फाड़ कर अत्यन्त आर्तस्वर में मुझे पुकार रहा है। तत्काल मेरी आँखें खुल गयीं और मैं हड़बड़ाता हुआ उठा। उठते ही सीधे भीतर के कमरे में गया, जहाँ मनिया सोयी थी। देखा वह अभी तक बेखबर सोयी हुई है। उसके मुख पर वही मौन म्लान छाया घिरी हुई थी। मैं फिर एक बार चुपचाप उसके सिरहाने बैठ गया। मेरी

म्लान और करुण मुख पर पड़ी हुई थी उससे शान्ति क
संभावना का अनुमान कैसे किया जा सकता था ! मेरे आँ
निकल आये । वह निदारुण रूप से म्लान छाया बता रही थी कि निखि
संसार में अकेली वह निपट अनाथ और असहाय लड़की जिन घो
आतंककारी और लोमहर्षक अनुभवों के बीच में अग्रसर हुई है वे कु
ऐसी वज्र की-सी रेखाएँ उसके जीवन में खींच गये हैं जो कभी मिट न
सकतीं । चाहे वह रेशमी गद्दा और मखमली तकिया पर ही क्यों न ले
रहे, उन वज्र रेखाओं से वह सदा बँधी रहेगी और उन्हें बाँधकर सु
पारवार आनन्द और प्रकाशमय जीवन की अनुभूतियों का वह कभी
तक नहीं सकती—ऐसे वज्र अभिशाप से वह घिरी हुई है । उसके मु
की उस सुप्त अभिव्यक्ति को देखकर ऐसा अनुमान मेरी अन्तःप्रज्ञा
क्या लगाया मैं कह नहीं सकता । पर उस समय मुझे यह बात वज
मणि के प्रकाश की तरह सुस्पष्ट लगी ।

मैं वहाँ से उठ नहीं पाता था । उसके मुख पर से मेरी आँख
नहीं पाती थी । वह प्रगाढ़ निद्रा में मग्न थी, किन्तु उसके कपाल
नर्म पलकों या स्नायु-तन्त्र ओठों की त्वचा जैसे किसी अज्ञात अ
भूति में प्रतिपल नयी-नयी चेष्टाओं के साथ चालित हो रहे थे । कु
वह अपनी बाँहों को सिकोड़ती थी, जैसे किसी निर्मम पीड़ा से कराह
चाहती हो, कभी उसके कपाल की नसें एक त्रिकोण के रूप में उ
उठती थीं कभी उसके ओठों के इर्द गिर्द घृणा की-सी रेखा घिर आ
थी और कभी समस्त मुख पर भय और आतंक की अनुभूति अ
व्यक्त हो उठती थी । स्पष्ट ही उसके मन के अन्तल में और
अन्तल के भी नीचे ऊपर और अगल-बगल के स्तरों में दबी हुई भू
वर्तमान और भविष्य की सहस्रों भावनाएँ स्वप्नों के रूप में उभर उ
कर उसके समस्त सुप्त अथवा अर्ध चेतनशील व्यक्तित्व को तीव्र रूप
आन्दोलित कर रही थीं । पर उन असंख्य स्वप्नानुभूतियों में से एक
अनुभूति ऐसी नहीं थी जो कभी एक क्षण के लिये भी उसके मुख
हास्य की झलक ला देती । मैं उसी झलक की आशा में एकटक उस
ओर देख रहा था, पर उसका कोई सूक्ष्मतम चिह्न भी मुझे नहीं दिख

देता था। सोने के पहले वह किस कदर खिलखिलाती रही थी। कसी स्निग्ध मुस्कान उसके मुख पर छायी हुई थी।
पर सोने के बाद वह न जाने कपूर की तरह कहाँ विलीन हो गयी थी; एक लघुतम क्षण के लिये भी उसका कोई नाम निशान मुझे नहीं दिखाई देता था। उसके निद्रित जीवन की जो अस्फुट अभिव्यक्ति उसके मुख पट पर प्रतिपल बदलते हुए रूपों में प्रतिफलित होती चली जा रही थी उसे देखकर मैं पहले तो आतंक की अनुभूति से सिहरता रहा। पर बाद में एक निस्सीम करुणा की भावना मेरे प्राणों के एक छोर से दूसरे छोर तक उमड़ उठी और मेरी रूखी आँखों में बरबस आँसू छलक आये। उन आँसुओं को पोंछे बिना ही, मैं और कुछ देर तक निपट अन्य मनस्क भाव से उसके सिरहाने बैठा-बैठा न जाने क्या सोचता रहा। उसके बाद उठकर बाहर के कमरे में चला आया और कोच पर लेट-लेटे मानवीय अति चेतना से सम्बन्धित कोई एक अँगरेजी पुस्तक पढ़ने का प्रयत्न करने लगा। पर एक आध परिच्छेद पढ़ते-न पढ़ते मेरे आगे यह बात स्पष्ट हो गयी कि उस पुस्तक में अति-चेतना के सम्बन्ध में खोज की चाहे कितनी भी लम्बी-चौड़ी, भारी भरकम बातें विद्वान लेखक ने लिखी हों, वे मेरे उस प्रत्यक्ष अनुभव के आगे एकदम फीकी और निस्सार पड़ जाती हैं जो मैंने अति चेतना, उप चेतना अथवा अव चेतना के सम्बन्ध में उस दिन मनिया के विगत जीवन की असाधारण घटनाओं का विवरण सुनकर और उसका असाधारण व्यवहार और आचरण देखकर प्राप्त किया है।

पुस्तक के कुछ ही पन्ने पढ़ने के बाद मेरा जी ऊब गया। आज के सारे घटनाचक्र के कारण मैं यों ही थकावट मालूम करने लगा था। उस पुस्तक की नीरस बातों ने मुझे और अधिक थका दिया। मेरी आँखें झपने लगीं। केवल दो मिनट के लिये मैं सोया हूँगा कि मुझे लगा जैसे कोई गला फाड़-फाड़ कर अत्यन्त आर्तस्वर में मुझे पुकार रहा है। तत्काल मेरी आँखें खुल गयीं और मैं हड़बड़ाता हुआ उठा। उठते ही सीधे भीतर के कमरे में गया, जहाँ मनिया सोयी थी। देखा वह अभी तक बेखबर सोयी हुई है। उसके मुख पर वही मौन म्लान छाया घिरी हुई थी। मैं फिर एक बार चुपचाप उसके सिरहाने बैठ गया। मेरी

आँखें उसके मुख की उस करुण छाया की ओर से हटना भी नहीं चाहती थी। बीच-बीच में वह नींद ही में कभी सिसक उठती थी और कभी धीमे स्वर में एक कराह उसके मुँह से निकल पड़ती थी।

प्राय आधा घंटा मुझे उसी अवस्था में बैठे हुए हो गया होगा। सहसा उसने एक चीख मारी, और उसके बाद दूसरी और फिर तीसरी। मैं उसका हाथ हिलाते हुए उसका नाम ले लेकर पुकारने लगा। तब वह जगी। क्षण भर के लिये बहुत ही डरी हुई आँखों से उसने मेरी ओर देखा। मैंने कहा— मनिया कोई सपना देखा था क्या? इस तरह चीख क्यों रही थी?

'तो क्या वह सपना था?' प्राय फुसफुसाती हुई मनिया बोली।

'हाँ मनिया वह सपना था। क्या देखा तुमने सपने में?'

लेटे ही लेटे तनिक मेरी ओर सरकती हुई मनिया केवल बोली—'उफ!" और मेरा दाहिना हाथ अपने हाथ से धीरे से पकड़ती हुई मेरी ओर बड़े गौर से देखने लगी—जैसे किसी भूले हुए आदमी को फिर से पहचानने की कोशिश कर रही हो। उसके माथे पर चमकने वाली पसीने की बूँदों पर पश्चिम की ओर की खिड़की के लाल शीशे से होकर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था जिससे ऐसा मालूम होता था जैसे रक्त की बूँदें टपक रही हों। उस प्रकाश में उसकी भीत आँखों की दृष्टि और अधिक भयावनी लग रही थी। क्षण भर के लिये मुझे लगा कि मेरी सारी हिप्नोटिक कला उलटे मेरे ही ऊपर आक्रमण कर बैठी हो। मारे घबराहट के मैं बोल उठा— मनिया तुम इस तरह से मेरी ओर क्या देख रही हो? तुमने क्या सपना देखा, बताती क्यों नहीं?

नहीं तुम वह नहीं थे! —एक दीर्घ निःश्वास फेंकती हुई वह बोली— तुम वह हो ही नहीं सकते! तुम इतने प्यारे हो! और मैं भी तुम्हारे साथ ऐसी बेरहमी का बर्ताव नहीं कर सकती! तुम तनिक और इधर सरक आओ।

मैंने वैसा ही किया और मनिया ने मेरे घुटने पर अपना सिर रख दिया। उसके बाद मेरा हाथ अपने माथे पर रखती हुई बोली—"तुम क्या राजा हो?

उसके इस विचित्र प्रश्न से प्राय चौंक कर मैंने कहा
—"नहीं तो ! मैं एक मामूली आदमी हूँ। पर तुमने ऐसा क्या पूछा ?'

"नहीं, तुम जरूर राजा हो !" अपनी रहस्यमयी दृष्टि को मेरी ओर गडाये हुए वह बोली,—"एक ज्योतिषी लामा ने एक बार मेरा हाथ देखकर मुझसे कहा था—"तुम्हें जिन्दगी में एक न एक बार एक राजा मिलेगा, जो तुम्हारे ऊपर बड़ी दया दिखायेगा, पर—पर—"

"पर क्या ?" मैं यद्यपि ज्योतिषियों की बातों को महत्व देना मूर्खों का काम समझता था, तथापि यह जानने के लिये मैं अत्यन्त अधीर हो उठा कि मनिया के ज्योतिषी ने उससे पूरी बात क्या कही थी। उसकी अधूरी बात से मैं अत्यन्त अधीर हो उठा था।

"कुछ नहीं। वह एक अनपढ़ ज्योतिषी था। पर उसने कहा था कि—कि उस राजा से तुम्हारा ब्याह होगा'।" कहते ही वह एक विचित्र ढंग से खिलखिला उठी। और फिर बोली—"बड़ा मूर्ख ज्योतिषी था वह। मैं तब भी उसकी बात सुन कर खिलखिला उठी थी। तब मैं बहुत छोटी थी।"

मुझे लगा कि उस अनजान और अदृष्ट ज्योतिषी की आत्मा जैसे तत्काल ही मेरे भीतर प्रविष्ट हो गयी। जैसे उस ज्योतिषी की प्रेरणा से ही मेरे मुँह से उसी क्षण यह निकल पड़ा—"उस ज्योतिषी की ही बात सच होगी मनिया, मैं तुम्हारे साथ ब्याह करूँगा।" और कहते ही मुझे अपनी आवाज किसी दूसरे की-सी लगी।

मनिया तत्काल हड़बड़ाती हुई उठ बैठी। खिड़की के शीशे से आने वाला लाल प्रकाश इस समय परिपूर्ण रूप से चमक रहा था। निश्चय ही स्वयं उसके भी मुख की लालिमा उस रक्ताभा के साथ घुल मिल गयी थी। पर उसकी वह अपनी लालिमा क्या प्रकट करती थी ? नववधू की-सी लज्जा ? क्रोध ? या प्रतिहिंसा ? मैं कह नहीं सकता।

"तुम क्या सच कह रहे हो ? तुम क्या सचमुच मुझसे ब्याह करोगे ?" एक अनोखे स्वर में उसने प्रश्न किया।

पर उसके प्रश्न का उत्तर देने के पहले मैं सहसा पलँग पर से उठा और पीछे पश्चिम की ओर की उस खिड़की को मैंने खोल दिया, जिसकी

लाल खिड़की का प्रकाश मेरे मन में एक अजीब घबराहट और भ्रान्ति का भाव उत्पन्न कर रहा था। खिड़की खोलते ही सारा वातावरण ही बदल गया, और हम दोनों के बीच की अब तक की सारी बातें एक सहज स्वाभाविक रूप में मेरे सामने आयीं। लाल प्रकाश के हट जाने से मनिया के मुख की रक्त रंजित आभा भी विलीन हो गयी, और उसके जिस रूप के सम्बन्ध में एक क्षण पहले मेरे मन में यह शंका होने लगी थी कि कहीं वह प्रतिहिंसात्मक तो नहीं है, उसके सम्बन्ध में मेरी भ्रांति पल में मिट गयी। अपने शंकित मन के उस अकारण भ्रम पर मुझे मन ही मन हँसी आयी। मैंने देखा मनिया की किशोरी-कुमारी की-सी निष्पाप मुख छवि एक अकृत्रिम विस्मय की भावना में निमग्न हो उठी है। उसकी धनुष की सी भौंहें अवश्य कुछ अधिक टेढ़ी हो गयी थीं और उसकी काली बरौनियाँ तन कर कुछ लम्बी-सी हो गयी थीं। पर कुल मिलाकर उसके विस्मित मुख की तत्कालीन अभिव्यक्ति में क्रोध या प्रतिहिंसा की अपेक्षा दीनता की ही भावना अधिक प्रकट होती थी।

जब मैं आश्वस्त हो गया, तब बोला—'मैं सच कह रहा हूँ मनिया।' और उसके मन की प्रतिक्रिया जानने के लिए मैं अधीर हो उठा।

वह कुछ देर एक मौन दृष्टि से मेरी ओर देखती रही। धीरे—बहुत धीरे—उसके मुख पर से वह दीनता भरी भ्रांति के बादल हटे और तब फिर एक बार उसका चेहरा सहज स्निग्ध मुस्कान से खिल उठा—वह प्यारी मुस्कान जिसके लिए मैं इतनी देर तक अपना सर्वस्व निछावर करने की प्रतीक्षा में बैठा हुआ था।

उसी मुस्कान को और अधिक परिस्फुट करती हुई वह प्रायः खिलखिलाते हुए स्वर में बोली—'अब मैं समझी कि क्या तुमने मेरी सारी दुकान लूट ली, क्यों मेरा इतने बरसों से जमाया हुआ कारोबार उजाड़ दिया! तुम बड़े दुष्ट हो!' और उसने अपनी दोनों बाहें मेरे गले पर डाल दीं।

इतने में किसी ने दरवाजा खटखटाया। होटल के नौकर ने बाहर से

चिल्ला कर कहा—"बाबूजी, चाय आयेगी ?"

मैंने पलंग पर ही से कहा—"जरूर आयगी, जायगी कहाँ ?"

मेरा उत्तर सुनकर मनिया खिलखिला पड़ी और हँसते हँसते लोट-पोट हो गयी।

मैं भी हँसता हुआ धीरे से उठा और बाहर वाले कमरे में जाकर दरवाजा खोल दिया। 'ब्वाय' को आर्डर दिया कि चाय के साथ कुछ टोस्ट और आमलेट भी लेता आवे।

६

उस दिन रात में बड़ी देर तक मुझे यह शंका बनी रही कि मनिया न जाने किस क्षण अपना रूप बदल डाले और सनक में आकर फिर कहीं चल देने का हठ न कर बैठे—हालांकि इस प्रकार की शंका बहुत देर पहले ही निर्मूल सिद्ध हो चुकी थी। प्रायः बारह बजे तक मैं उसे इधर उधर की बातों में भुलाने की कोशिश करता रहा। जब मन देखा कि वह काफी थक चुकी है, तब उससे उसी पलंग पर लेट जाने के लिये आग्रह किया जिस पर वह दिन में सो चुकी थी। वह बिना रत्तीमात्र आपत्ति के वहीं जाकर आराम से लेट गयी। और मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि लेटने के कुछ ही देर बाद वह सो गयी। दिन में काफी देर तक सोते रहने के बाद भी उसकी नींद में तनिक भी कमी नहीं आयी थी! मैंने सोचा कि इसके पहले न जाने कितनी रातें उसने निद्राहीन अवस्था में बितायी होंगी?

उसके कमरे की बत्ती को जलता हुआ छोड़कर मैं चुपचाप बाहर के कमरे में चला गया और वहीं गरम ड्रेसिंग गाउन के ऊपर एक कंबल लपेट कर एक कौच पर लेट गया। मैं भी बड़ी थकावट मालूम कर रहा

था। मनिया की नींद का छूत का सा प्रभाव मुझ पर भी पड़ा और मैं भी बहुत जल्दी सो गया।

दूसरे दिन मनिया कुछ देर से उठी। पर जब उठी तब वह तरा-ताजा दिखायी दी। उसके मुख की रसमयता बहुत बढ़ गयी थी और साथ ही रक्त और मांस में भी जैसे पहले से कुछ वृद्धि हो गयी थी। एक सहज-सुन्दर स्निग्धता और सलोनापन उसकी आँखों में, गालों पर और ओठों पर छाया हुआ था। उठते ही सहज सरस स्वर में बोली — मैं कहती न थी कि तुम्हारे इस कमरे में शैतान का डेरा है! उसी शैतान ने मुझे यहाँ इस कदर बाँध लिया है कि अब यहाँ से हटने की इच्छा ही नहीं होती। और तुम्हारे इस पलंग पर तो शैतान ने खास तौर से अपना जाल बिछा रखा है। इसे छोड़ने को जी ही नहीं करता। कल दिन से मैंने इस पर सोना शुरू किया था अभी तक यहीं पड़ी हुई हूँ। खाना भी तुमने मुझे यहीं बैठाकर खिलाया। सचमुच यह एक अच्छा तमाशा है! अच्छा तुम्हारा क्या खयाल है? शैतान अपने जाल में लोगों को फँसाता है या नहीं?

ऐसे भोले ढंग से उसने यह प्रश्न किया कि मुझे उस पर तरस आने लगा। पर तत्काल वह भाव क्षोभ में बदल गया। मन ही मन कड़वी घूँट की तरह अपनी उत्तेजना को पी जाने की चेष्टा करते हुए मैंने कहा—'तब तुम क्या सचमुच केवल शैतान के बन्धन से अपने को न छुड़ा पाने के कारण ही यहाँ टिकी हुई हो? मेरी ममता क्या कोई चीज नहीं है? क्या तुम सचमुच मुझसे घृणा करती हो और मुझे अपना शत्रु समझती हो जैसा कि तुमने कल दिन में नींद की हालत में कहा?'

निश्चय ही मेरे भीतर की वेदना मेरे मुख पर झलक आयी होगी। मनिया तत्काल उठ खड़ी हुई और मेरे कपाल पर हाथ फेरती हुई परम स्नेह भाव से बोली— अगर तुम्हारी ममता मुझे खींच न लायी होती तो एक क्या सौ शैतान भी मुझे यहाँ बाँध सकते थे। जिन्दगी भर मैं शैतान की बड़ी ताकतों और कुत्सित करतूतों का सामना करती आयी हूँ। शैतान अपना काम करता चला गया और मैं अपना। इसलिये सच

जानो, मैं उमसे तनिक भी नही घबराती हूँ। मैं तो यो ही
बक रही थी। उठो, बाहर के कमरे म चलें। तुमने चाय मगायी या नही ?" और वह बच्चो की तरह पुचकारती हुई मेरा हाथ पकड़कर मुझे बाहर ले गयी।

उस दिन भी मैं बाहर न निकल सका। दोपहर का खाना खा चुकने के बाद मनिया अलसाने लगी, और उसी मुलायम गद्देदार पलँग पर लेट गयी, और लेटने के कुछ देर बाद सो गयी। मैं भी कोई चारा न देखकर बाहर के कमरे मे कौच पर लेटे लेटे एक पुस्तक पढता रहा। मुझे एक जरूरी काम से बाहर जाना था। मनिया के लिये मैं कुछ कपडे खरीदना चाहता था। पर उसे छोडकर जाने का साहस मुझे नही हुआ। कही जङ्गल की वह चिडिया क्षणिक अवकाश पाते ही फिर उडकर जङ्गल ही मे न चली जाय! फिर दूसरी बार उसे बाधा न जा सकेगा, यह निश्चित धारणा मेरे मन मे जम चुकी थी। फिर मेरे मन में यह तर्क उठा—"यदि वह स्वेच्छा से बँधे रहना नही चाहेगी तो उसे बलपूर्वक बाँध कर ही मैं क्या करूँगा ?" पर मेरा अन्तमन जानता था कि वह भ्रम कही जायगी नही, भले ही ऐसी ही आशका मेरे मन म क्यो न उठे।

तीसरे दिन जब हम लोग सुबह का नाश्ता कर चुके तब मैंने अपने भीतर की सारी कमजोरी झाडकर उससे कहा—"मैं कुछ समय के लिये बाजार जाता हूँ। तुम इसी पलँग पर आराम करना।" और मैं सचमुच बाहर निकल पडा। कपडे की प्राय सभी फ़ैशनेबुल दुकानो की खाक छान चुकने के बाद मैंने चार साडियाँ चुनकर खरीदीं। उनमे एक साडी आसमानी रङ्ग की, बनारसी रेशम की—काम की हुई थी,—एक शान्तिपुरी, एक ढाका की और एक मद्रासी थी। साथ ही कुछ 'रेडी मेड ब्लाउज और 'जम्पर', पेटीकोट और अडरवियर खरीदे। दो जोडे सबसे नये फैशन के लेडीज़ सैन्डल और चार जोड मोजे भी खरीदे। रूज, पाउडर क्रीम, 'लिपस्टिक', 'हेयरपिन', 'रिबन तेल, एसेंस, कघी आदि शृङ्गार प्रसाधन की प्राय सभी आवश्यक और अनावश्यक चीजें खरीदकर मैं होटल को लौट चला। होटल मे अपने कमरे के दरवाजे पर

पहुँचने तक मेरे मन मे यही खटका बना था कि कही मनिया

भाग न गयी हो। जब उसने मेरे खटखटाने पर दरवाजा खोला तब मेरे जी मे जी आया। उसकी सजल मुस्कान भरी आँखो मे मैंने देखा कि वह भी उतनी ही—बल्कि शायद अधिक—उत्सुकता से मेरी बाट जोह रही थी।

मैंने जब छोटे बडे सभी बडल उसके हाथो मे दे दिये तब वह कौतूहल से उन्हे देखने लगी। "इनमे क्या है?" उसने पूछा।

मैंने कहा—"खोलकर देखो।"

और उसने एक एक करके सभी बडलो को खोलना आरम्भ कर दिया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने देखा कि साडी, ब्लाउज से लेकर हेयर पिन्स और 'रिबन' तक की विविध वस्तुएँ उनमे भरी पडी हैं। पहले तो उसने परिहास के स्वर मे कहा—"आज भी तुम क्या किसी की पूरी दुकान ही खरीद लाये हो?" पर यह प्रश्न करते ही तत्काल उसका मुख अत्यत गभीर हो आया। वह स्तब्ध, किन्तु प्रश्न भरी, दृष्टि से मेरी ओर देखती रह गयी।

मैं उस दृष्टि से घबरा उठा। बोला—"क्या हुआ? तुम अचानक इस तरह गम्भीर क्यो हो उठी हो?"

उसने फिर भी मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया और उसी निश्चल दृष्टि से निर्निमेष मेरी ओर देखती रही।

"तुम किस सोच मे पड गयी मनिया? बताती क्यो नही?"

"मैं समझ गयी कि तुम ये सब चीजें क्यो लाये हो!" और वह धीरे-से अपने पाँवो को पीछे की ओर सरकाकर धम से कौच पर बैठ गयी।

"क्या समझा तुम?"

"मेरी दुकान की चीजो का बदला चुकाने के लिये तुम ये चीजें लाये हो!"

मैं "हो! हा!" करके ठठा मारकर हँस पडा।

"तुम क्या पागल हुई हो मनिया?" मैंने कहा—"मैं तुम्हारी तरह घनी सूझवाला आदमी नही हूँ कि इतनी दूर तक की बातें सोच सकूँ।

ये चीजें मैं तुम्हारे इस्तेमाल के लिये लाया हूँ। तुम क्या
यह सोचती हो कि मेरे साथ रहने पर भी अब तुम यही चिथड़ी लहँगा और यही मैला कुरता पहन रहोगी और यही ओढ़न सिर पर डाल रहोगी? अब तुम्हें मसूरी की फैशनेबुल लेडियों की तरह रहना होगा। शाम को हम-तुम साथ-साथ हवाखोरी के लिये निकलेंगे। तब तुम्हें देखकर लोग आपस में कानाफूसी करेंगे—'वह देखो, नेपाल की महारानी चली आ रही हैं, और उनके साथ उनका प्राइवेट सेक्रेटरी है।' हा हा हा! अच्छा मजाक रहेगा!"

मनिया भी बरबस हँस पड़ी। पर तत्काल ही मुँह फुलाती हुई बोली—"तब तुम इस 'अच्छे मजाक' के लिये ही मुझे फैशनेबुल पहनावे में देखना चाहते हो न?"

मैंने पहली बार उसकी मार्मिक दृष्टि में एक ऐसे तीखे व्यंग्य का आभास पाया जिसने मुझे यह सुझाया कि केवल तीन ही दिन के भीतर एक मूलगत परिवर्तन उसके स्वभाव में आ गया है। जिस काल्पनिक या वास्तविक सन्तान की बात वह हँसी में कह रही थी तब क्या उसी ने उसके भोले हृदय में इस तरह के दाव पेंच भर दिये हैं? क्या यह सम्भव है कि 'प्रेम' या उससे मिलती-जुलती कोई प्रवृत्ति इतनी जल्दी असांसारिक व्यक्तियों को सांसारिकता का पाठ पढ़ा सकती है?

प्रकट में मैंने कहा—'क्या तुम यह विश्वास करती हो कि मैं किसी भी हालत में तुम्हें एक तमाशा बनाना पसन्द करूँगा? तुम तो आज बाल की खाल निकालने लगी हो! चलो, उठो। जरा एक बार पहन कर देखो तो सही, तुम्हें यह आसमानी रंग की बनारसी साड़ी कैसी जँचती है।" और मैंने बक्स में से साड़ी निकालकर उसमें उसे लपेटना आरम्भ कर दिया।

वह खिल खिल करके हँसने लगी और झपटाती हुई बोली—'हटो, मैं नहीं पहनूँगी! मुझे शरम लगती है।'

'पगली! शरम किस बात की? तुम क्या कोई चोरी कर रही हो या डकैती? शाम को इतनी औरतें फैशन के न्यारे-न्यारे रंगों में रँगी हुई आती हैं, उनके बीच में शरम के लिये गुन्जाइश कहाँ रह जाती है?

आज मैं तुम्हें बिना साड़ी-सैंडिल पहनाये और अपने साथ घुमाये मानूंगा नहीं। उठो, मैं एक बार देख लूं कि तुम्हें साड़ी फबती है या नहीं।" कहकर मैंने बलपूर्वक उसे खड़ा किया और उसके सिर से ओढ़न हटाकर उसके कुरते और लहंगे के ऊपर ही साड़ी पहनाने लगा। वह बार बार इस तरह खिलखिलाती और छटपटाती थी जैसे उसे कोई गुदगुदा रहा हो। अंत में जब मैं किसी तरह उसे साड़ी पहना चुका तब मैंने आश्चर्य से देखा कि वह सचमुच रानी की तरह लगने लगी। केवल एक साड़ी किसी के व्यक्तित्व में इस कदर कायापलट करने की क्षमता रखती है इस जानकारी से मैं चकित रह गया। मैं उसे एक पूरे आकार वाले शीशे के पास ले गया। उसने जब उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखा तो अपना बदला हुआ रूप देखकर वह हँसते हँसते लोट-पोट हो गयी। जब हँसी का दौरा समाप्त हुआ तो वह सहसा अप्रत्याशित गंभीर स्वर में बोली— लो रखो अपनी साड़ी मैं नहीं पहनूंगी। और सचमुच उसने उसे उतार कर मेरे आगे पटक दिया। मैंने देखा कि उसके दुराग्रह ने नया रूप धारण कर लिया है। मैं अपना-सा मुंह लेकर रह गया। स्पष्ट ही मेरे मुख के भाव से मेरी पीड़ा उससे छिपी न रही। अपने स्वर में यथासंभव कोमलता भर कर वह बोली— अभी जल्दी क्या है! शाम को एक बार फिर पहन कर देखूंगी। अभी इसे संभालकर रख दो।

मैं बड़ी अधीरता से संध्या की प्रतीक्षा करता रहा। जब समय आया तब मैंने फिर उससे आग्रह किया। पर उसने फिर अपना पिछला रूप दिखाना आरम्भ कर दिया और उसके दुराग्रह के आगे मेरी एक न चली। मैं हार मान कर, और मुंह लटकाकर एक कुर्सी पर बैठ गया। मेरे मुख का वह भाव देखकर वह भी मेरे पास आकर बैठ गयी और अनुनय के स्वर में बोली— 'मैं तुम्हारे पांवों पड़ती हूं मुझसे साड़ी पहनने के लिये न कहो! और इसके लिये कुछ बुरा भी न मानो!'

स्पष्ट ही वह मेरी पीड़ा को खूब समझ रही थी, पर अपने लज्जित संस्कार को इतनी जल्दी त्याग करने में वह, चाहने पर भी, [illegible] असमर्थ पा रही थी।

मैंने रुखाई के साथ कहा—"मैंने कुछ बुरा नही माना है। पर तुम्हारा हठ सचमुच वडा अनोखा है। यदि तुम मेरे कहन पर एक बार पहन ही लेनी तो इससे तुम्हारी—इ—तुम्हारा क्या विगडता मेरी समझ मे नही आता।" मैं कहन जा रहा था—"इससे तुम्हारी इज्जत म वट्टा न आता।" पर तत्काल मैं यह सोचकर सँभल गया कि इस व्यग की मार्मिकता वह सहन न कर पावेगी।

"म जानती हू मेरा कुछ नही विगड सकना, पर साडी पहनते ही न जान मुझे क्सा लगने लगता है! जसे मरे सारे वदन मे कचुए सुर-सुरा रह हो!" और वह मुस्करा दी। पर उस मुसकान म अकथनीय करुणा भरी थी।

मैंन उस दिन फिर आग्रह नही किया पर मेरे मन का भाव बहुत विगड चुका था और चाहन पर भी फिर मैं उससे सहज प्रसनता से नही बोल पाया।

दूसरे दिन भी उसके प्रति मेरा व्यवहार रूखा रूखा सा रहा—हालाकि मैं अपने मुख पर प्रसन्नता और आवाज मे मीठापन लाने की बहुत कोशिश कर रहा था।

शाम को चाय पी चुकने के बाद जब म अनमन भाव से सोफा पर बठ कर एक सवाद पत्र उठाकर पढ रहा था तब वह भीतर चली गयी। जब काफी देर हो चुकी तब मैं यो ही भीतर गया। पर मनिया कमरे म नही थी। गुसलखाना खुला था। मैंन तनिक शकित मन से कुतूहलवश भीतर की ओर झाँका। मेरे आश्चय और हप की सीमा न रही जब मैंने देखा कि वह गुसलखाने के बडे शीशे के सामने वही साडी पहने खडी है जिसे मैंने पिछले दिन उसे पहनाया था, और एकात मन से अपना प्रतिबिम्ब देख रही है। मैंन एक बार सोचा कि चुपचाप लौट चलू, पर मेरे भीतर की दुष्टता की विजय हुई और मैं धीरे से, दवे पाँवो, गुसलखान म पहुँचकर सहसा उसके पीछे खडा हो गया। मुझे देखते ही वह ऐसी चौकी जस किसी महान अपराध म वह पकड ली गयी हो। एक अस्फुट शब्द मुह से निकाल कर उसन विजली की-सी फुर्ती से अपना मुह साडी क अचल से ढँक लिया। उस समय वह ठीक

ठेठ मारवाड प्रदेश की महिलाओं की तरह लग रही थी। उस दृश्य से मेरी प्रकृति की इतने दिनों तक की दबी हुई चपलता उभर आयी। मैंने कहा—"सच मानो, गहनों के ऊपर तुम्हारा यह आँचना और यह घूघट बहुत जच रहा है। तुम चाहो तो इसी वेष में तुम्हें माल पर घुमा लाऊँ।"

'जाओ!' कहकर उसने मुझे एक हलका-सा धक्का दिया और उसी घूघट की अवस्था में दौड़ती हुई भाग निकली। पलँग पर जाकर वह लोट पोट हो गयी और मारे हँसी की फुरेरियों के उसका यह हाल था कि मुझे लगा उसे घूघट के भीतर उसका दम न घुट जाय।

वह दिन भी यों ही—परिहास में—बीता, और मैं उसे साड़ी और सैंडल में घूमने चलने के लिये राजी न कर सका। पर मैं देख रहा था कि उसके भीतर बड़ी गहराई में नींव डाले हुए संस्कारों के पाषाण ढहने लगे हैं।

अंत में जल्दी ही एक दिन ऐसा आया जब मैं उसे नये वेष में, पूरे साज शृङ्गार के साथ अपने साथ बाहर निकलने के लिये राजी कर सका। वह मेरे लिये कितने उत्साह और उल्लास का दिन था! यह ठीक है कि वह सैंडलों को ठीक से न चला सकने के कारण कई बार गिरते गिरते बची थी पर उसने सारी बात को एक अच्छे विनोद के रूप में ग्रहण किया था।

१०

एक दिन मैं दोपहर का खाना खा चुकने के बाद आराम करने की तैयारी कर रहा था। मनिया भी भीतर के कमरे में आराम कर रही थी। सहसा किसी ने "ठक! ठक! ठक्" करके बाहर से दरवाजे का शीशा खटखटाया।

"कौन है!" मैंने लेटे ही लेटे खीझ के साथ कहा।

बड़ी शिष्ट और धीमी आवाज में किसी ने कहा—

"जरा तकलीफ! एक जरूरी काम है!"

मैंने उठकर दरवाजा खोला तो देखा कि होटल के मैनेजर मिस्टर थट्टानी खड़े हैं। थट्टानी साहब बोलचाल में बहुत सभ्य और शिष्ट थे। चश्मा लगाये हुए वह बड़े सयाने गम्भीर स्वभाव के और भले आदमी लगते थे। उनके शिष्ट व्यवहार के कारण ही उनका होटल मुझे बहुत पसन्द आया था। पर आज उन्हें आकस्मिक रूप में, असमय में, स्वयं आकर मेरा दरवाजा खटखटाने की नौबत क्यों आयी? वह कौन-सा ऐसा जरूरी काम आ पड़ा जिसकी सूचना होटल के नौकर द्वारा नहीं दी जा सकती थी, यह सोचकर मेरा मन कुछ शंकित हो उठा।

"कहिये, आपने कैसे कष्ट किया?" मैंने पूछा।

वह बहुत ही धीरे, बड़ी ही मीठी आवाज में, अत्यन्त शालीनता के साथ बोले—"आपसे कुछ प्राइवेट बातें करनी हैं। क्या आप मेरे साथ मेरे कमरे में चलने का कष्ट कर सकेंगे?"

मैंने कहा—"आइये भीतर चले आइये। मेरा कमरा एकान्त है। आपको जो कुछ कहना हो यहीं कह लीजिये। आपके कमरे में जाने की क्या आवश्यकता है?"

वह प्रेमपूर्वक मुस्कराये—कुछ रहस्यमय रूप से। बोले—"क्षमा कीजिये। जिस विषय पर मैं बातें करना चाहता हूँ, उसकी चर्चा आपके कमरे में नहीं चलायी जा सकती। आप तनिक कष्ट करें—सिर्फ दो मिनट के लिये।

मैंने देखा कि मेरी आशंका निर्मूल नहीं थी। मैं बाहर चला आया, थट्टानी साहब मुझे अपने कमरे में ले गये। भीतर से किवाड़ फेरकर उन्होंने बड़ी आव भगत के साथ बिठाया। मेरी ओर सिगरेट और दियासलाई बढ़ाते हुए वह स्वयं भी बैठ गये।

मैंने सिगरेट जलाते हुए कहा—"आपको क्या कहना है, कहिये?

'मुझे आपसे केवल एक प्रार्थना करनी है,' बड़ी ही नम्रता से थट्टानी साहब बोले—"बात यह है कि—आप बुरा न मानियेगा—

जिस लड़की को आपने अपने साथ रखा है उसकी वजह से मेरे दूसरे किरायेदार बहुत भड़क उठे हैं "

मेरे सिर से लेकर पाँव तक उस आग लग गयी। मैंने काफी उत्तेजित स्वर में कहा—'आपके किरायेदार जायें जहन्नुम में—मुझे उनसे क्या करना है। मेरी 'प्राइवेट' बातों में किसी तरह का भी हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न आपको है न आपके किरायेदारों को, समझे मिस्टर पहुजानी।'

मैं क्रोध से काँपने लगा था।

'अरे! अरे! आप तो उत्तेजित हो उठे हैं! अभी तो आपने पूरी बात सुनी तक नहीं! मेरा मतलब वह नहीं था जो आप समझे हैं!'

'तब क्या था आपका मतलब?' बड़े रूखे स्वर में मैंने पूछा।

'मैं आपको यह बात बताना चाहता हूँ कि जिस लड़की को आपने अपने साथ रखा है वह तमाम मसूरी में बदनाम है।'

'बदनाम है?' दाँतों को प्राय पीसते हुए मैंने कहा।

'जी हाँ! माफ कीजियेगा अभी आपको उसकी पूरी हिस्ट्री मालूम नहीं है। उसकी माँ भी एक बदचलन औरत थी। यहाँ तक कि अपने एक प्रेमी की खातिर उसने अपने हसबैण्ड तक का खून कर डाला "

मैं स्तब्ध था। तब क्या मनिया ने मुझसे हत्या का जो कारण बताया था वह एकदम झूठा था? असली बात उसने जानबूझकर मुझसे छिपाई होगी! पर जब उसने मेरे बिना पूछे ही इतना बता दिया कि उसकी माँ ने उसके बाबा की हत्या की थी तब इतनी बात ही वह क्यों छिपाती? निश्चय ही उसे अपनी माँ के व्यभिचार का कोई हाल मालूम नहीं था नहीं तो वह अवश्य ही बिना किसी दुराव के सब-कुछ बता देती। यह हो सकता है कि उसकी माँ का कोई गुप्त प्रेमी रहा हो जिसके बारे में स्वयं मनिया भी कुछ नहीं जानती।

मैंने पूछा— आपको कैसे मालूम है कि उसकी माँ का कोई प्रेमी था?

"हूँ! हूँ! हूँ!"—एक विचित्र ढंग से मुस्कराते हुए पहुजानी साहब बोले—मुझे मसूरी में प्राय तीस साल गुजर चुके हैं। मैं यहाँ के एक

एक वाशिदे का हाल राई रत्ती जानता हूं। [illegible] गेहू के क दाने हैं, इसकी खबर मुझे रहती है। उसका वह प्रेमी मेरा मित्र था। उसका नाम ध्यानसिंह है, वह अभी जिन्दा है।"

मेरा कलेजा धक से रह गया। तब क्या सचमुच मैंने एक ऐसी लड़की से घनिष्टता बढ़ायी है जिसकी मां हत्यारी होने के अतिरिक्त व्यभिचारिणी भी थी? तब क्या वास्तव में उसने अपने प्रेमी के कारण अपने पति की हत्या की? सोच सोचकर मेरा माथा खराब होने लगा। अपनी खीझ और क्रोध मुझे किसी न किसी पर उतारना था। मैं मनजर पर ही बरस पड़ा था। वही मुझे अपना सबसे बड़ा शत्रु जान पड़ा, क्योंकि उसी ने मेरे आगे यह अप्रिय सत्य—यदि वह वास्तव में सत्य था तो—उद्घाटित किया था।

मैंने गरजकर कहा—'देखिये मिस्टर यड्डानी, उसकी मां चाहे कैसी ही क्यों न रही हो, उस लेकर लड़की पर छींट कसने का कोई हक आपका नहीं है। लड़की के सम्बन्ध में जिस तरह की बात आपने कही है उसे मैं व्यक्तिगत अपमान समझता हूं। मैं हर महीने नियमित रूप से आपके बिल चुका दिया करता हूं। आपको केवल इतने ही से मतलब रखना चाहिये। इसके सिवा किसी भी दूसरे विषय पर मुझसे कुछ कहने की गुस्ताखी आपको नहीं करनी चाहिये। समझे?'

"जी, मैं समझ गया हूं" तनिक भी विचलित न होकर यड्डानी साहब बोले—"पर आपको इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि केवल आप ही मेरे किरायेदार नहीं हैं। एक किरायदार के लिये मैं अपने बाकी सभी किरायेदारों को नाराज नहीं कर सकता। मैं एक बिजनसमन' हूं। इस होटल की बदौलत ही दो रोटियां कमाकर मैं अपना और अपने घरवालों का पेट पालता हूं। अगर मेरा होटल बदनाम हो जाय, किरायेदार होटल छोड़कर चल दें, और दूसरे किरायदार होटल की बदनामी सुनकर यहां आना बंद कर दें, तो मेरा क्या हाल होगा, क्या इस बात पर आपने कभी सोचा है?"

"किसी किरायेदार ने आपसे कुछ कहा है?'

"आपके अगल-बगल वाले कमरों में रहनेवाले किरायेदारों की यह

शिकायत है कि आप दिन रात एक आवारा लड़की को (उन लोगों ने तो वेश्या कहा है) अपने कमरे में बंद रखते हैं, और समय असमय उससे हँसी मज़ाक की बातें करते रहते हैं, जिससे उनकी शान्ति में बाधा पहुँचती है।'

मैं भन्ना उठा—'आप और आपके किरायेदार बड़े कमीने हैं। ऐसे नीच व्यक्तियों के साथ रहना पाप है। अब आप रहने को भी कहें तो मैं नहीं रहूँगा। आज आप अपना बिल भेज दें। मैं आज ही चला जाऊँगा।' और मैं तमक कर उठ खड़ा हुआ।

'नहीं नहीं मैं तो आपके समान सरल स्वभाव का किरायेदार पाकर अपने को धन्य मानता हूँ। आप बड़े शौक से रहें। पर उस लड़की के सम्बन्ध में चूँकि मुझे बहुत-सी बातें नित्य सुनने को मिलती हैं, इसलिये मैंने आपको आगाही दे दी। इसके अलावा मेरे भी दो जवान लड़कियाँ हैं जिनपर इस तरह की आवारा लड़की का बुरा प्रभाव पड़ सकने की सम्भावना है। चाहे कितना ही बुरा क्या न मानें, मैं साफ़ लफ़्ज़ों में आपसे कहूँगा कि आपने एक बदकार और धूर्त लड़की को अपने साथ रखा है जो किसी भी दिन आपके साथ विश्वासघात कर सकती है।'

'शट अप!' मैंने अत्यन्त उत्तेजित स्वर में कहा—'अगर अब तुमने ज़बान हिलायी तो उसे खींच लूँगा।' और मैं दरवाजे की तरफ मुड़ गया। दरवाजे का हैंडल पूरी ताकत से पकड़कर मैंने उसे खोला और बाहर निकल गया। एक अत्यन्त विरस अनुभूति से मेरी सारी आत्मा तिक्त हो उठी थी।

अपने कमरे में जाकर मैंने जानना चाहा कि मनिया जग गयी है या नहीं। मैं सीधे भीतर चला गया। वह अभी सोयी थी। एक सौम्य शान्त और करुण भाव उसके निद्रित मुख पर छाया हुआ था। उसे देखते ही पल में मेरे मन की सारी तिक्तता विलीन हो गयी। मैं सोचने लगा कि यदि मैं कोई चित्रकार होता और उसके मुख पर जो भोलापन उस समय विभासित हो रहा था उसे रेखाओं और रंगों में आँक पाता तो दुनिया को दिखाकर पूछता—'ए दुनियावालो! सच बताओ, क्या ऐसा भाव कभी किसी बदकार और धूर्त लड़की के मुख पर खिल

सकता है ?" मुझे मनेजर की नीचता पर रह रहकर क्रोध आ रहा था। मैंने निश्चय किया कि जितनी जल्दी हो सकेगा उस होटल को छोड़ दूँगा।

जब मनिया खाकर उठी तब मैंने उसे रत्तीमात्र संकेत भी नहीं दिया कि मनेजर से मेरी किस तरह की बातें हुई। बल्कि मैं स्वयं भी उन बातों को भूल जाने का प्रबल प्रयत्न करने लगा। मनेजर की बातों से मेरे मन में जितना कुछ भी खटका पैदा हुआ था उसके प्रायश्चित की भावना भी मन भीतर जोर मारने लगी और मन निश्चय किया कि जल्दी से जल्दी मैं उससे विवाह कर लूँगा।

सन्ध्या को मैं उसे घुमाने ले गया। मुझे लगा कि धीरे धीरे मनिया नये पहनावे की आदी होती चली जा रही है और शाम को टहलना उसे अच्छा लगने लगा है। लौटकर कपड़े बदलकर, खाना खाकर जब हम दोनों इधर-उधर की बातें करते हुए भोजन पचा रहे थे तब मैंने सहसा विवाह की चर्चा छेड़ दी। मैंने स्पष्ट शब्दों में कहा—"मनिया, अब हम दोनों का विवाह जल्दी ही हो जाना चाहिये।

' कब ?" सहज भाव से अलसाये हुए स्वर में उसने कहा।

'जब तुम कहो।'

'मैं तो चाहती हूँ कि कल ही हो जाय।"

"पर इसके पहले हमें यह तय कर लेना चाहिये कि किस विधि से, किस प्रथा के अनुसार विवाह करना ठीक रहेगा।'

"विधि और प्रथा मैं कुछ नहीं समझती। पर हिंदू लोग जिस तरह से ब्याह करते हैं उस तरह से मैं पसंद नहीं करूँगी।"

"क्यों ?" अत्यन्त आश्चर्य से मैंने पूछा।

"मैं बौद्ध हूँ। मैं चाहूँगी कि कोई बौद्ध पुरोहित
७४ आकर हम दोनों के ब्याह में मंत्र पढ़े।"

'तुम बौद्ध हो? यह कैसे?'

"कैसे क्या? मेरा बाप बौद्ध था इसीलिये मैं भी बौद्ध हूँ।

"पर तुम्हारी माँ तो हिंदू थी?

इससे क्या हुआ। मैं अपने बाप का ही धर्म मानती हूँ।

पर तुम्हारी माँ से तुम्हारे बाप का ब्याह तो नहीं हुआ!

'यह तुमसे किसने कहा?

'तुम्हीं ने तो कहा था कि वह विधवा थी और भागकर तुम्हारे बाप के साथ चली गयी थी।'

"तो इसमें क्या हुआ? मेरा बाप धर्म के मामले में बड़ा कट्टर था। उसने तिब्बत जाकर एक लामा को बुलाया। उसने मंत्र पढ़कर दोनों का ब्याह किया था। मेरी माँ ने ही मुझे यह बताया था। मेरा बाप नित्य हाथ में माला लेकर मनि पम हुँ—मनि पम हुँ! जपा करता था। मेरा नाम मनिया उसने इसी मंत्र के पहले शब्द की याद पर रखा था।

"अच्छा यह बात थी! पर तुमने मुझे बड़ी कठिनाई में डाल दिया!'

"कैसे?

"मैं बौद्ध पुरोहित कहाँ से लाऊँ? इसके अलावा तब मुझे भी बौद्ध बनना पड़ेगा।'

'तो हर्ज क्या है?' अत्यन्त सरल भाव से मनिया ने कहा।

"हर्ज कुछ नहीं है। पर क्यों हम लोग इन धार्मिक पचड़ों में पड़ें? क्यों एक सीधे तरीके से शादी न कर लें?"

"वह कौन तरीका है?"

सिविलमैरिज। ब्याह का यह तरीका बहुत आसान है। तुम भी यह मान लो कि तुम कोई धर्म नहीं मानती हो और मैं भी। बस, ब्याह की रजिस्ट्री करा लें। उसके बाद अपने मित्रों को दावत देकर खुशी मनावें।'

मैंने देखा कि मेरे इस प्रस्ताव से मनिया का चेहरा एकदम फीका पड गया। अत्यन्त दुखित भाव से वह बोली—"यह तुम कैसी बात कर रहे हो ? क्या कागजी लिखा-पढी से कभी व्याह हो सकता है ! इतने पढे लिखे और समझदार होने पर भी तुम इस तरह की बातें कर रहे हो !'

उत्तर मे मैं कुछ नहीं बोला और हताश भाव से कौच पर लेटकर एक सिगरेट जलाकर पीने लगा। विवाह के लिए जो उत्साह मेरे प्रायश्चित्त की भावना से विकल, भावुक हृदय मे जोर मारने लगा था वह एकदम ठडा पड गया।

दूसरे दिन सुबह होते ही मैं मकान की तलाश म निकल पडा। बहुत खोजने पर भी कहीं खाली मकान का पता न लगा सका। अत म एक भले आदमी ने बताया कि अमुक नाम म एक स्थानीय साप्ताहिक-पत्र अँगरेजी म निकलता है, उसम खाली मकानो के विज्ञापन छप रहते हैं। मैंने वह पत्र खरीदा। 'टु लेट' वाले सभी विज्ञापनो को पढ चुकने के बाद केवल तीन मकान अपनी सुविधा की दृष्टि से मुझे जँचे। होटल वापस जाकर मैंने खाना खाया, और आधा घटा आराम किया। उसके बाद मनिया को साथ लेकर मकान देखने निकल पडा। तीनो मकान देखने के बाद मनिया को जो बँगला पसद आया वह शहर के केन्द्र से दूर, एकान्त स्थान म—बालीगञ्ज के पास—था। बँगला काफी अच्छा था, और कमरे भी उसमे काफी थे। मुझे भी उसकी एकात स्थिति पसद ही आयी।

वस जगह एकदम एकात भी नहीं थी, हमारे बँगले के पास ही एक दूसरा बँगला था, जिसम एक एँग्लो-इडियन महिला रहती थी। उन्हें जब मालूम हुआ कि खाली बँगले मे कोई किरायेदार आये हैं तब वह पडोसी का धम निभाने के नाते हम लोगो के पास चली आयी। वह अधेड थीं और आँखो म चश्मा लगाये हुए थीं। सिर के बाल आधे पक गये थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि 'बँगला कैसा पसद आया।' मैंने कहा कि 'बँगला बहुत अच्छा है, पर एक ही खराबी यह है कि शहर से दूर है।'

काम चलाती रही है। इसके अलावा और कोई भी विशेष व्यंजन पकाना वह नहीं जानती।

फलतः मैंने पाकशास्त्र की एक अँगरेजी पुस्तक के सहारे मैं स्वयं भोजन बनाने में सहायता देने का नियम बना लिया। रोटियाँ नौकर बना लेता था, पर विशेष व्यंजन हम दो जने मिलकर बनाते थे। भला हो मिसेज रालिंसन का कि वह बेचारी हमारे यहाँ आकर कभी तो विशेष व्यंजनों के नुस्खे बता जाती थी और कभी स्वयं नमूने के तौर पर अपने हाथ से पकाकर खिला जाती थी। कोई अँगरेज महिला अपने हाथ से खाना बनाने को तैयार हो सकती है, यह कल्पना स्पष्ट ही मनिया ने नहीं की थी। वह आश्चर्य और सभ्रम के साथ मिसेज रालिंसन की पाककला देखती रहती थी।

एक दिन जब हम दोनों खाना खा रहे थे तब मनिया ने मुझसे पूछा— 'क्या मिसेज रालिंसन अपने घर पर भी अपने ही हाथ से खाना बनाती हैं?'

'जरूर बनाती होंगी। क्यों?'

"मेम होकर भी वह ऐसा करती हैं? क्या कोई नौकर उसके यहाँ नहीं है?'

मैं हँसी न रोक सका। मैंने कहा— 'मेम होने से क्या हुआ? क्या तुम यह समझती हो कि उसके पेट की और हमारे पेट की बनावट में भी कोई अंतर है? भूख उसे भी लगती है और हमें भी। अच्छा खाना खाने की शौकीन वह भी है और हम भी। तब जब हम अपने हाथ से बनाना पसंद करते हैं वह क्या नहीं बना सकती? उसमें और हम में सिर्फ इतना ही तो अंतर है कि उसका चमड़ा अधिक गोरा है और वह अँगरेजी बोलती है, जबकि हमारा चमड़ा कम गोरा है और हम हिन्दी बोलते हैं।'

'बस, सिर्फ इतना ही अंतर है?' मनिया ने प्रश्न किया। उसे मेरी बात पर जैसे विश्वास ही नहीं होना चाहता था।

मैंने कहा—'नहीं तो और क्या!'

'पर उन्हें देखते ही मुझे डर क्या मालूम होने लगता है? सिन्धिया

को देखते ही मैं इस कदर क्यों सकुचा जाती हूँ ? उसकी बड़ी बहन जूलिया को देखते ही मेरा कलेजा क्या धड़कने लगता है ? मुझे लगता है कि वे लोग हमसे बहुत ऊँचे पर हैं। तभी तो वे हम हिन्दुस्तानियों पर राज करते हैं।"

"वे बड़े नहीं हैं," मनिया के बचकाने प्रश्न का उत्तर कुछ गंभीरता के साथ देते हुए मैंने कहा—"यह ठीक है कि हम हिन्दुस्तानियों ने अपने कायों और विचारों से अपने को छोटा बना रखा था, पर अब समय ने पलटा खाया है। अब हम लोग समझने लगे हैं कि अपने को उनसे नीचा समझना हमारी कितनी बड़ी मूर्खता थी। और यह समझने का फल यह हुआ है कि अंगरेजों के मन में यह विश्वास जम गया है कि वे अब अधिक इस देश में नहीं रह सकते।"

"उनके चले जाने पर कौन राज करेगा ?" चम्मच से चावल मुँह में डालते हुए मनिया ने पूछा। वह अभी तक काँटे का प्रयोग ठीक से नहीं सीख पायी थी, पर चम्मच से चावल खाना सीख गयी थी।

"तब हमारे नेता लोग राज करेंगे।

' तब लाट साहब कौन होगा '

"हमारे नेता।'

"तो क्या हमारे नेता लोग अंगरेजों को देखकर बिलकुल नहीं घबराते ?"

'बिलकुल ही नहीं घबराते होंगे ऐसा तो मैं नहीं समझता। क्योंकि अब भी जब कांग्रेसियों के बीच में कोई अँगरेज चला जाता है तो उसी की आवभगत वे लोग सबसे ज्यादा करते हैं। और जब वे लोग विलायत जाते हैं तो विलायती पोशाक पहने बिना उन्हें चैन नहीं मिलता—वे अभी तक यह सोचते हैं कि विलायत में हिन्दुस्तानी पोशाक में उन्हें देखकर वहाँ के लोग गँवार समझेंगे। अँगरेजी खूब अच्छी बोल और लिख सकना वे अपनी सारी विद्या और बुद्धि का चरम फल मानते हैं।"

' तब तुमने क्यों कहा कि अँगरेज लोग हिन्दुस्तानियों से बड़े नहीं हैं ?

"पर सभी नेता तो ऐसे नहीं हैं। महात्मा गांधी जब विलायत गये

काम चलाती रही है। इसके अलावा और कोई भी विशेष व्यंजन पकाना वह नहीं जानती।

फलत मैंने पाकशास्त्र की एक अंग्रेजी पुस्तक के सहारे मे स्वयं भोजन बनाने में सहायता देने का नियम बना लिया। रोटियाँ नौकर बना लेता था, पर विशेष व्यंजन, हम दो जने मिलकर बनाते थे। भला हो मिसेज रालिंसन का कि वह बेचारी हमारे यहाँ आकर कभी तो विशेष व्यंजनों के नुस्खे बता जाती थी और कभी स्वयं नमूने के तौर पर अपने हाथ से पकाकर खिला जाती थी। कोई अंग्रेज महिला अपने हाथ से खाना बनाने को तैयार हो सकती है यह कल्पना स्पष्ट ही मनिया ने नहीं की थी। वह आश्चर्य और सभ्रम के साथ मिसेज रालिंसन की पाककला देखती रहती थी।

एक दिन जब हम दोनों खाना खा रहे थे तब मनिया ने मुझसे पूछा—'क्या मिसेज रालिंसन अपने घर पर भी अपने ही हाथ से खाना बनाती है?

"जरूर बनाती होगी। क्यों?

"मेम होकर भी वह ऐसा करती है? क्या कोई नौकर उसके यहाँ नहीं है?"

मैं हँसी न रोक सका मैंने कहा— मेम होने से क्या हुआ? क्या तुम यह समझती हो कि उसके पेट की और हमारे पेट की बनावट में भी कोई अंतर है? भूख उसे भी लगती है और हम भी। अच्छा खाना खाने की शौकीन वह भी है और हम भी। तब जब हम अपने हाथ से बनाना पसंद करते हैं वह क्यों नहीं बना सकती? उसमें और हम में सिर्फ इतना ही तो अंतर है कि उसका चमड़ा अधिक गोरा है और वह अंग्रेजी बोलती है जबकि हमारा चमड़ा कम गोरा है और हम हिन्दी बोलते हैं।

बस सिर्फ इतना ही अंतर है? मनिया ने प्रश्न किया। उसे मेरी बात पर जैसे विश्वास ही नहीं होना चाहता था।

मैंने कहा— नहीं तो और क्या!'

'पर उन्हें देखते ही मुझे डर क्यों मालूम होने लगता है? सिंधिया

का देखते ही मैं इस कदर क्यों सकुचा जाती हूँ ? उसकी बड़ी बहन जूलिया को देखते ही मेरा कलेजा क्यों धड़कने लगता है ? मुझे लगता है कि वे लोग हमसे बहुत ऊँचे पर हैं। तभी तो वे हम हिन्दुस्तानियों पर राज करते हैं !"

"वे बड़े नहीं हैं," मनिया के वचकाने प्रश्न का उत्तर कुछ गंभीरता के साथ देते हुए मैंने कहा—'यह ठीक है कि हम हिन्दुस्तानियों ने अपने कार्यों और विचारों से अपने को छोटा बना रखा था, पर अब समय ने पलटा खाया है। अब हम लोग समझने लगे हैं कि अपने को उनसे नीचा समझना हमारी कितनी बड़ी मूर्खता थी। और यह समझने का फल यह हुआ है कि अँगरेजों के मन में यह विश्वास जम गया है कि वे अब अधिक इस देश में नहीं रह सकते।

"उनके चले जाने पर कौन राज करेगा ?" चम्मच से चावल मुँह में डालते हुए मनिया ने पूछा। वह अभी तक काँटे का प्रयोग ठीक से नहीं सीख पायी थी, पर चम्मच से चावल खाना सीख गयी थी।

"तब हमारे नेता लोग राज करेंगे।'

' तब लाट साहब कौन होंगे ?"

"हमारे नेता।'

' तो क्या हमारे नेता लोग अँगरेजों को देखकर बिलकुल नहीं घबराते ?'

'बिलकुल ही नहीं घबराते होंगे ऐसा तो मैं नहीं समझता। क्योंकि अब भी जब काँग्रेसियों के बीच में कोई अँगरेज चला जाता है तो उसी की आवभगत वे लोग सबसे ज्यादा करते हैं। और जब वे लोग विलायत जाते हैं तो विलायती पोशाक पहने बिना उन्हें चैन नहीं मिलता—वे अभी तक यह सोचते हैं कि विलायत में हिन्दुस्तानी पोशाक में उन्हें देखकर वहाँ के लोग गँवार समझेंगे। अँगरेजी खूब अच्छी बोलना और लिख सकना वे अपनी सारी विद्या और बुद्धि का चरम फल मानते हैं।"

' तब तुमने क्या कहा कि अँगरेज लोग हिन्दुस्तानियों से बड़े नहीं हैं ?

' पर सभी नेता तो ऐसे नहीं हैं। महात्मा गांधी जब विलायत गये

थे तब भी लँगोट पहन रहते थे । उनके पास सिर्फ अँगरेज ही नहीं बल्कि दुनिया भर के नामी गोरे आते रहते थे । पर वह उनसे उसी तरह पेश आते थे जिस तरह एक साधारण हिन्दुस्तानी से । और वे नामी गोरे उनके दर्शन से अपने को कृतार्थ समझकर वापस जाते थे ।"

अच्छा अगरजी पोशाक पहनने म तुम कोई दोष मानते हो ?

यह हमारी गुलामी की निशानी है ।'

"तब तुम क्यो अगरजी पोशाक पहनकर बाहर निकलते हो ?

इतनी दर तक मुझे याद ही नहीं था कि मैं स्वय अगरेजी पोशाक पहनने का आदी हू—अपनी तार्किकता म मैं इस कदर डूब गया था ।

पर मैं लज्जित नहीं हुआ और बोला— मैंने कब कहा कि मुझमे गुलामी छूट गयी है ? मैं भी तो उन्ही हिन्दुस्तानियो म से हूँ जिनकी गुलामी आजादी की प्रतिष्ठा के बाद आ अभी तक छूट नही पायी !

मनिया मेरी इस स्वीकृति का एक अच्छा मजाक समझकर खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

कुछ ही देर बाद अपेक्षाकृत गभीर भाव म बोली— कुछ भी हो, तुम्हारी यह सिल्विया बड़ी प्यारी लडकी है । जूलिया के लाल-लाल बाल, लबा सा मुह और बीच म उभरी हुइ नाक देखकर तो सचमुच डर लगता है, पर सिल्विया को देखकर गले लगाकर, जी भरकर प्यार कर लने की इच्छा होती है । क्या होती है या नहीं ?

मैं एकात दृष्टि स उसकी ओर देखने लगा—कहीं वह व्यग म या शरारत स ऐसा नहीं कह रही है ? बहुत गौर से देखते रहने पर भी मुझे उसके मुख के भाव म व्यग या शरारत का लेश भी नहीं दिखायी दिया । सहज भोलापन अपने विशुद्धतम रूप म उसकी आखो म छलक रहा था ।

उसके उस सीधे प्रश्न को टालते हुए मैंने कहा— उसमे कौन-सा ऐसा विशेष गुण तुमने पाया है जिसस तुम उस पर इस कदर लट्टू हो गयी हो ?

"उसम मुझे सभी गुण ही गुण दीखते हैं । एक तो वह देखने म बहुत सुन्दर लगती है । उसकी आखें नीली और कजी नहीं, हमी लोगो

ी तरह सफेद और काली हैं। उसके सिर के बाल भी
ारी ही तरह काले हैं—लाल, भूरे या सुनहरे नहीं।
उसके चेहरे का रंग भी बहुत चटकता हुआ गोरा नहीं है। वह बहुत कम बोलती है, और जितना कुछ भी बोलती है, बहुत ही धीमी और मीठी आवाज में, और उसका मुस्कराना कितना अच्छा लगता है! वह जूनिया की तरह ढीठ और बहया नहीं है। तुमने ख्याल नहीं किया कि तुम्हारे सामने वह किस कदर लजाने लगती है? और जब तुम नहीं होते तब वह मुझसे कैसे प्रेम से बातें करती है, जैसे मैं उसकी कोई सहेली होऊँ! हिन्दी भी बहुत अच्छी बोलती है—अपनी मां की तरह 'टुम टुम' नहीं करती। सचमुच बड़ी ही प्यारी लड़की है यह मिल्विया!"

उसकी आंखें पुलकोच्छ्वास से सजल हो आयीं। मैंने उसकी उमड़ती हुई भावुकता के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करने के इरादे से कहा—"हां, तुम ठीक कहती हो। सचमुच वह बहुत अच्छी लड़की है!"

कुछ देर तक वह खाना बंद करके उसी रोमांचित भाव से शून्य दृष्टि से मेरी ओर देखती रही। फिर, जैसे अपने-ही आप में, बोली—'कभी-कभी मेरे मन में यह इच्छा उठने लगती है कि मैं उसी के यहां नौकर हो जाऊँ और चौबीसों घंटे उसी की सेवा करती रहूँ। ऐसी इच्छा क्यों मेरे मन में उठती है, मैं नहीं जानती क्योंकि मैं तुम्हें भी एक मिनट के लिए नहीं छोड़ना चाहती—छोड़ ही नहीं सकती यह मैं तुमसे सच कह रही हूं

"यह मैं जानता हूं मनिया, कि तुम अब मुझे छोड़ नहीं सकती।' मैंने उसकी भावमग्नता दूर करने के उद्देश्य से कुछ ऊँची आवाज में कहा।

"तब क्या मेरे मन में इस तरह की बेवकूफी जगती है?" प्रायः अर्द्धचेतनावस्था में मनिया बोली।

"किस तरह की बेवकूफी?"

"यही—चौबीसों घंटे मिल्विया की नौकरी करने की इच्छा?"

"वह कुछ नहीं, वह तुम्हारा मोह है। वह जल्दी ही हट जायगा।

थ तब भी लँगोट पहने रहते थे। उनके पास सिर्फ अँगरेज ही नहीं बल्कि दुनिया भर के नामी गोरे आते रहते थे। पर वह उनसे उसी तरह पेश आते थे जिस तरह एक साधारण हिन्दुस्तानी से। और वे नामी गोरे उनके दर्शनों से अपने को कृतार्थ समझकर वापस जाते थे।'

'अच्छा अँगरेजी पोशाक पहनने में तुम कोई दोष मानते हो?'

'यह हमारी गुलामी का निशाना है।'

'तब तुम क्या अँगरेजी पोशाक पहनकर बाहर निकलते हो?'

इतनी देर तक मुझे याद भी नहीं था कि मैं स्वयं अँगरेजी पोशाक पहनने का आदी हूँ—अपनी तार्किकता में मैं इस कदर डूब गया था।

पर मैं लज्जित नहीं हुआ और बोला—'मैंने कब कहा कि मुझसे गुलामी छूट गयी है? मैं भी तो उन्हीं हिन्दुस्तानियों में से हूँ, जिनकी गुलामी आजादी की प्रतिज्ञा के बाद भी अभी तक छूट नहीं पायी।'

मलिया मेरी इस स्वीकृति को एक अच्छा मजाक समझकर खिलखिलाकर हँस पड़ी।

कुछ ही देर बाद अपेक्षाकृत गम्भीर भाव में बोली—'कुछ भी हो, तुम्हारी यह सिल्विया बड़ी प्यारी लड़की है। जूलिया के लाल-लाल बाल लंबा सा मुँह और बीच में उभरी हुई नाक देखकर तो सचमुच डर लगता है पर सिल्विया को देखकर गले लगाकर जी भरकर प्यार कर लेने की इच्छा होती है। क्या होती है या नहीं?'

मैं एकांत दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा—कहीं वह व्यंग में या शरारत से ऐसा नहीं कह रही है? बहुत गौर से देखने रहने पर भी मुझे उसके मुख के भाव में व्यंग या शरारत का लेश भी नहीं दिखायी दिया। सहज भोलापन अपने विशुद्धतम रूप में उसकी आँखों में छलक रहा था।

उसके उस सीधे प्रश्न को टालते हुए मैंने कहा—'उसमें कौन-सा ऐसा विशेष गुण तुमने पाया है, जिससे तुम उस पर इस कदर लट्टू हो गयी हो?'

''उसमें मुझे सभी गुण ही गुण दिखते हैं। एक तो वह देखने में बहुत सुन्दर लगती है। उसकी आँखें नीली और कंजी नहीं, हमीं लोगों

की तरह सफेद और काली हैं। उसके सिर के बाल भी हमारी ही तरह काले हैं—लाल, भूरे या सुनहरे नहीं।
उसके चेहरे का रंग भी बहुत चटकता हुआ गोरा नहीं है। वह बहुत कम बोलती है, और जितना कुछ भी बोलती है, बहुत ही धीमी और मीठी आवाज में, और उसका मुस्कराना कितना अच्छा लगता है! वह जूलिया की तरह ढीठ और बेहया नहीं है। तुमने ख्याल नहीं किया कि तुम्हारे सामने वह किस कदर लजाने लगती है? और जब तुम नहीं होते तब वह मुझसे कैसे प्रेम से बातें करती है, जैसे मैं उसकी कोई सहेली होऊँ! हिन्दी भी बहुत अच्छी बोलती है—अपनी मां की तरह 'टुम टुम' नहीं करती। सचमुच बड़ी ही प्यारी लड़की है यह सिल्विया!"

उसकी आंखें पुलकाच्छन्नता से सजल हो आयीं। मैंने उसकी उमड़ती हुई भावुकता के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करने के इरादे से कहा—"हां, तुम ठीक कहती हो। सचमुच वह बहुत अच्छी लड़की है!"

कुछ देर तक वह खाना बंद करके उसी रोमांचित भाव में शून्य दृष्टि से मेरी ओर देखती रही। फिर, जैसे अपने ही आप से, बोली—'कभी-कभी मेरे मन में यह इच्छा उठने लगती है कि मैं उसी के यहां नौकर हो जाऊँ और चौबीसों घंटे उसी की सेवा करती रहूँ। ऐसी इच्छा क्यों मेरे मन में उठती है, मैं नहीं जानती, क्योंकि मैं तुम्हें भी एक मिनट के लिये नहीं छोड़ना चाहती—छोड़ ही नहीं सकती, यह मैं तुमसे सच कह रही हूँ।"

"यह मैं जानता हूँ मनिया, कि तुम अब मुझे छोड़ नहीं सकती।' मैंने उसकी भावमग्नता दूर करने के उद्देश्य से कुछ ऊँची आवाज में कहा।

'तब क्यों मेरे मन में इस तरह की बेवकूफी जगती है?' प्रायः अर्द्धचेतनावस्था में मनिया बोली।

"किस तरह की बेवकूफी?

"यही—चौबीसों घंटे सिल्विया की नौकरी करने की इच्छा?"

"वह कुछ नहीं, वह तुम्हारा मोह है। वह जल्दी ही हट जायगा।

शायद यह उसी गुलामी की शेष निशानी है, जिसके जादू से इतने वर्षों तक हिन्दुस्तानियों ने अँगरेजों की अधीनता खुशी-खुशी स्वीकार की है। और यह भी संभव है कि इस जादू में गोरे चमड़े और विदेशी वालों का भी बहुत कुछ हाथ हो।'

जाओ, तुमको सभी बातों में हँसी की सूझती है।' पूरे होश में आकर और शायद अपनी 'बेवकूफी' पर मुस्करा कर मनिया बोली।

"नहीं, मैं हँसी नहीं करता" मैंने कहा "पर मैं तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा यह मोह आसानी से दूर हो सकता है। तुम मिसिया की नौकरी करने की बात इसलिये सोचती हो कि तुम उसे सब समय अपने पास रखना चाहती हो। एक उपाय हो सकता है जिससे सब समय तो नहीं पर दिन में कम से कम दो-तीन घंटा वह तुम्हारे पास रह सकता है।"

"वह किस तरह?"

"तुमने बताया कि तुम्हारे मन में उसकी नौकरी करने की इच्छा या बेवकूफी उत्पन्न हुई है। पर अगर उलटे वह तुम्हारी नौकरी करने को राजी हो जाय तब तुम्हारी इच्छा पूरी होगी या नहीं?"

"यह देखो, तुम फिर हँसी करने लगे!" अपनी प्लेट को सामने से हटाती हुई वह बोली।

मैंने कहा— "मैं सच कहता हूँ मनिया। अब तुम भगवान की कृपा से इस स्थिति में हो कि मिसिया को आसानी से अपने यहाँ नौकर रख सकती हो—अगर तुम चाहो तो। तुम अभी तक अपने को एक अनाथ, खानाबदोश लड़की समझने की आदी हो। इस विचार को अपने मन से जड़ से उखाड़कर फेंक दो। मैंने एक दिन तुमसे खेल में कहा था कि तुम्हें लोग झूठों रानी समझने लगेंगे। अब तुम सचमुच अपने को रानी समझा करो!"

वह खिलखिला उठी। हँसते हँसते बोली— "मैं अपने को रानी समझूँ! मैं—रानी! हि हि हि! मिसिया मेरी सेवा करेगी! हि हि हि हि!"

मुझ पर भी उसकी उस रोके न रुकने वाली हँसी का छुतहा प्रभाव

पड़े बिना न रहा। मैं भी बरबस हँस दिया। इस प्रकार जो बात मनिया के मन की गहन गहराई से भावावेग के रूप में बाहर निकली थी उसे स्वयं उसी ने हँसी में टाल दिया।

पर मैं हँसी में न टाल सका।

१३

उस दिन मैंने उस बात की कोई चर्चा फिर नहीं चलाया। पर तब से मैं अपने अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगा। एक दिन जब मैं सपरवाद के इरादे से मिसेज रालिंसन के यहाँ गया, तब बात ही बात में उन्होंने बताया कि उनकी दोनों लड़कियाँ 'मार्केटिंग' के लिए शहर गयी हैं। मिसेज रालिंसन बड़े ही सीधे और सहृदय स्वभाव की महिला थीं। अपने घर का सारा हाल मुझे बताने में उनके मन को बड़ी तसल्ली मिलती थी। उस दिन एकांत पाकर उन्होंने मुझसे अपनी गरीबी का रोना आरम्भ कर दिया। बोलीं—'मिस्टर रालिंसन मुझे बड़े संकट में छोड़ गये हैं। जितना रुपया बचा था वह सब इस निगोड़े 'काटेज' में लग गया। 'काटेज' न बनवाती तो क्या करती, आखिर रहने को एक जगह चाहिये या नहीं? किराये पर रहना पड़ता। कम से कम उतने पैसे तो मैंने बचा ही लिये। पर खाने पीने और कपड़े लत्ते के लिये भी तो कुछ चाहिये! इतने वर्षों तक मैं निहायत कंजूसी से रहकर किसी तरह काम चलाती रही। लड़कियों को भी पढ़ाया लिखाया। पर अब आगे नहीं चल पाता। खर्च की तंगी से मैंने मिल्ड्रिया की पढ़ाई अधूरी ही रहने दी। क्या करती! अपने समाज के लोगों से भी मैंने मिलना-जुलना छोड़ रखा है। इसीलिये मैंने यह एकांत जगह पसंद भी की थी। तुम देखते ही हो, मैं अपने घर से कभी बाहर नहीं निकलती। तुम भले आदमी हो, इसलिये कभी-कभी तुमसे मिल लेती हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि

अब आप मेरे दिन कैसे कटेंगे। गरीबी की वजह से यहीं लड़कियों की शादी नहीं हो पाती। जब लड़कियाँ अपने समाजवालों के साथ हेलमेल बढ़ायें तभी तो कहीं शादी का तुक बैठ सकता है। पर समाज में हेलमेल बढ़ाने के लिए पैसा चाहिए—अच्छे अच्छे कपड़े पहने रहें, दिन में कम से कम दो दो जोड़ी कपड़े बदलती रहें, पूरे साज शृङ्गार के साथ अप टू डेट फैशन में रहें तभी तो मर्दों की निगाह में जँच सकती हैं। और मर्द भी ऐसा-वैसा नहीं चाहिए। कई लोफर जूलिया और सिल्विया के साथ शादी का प्रस्ताव कर चुके हैं पर मैंने उन सब को दुतकार दिया है। ऐरों-गैरों से शादी होने से न होना ही अच्छा। जूलिया तो अब ओल्ड मेड बनने जा रही है। शादी नहीं हुई पर अभी से बुड्ढी लगने लगी है। लड़कियाँ चाहती हैं मसूरी से बाहर—किसी बड़े शहर में—कलकत्ता या बम्बई में—जायें और कहीं न कहीं नौकरी मिल ही जायगी। जूलिया तार का काम सीखना चाहती थी, पर मैं इस बुढ़ापे में अब न तो लड़कियों का साथ एक दिन के लिए भी छोड़ सकती हूँ, न स्वयं अपना यह काटेज छोड़कर मसूरी से बाहर जाना चाहती हूँ। मेरे मन में यह अंधविश्वास घर कर चुका है कि मसूरी से बाहर पाँव रखते ही मेरी मृत्यु हो जायगी। और मैं अभी मरना नहीं चाहती—जीवन के प्रति अभी तक इतना गहरा मोह मेरे मन में बना हुआ है हालाँकि मेरी उम्र पचास से ज्यादा हो चुकी है। अजीब हालत है मेरी, मि० रंजन, मैं क्या बताऊँ। बेचारी लड़कियाँ मेरे कारण परेशान हैं। वे मुझे बहुत चाहती रही हैं, पर अब मैं देखती हूँ कि धीरे धीरे उनके मन में मेरे प्रति विद्रोह जगने लगा है। और यह स्वाभाविक भी है। मैं अपने मूर्खतापूर्ण हठ से उनका रास्ता रोके खड़ी हूँ। जवान लड़कियाँ हैं उन्हें जिन्दगी में आगे बढ़ना चाहिये। पर मेरी वजह से बेचारियाँ विवश हैं। धीरे धीरे अब हम लोगों के भूखों मरने तक की नौबत आ रही है, पर अब भी मैं अपने घुम्मू स्वभाव के कारण उन्हें छुट्टी नहीं दे पाती। कभी-कभी जी चाहता है कि 'काटेज' बेच डालूँ और कहीं सस्ते किराये के मकान में जाकर रहूँ। इस आय से कम से कम कुछ वर्ष मेरी जिन्दगी के कट ही जायेंगे। फिर भगवान मालिक हैं।

हूँ। पर यह भी जानती हूँ कि मेरे शरीर की जो हालत इधर चल रही है, उसमें अधिक दिन अब मैं नहीं जी पाऊँगी। मेरे मरने के बाद ही मेरी लड़कियों को पूरी स्वतन्त्रता मिल सकती है—बेचारी लड़कियाँ!"

और उनकी आँखों से टपाटप आँसू निकलने लगे। चश्मा उतारकर वह अपने गाउन से उसे पोंछने लगीं।

उन्हें किस तरह सान्त्वना दी जाय, मेरी समझ में नहीं आया। सहसा मुझे एक प्रेरणा हुई। मैंने पूछा—"आपका कितना रुपया इस 'काटेज' को बनाने में लगा था?"

उन्होंने कहा—"जब मैंने इसे बनवाया था तब सस्ती का जमाना था। फिर भी करीब बारह हजार रुपया मेरा इसमें लग गया था।"

"आज अगर आप इसे बेचना चाहें तो कम से कम कितना रुपया आप चाहेंगी?"

"पचीस हजार से कम पर इसे बेचने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।" उन दिनों का भाव देखते हुए उस काटेज के लिये पचीस हजार रुपया अधिक था, यह मैं जानता था। पर उस समय, न जाने किस प्रेरणा से, मेरे मन पर आर्थिक त्याग का भूत सवार हो गया था। मिसेज रालिन्सन की करुणा भरी रामकहानी ने मुझे बहुत प्रभावित किया था सन्देह नहीं, पर केवल वही एक कारण नहीं था। जो भी हो, मैं बोल उठा—"देखिये मिसेज रालिन्सन, आप पहले अच्छी तरह सोच-विचार लीजिये कि आप काटेज को बेचना पसन्द करेंगी या नहीं। यदि आप चाहें तो मैं इसे उतने ही दामों पर खरीदने को तैयार हूँ जितना आपने चाहा है"

स्पष्ट ही मिसेज रालिन्सन इसके लिये तैयार नहीं थीं। वह मुझे एक बहुत ही साधारण स्थिति का आदमी समझे बैठी थीं, और शायद उनकी यह धारणा थी कि किराये के सस्तेपन के कारण ही मैंने शहर का मोह त्याग कर बानागंज में मकान लिया है। इसलिये जब उन्होंने मेरे मुँह से इस तरह की बात सुनी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न

रहा। विस्मय से आँखें फाड़ फाड़कर मेरी ओर देखती हुई बोली—"क्या तुम सचमुच काटेज खरीदने को तयार हो? परिहास तो नही कर रहे हो?"

मैंने कहा— मैं कभी यों भी किसी से परिहास नहीं करता फिर आपके समान सयानी महिला के साथ परिहास करने की बात मैं कैसे सोच सकता हू? मैंने जो कुछ कहा है उसे आप पक्की बात समझ लीजिये। आप पहले अपना मन टटोल लीजिये। इसके अलावा इस सम्बन्ध में मैं एक सुविधा आपको और दे सकता हूँ। मेरे मकान खरीदने के बाद भी उसके एक हिस्से में आप अपनी लड़कियों सहित बिना किराये के रह सकती हैं

मिसेज रालिंसन अत्यन्त मनोनिवेशपूर्वक मेरी बात सुन रही थी। सहसा एक उच्छ्वास उनके मुह से निकल पड़ा। उन्होंने कहा— 'ओ मि० रंजन तुम सचमुच बड़े ही उदार आदमी हो। मैं इस बात पर लड़कियों से सलाह करूगी और शीघ्र ही तुम्हे बताऊंगी। यदि लड़कियाँ राजी हो जायें तो फिलहाल के लिये मेरा एक बहुत बड़ा संकट टल जाय "

इसके बाद वह मेरी प्रशंसा के पुल बांधती चली गयी। मैं उनकी ओर से आँख हटाकर पास ही काटेज के एक गमले पर खिले हुए पहूनिया पर दृष्टि गड़ाये चुप बैठा रहा।

जब वह चुप हो गयी तब मैंने साहस बटोरकर कहा— आज मैं एक विशेष प्रार्थना के लिये आपके पास आया था।

'क्या बात है कहते क्यों नहीं?'

'मैं इधर कुछ दिनों से सोच रहा था कि यदि मिलिसेन्ट मनिया को अँगरेजी लिखना, पढ़ना और बोलना सिखाने के लिये राजी हो जाती तो मैं बड़ा उपकार मानता। यदि वह तीन घंटा रोज पढ़ा सके तो मैं उसे १०० रु० महीना देने को तयार हूँ।"

मिसेज रालिंसन के लिये यह दूसरा महाविस्मय था। भ्रांत दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई वह बोली— 'क्यों नहीं! क्यों नहीं! वह जरूर पढ़ायगी। वह ज्योंही आयेगी त्योंही मैं उसे इस काम के लिये राजी

कराऊँगी। यह तो बहुत अच्छा काम है। तुम बड़े ही सज्जन और दयालु हो, मि० रंजन। भगवान निश्चय ही तुम्हारा भला करेंगे।" उनकी आँखें कृतज्ञता से डबडबा आयीं।

१४

उस दिन मिसेज रालिन्सन के यहां से चले आने
के बाद मैं यही सोचता रहा कि ताव में आकर मैंने
जो प्रस्ताव उनके आगे रखे हैं वे कहां तक उचित ह
और जो सौदा मैंने करना चाहा है उसमें मुझे क्या लाभ है। पचीस हजा
रुपये की कोई बात नहीं थी। इतना रुपया मैं आसानी से दे सकता था
मेरी इस्टेट की वार्षिक आय का वह एक चौथाई हिस्सा भी नहीं था। प
एक जरा सी बात पर बीस हजार रुपया भावुकतावश पानी में फेंक देना
बात मुझे उस भावुकता का आवेग समाप्त हो जाने के बाद कुछ जँच न
रही थी, क्योंकि यह निश्चित था कि मिसेज रालिन्सन का वह काटेज मे
किसी काम का न था। मैं जानता था कि पचीस हजार रुपया उस पर ख
करने की अपेक्षा उतना ही रुपया और लगाकर किसी अच्छी जगह प
नया बँगला बनवा लेना अधिक लाभकर था। उन दिनों की स्थिति को देख
हुए वह बँगला दस हजार से अधिक के योग्य नहीं था। तब मैंने जानबूझ
क्या मिसेज रालिन्सन को मुँह माँगा दाम देने का वचन दे दिया? भा
कता की भी एक सीमा होनी चाहिये! मैं सोचने लगा कि ये ऐंग
इण्डियन महिलाएँ कितनी बड़ी मायाविनी होती हैं! मुझे एकान
पाकर मिसेज रालिन्सन ने किस प्रकार रोना धोना आरम्भ कर दि
था! वह निश्चय ही पहले ही ताड़ गयी होगी कि एक मोटा असा
उसके चंगुल में आ फँसा है! मेरे प्रस्ताव से उसने जो आश्चर्य प्र
किया था वह निश्चय ही कृत्रिम था! उसने अपने परिवार का जो क
चिट्ठा मेरे आगे खोल दिया था उसमें भी निश्चय ही उसकी चाल थ

कसे भोलेपन के साथ उसने मेरी दया उभाड़कर मुझे बव-
कूफ बनाया ! इसी तरह के तक मेरे मन मे उठने लगे।

दूसरे दिन मैं यह सोचकर मिसेज रालिंसन के यहाँ दोपहर को गया कि उनसे कह दूँगा कि पिछले दिन मैंने काटेज खरीदने की जो बात कही थी वह यों ही ताव में आकर कह दी थी और असल में खरीदने लायक मेरी स्थिति है नहीं।

जब मैं काटेज के दरवाजे पर पहुँचा तब सिल्विया बरामदे में खड़ी थी। मुझे देखकर वह मलज्ज भाव से मुस्करायी। उसे देखते ही मैं अपने उन सारे तर्कों को भूल गया जो काटेज न खरीदने के पक्ष में मेरे मन में उठे थे। बल्कि मुझे इस बात पर मन ही मन गर्व होने लगा कि मैंने मिसेज रालिंसन के आगे एक उदार प्रस्ताव रख कर बहुत ही सराहनीय कार्य किया है। सिल्विया ने उसी सकोच भरी मुस्कान के साथ बहुत धीमी आवाज में कहा—'गुड मॉर्निंग !' और फिर भीतर चली गयी। उसके भीतर जाने के बाद ही मिसेज रालिंसन बाहर चली आयी और अत्यन्त प्रसन्न भाव से उन्होंने मेरा स्वागत किया। जूलिया भीतर से ही अपनी स्वाभाविक रूखी दृष्टि से झाँक रही थी।

जब हम लोग भीतर गये तब मिसेज रालिंसन ने बड़े आदर से मुझे बिठाया। स्वयं भी बैठती हुई वह बोली—'मैंने सिल्विया को तुम्हारे आफर की बात बतायी थी। वह राजी है। क्यों सिल्विया, तुम मिसेज रंजन को पढ़ाओगी न ?'

सिल्विया सिर हिलाती हुई बहुत धीमी आवाज में बोली—'हाँ।'

मैंने कहा—'तब तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। आज ही से पढ़ाना शुरू कर दीजिये।'

'आज ही तो इसने अपना विचार इस सम्बन्ध में स्थिर किया है। अब कल से पढ़ायेगी।'

सिल्विया उसी कमरे के एक कोने में बाँस की एक कुर्सी पर चुपचाप बैठ गयी थी। पर जूलिया दूसरे कमरे के दरवाजे के पास खड़ी थी और एक विचित्र दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी। उसकी उस दृष्टि से जासूसों के से परीक्षण का भाव व्यक्त होता था। और उसकी आँखों का

वह स्वापन ! उसकी ओर दृष्टि पडते ही एक अत्यंत अप्रिय अनुभूति से मेरा सारा मन तिक्त हो उठा।

"मैंने भी अपना माइंड मेक अप कर लिया है, मि० रंजन !" मिसेज रालिंसन ने कहा।

"किस विषय पर ?" मैंने जूलिया की ओर से दृष्टि हटाकर अन-मन भाव से पूछा।

"काटेज की बिक्री के सम्बन्ध में।"

मेरी सारी अन्यमनस्कता पल में भंग हो गयी। जूलिया की ओर दृष्टि पड़ने से काटेज खरीदने के सम्बन्ध में मेरा सारा उत्साह जाता रहा था।

उस दिन की अपनी मूर्खतापूर्ण भावुकता को फिर मन ही मन बुरी तरह कोसने लगा। पर अपनी बात को पलटने का न तो मुझे साहस ही हुआ न ऐसा मेरा स्वभाव था।

अपनी अनिच्छा को भीतर ही भीतर दबाते हुए मैंने कहा—"यह भी अत्यन्त अच्छी बात आपने बतायी। तब आप काटेज बेचने के लिये तैयार हैं ?"

"हां। मैंने खूब सोचकर देखा है इसके सिवा मेरे लिए और कोई दूसरा चारा नहीं है।"

'तब ठीक है। मैं एक हफ्ते के भीतर ही कानूनी लिखा पढ़ी हो जाने के बाद रुपये दे दूँगा।"

इसके बाद कुछ ही देर मैं वहां और रहा। घर लौटने पर मैंने मनिया को सब बातें बता दीं। और यह भी सूचित कर दिया कि सिल्विया कल से उसे पढ़ाने आयगी और प्रतिदिन प्रायः तीन घंटा उसके साथ रहेगी। यह सुनकर वह बहुत खुश हुई। पर जब मैंने उसे बताया कि सिल्विया को मैंने सौ रुपया महीना पर तय किया है तब पहले तो उसे बड़ा विस्मय हुआ और बाद में वह कुछ सोच में पड गयी।

मैंने पूछा— "तुम क्या सोच रही हो ?"

"मैं सोच रही हूँ कि मेरे लिये तुमने जो सौ रुपया माहवार खर्च

करने की बात सोची है उतना सब रुपया तुम पानी में फेंकने जा रहे हो।"

'तुम ऐसा क्यों सोच रही हो?'

'मैं आखिर कितना पढ़ पाऊँगी? और मेरे पढ़ने से लाभ क्या होगा?

लाभ क्या होगा यह अभी मैं न तुम्हें समझा पाऊँगा, न दिखा पाऊँगा। मान लिया जाय कि तुम कुछ भी न पढ़ पायीं तो भी मिसिल्विया प्रतिदिन तीन घंटे तुम्हारे साथ रहेगी, इसका मूल्य क्या कुछ नहीं है? तुम्हारी इच्छा मिसिल्विया के साथ रहने की थी। मैंने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है जिसमें वह काफी समय तक तुम्हारे साथ रह सकेगी। इसके लिए अगर महीने में १०० रु० खर्च करना पड़े तो क्या अधिक है! सिल्विया एक गरीब माँ की लड़की है, अगर उसे सौ रुपया माहवार मिल जाता है तो वह तुम्हें क्या खल रहा है?"

'क्या सचमुच मिसिल्विया की माँ गरीब है?' अकृत्रिम आश्चर्य से मनिया ने कहा—'बँगला तो उनका बहुत बढ़िया है। जिसके पास अपना निजी बँगला हो—और वह भी इतना सुन्दर—वह कैसे गरीब हो सकती है? और उन लोगों का रहन-सहन भी तो ठाठदार है!

मैं मुस्कराया—'गरीब से गरीब अँगरेज—या ऐंग्लो-इंडियन—भी ठाठ से रहना जानता है। रही उनके निजी बँगले की बात। अभी तक मैंने तुम्हें बताया नहीं, पर यह बात तय हो चुकी है कि वह अपना बँगला भर हाथ बेच देंगी।"

"क्यों?" उसी विस्मित भाव से मनिया ने पूछा।

इसलिए कि उनके पास अपने गुजारे के लिए और कोई जरिया रह नहीं गया है।

'कितने रुपये पर वह बेच रही हैं?'

'पचीस हजार।'

'पचीस हजार!'—आँखें फाड़कर मेरी ओर देखती हुई मनिया बोली—'और तुम इतना रुपया देकर उसे खरीदने जा रहे हो? क्या तुम्हारे पास इतना रुपया है?'

'न हाला तो मैं खरीदने को तयार ही क्या होता ?"

"पचीस हजार ! तब तो तुम बहुत बडे सेठ हो ! मैंने ता कभी एमा सोचा नही था । पर उस मकान का लेकर तुम करोगे क्या ?'

मुझे उसका ग्राश्चय ग्रौर कुतूहल देखकर बडा रस मिल रहा था। मैंने कहा— किराया देकर रहने से क्या यह ग्रच्छा नहीं है कि ग्रपने निजी बगले म रहा जाय ?"

'हा, हा, यह तो ग्रच्छा ही है," मन ही-मन कुछ सोचती हुई वह बोला—' पर पचीस हजार रुपया ! कितना होता है पचीस हजार रुपया ? एक कमरा पूरा भर जाता होगा उतने रुपयो से क्या ?"

मेरी हँसी रोके नही रुकती थी । मैंने कहा—"पचीस हजार रुपया जरूर कुछ ज्यादा होता है । पर इतने से एक कमरा नही भरता । एक बडे बक्स के भीतर उतने सब रुपये समा सकते हैं—ग्रगर एक एक रुपये के हिसाब म उन्हे रखा जाय । नहा ता बडे-बडे नोटा में वे एक बटुवे क भीतर ग्रा सकते हैं । ग्रौर मैं ता मिसेज रालिन्सन को न नोट दूँगा न रुपये, मैं ता दूँगा चक ।'

"वह क्या होता है ?" स्पष्ट ही उसका कुतूहल बढता चला जा रहा था ।

वह एक कागज का टुकडा होता है जिसे बक वाले छपाये रहते हैं ।"

' पचीस हजार रुपये से ग्रौर उस कागज के टुकडे से क्या सबध ?'

' मैं उस पर लिख दूँगा कि मिसेज रालिन्सन को पचीस हजार रुपये दे दिये जायँ ।"

'ता इससे क्या हुग्रा ? मिसेज रालिन्सन क्या इतने म मान जायगी ?

' मान क्या नही जायगी ? वह कागज का टुकडा बक में दिखाने से उसे पचीस हजार रुपया मिल जायगा ।"

इतनी देर बाद मनिया यह समझी कि मैं उसके साथ परिहास कर रहा हूँ, ग्रौर ग्रभी तक मैंने जितनी भी बातें उसे बतायी हैं व सब

अवास्तविक हैं। हँसती हुई बोली—"हटो, तुम्हारी हँसी करने की आदत कभी छूटेगी भी या नहीं? म अपने सीधे स्वभाव मे इतनी देर तक तुम्हारी सब बातो को सच मानती आ रही थी! बक म क्या सब समय दानखाता खुला रहता है जो तुम्हारे कागज के टुकडे पर लिख देने से मिसज रालिन्सन को वहाँ पचीस हजार रुपया मिल जायगा। हँसी छोडो, सच बताओ तुमने पचीस हजार में बँगला खरीदने की जो बात अभी बनायी है वह क्या सही है?'

मैंने अपने मुख पर से परिहास और कृत्रिमता का आवरण पूरे तौर से हटाने का प्रयत्न करते हुए कहा—'मैंने बिलकुल सच बात तुम्हें बतायी है मनिया मैं बगला खरीद रहा हूँ—पचीस ही हजार म। इतना रुपया तुम इसलिये ज्यादा समझे बठी हो कि तुम्हारे पास सौ रुपये की भी पूजी कभी नही रही। मैंने जो दो सौ रुपया तुम्हे दिया था वही तुम्हारे लिये इतनी भारी रकम हो गया थी कि तुम उसे सँभाल ही न पायी। पर दुनिया मे सभी लोग तुम्हारी तरह नही हैं। ऐसे भी लोग हैं जो लाखो रुपया रोज कमाते हैं और उनका खर्चा भी उसी हिसाब से होता है अगर वे एक एक रुपया गिन करके खच करें तो सारा दिन गिनते गिनते बीत जायगा। इसलिये होता यह है कि बक म उनके रुपये जमा रहते हैं। बक वाले अपने नाम से खास तरह की बनी हुई छोटी छोटी कापियाँ छपाये रहते हैं। उन्हे चेक-बुक कहा जाता है। जिसका रुपया बक म जमा रहता है उसे जितने रुपयो की जरूरत होती है वह उसी कापी मे से एक पन्ना फाडकर उसम लिखकर अपना दस्तखत कर देता है। बक म उसके दस्तखत का नमूना रहता है जिससे कोई दूसरा आदमी नकली दस्तखत बनाकर रुपया न खीच ले जाय। उस पन्ने को—जिसे चेक कहते हैं—देखकर बक वाले उतना ही रुपया उस आदमी को दे देते हैं या उसके नाम जमा कर देते हैं जिसका नाम रुपया पाने वाले की जगह पर लिखा रहता है। मैं अभी तुम्हे दिखाता हूँ कि चेक किस तरह का होता है।

मैं उठा और अपने बक्स से चेकबुक निकालकर उसे दिखाया। वह भ्रांत भाव से उसे देखती रही, कुछ समझी नही। मैंने कहा—"अब

देखो, मैं इसमें मिसेज रालिन्सन का नाम लिखकर यह भी लिख देता हूँ कि उन्हें पचीस हजार रुपये दे दिये जायें।" और मैंने लिखकर उसे दिखा दिया।

मैंने कहा—"अब अगर यह चेक मैं मिसेज रालिन्सन को दे दूँ तो उसे उस बैंक से पचीस हजार रुपया मिल जायगा जहाँ से यह चेक छपा है।'

वह उसी स्तब्ध दृष्टि से मेरी ओर देखती रही। कुछ देर बाद एक लंबी साँस लेकर बोली—'तुम्हारा कितना रुपया बैंक में जमा है?"

"मुझे ठीक याद नहीं है। पर कई लाख रुपये होंगे।

"इतना रुपया तुम्हारे पास कहाँ से आ गया?"

"मेरे पिताजी बहुत बड़े जमींदार थे। उन्हें लोग राजा कहते थे और मुझे और मेरे भाई को कुँवर। मैंने अपने नाम के आगे से कुँवर शब्द हटा दिया है पर हमारी जमींदारी के लोग अब भी मुझे कुँवर ही कहते हैं। पिताजी के मरने पर हम दो भाइयों के बीच उनकी जायदाद बँट गयी। मेरे भाई ने, जो मुझसे बड़े हैं, अपने हिस्से की सारी संपत्ति उड़ा डाली। जो नकदी उनके हिस्से में आयी थी उसे खर्च कर डालने के बाद जमीन-जायदाद भी बेच कर खतम कर दी। पर मुझे जो कुछ मिला वह अभी तक वैसा ही रखा हुआ है। हर साल मुझे जो लाख-सवा-लाख रुपया जमींदारी से मिलता रहा है उसे भी जोड़ता चला गया हूँ।'

इस बार मनिया को जैसे कोई भ्रान्ति नहीं हुई—जैसे मेरी सारी स्थिति उसके आगे साफ हो गयी। तत्काल बोल उठी—'तब तुम भी अपने भाई की तरह उसे खर्च क्यों नहीं कर डालते? तुम्हीं तो कह रहे थे कि जिन लोगों के पास बहुत रुपया होता है उनका खर्च भी उसी हिसाब से होता है। पर तुम्हारा खर्चा बहुत कम है। जब लाखों रुपया तुम्हारे पास जमा है तब तुम इस तरह हाथ बाँध क्यों बैठे हो?"

चकित होने की बारी अब मेरी थी। उसके प्रश्न का आशय मैं

ठीक ठीक समझा नहीं । यह नहीं जान पाया कि वह व्यंग्य में कह रही है या स्वाभाविक सरल भाव से ।

मैंने कहा—'अभी तो तुम इस बात के लिये नाराज हो रही थी कि मैं सिल्विया को जो सौ रुपया महीने देने जा रहा हूँ वह पानी में फेंकने के बराबर है। और मिसेज रालिंसन का बीस हजार रुपया देकर कॉटेज खरीदने की बात जब मैंने तुमसे कही तब तुम्हारे जैसे रोंगटे खड़े हो गये। अब तुम इस तरह की बात क्या कह रही हो ?

"तब मुझे पता नहीं था कि तुमने लाखों रुपये जोड़ रखे हैं। उतने रुपयों से तुम करोगे क्या ? तुमने अभी बताया कि हर साल तुम्हें लाख-सवा लाख रुपये की आमदनी होती है। लाख रुपया वजन में कितना होता है और उससे कितने बोरे भर जा सकते हैं यह मैं नहीं जानती। पर इतना जरूर जानती हूँ—जब मैं स्कूल में पढ़ती थी तभी मुझे बताया गया था—कि सौ हजार का एक लाख होता है। इतना रुपया हर साल तुम्हारे नाम बैंक में अलग जमा होता रहता होगा। उसे छोड़कर पहले ही से जो रुपया तुम्हारे नाम जमा है वह क्या सदा के लिए जमा ही रहेगा ? उससे बैंकवालों का फायदा भले हो पर तुम्हें क्या लाभ होगा मैं नहीं समझी। मैं यह भी नहीं समझ पाती कि कोई आदमी केवल यह सोचकर ही खुश कैसे रह सकता है कि उसके नाम बैंक में इतना रुपया जमा है—जब तक कि उसे खर्च न किया जाय।" इस बार उसकी आँखों में गंभीरता परिपूर्ण मात्रा में छायी हुई थी।

मैंने कहा—"तुम ठीक कहती हो मनिया, पर रुपया कैसे खर्च किया जाय इस बात का कोई अंदाज ही मुझे नहीं है।" मैं मानता हूँ कि मेरे इस उत्तर में भोलापन भरा हुआ था पर उस समय मैंने जानकर नहीं बल्कि अपने जाने सहज भाव से ही वैसा कहा था।

पर मनिया मेरा वह उत्तर सुनकर खीझ उठी। बोली—'तुम्हें खर्च करने का अंदाज नहीं है यह बड़ी अनोखी बात तुमने बतायी। खैर, इसमें भी कुछ सोचने-समझने की जरूरत है ! बड़ी सीधी-सी बात है कि जितना फाजिल रुपया तुम्हारे पास बचा है उसे गरीबों में बाँट दो।

अकेले के पास जितना रुपया बिना किसी काम
डा है उतने से न जाने कितने गरीबों का पेट
भर सकता है। और गरीबी क्या चीज है, दो-जून के लिए
ना कितना कठिन काम है, यह मैं आज तुम्हारे साथ रहकर पर
ती हूँ। तुम्हारे पास आने से पहले तक मैं समझती थी कि
का खाना जुटाने के लिए गरीबों को जो परेशानी उठानी
वह कोई दुख की नहीं बल्कि सुख की ही बात है, और आ-
ानी में आदमी उनको न रख ना जीना ही दूभर हो जाय। म-
ोई खटका नहीं था, पत्नी आने से कोई डाह नहीं। माँ और
ा सहारा न रहने पर भी मेरे मन में सुख था, संतोष था। प-
पास आने के बाद ही मुझे पहली बार मालूम हुआ कि आजम
ान है, और यह भी मैंने जाना कि उसके पहले किन मैं जो कष्ट
ा रही थी, मेरे साथ की दूसरी लड़कियाँ आज भी कम कष्ट क
ा रही हैं, यह बात पहली बार मैंने जानी। और आज जब तुमने
ा कि रायबहादुर किस तरह सारा रुपया अब में जमा करने का आ-
नंद करने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती तब मेरी आँखें और
ाया हैं। मेरी बुद्धि यह मान नहीं सकती है कि पास इन सम-
ा में इतनी समझ नहीं है कि अपनी जरूरत से फालतू रुपया सब
ों में बाँट दें। तुम अपने ही को देखो। तुम पढ़े-लिखे हो और विद्वान
। मैं उस समय मुझसे ऐसी-ऐसी बातें बनाते रहते हो जिनसे दुनिया भर
ान भरा रहता है। पर अभी तुमने बताया कि जो सारा रुपया
ुम पास जमा है उसे कम खर्च किया जाय तो तुम जानते ही नहीं।
रुपया जरूरतमंदों में बाँटा जा सकता है, इतनी भी बात तुम्हारे
ाग में समाया ही नहीं! तुमने तो तुम्हारे बाद उनके अपने
ान अपने हिस्से का सारा रुपया खर्च कर डाला सारा जमीन-
यदाद बचाकर उसे भी खतम कर डाला। किस तरह खर्च किया था
ान?'

मैं दंग था उसका वह आकस्मिक और अप्रत्याशित आवेग देखकर
इसलिए जब उसने अंतिम प्रश्न किया तब मुझसे भाग नहीं रहा कि ठीक कुछ,

उत्तर ही न देते बना। दूसरे क्षण जब कुछ सँभला तब बोला—'उन्होंने ऐयाशी में सब रुपया फूँक दिया था—शराब में और औरतों में।'

"शराब में और औरतों में! हूम!" और वह गौर से मेरी ओर देखने लगी, जैसे मेरे मुख की अभिव्यक्ति से यह जानना चाहती हो कि मेरे भाई में और मुझमें अंतर कहाँ पर और कितना हो सकता है। इसके बाद सहसा बोल उठी—'फिर भी तो वह तुमसे अच्छे रहे। कम से कम इतनी समझ तो उनमें रही कि उन्होंने तुम्हारी तरह रुपया बक्स में बंद तो नहीं रहने दिया, किसी-न-किसी के काम वह रुपया आया तो सही!'

उसके इस दृष्टिकोण से मैं मर्माहत-सा हो गया। अपने शब्दों में काफी कटुता घोलते हुए मैंने कहा—'अगर मुझे मालूम हो जाय कि मेरे इस तरह के आचरण से तुम्हें सुख मिलेगा तो कल से मैं भी यही काम शुरू कर दूँ—इसमें कोई रुकावट मुझे न होगी। बोलो, तुम क्या यह चाहती हो कि मैं भी शराब में और औरतों में रुपया उड़ा दूँ?'

उसके मुख की मुद्रा ही एकदम बदल गयी थी। उसकी आँखों से बहुत दिन से सुप्त ज्वालामुखी के आकस्मिक विस्फोट की तरह एक ऐसी ज्वाला सी निकलने लगी थी, जिसे देखकर मैं सहम गया। मेरे कटु प्रश्न का उत्तर कटुतर रूप में देने के इरादे से वह बोली—'उड़ाओ! उड़ाओ! अपना सर्वस्व फूँक डालो चाहे किसी तरह हो! अगर गरीबों में तुम रुपया नहीं बाँट सकते हो तो गुंडों, बदमाशों और धूर्तों में ही उसे बाँट दो! बक्स में जमा करके क्या करोगे? जब तुम्हारे जीते जी वह रुपया किसी काम न आ सका तो मरने पर कैसे काम आ सकेगा? इसलिए जैसे भी हो जल्दी खर्च कर डालो!'

किस बात से किस बात की चर्चा आ पड़ी थी !

न जाने आज मेरा कौन दुग्रह जगा था, जिसने हम दोनों को अनावश्यक बातों की ओर प्रेरित कर स्निग्ध

रण को विषमय बना दिया था। मुझे लगा कि उसके मन के म प्रतिदिन के सघषमय जीवन की सचित राख के नीचे दबी हुई की चिनगारी, किसी प्रबल तूफानी धक्के के कारण सारी राख के ान पर, तीव्रता से दहक उठी है। पर उस विद्वेष का मूल मून ार है ? कुछ ही समय पूव उसने बताया था कि मेरे पास आने के उसके मन म किसी तरह का खटका नहीं था, धनवानों के प्रति तरह की दाह नहीं थी। इसका अथ स्पष्ट ही यह है कि मेरे निकट मे आने से उसके भीतर धनवालों के प्रति डाह की भावना जग है, और उसी के कथनानुसार, आज तो उसकी आखें और भी खुल —अर्थात् वह विद्वेष भावना और अधिक भड़क उठी है !

मैंने देखा कि अब इस सम्बन्ध म बात को अधिक बढ़ाने से ऐसी ा उत्पन्न हो सकती है जो अत्यन्त अशिष्ट तथा अप्रिय होने के साथ जाने किस तरह की घटना म परिणत हो बैठे ! जितनी चर्चा चल उतनी ही काफी अप्रिय वातावरण की सृष्टि कर चुकी थी। अपनी को बलपूवक पी जाने की चेष्टा करते हुए बात को समाप्त करने देश्य स मैंने कहा—"तो यह बात तय रही कि मिसेज रानिमन का ा बीस हजार रुपये म खरीद लिया जाय और सिल्विया को सौ ा माहवार द दिया जाय ?"

"बीस हजार रुपया उन्हें बँगले के लिये दो और बीस हजार खरात सिल्विया को भी सौ क्या तीन सौ रुपया दो ! अगर तुम्हारी समझ लोग सचमुच गरीबी मे दिन बिता रहे हैं तो जितना रुपया भी उन्ह कगे उतना ही अच्छा होगा !"

फिर क्या वह उसी व्यग और विद्वेष स प्रेरित हो रही थी ? उसकी ा म अभी तक उसी विचित्र प्रकार की ज्वाला दहक रही थी। ा वह रूप मुझे अत्यन्त अप्रिय और अशान्तिकारक लग रहा था। ा अतर की सारी शक्ति को बटोर कर अत्यन्त दृढ़ता के साथ मैंने

 कहा—"मनिया, तुम्हे हो क्या गया है ! आज तुम इस तरह तीखेपन से बातें क्या कर रही हो ! जाओ, चुपचाप पलंग पर लेट जाओ ! तुम्हारे भीतर आज जो एक भूत जग उठा हुआ है उसे भुला दो, नहीं तो तुम्हारी तबीअत बहुत खराब हो सकती है। जाओ !—'

वह तत्काल कठपुतली की तरह उठ बैठी—मेरी ओर भय और भ्रान्तिपूर्ण दृष्टि से देखती हुई। और उसके बाद धीरे धीरे पग रखती हुई पलंग के पास जाकर बरबस सी लेट गयी। मैंने तत्काल उसके निकट जाकर उसके माथे पर अपना हाथ रख दिया और स्थिर तथा पहले से भी अधिक गभीर दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। एक मिनट भी बीतते न बीतते उसने आँखें बन्द कर ली और वह गाढ निद्रा मे मग्न हो गयी।

उसकी उसी नींद की अवस्था मे दृढ स्वर मे उसे सबोधित करते हुए मैंने कहा—"मनिया, सच बताना यह जानकर कि मेरे पास बहुत सा रुपया जमा है, तुम्हे बेचैनी क्यो हुई ?

नींद मे ही मनिया बोली—'तुम्हारे पास इतना रुपया जमा क्यों है जब कि मैं मेरे साथ की लडकियाँ, मेरे जान पहचान के नौकर चाकर, कुली मजदूर दो मोटी रोटियाँ जुटाने मे खटते-खटते यह नही जान पाते कि कब सुबह हुई और कब शाम आयी !

"पर असली बात यह नही है। तुम अपने भीतर की कोई बात छिपा रही हो। याद करो और मुझे बताओ !' मैंने दृढतर स्वर मे आदेश देते हुए कहा।

क्षण भर के लिये सन्नाटा रहा। उसके बाद मनिया बोली—'मेरी माँ के पास अगर इतना रुपया भी होता कि वह अपनी गुजर बिना किसी के सहारे कर सकती तो वह न एक तिवारी के घर जाती न बाबा की हत्या की नौबत आती न वह खुद मार से डरकर आत्मघात करती और न मैं इस दुनिया मे अकेली मारी मारी फिरती हुई बेबसी की जिन्दगी बिताती !'

एक ऐसा बिजली का-सा धक्का मुझे लगा कि मैं सचमुच शाघा

वेदम पीछे की ओर खिसक गया। उसके अन्तर्मन में अभी तक अपनी अनाथ और असहाय अवस्था की कटु अनुभूति वर्तमान है और अभी तक वह अपने को 'अकेली मारी मारी फिरती हुई, बेबसी की जिन्दगी बिताती हुई' समझती है। इस ज्ञान ने ऐसा काँटेदार कोड़ा मेरे इतने दिनों तक गर्व से फूले हुए मन पर मारा कि मैं उस वेदना से भीतर ही भीतर कराह उठा। फिर भी अपनी उस मनोवैज्ञानिक पराजय से मैं हताश नहीं हुआ। अपनी सारी भीतरी शक्ति को फिर नये सिर से बटोरकर मैंने कहा—"देखो मनिया, आज से तुम अपने मन में यह गाँठ बाँध लो कि तुम न अकेली हो, न बेबसी की जिन्दगी बिताती हुई मारी मारी फिर रही हो, बल्कि तुम्हारे साथ एक और आदमी भी है जो जिंदगी भर तुम्हारा साथ देने की प्रतिज्ञा कर चुका है। तुम अनाथ नहीं हो। तुम्हारे लिये अब किसी बात की भी कोई कसर नहीं रह सकती, क्योंकि मेरे रहते रुपये-पैसे की कोई चिन्ता तुम्हारे लिये नहीं रह सकती। मेरा सब-कुछ तुम्हारा है।"

"पर मेरा सब-कुछ तब तक कैसे हो सकता है," उसी नींद के ढंग में मनिया बोली, "जब तक मैं गरीब लड़कियाँ भी आराम की जिन्दगी बिताने लायक नहीं हो जातीं जिनके साथ बैठकर मैं दुकान किया करती थी, जब तक आदमियों का बोझ ढोने वाले गरीब रिक्शा-कुली भी दो जून भरपेट रोटियाँ पाने और जिन्दगी की कुछ घड़ियाँ सुख से बिताने लायक नहीं हो जाते? मैं चाहती हूँ कि अपने को सुखी मानूँ और अनाथ और अकेली न समझूँ। पर क्या कोई मुझे ऐसा समझने से रोकता है? मेरी क्या दशा होगी? कौन मुझे उबारेगा? मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?"

और वह सिसकने लगी। यह स्पष्ट था कि मेरे हिप्नॉटिज्म का केवल आधा ही प्रभाव उसके अन्तर्मन पर पड़ा था, और उसका सचेत मन आधा जाग्रत था। मैंने सोचा कि इस समय यदि मैं उसके अवचेतन मन पर पूरा प्रभाव डालने में असमर्थ रहा तो फिर दूसरा ऐसा अवसर आसानी से और जल्दी नहीं मिल सकेगा। इसलिये मैंने ध्यानावस्थित होकर अपनी समस्त चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके आँखें प्रायः मूँदे हुए

दढतर शब्दों म कहा—"मनिया, तुम्हारा छटपटाना अब बेकार है, तुम मेरे पास से अब कहीं जा नहीं सकती। और किसी दूसरे की चिंता तुम्हे खा जायगी—तुम्हारे तन को, मन को और आत्मा को ही समूचा निगल जायगी। इसलिए तुम केवल अपनी चिंता करो और मेरी। आज तक तुम्हारे ऊपर जो कुछ बीती है वह सब सपना था। उसे भूल जाओ। मैं तुम्हारे साथ हूँ और हर घड़ी रहूँगा। मैं ही अब तुम्हारा सब-कुछ हू। इसलिए अब से चौबीसों घंटे तुम मेरा ही ध्यान करती हुई सुख से रहा करो। तुम मेरी हो! मेरी हो! मेरी हो! मैं तुम्हारा हू! तुम्हारा हू! तुम्हारा हू! देखो अब भूल न जाना। समझी?

हिप्नोटिक निद्रा के भीतर से मनिया बोली—"हाँ समझी।'

"क्या?

' मैं तुम्हारी हू और तुम्हीं मेरे सब-कुछ हो।"

"अच्छा अब उठ बैठो!

और वह सचमुच उठ बैठी। आँखें मलती हुई बोली—' कितनी देर हुई मुझे सोये? तुमसे बातें करते करते मैं ऐसी सोयी कि दिन और रात की कोई खबर ही मुझे नहीं रही। तुम तब से यहीं बैठे हो क्या? कै घंटे हो गये मुझे सोये? चार पाँच घंटा तो मैं कम से कम सोयी हूँगी! तुमने मुझे अब तक जगा भी नहीं दिया! उसकी ढलकती हुई आँखों में परिपूर्ण प्रेम का मादक रस जैसे छलक रहा था। "आओ मेरे पास आकर बैठ जाओ, वहाँ क्या खड़े हो?' मद विह्वल दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई वह बोली।

मैं चुपचाप उसके पास जाकर बैठ गया। उसने अपनी अलसाई हुई बाँहों को मेरे गले में डाल दिया और अपना सिर मेरे कंधे पर रखती हुई बोली—"तुम बहुत ही भले हो, बड़े ही नेक हो! मुझे बहुत ही अच्छे लगते हो!'

मैं चुप रहा। अपनी हिप्नोटिक कला की एक अजीब-सी प्रतिक्रिया मेरे भीतर होने लगी थी। उसका आलिंगन मुझे बहुत ही सुखद मालूम हो रहा था संदेह नहीं, पर साथ ही इस बात की अनुभूति मेरे हृदय को

खटकने लगी थी कि उसका वह सारा प्रेम विवशता-जनित है—भले ही वह विवशता स्वयं उसने अज्ञात हो। यदि हिप्नाटिज्म के प्रभाव से उसे पूर्णतया मुक्त कर दिया जाय तो वह क्या उस हालत में भी, स्वेच्छा से मुझसे प्रेम करती ? अपने पिछले जीवन के असाधारण अनुभवों से जो विचित्र मनोग्रन्थियाँ उसके भीतर पड़ी हुई हैं वे तब निश्चय ही उसके मुक्त प्रेम में भयंकर रुकावट डालतीं। तब इस प्रेम का क्या मूल्य है जो हिप्नोटिज्म के प्रभाव से कुछ समय के लिये—कुछ दिनों के लिये ही नहीं—उसकी उन मनोग्रन्थियों के कृत्रिम उपाय से दबाये जाने से, उभर उठा है ? इसी तरह के विचारों में मेरा मन उलझ गया था जब कि वह मुझे प्यार करने और मेरा प्यार पाने के लिये मचल रही थी।

जब मैं काफी देर तक चिंतामग्न अवस्था में मौन और निश्चल बैठा रहा तब उसने मेरे कंधे से अपना सिर हटा लिया और मेरी ओर देखने लगी। कुछ देर तक एकटक देखते रहने के बाद चिंतित स्वर में बोली—'तुम चुप क्यों बैठे हो ? तुम्हारा चेहरा उदास क्यों है ? क्या बात हो गया, बताओ ?

उसके आगे यह प्रकट हो जाना कि मैं चिंतामग्न और उदास हूँ मुझे अच्छा नहीं लगा। अपने भीतर कृत्रिम उमंग भरने का प्रयत्न करते हुए मैंने कहा—"कुछ भी नहीं हुआ। तुम्हें खुश देखकर मैं भी बहुत खुश हूँ मनिया। सिर्फ यही सोचता हूँ कि तुम मेरे साथ बराबर सुखी रह सकोगी या नहीं !'

"क्या तुम्हारे मन में इस तरह की फजूल की बात उठती है ?'

'फजूल की बात ? तुमने ठीक ही कहा है। अब से इस तरह की बात मैं नहीं सोचा करूँगा। अच्छा, तुम अब उठो। हाथ मुँह धो लो। कपड़े बदल लो। आज शहर चलें। कई दिनों से शहर में जा पाने के कारण भी शायद मेरे दिमाग में इस तरह की खुराफात पैदा हो रही है।'

मनिया तत्काल उठ खड़ी हुई और गुसलखाने में चली गयी। मैंने उस दिन उसे इस बात का तनिक भी संकेत नहीं किया कि हिप्नाटिक निद्रा की अवस्था में उसने किस तरह की बातें कही थीं और यह तो स्पष्ट था कि उसे स्वयं उनमें से एक भी बात याद नहीं थी।

१६

दूसरे दिन दोपहर में सिल्विया संकोच के झीने पर्दे के नीचे मृदु मंद मुस्कराती हुई आ पहुँची। उसके हाथ में एक छोटा सा बैग था। हम दोनों का अभिवादन करने के बाद वह मनिया के पास बैठ गयी। मैं दूसरे कमरे में चला गया और एक कुर्सी पर बैठकर, एक पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ने की चेष्टा करने लगा। पर मेरे कान बाहर की ओर ही लगे थे। पहले ही क्षण से दोनों के बीच घनिष्ठ सौहार्द की बातें होने लगीं जैसे दोनों बचपन से ही एक-दूसरे से परिचित सहेलियाँ हों। शीघ्र ही दोनों यथाशक्ति धीमे स्वर में बोलने लगीं और धीमे ही स्वर में बात बात में खिलखिलाने भी लगीं।

प्राय आधे घंटे तक यही क्रम चलता रहा। उसके बाद सिल्विया ने कहा— अच्छा अब मैं तुम्हें अँगरेजी के अक्षर सिखाती हूँ। मैं एक किताब लाया हूँ। इसे जरा गौर से देखो। यह देखो, यह अँगरेजी का पहला अक्षर 'ए' है—फोटो के कैमरा के स्टैण्ड की तरह यह 'बी' है—तिरछे तराजू की तरह यह सी है—बीचों बीच में आधा कटे हुए कद्दू की तरह यह डी है—शिव की तरह यह 'ई' है—अलमारी की तरह यह 'एफ' है—झंडे की तरह यह जी है—कलाई की तरह, यह एच' है—सीढ़ी की तरह यह आइ है—डंडे की तरह यह जे' है—उलटी छड़ी की तरह

अक्षरों की शक्ल बताने का जो तरीका उसने अख्तियार किया था उससे मेरी हँसी रोके नहीं रुकना चाहती थी। मनिया तो बार बार खिलखिला उठती थी। मुझे लगा कि मनिया का जी इस किसी नयी भाषा के सीखने में नहीं लग सकता और सिल्विया को सौ रुपया महीना भले ही वैसे ही दे दिया जाय पर अब उससे यह आशा करना कि वह मनिया को कुछ सिखा सकेगी व्यर्थ है।

पर कुछ ही देर बाद मैंने पर्दे की ओट से देखा कि मनिया हँसना छोड़कर अत्यन्त गम्भीर भाव से उन अक्षरों को पेंसिल से एक कागज पर उतारने का प्रयत्न कर रही है। मुश्किल से चार पाँच अक्षर उसने लिखे होंगे कि फिर हँसी के दौरे ने उसे धर दबाया और अपने प्रयत्न की खिल्ली स्वयं ही उड़ाते हुए उसने लिखना छोड़कर जो हँसना शुरू

किया वह जैसे बद ही नहीं होना चाहता था। कुछ देर बाद हँसी के कारण निकले हुए अपने आसू पोछती हुई वह बोली—"यह लो अपनी किताब और कापी। मुझसे यह सब कुछ न होगा।'

"वाह बीबी, तुम यह क्या कह रही हो," अत्यंत घबरायी हुई दृष्टि से मनिया की ओर देखती हुई सिल्विया बोली—"तुमसे क्या नहीं होगा? एक ही बार के देखने से तुमने जो अक्षर उतारे हैं वे इतने अच्छे हैं कि मुझे पूरा विश्वास है, तुम एक ही हफ्ते के भीतर लिखना और पढ़ना सीख जाओगी।"

"न, न, न! मुझसे यह खेल न होगा। मुझे लिखाने-पढ़ाने के फेर में तुम न पड़ो। मैं समझ गयी हूँ कि सब बेकार है!" कापी को उठाकर दूर फेंकती हुई मनिया बोली।

मैंने सिल्विया के मुख की ओर देखा। ऐसा त्रस्त भाव उसके मुख पर अंकित हो गया था कि मुझे लगा जैसे वह अभी रो देगी। यह अनुमान लगाने में मुझे देर न लगी कि सौ रुपये की नौकरी हाथ से छूट जाने की आशंका ने उसे भयंकर रूप से त्रस्त कर दिया है। कुछ विशेष संकट की घड़ियों में भय की भावना मनुष्य के स्वाभाविक स्वभाव पर तीव्र आघात करके उसे किस प्रकार बदल देती है, यह देखकर आश्चर्य होता है। सिल्विया ने घबराये हुए स्वर में कहा—"तुम बहुत जल्दी लिख पढ़ लोगी। तुम्हारी बुद्धि बहुत तेज है। तुमने एक ही बार बताने पर ऐसे अच्छे अक्षर लिखे हैं कि देखकर मैं दंग हूँ। मैं अभी बाबूजी को दिखाती हूँ।" और वह सचमुच कापी उठाकर भीतर मेरे कमरे में चली आयी। इसके पहले मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि सिल्विया कभी संकोच त्यागकर स्वतः मेरे पास आकर बातें करने का साहस कर सकती है।

कमरे में आते ही कापी दिखाती हुई वह बोली—"देखिये मिस्टर रंजन, कैसे 'लवली' अक्षर लिखे हैं आपकी बीबी ने!" शंकित और कंपित स्वर में बोलती हुई वह जो उत्साह प्रकट कर रही थी उसमें अस्वाभाविकता स्पष्ट परिस्फुट हो रही थी। मैंने अक्षर देखे। वास्तव में अक्षर सही और सुन्दर बन पड़े थे।

मैंने उत्साहित होकर कहा—'निश्चय ही ये बहुत अच्छे हैं।'

"पर आपकी बीबी कहती हैं कि उनके किये ये सब कुछ न होगा, और उन्होंने पढ़ने लिखने से बतई इनकार कर दिया है।" सिर्फ आँसू निकलने की कसर थी—बाकी रोने में और सिल्विया के बोलने में कोई अंतर मुझे नहीं दिखायी पड़ा था।

मैंने दुगना उत्साह प्रकट करते हुए उसे दिलासा देने के इरादे से कहा—'वह जरूर लिखेगी और पढ़ेगी भी। आप चिन्ता न करें मिस रालिन्सन! मैं अभी उसे समझाता हूँ।" और मैं मनिया के पास चला गया। सिल्विया भी चुपके से मेरे पीछे-पीछे हो ली।

मैंने कहा—'मनिया, मुझे पता नहीं था कि तुम्हें सचमुच इतनी जल्दी अक्षरों का ज्ञान हो जायगा और एक ही बार के बताने से तुम इतने अच्छे अक्षर लिख लोगी। अब अगर तुम सीखना बन्द कर दोगी तो इससे बड़ी भूल तुमसे और कोई न होगी।'

'न न, मुझसे यह नहीं होगा। मुझे माफ कर दो,' प्रायः गिड़गिड़ाते हुए उसने कहा।

उसका हठ देखकर मैं मन ही मन खीझ उठा। सिल्विया पूर्ववत् रोनी-सी सूरत बनाये मेरे पीछे चुपचाप खड़ी थी। मैंने उससे कहा—'मिस रालिन्सन अभी आप जायें। मैं इसे समझाता हूँ। कल आप अवश्य आवें। यह अगर पढ़ना न भी चाहे, आप प्रतिदिन नियमित रूप से इसके पास आया करें।' सिल्विया अत्यंत उदास भाव से चली गयी।

उसके चले जाने पर मैंने मनिया से कहा—'तुम्हारी जिद मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आयी। तुमने देखा नहीं, बेचारी सिल्विया रोती हुई चली गयी।'

'क्या!' आश्चर्य से मनिया ने पूछा। उसने स्पष्ट ही सिल्विया के मुख के भाव पर ध्यान नहीं दिया था।

मैंने कहा—"इसलिये कि तुम्हारे न पढ़ने से उसकी रोजी चली

जायगी। सौ रुपया महीने का सीधा सीधा नुकसान होते देखकर वह बेचारी रोयेगी नहीं तो क्या करेगी।"

– "ओह, यह बात है!" अत्यन्त गभीर भाव से—प्राय चिन्तामग्न सी—मनिया बोली—"तब तो सचमुच मुझसे बड़ी भूल हुई है। अगर बात ऐसी है तो कल से मैं निश्चय ही लिखना-पढ़ना सीखूँगी। तब तो सचमुच ये लोग बहुत गरीब हैं—तुमने ठीक ही कहा था!" और वह गाल पर हाथ रखकर सोच में पड़ गयी।

"इतनी चिन्ता की कोई बात नहीं है" मैंने कहा—"तुम और मैं भले ही भूखा मरने लगें, पर ये लोग कभी भूखा नहीं मर सकते, पेट पालने का ढंग अच्छी तरह जानते हैं—एक उपाय में सफल न हुए तो तत्काल दूसरा उपाय खोज निकालते हैं। फिर भी यह जरूरी है कि मिल्विया से तुम पढ़ो—ऐसा करने से हम लोगों की तरफ से कुछ सहायता उसे, उसके परिवार वालों को मिल जायगी।"

"अच्छा, ऐसा क्या नहीं करते कि मेरे बिना पढ़े ही उसे योंही सौ रुपया माहवार दे दिया करो।"

'पर वह इस तरह के दान को स्वीकार नहीं करेगी। अँग्रेजी परम्परा में पली हुई लड़की है। कोई न कोई बहाना इस दान के लिये चाहिये।"

मनिया ने मेरे प्रस्ताव के प्रति अपनी मौन सम्मति प्रकट की।

दूसरे दिन दोपहर को मिल्विया फिर आयी। उसके सुन्दर मुख पर वही मौन उदास छाया घिरी हुई थी। मैंने प्रसन्न भाव से कहा—"गुडमार्निंग मिस रॉबिन्सन! अब आप निराश न होइएगी, मनिया को कोई आपत्ति न होगी।'

एक सलज्ज मुसकान ने उसके मुख की सारी उदासी जैसे धो दी।

उस दिन मनिया पूरी लगन से अपना पाठ सीखने में जुट गयी। उसने पूरी वर्णमाला छापे की बड़ी लिखावट में लिख डाली। उसके बाद मिल्विया ने उसी दिन उसे छोटी लिखावट भी सिखाना आरम्भ कर दिया। मनिया की दिलचस्पी बढ़ने लगी। उसने सोचा होगा कि हिंदी की तरह अँगरेजी में भी वर्णमाला एक ही तरह की होगी। पर जब

उनने छोटी लिखावट म चित्र रूप देखा तो उसस घबराने के बजाय उसका कुतूहल उस नयी भाषा के प्रति जम और बढ गया। वह उसे भी जल्दी से जल्दी सीख डालने के अभ्यास म जुट गयी। उसके बाद सिल्विया न जब उसे बताया कि वह छापे की लिखावट है, हाथ की लिखावट का रूप उसस बदला हुआ होता है तो यह उसे एक अच्छा विनोद मालूम हुआ और वह जब हाथो उस नये रूप से भी परिचित होने का अभ्यास करने लगी।

उस दिन म मनिया की दिलचस्पी बढती ही चली गयी और वह प्रतिदिन पूरे तीन घंटे एकाग्र मनोयोग के साथ अँगरेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से जुटी रहती। मुझे लगा कि जैसे वह उस रहस्यमयी भाषा को जल्दी म जल्दी सीख डालने के लिये बहुत उत्सुक हो उठी है जिसम सिल्विया मुझसे अपनी मा से और अपनी बहन स बातें किया करती है। एक ही हफ्ते के भीतर वह दो एक छोटे मोटे वाक्य टूटी फूटी अँगरेजी म सिल्विया स बोलने भी लग गयी। सिल्विया का उत्साह भी बहुत बढ गया था और वह भी मनिया का अँगरेजी ज्ञान जल्दी स जल्दी बढाने के उद्देश्य म अपनी सारी शक्ति लगा रही थी।

मनिया को एक नये शगल म तल्लीन देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। मैंने सोचा कि अपने दुखी जीवन म जो असाधारण रूप से भयावह अनुभव उसे हुए हैं उनके कारण उसके अंतमन में विचित्र मनोभावो का जाल सा फलकर उलझ गया है। उस उलझन से वह सब समय घिरे रहती है और उसे भूलना चाहने पर भी भूल नही पाती। पर इस नये शगल म व्यस्त रहने पर वह निश्चय ही मन के मार्मिक घावो को भूल सकेगी।

जब सिल्विया पढाने आती तब मैं बाहर निकल जाता था। या तो मिसेज राबिन्सन से गपशप करने चला जाता या शहर की ओर निरुद्देश्य टहलने निकल पडता।

सुबह के समय मैंने उसे एक या दो घंटा नियमित रूप से हिन्दी पढाना आरम्भ कर दिया। हिन्दी वह अँगरेजी से भी दुगनी तेजी से सीखने लगी। बीच-बीच म आनेवाले संस्कृत के कठिन शब्दो का अर्थ वह

मन ही मन जसे रटती जा रही थी। एक बार एक शब्द का अथ मालूम हो जाने पर दुबारा बताने की जरूरत मुझे कभी नहा पडी।

मई का महीना बीत ही चुका था। जून का महीना भी पूरा बीत गया। वषा बडी तेजी से शुरू हो गयी। धीरे धीरे जुलाई भी बीत चला। बाहरी विश्व के घनान्धकार मे भीतरी विश्व के प्रकाश को और अधिक तीव्रता से चमकाने की आवश्यकता आ पडी। और मनिया इसका पूरा पूरा लाभ उठाकर अध्ययन म और अधिक मनोयोग से जुट गयी।

१७

मेरे मन मे अब केवल एक ही बात की चिंता रह गयी थी। मैं चाहता था कि मनिया से मेरा वैवाहिक सबध घर लौटने के पहले ही हो जाय। पर इसमे सबसे बडी रुकावट मेरे सामने यह आ गयी थी कि मनिया अपने को बौद्ध मानती थी और स्वेच्छा से हिंदू धम मे दीक्षित होना नही चाहती थी। सिविल मरिज के लिये तो वह किसी भी हालत मे तयार नही हो सकती थी। एक दिन मैंने उसके आगे फिर यह प्रस्ताव रखा कि वह हिंदू धम स्वीकार कर ले। मैंने कहा—"अगर आय समाज मे तुम्हारी शुद्धि हो जाती है तो फिर हम दोनो के विवाह मे किसी तरह की भी कोई बाधा नही रह जाती।'

पर 'शुद्धि' शब्द पर उसने आपत्ति प्रकट की। उसने कहा—"मुझे तुम 'अशुद्ध' क्या मानते हो, जो मेरी 'शुद्धि' की बात चलाते हो? बौद्ध लोग हिंदुओं स किस रूप म गिरे हुए हैं?"

"तुम मेरी बात का गलत अथ लगा रही हो," मैंने कहा। "मेरा तात्पय यह कदापि नही है कि बौद्ध लोग अशुद्ध हैं। पर जब किसी व्यक्ति को दूसरे धम मे ले लिया जाता है तब उसके लिये यह कहा जाता है कि

उसकी 'शुद्धि' हो गयी है। बोलचाल में बहुत से शब्द ऐसे चल जाते हैं जिनका मूल अर्थ से कोई संबंध नहीं रहता। 'शुद्धि' शब्द भी आजकल एक विशेष अर्थ रखता है जो मूल अर्थ से भिन्न है।"

"पर तुम इस बात के लिये इतना हठ क्यों पकड़े बैठे हो कि मैं हिन्दू बन जाऊँ ?"

"मैंने हिन्दू धर्म का ठीका नहीं ले रखा है, और न मेरी यही इच्छा है कि हिन्दू धर्म को मानने वालों की संख्या बढ़ती चली जाय। मैं तुमसे जो कहता हूँ वह सिर्फ इसलिये कि तुम्हारे हिन्दू धर्म स्वीकार कर लेने से हम दोनों के विवाह में सुविधा हो जायगी। नहीं तो हम दोनों के लिये सिविल मैरिज ही एकमात्र उपाय रह जाता है। सिविल मैरिज में वर और वधू दोनों को यह स्वीकार करना पड़ता है कि वे कोई धर्म नहीं मानते। तुम यह स्वीकार कभी नहीं करोगी, यह मैं जानता हूँ।"

मनिया मेरी इस बात से बड़े सोच में पड़ गयी। कुछ देर बाद बोली— 'अगर मुझे धर्म बदलना ही होगा तो मैं ईसाई बन जाऊँगी— हिन्दू किसी भी हालत में नहीं।'

"क्या, हिन्दू धर्म के प्रति तुम्हारे मन में इस कदर घृणा क्यों है ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

घृणा नहीं है, एक तरह का डर है। मेरे मन के भीतर से जैसे कोई कहता है कि हिन्दू धर्म को अपनाते ही मैं इस दुनिया में कहीं भी नहीं रह जाऊँगी।

मैंने देखा कि उसके भीतर जो भाव छायाएँ दबी हुई पड़ी हैं उनमें से यह आशंका भी एक है। मैं बड़े सोच में पड़ गया। कुछ देर बाद मैंने पूछा—

"तो ईसाई धर्म तुम्हें पसंद है ? क्यों ? उसमें कोई खास बात है क्या ?

'हाँ। सिल्विया ने बताया है कि अगर सच्चे मन से भगवान ईसा से प्रार्थना की जाय तो मनुष्य के सब पाप कट जाते हैं। उसने कहा कि अगर मैं अपनी माँ के लिये भी प्रार्थना करूँ तो उसने जो हत्या और

आत्महत्या की है उसका सारा पाप धुल जायगा और पर-
लोक मे उसकी आत्मा शांति से रह पायेगी।" अपनी सुंदर, छोटी-सी आँखो म एक पारलौकिक आभा-सी झलकाती हुई मनिया बोली।

"तो तुमने अपनी माँ का किस्सा सिल्विया से भी कह सुनाया है?' धीमे स्वर म मैंने कहा।

"हा। क्या इसमे कोई हानि है? सिल्विया इतनी अच्छी लड़की है कि मैं उनसे अपने मन की कोई बात छिपा ही नहीं पाती। इसके अलावा उसने मुझे यह समझाया है कि जितने भी आदमियो से मेरी जान-पहचान है, उन सबके आगे अगर मैं अपनी माँ का किस्सा सुनाऊँ तो इससे मेरे मन का बोझ बहुत हल्का हो जायगा, और साथ ही परलोक म मा की आत्मा को भी शांति मिलेगी।"

सिल्विया के स्वभाव के इस नये पहलू से परिचित होकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। तो क्या वह कोई मिशनरी लड़की है? मनिया को पढ़ाना क्या उसने इसीलिए स्वीकार किया है कि वह उसे ईसाई धर्म की विनयता का पाठ पढ़ाकर उसे अपने धर्म म दीक्षित लेगी? रह रहकर मेरे भीतर क्रोध की भावना जगने लगी।

मैंने कहा—"अगर सिल्विया ने तुमसे ऐसा कहा है तब तो वह बड़ी खतरनाक लड़की मालूम पड़ती है। तुम हर्गिज अपनी मा की कथा किसी से न चलाना। इससे तुम्हे कभी लाभ नही हो सकता, बल्कि परेशानी ही बढ़ेगी।"

मेरी बात सुनकर मनिया अत्यंत शांत भाव से मुस्करायी जैसे किसी बच्चे की नादानी से भरी बात सुनकर प्रेम से हँस रही हो। बोली—"तुम बिलकुल चिंता न करो। मेरी परेशानी बिलकुल भी नहीं बढ़ेगी। सिल्विया को तुम अभी नहीं जानते। वह बड़ी ही समझदार, दूसरो पर दया करने वाली और सबकी भलाई चाहनेवाली लड़की है। वह कभी गलत सलाह मुझे नहीं दे सकती।"

मनिया के दृढ़ विश्वास पर मैं दंग रह गया। मैं यह सोचकर हैरान था कि सिल्विया ने कुछ ही सप्ताहों के भीतर कौन-सा जादू उस पर फेर

दिया ? क्या मेरी ही तरह वह भी किसी हिप्नाटिक कला की जानकारी रखती है ? और मनिया के सरल और अनु-ल स्वभाव से परिचित होकर उसका अनुचित लाभ उठाने का कर रही है ?

फिर मेरे मन में यह तर्क उठा कि मुझे यह कहने का क्या धिकार है कि सिल्विया अपनी हिप्नोटिक कला से प्रयार में नाजायज दा उठा रही है, जबकि मैं स्वय इस अपराध का अपराधी हूँ ? दूसरे ही क्षण मुझे याद आया कि मैंने केवल इस उद्देश्य से मनिया अपने वश में करने का प्रयास नहीं किया है कि वह मेरा आत्मतुष्टि लिये मुझसे प्रेम करे, बल्कि इसलिये कि मैं उसके अटके हुए, जीवन-थ में पिस हुए और पारिवारिक दुर्घटनाओं की ग्लानि में पीड़ित मन ठीक रास्ते पर लाना चाहता हूँ। और सिल्विया ? वह केवल इस श्य से उस बहकाना चाहती है कि ईसाई समाज में एक ईसाई की या और बढ़ जाय। ईसाई पादरियों को इस तरह का धर्मा में ग्निना मिलता है इसके कई उदाहरण मेरे सामने थे।

पर इस तरह के तर्क से मेरे मन को तनिक भी शान्ति नहीं मिलती और मैं रह रहकर अपने आपसे खीझ उठता था। सिल्विया को बहुत ही भयकर रूप से धूर्त नारी मानने की इच्छा उठने पर भी रा यह विश्वास अधिक देर तक ठहर नहीं पाता था।

एक लम्बी सांस खींचते हुए हताश स्वर में मैंने कहा—' मैं जिस लझन को सुलझाना चाहता था उसे तुमने और अधिक उलझा दिया, मनिया !

'कैसे ?

"मैं चाहता था कि जल्दी ही कोई ऐसा हल निकल आवे जिससे ब्याह में कोई झंझट न रह जाय। पर अब तुमने ईसाई धर्म को अपनाने की बात बताकर एक नयी परेशानी मेरे लिये पैदा कर दी !"

' इसमें परेशानी की कौन सी बात है ? सहज भाव से मनिया बोली— 'जब किसी एक धर्म को अपनाना है ही तो ऐसे धर्म को क्यों न अपनाया जाय जो मन को ज्यादा सन्तोष दे सके ? '

"पर यह तुमने कैसे मान लिया कि किसी एक धर्म का मानना जरूरी है ? क्या न हम लोग सब धर्मों को लात मारकर सिविल मैरिज कर लें ?" मैंने पूरी गंभीरता के साथ कहा।

मनिया अपने दाँतों से जीभ काटती हुई भयभीत भाव से बोली—"अरे बापरे ! ऐसी बात भूलकर भी न कहना ! किसी भी धर्म का सहारा जब नहीं रहेगा तब जीकर ही हम लोग क्या करेंगे ? यह लोक तो मेरा बिगड़ ही चुका है, पर परलोक के लिए तो कोई सहारा रहने दो !"

ऐसी दयनीयता से उसने यह बात कही कि मुझे लगा जैसे किसी ने मेरे मर्म को एक झलमलाती तेज छुरी की नोक से छू दिया।

मैंने देखा कि मनिया के मन के भीतर की जो मिट्टी है वह तल से सतह तक एकमात्र धार्मिक उत्पादन के लिए ही उपयुक्त है। चाहे उसमें भूत प्रेत, यक्ष, दानव आदि की पूजा की भावना भर दी जाय, चाहे अवतारी पुरुषों की, चाहे देवों की। किसी न किसी रूप में उस भावना का अस्तित्व होना ही चाहिए। उस भावना के अभाव में उसका सारा मनःक्षेत्र एकदम बंजर और उजाड़ हो जाने की आशंका है।

पर इस जानकारी से उस समस्या का कोई समाधान नहीं हो सकता था जो मेरे सिर पर सवार थी। क्योंकि यह निश्चित था कि अब अधिक समय तक विवाह को नहीं टाला जा सकता था। मेरे सामने केवल दो रास्ते थे। या तो जल्दी ही मनिया से मेरा विवाह हो जाय, या फिर मैं उसको सदा के लिए त्याग दूँ। क्योंकि बिना किसी धार्मिक बन्धन के मनिया मेरे साथ किसी प्रकार का निश्चित और घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तैयार न थी, यह मैं पहले ही जान चुका था।

उस समय मैं चुप ही रहा। पर जो तीखा काँटा मेरे मस्तिष्क में गड़ गया था वह मुझे चैन नहीं लेने देता था। तब से चौबीसों घंटे मेरे मन में इसी बात को लेकर उधेड़-बुन चलने लगी कि इस संकट से उबरने का क्या रास्ता हो सकता है। यह बात पहली बार मेरे मन में उठी कि यदि मैं इस्लाम धर्म को स्वीकार कर ही लूँ तो इसमें क्या हानि है ? उस

हालत म आसानी से झंझट मिट सकता है, क्योंकि मनिया तो उस धम को अपनाने के लिये तयार बैठी ही है। पर जिस धम पर मेरी तनिक भी आस्था न हो उसे आडम्बर के साथ अपनाना और अपने सगे-सम्बन्धियों और इष्ट मित्रों को सफाई देते फिरना या उनकी सम्मिलित निंदा का शिकार बनना, इसमें कौन सा तुक है? एक अच्छे-खासे तमाशे का पात्र बनकर परिहास और व्यंगबाणियों को सहन करने का साहस क्या मुझमें है? हिन्दू धम पर भी मेरा विश्वास नहीं था, पर मैं उसे बाहरी तौर से यह सोचकर अपनाये हुए था कि एक चीज जब परम्परा से चली आती है तो उसे चलने दो—कौन उसे अस्वीकार करके सामाजिक झंझट अपने सिर पर मोल ले! अर्थात् किसी भी संघर्ष में पड़ने और किसी भी प्रकार के सामूहिक विरोध या प्रतिरोध का सामना करने की प्रवृत्ति मुझमें कभी नहीं रही। अब यदि मैं एक परम्परागत धम का बिल्ला त्यागकर किसी ऐसे धम के बिल्ले को अपनाऊँ, जिसमें मेरी और भी कम श्रद्धा हो, और उस अवांछित परिवतन के लिये मैं जग हँसाई का पात्र बन तो इससे बड़ी मूखता दूसरी क्या हो सकती है? एक दूसरा रास्ता यह हो सकता था कि मैं बौद्ध धम को अपनाता, पर जैसा एक धम वैसा ही दूसरा धम!

२५

एक दिन मैं दोपहर को मिलिया के आने पर जो बाहर निकला तो शाम को ही घर लौटा। माल में एक परिचित सज्जन मिल गये थे, उन्होंने व्यथ की बातों में मुझे उलझा दिया और बलपूवक अपने यहाँ पकड़कर मुझे ले गये। उनकी खातिरदारी से मुक्त होने में देर हो गयी। किसी तरह उनसे पिंड छुड़ाकर घर पहुँचा। दरवाजा खुला था, मैं सीधे अपने कमरे में गया। मनिया वहाँ नहीं थी। मैं उसके कमरे की ओर बढ़ा। कमरा आधा

खुला हुआ था। मैं ज्यों ही भीतर प्रवेश करने लगा त्योंही ठिठक कर खड़ा हो गया। मैंने देखा, मिल्विया और वह एक दूसरे के गले से लिपटी हुई हैं और दोनों मुंदी हुई आंखों से टपाटप आंसू गिरा रही हैं। जैसे न जाने कितने जन्मों के बाद दो बिछुड़ी हुई प्रेमिकाओं के बीच भाग्य के किसी अज्ञात चक्र से पुर्नमिलन हो पाया हो! उन दोनों की उस तद्गत और एकांत अवस्था में किसी प्रकार का विघ्न डालने का साहस मुझे नहीं हुआ। मैं तत्काल दबे पाँव अपने कमरे की ओर लौट चला।

प्रायः पन्द्रह मिनट तक मैं चुपचाप बैठा रहा। उसके बाद मैंने खांसना शुरू कर दिया। खांसी सुनने के बाद भी कुछ देर तक मनिया नहीं आयी। जब आयी तब वह अपनी आंखें पोंछ चुकी थी। सहज स्निग्ध मुसकान से मेरा स्वागत करती हुई वह बोली—"आज तुम बड़ी देर से लौटे!'

"हां एक मित्र मिल गये थे। उन्होंने रोक लिया। तुम्हारी तबीअत तो ठीक है? चेहरा कुछ उदास सा लगता है।"

"तबीअत बिलकुल ठीक है। उदासी का कोई कारण नहीं है।", बहुत ही कोमल और बहुत ही मधुर स्वर में मनिया बोली। उसके कंठ स्वर में कर्कशता कभी नहीं रही, पर आज की सी कोमलता और मिठास भी पहले कभी नहीं रही।

"सिल्विया चली गयी?'

'नहीं, आज वह अभी तक यहीं बैठी रह गयी।'

"तब तो आज खूब पढ़ाई हुई होगी!'

"नहीं, उसी सहज स्निग्ध मुसकान से और उसी कोमल स्वर में मनिया बोली—"पढ़ाई तो ज्यादा नहीं हुई। पर बहुत-सी बातें हुई।

इतने में सिल्विया मेरे कमरे में आकर, एक बार मेरी ओर सलज्ज मुसकान भरी दृष्टि से देखकर, बिना कुछ कहे-सुने बाहर चली गयी।

"क्या बातें हुई?"

'उसने बताया कि आदमी से प्रेम करने में जो कुछ सुख है उससे लाख गुना सुख है भगवान से प्रेम करने में।'

"तब क्या वह तुम्हें यह बता गयी है कि किसी आदमी से प्रेम कभी न करना ?" मैंने शकित भाव से पूछा।

'नहीं, उसका कहना है कि आदमी से प्रेम करो, पर आदमी के भीतर पहले भगवान का देख लो और उसे अच्छी तरह पहचान लो, तब तुम्हारा प्रेम भगवान के चरणों मे ही अर्पित होगा।' उसके मुख पर वही स्थिर शात मुसकान विराज रही थी। उसके मुख पर एक ऐसी सौम्य शांति झलक रही थी जैसी मैंने पहले कभी नही देखी थी। एक उद्दीप्त भाव से उसका चेहरा जगमगा उठा था। मैं जन्म से ही नास्तिक रहा हूँ। किसी धार्मिक कारण से उत्पन्न भावुकता के प्रति मेरे मन म कभी श्रद्धा नही रही है। पर आज मनिया की भावुकता ने उसके शारीरिक सौन्दर्य म एक अपूर्व चेतना भरकर उसका जो उदात्त रूप मेरे आगे रख दिया था उसकी उपेक्षा मैं तनिक भी नही कर पाता था। उस अज्ञात रहस्यमयी चेतना की वास्तविक किरणें जैसे मेरे प्राणों के ऊपर छाये हुए जड अवसाद के अणु-परमाणु को ध्वस्त करके सीधे भीतर प्रवेश करती हुई एक मूलत नयी अनुभूति को उभारने लगी थी। मनुष्य के भीतर भगवान के निवास की बात मेरे लिये कोई नयी जानकारी नही थी। इस तरह की बातें मैं कई बार पहले भी सुन और पढ चुका था। पर मनिया की भावुकता कोरी सिद्धांतवादिता से बहुत ऊपर उठी हुई और बहुत गहराइ म डूबी हुई-सी मुझे लगी।

फिर भी मेरे मन म एक बार यह व्यग करने की इच्छा उठी कि "तुम्हारे और सिल्विया के बीच अभी कुछ ही देर पहले जो प्रेमभाव चल रहा था वह भगवान का प्रेम भगवान के प्रति था या मनुष्य का मनुष्य के प्रति ? अपनी इस नीच प्रवृत्ति को दबाने मे मैं बडी कठिनाइ से सफल हो पाया। फिर भी परिहास करने से मैं न चूका—' मेरे भीतर तुमने भगवान पा लिया है या नही ?"

मेरे परिहासात्मक ढंग से तनिक भी विचलित न होकर मनिया उसी शात भाव से बोली— मुझे विश्वास है कि मैं जल्दी ही पा लूगी। सिल्विया ने जो कुञ्जी मुझे बतायी है उससे कोई कठिनाई नही पडेगी '

"वह कौन-सी कुञ्जी है ?

"वह तुम्हें वतान की नही है "

"पर मेरे भगवान से तुम कोई वात छिपा नही पाओगी, यह तुम जान लो।"

मैंने सोचा था कि अब की निश्चय ही मनिया के भीतर से हँसी फूट पडेगी। पर मैंने आश्चय मे देखा, मेरे इतनी वडी परिहासिकता का भी प्रभाव उस पर नही पडा। सहज गम्भीर भाव से उसने कहा—"यह मैं जानती हूँ, और भगवान से छिपाने की कोई बात मेरे भीतर है भी नही।"

मैं सन्न था। कुछ क्षणो तक एकात दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा उसके बाद वाला—"तुम अभी तक खडी क्यो हो? बैठ जाओ।

वह बैठ गयी। मैने नौकर को आवाज दी और चाय ले आने को कहा।

उस रात मैं पलँग पर बहुत देर तक करवटें बदलता हुआ सोचता रहा कि सिरिकया का ससग मनिया के लिये हितकारी है या नही। मैं स्पष्ट ही देख रहा था कि उसने मनिया के मन की बडी गहराई पर कब्जा पा लिया था। मन सोचा—"वह मनिया की भावुकता से पूरा लाभ उठाकर, उसके मन की मिट्टी को वडे गहरे मे खोदकर उसमे अपनी इच्छा के अनुसार बीज बोती चली जा रही है। और एक दिन जब वे बीज पाप कर वडे-वडे पौदो के रूप मे मनिया के सारे मन को छा देंगे तब फिर कोइ युक्ति उन बीजो को साफ करने की नही रह जायगी। इसलिये अभी से सावधान होकर वर्तमान वातावरण को छोड कर कही दूसरी जगह चले जाने मे ही भलाई है।" मैंने निश्चय किया कि मैं दूसरे ही दिन किसी दूसरे स्थान मे एक नये बँगले की खोज करूँगा।

यह निश्चय कर लेने के बाद मैंने निश्चिन्त होकर सो जाने के इरादे से अपने शरीर मे कवल अच्छी तरह लपट लिया। थोडी ही देर बाद सचमुच नीद आ गयी। प्राय ढाई तीन घटे तक मैं एक करवट सोया रहा। उसके बाद कोई एक विचित्र सपना देखने के बाद मेरी नीद उचट

गयी। सपना कुछ डरावना था, पर ठीक क्या देखा था यह मैं नींद उचटते ही तत्काल भूल गया। आँख खुलते ही मैंने देखा कि मनिया के कमरे में बत्ती जली हुई है। यह जानने के लिये कि उसकी तबीयत तो ठीक है, मैं उठा। उसके कमरे के दरवाजे के किवाड़ यों ही फेर दिये गये थे। उन दोनों के बीच में शून्य गैप रह गया था। उसी से झाँकते हुए मैंने देखा मनिया नीचे फर्श पर एक दरी बिछाकर घुटने टेककर बैठी हुई है। उसके सामने एक छोटा सा गमला रखा हुआ था, जो संगमरमर का बना हुआ सा लगता था। उसकी आँखें मुँदी हुई थीं और उनसे निरंतर आँसुओं की धारा बह रही थी। मैं उस दृश्य के लिये कतई तैयार नहीं था हालांकि पिछले कुछ दिनों से मिनिया के मनोगत भावों में रहने से उसकी मानसिक प्रगति के जो दृष्टान्त मेरे सामने थे उन्हें देखते हुए वह दृश्य मुझे आश्चर्यजनक नहीं लगना चाहिये था। मैं दरवाजे के बाहर ही पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा रह गया और निर्निमेष दृष्टि से उसके उस अपूर्व कल्पित रूप को देखता रहा। खड़े-खड़े मुझे पाँच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट, बीस मिनट और उसके बाद आधा घंटा हो गया पर वह नहीं उठी। अतीन्द्रिय पुलक से विह्वल, अलौकिक प्रेम से गद्गद् अवस्था में एकान्त ध्यान में मग्न बैठी रही। मैं भी वैसे ही खड़ा रहा, टस से मस न हुआ, जैसे किसी ने मेरे पाँवों को कीलों से ठोककर वहीं पर जमा दिया हो। पाँवों में झुनी चढ़ गयी पर उसकी कुछ भी परवाह मुझे नहीं थी। उसी अवस्था में मुझे जब प्रायः आधा घंटा और बीत गया, और उसकी तद्गत अवस्था के भंग होने का कोई लक्षण मुझे न दिखायी दिया तब मैं प्रायः अनिच्छा से, चुपचाप दबे पाँव लौट चला।

पलँग पर लेटे लेटे सोचने लगा कि मनिया कहाँ से कहाँ चली जा रही है, और दिन पर दिन मुझसे कितनी दूर होती जा रही है! यदि तुरन्त ही उसे उस नये मार्ग से लौटाया नहीं जाता, जहाँ वह आत्मविस्मृत होकर किसी अपार्थिव शक्ति के प्रबल आकर्षण से बड़ी तेजी से अग्रसर होती चली जा रही है, तो यह निश्चित है कि बहुत जल्दी फिर उसके और मेरे बीच में एक दुर्लंघ्य व्यवधान खड़ा हो जायगा। किस उपाय से उसे लौटाया जाय, मैं यही चिंता करने लगा। कुछ देर तक एकान्त

मन से सोचने पर एक उपाय मुझे सूझ गया। मैंने निश्चय किया कि सुबह होते ही उस उपाय को काम मे लाऊँगा।

प्राय दो घंटे बाद मनिया ने अपने कमरे की बत्ती बुझायी, और लेटे ही लेटे, आवाज से मैंने अनुमान लगाया कि वह अपने पलँग पर जाकर लेट गयी है। उसके कुछ ही देर बाद मेरी भी आँखें लग गयीं।

दूसरे दिन मैं कुछ देर से उठा। मनिया पहले ही से नहा धोकर ड्राइंग रूम में उठ गयी थी और चाय के लिये मेरा इंतजार कर रही थी। मैं बिना हाथ मुँह धोये ही बैठ गया। मैंने देखा मनिया के मुँह पर रात्रि जागरण जनित थकान का लेश भी वर्तमान नहीं है, बल्कि वह पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक स्वस्थ और सुंदर दिखाई देती थी। एक ऐसी अपूर्व ताजगी उसके चेहरे पर झलक रही थी जिसका कोई आभास मुझे इससे पहले कभी नहीं मिला था। जब से वह मेरे संसर्ग में आयी थी तब से मैं बराबर उसके मुख पर विषाद और ग्लानि की एक स्थिर छाया देखता आ रहा था। यह ठीक है कि कुछ विशेष अवसरों पर उस स्थिर छाया के ऊपर साँझ की पीली धूप का एक झीना आवरण झलक उठता था, पर वह आवरण संध्या के आलोक की तरह शीघ्र ही अस्तगत हो जाया करता था। किंतु आज मैंने देखा कि स्थिर विषाद की वह छाया स्थिर शांति में बदल गयी है और उसकी आत्मा की सारी ग्लानि जैसे धुल कर एक सरल, अमल, स्फटिकोज्वल आलोक में बदल गयी है। क्षण भर के दृष्टिपात से मेरे मन में उसके उस नये रूप के प्रतिबिंब की यह प्रतिक्रिया हुई और तुरंत ही मेरे मन में बिजली की-सी चमक से यह तर्क उठा—जिस कारण से मनिया के व्यक्तित्व के बाहरी और भीतरी रूपों में इतना बड़ा और ऐसा स्वस्थ परिवर्तन हुआ है वह चाहे कुछ भी हो, उपेक्षणीय कदापि नहीं हो सकता। उसका प्रेरक चाहे कोई भी हो, उसे तिरस्कार का भाजन मानना कदापि न्यायोचित न होगा। और इस तर्क के उठते ही मेरे मन में उस मन्त्र के प्रयोग की इच्छा ढीली पड़ गयी जिसके सम्बन्ध में मैंने पिछली रात निश्चय किया था।

१९

मनिया मुझे बिना हाथ धोये ही चाय के लिए बैठते देखकर मुस्करायी। एक दिन था जब मैं उसे दयनीय मानता था और इस बात की चेष्टा में रहता था कि मेरे बड़प्पन के आगे उसके भीतर आत्मलघुता की भावना पनप न पाये। पर आज उसकी जो मुसकान परिपूर्ण आत्मविश्वास से प्रेरित होकर व्यक्त हो रही थी उसके आगे मैं स्वयं अपने को लघु अनुभव करने लगा था और संकुचित सा हो उठा। आज वह दयावती थी और मैं दयनीय था।

"रात में तुम्हें नींद नहीं आयी थी?" मेरे प्याले में चाय ढालते हुए उसी दयापूर्ण—तथापि सद्भाव से पूर्ण—मुसकान को मुख पर झलकाते हुए उसने पूछा।

मैं अपनी प्रकृति की दुष्टता को चाहने पर भी दबा न सका। बोला—"तुम्हारा अनुमान ठीक ही है। कल रात तुम्हारे कमरे की बत्ती बहुत देर तक जलते देखकर मुझे देर से नींद आयी।"

"अच्छा!" अत्यंत चिंतित भाव से वह बोली—"तब मैं आज से पिछवाड़े के कमरे में चली जाऊँगी। रात में मुझे अक्सर बत्ती देर तक जलानी होगी जिससे तुम्हारी नींद फिर खराब हो सकती है!" यह कह कर उसने अपने प्याले में चाय ढाली।

"क्यों? बत्ती देर तक क्या जलानी होगी?" बनते हुए मैंने पूछा।

"मुझे भी आजकल नींद कम ही आती है, इसलिए बीच-बीच में भगवान का ध्यान करने की इच्छा होती है।"

"बुद्ध भगवान का ध्यान?" यह प्रश्न करते हुए मैं जान रहा था कि मेरी दुष्टता नीचता की ओर बढ़ रही है।

"नहीं, प्रभु ईसा का।" अत्यंत सरल भाव से उसने उत्तर दिया।

"तब क्या बौद्ध धर्म से तुम्हें विरक्ति हो गयी है?"

"नहीं तो! ऐसा तुम क्यों सोचते हो?"

"इसलिए कि तुम भगवान बुद्ध का ध्यान करना छोड़कर ईसा का ध्यान करने लगी हो! मैं तो समझता था कि बौद्ध धर्म पर तुम्हारी बड़ी आस्था है। तुमने मुझसे कहा था कि तुम बौद्ध धर्म त्यागकर हिंदू धर्म कभी स्वीकार नहीं करोगी। साथ ही तुमने यह जरूर कहा था कि यदि

तुम्हें धर्म बदलना ही पड़ेगा तो तुम ईसाई धर्म स्वीकार करोगी। 'यदि बदलना ही पड़ेगा' का अर्थ स्पष्ट ही यह है
कि यदि तुम्हें बाध्य न किया जाय तो तुम बौद्ध धर्म का त्यागने के लिये कतई तैयार नहीं हो और इसका आशय मैंने यही समझा था कि बुद्ध भगवान के प्रति तुम्हारे मन में जितनी बड़ी भक्ति है उतनी दूसरे किसी के प्रति नहीं। पर आज यह जानकर कि तुम आधी रात में जागकर बहुत देर तक एकांत में प्रभु ईसा का ध्यान किया करती हो, मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं।" यह कहते हुए मैंने अवन और उसके प्याले में दूध डाला और चम्मच से चीनी मिलाने लगा।

मैंने सोचा था कि मेरी इस बात से मनिया निरुत्तर हो जायगी और झेंप जायगी।

पर वह तनिक भी विचलित नहीं हुई। उसने अत्यंत सरल भाव से मेरी उस व्यंगोक्ति को ग्रहण किया। सहज स्निग्ध भाव से मंद मंद मुस्कराती हुई बहुत धीरे से बड़े ही मीठे और कोमल स्वर में बोली— 'तुम ठीक कहते हो! बौद्ध धर्म के प्रति मेरे मन में बड़ी आस्था रही है, और भगवान बुद्ध के प्रति भी " मनिया धीरे धीरे संस्कृत शब्दों को समझने और उनका प्रयोग भी करने लगी थी जो मेरे लिये वास्तव में एक बहुत बड़े हर्ष का कारण था।

"तब ? ' एक घूंट चाय पीते हुए मैंने कहा।

"पर सच्ची बात यह है कि बौद्ध धर्म के संबंध में मेरी जानकारी कभी कुछ भी नहीं रही और बुद्ध भगवान की केवल कागजी मूर्ति ही मैंने देखी है जो बाबा के पास थी और जिसके पास बैठकर वह 'मनि पद्म हुम !' मंत्र जपा करता था। बौद्ध धर्म के प्रति मेरी आस्था का कारण मुझे केवल यही लगता है कि बाबा उस धर्म के संबंध में बड़ा कट्टर था। अपने पैतृक धर्म के प्रति मोह बिलकुल स्वाभाविक है। हिंदू धर्म से मेरा कभी कुछ भी संबंध नहीं रहा है, इसलिये उसके प्रति मैं उदासीन हूँ '

"तुम गलत कहती हो मनिया", बीच ही में टोकते हुए मैंने कहा— "तुम हिन्दू धर्म के प्रति उदासीन नहीं हो, बल्कि उससे भागती हो। उस

धम के प्रति तुम्हारे मन मे—मैं विरोध तो नही कहूँगा—पर विरक्ति का भाव अवश्य है।'

इस बार मनिया के मुख के सहज शात भाव के ऊपर सहसा एक अधेरी छाया घिर आयी।

"मैं हिन्दू धम से भागती हूँ!" प्राय फुसफुसाते हुए उसने कहा। उसके बाद एक विचित्र अनमनी सी दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई बोली—"हाँ, तुम ठीक कहते हो! मैं जरूर भागती हू हिन्दू धम से! याद आ गया। मन हा तो कहा था तुमने! पर क्या भागती हू? इसका कारण क्या हो सकता है? यह मैं स्वय नही जानती। किसी भी हिन्दू से मेरा कभी काई वर नही रहा। हा बब्बा जरूर कहा करना था कि हिन्दुओ के चक्कर मे कभी मत पडना। वह तुम्हारी जिन्दगी खराब कर डालग। पर उसकी इस बात का कोई असर मुझ पर कभी नहा हुआ। मैं सुनकर केवल हस दिया करती थी! तब क्या कारण हा सकता है? यह जस किसी भूली हुइ बात को याद करने की चेष्टा करन लगी।

मैंन धूततावश कहा— अपने माथे पर हाथ रखकर कुछ दर गौर स सोचा ता शायद याद आ जाय।

उसन सचमुच एसा ही किया। और आश्चय की बात यह है कि वह कुछ ही दर बाद दबी हुइ जबान मे बोल उठी—"हा मुझे याद आ गया!"

'क्या?

मेरी मा हिन्दू थी—एक हिंदू परिवार म उसका जन्म हुआ हिन्दू सस्कारो के बीच म ही वह बडी हुइ और अत तक उसने अपने हृदय से कभी बौद्ध धम को नही अपनाया "

'पर तुम्हारी मा हिन्दू थी ता इसस तुम्हारे मन पर क्या बुरा प्रभाव पडा?

'पर इस चर्चा को छाडो, मैं तुम्हारे पावा पडती हू।' अत्यत गिडगिडाती हुई आवाज म उसने कहा। उसकी आँखा मे विषाद की छाया बहुत सघन हो आयी थी।

मैं चुप हो गया। अपने प्याले में जब दुबारा चाय डालने लगा तब मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि
मनिया का प्याला वैसे का वैसा ही रखा हुआ ठंडा हो गया है। मैंने कहा—"इस ठंडी चाय को गिरा दो। मैं गरम चाय डालता हूँ।"

"तुम पीओ। मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है।" फिर एक बार उसके मुख पर शांत प्रसन्न भाव झलक उठा। विषाद और ग्लानि की कड़वी घूंट मानो वह जैसे नीलकंठ की तरह पी गयी थी।

मैंने फिर कोई आग्रह नहीं किया। जल्दी से वह प्याला समाप्त कर मैं बाथ में उठकर चला गया। दोपहर को खाना खाने के बाद जब मैंने देखा कि मनिया का चित्त प्रसन्न है तब फिर मैंने कोच पर लेटे-लेटे, सिगरेट फूंकते हुए वही चर्चा छेड़ दी जो सुबह अधूरी रह गयी थी। मैंने कहा—"तुमने फिर यह बताया नहीं कि भगवान बुद्ध के स्थान पर तुमने भगवान ईसा की आराधना क्यों आरम्भ की?"

"मैं बता चुकी हूँ कि भगवान बुद्ध के धर्म के सम्बन्ध में मेरी जानकारी कुछ भी नहीं है। केवल अंधविश्वास से मैं उस धर्म को मानती रही थी—इस विश्वास में कि बच्चों की श्रद्धा जिस धर्म में है वह निश्चय ही श्रेष्ठ होगा। पर प्रभु ईसा के धर्म को समझने में मैं अपनी बुद्धि से काम लेने लगी हूँ। सिल्विया से मुझे इस सम्बन्ध में जो मदद मिली है उसके लिए मैं उसकी सदा ऋणी रहूँगी। मैं अँधेरे में भटक रही थी, उसने मेरी आँखें खोल दी हैं—सचमुच मेरी आँख खुल गयी हैं।" और यह कहते ही उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। जैसे यह जताना चाहती हो कि आँखें बंद कर लेने का अर्थ ही आँख खुलना है। और कोई अवसर होता तो मुझे इस बात पर शायद हँसी आती। पर उस समय तनिक भी हँसी नहीं आयी। जिस सघन अतीन्द्रिय छाया के भीतर से निकली हुई उद्दाम ज्योति से उसका मुख प्रभासित हो उठा था उसके आगे हँसी की कोई कल्पना ही मेरे मन में नहीं उठ सकती थी।

मैं कोच पर से उठकर पास वाली एक कुर्सी पर बैठ गया और सिगरेट राखदान में फेंककर उसकी उस भावमग्न छवि को देखता रह गया। मैं देख रहा था कि मूल बात टलती चली जा रही है, और उसके

समाधान में जितनी ही देर हो रही है, मनिया का दूरत्व भी उतना ही बढ़ता चला जा रहा है। 'यदि जल्दी से जल्दी उसका निपटारा नहीं होता तो मनिया तुम्हारे हाथ से सदा के लिए चली जायगी।' मुझे धक्का देते हुए किसी की अज्ञात वाणी मेरे कानों में कह रही थी।

कुछ देर बाद जब मनिया ने आँख खोली तब मैं अपने भीतर साग्र-अपरिग्रह साहस बटोरते हुए बोल उठा—'देखो मनिया, विवाह की बात दिन पर दिन टलती चली आ रही है, अब उसे अधिक टालना किसी हालत में भी उचित नहीं है। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया है कि इस सम्बन्ध में मैं तुम्हारी भी बात मान लूं। तुम अगर हिंदू धर्म के अनुसार विवाह के लिए राजी नहीं हो तो परवाह नहीं। मैं बौद्ध मत के अनुसार ही विवाह करने के लिए तयार हूं। किसी बौद्ध पुरोहित को पकड़ कर मैं जल्दी ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर लूंगा। बौद्ध धर्म को मैं हिन्दू धर्म की ही एक शाखा मानता हूं।'

मनिया जैसे स्वप्न से चौंक उठी। 'तुम यह क्या कहते हो? आश्चर्य का भाव जताती हुई वह बोली— मैंने कब तुमसे कहा कि तुम बौद्ध ... ठीक है कभी शायद मैंने कहा होगा। पर तब मैं नहीं जानती थी कि किस धर्म में क्या विशेषता है। आज भी मुझे बौद्ध धर्म की कोई जानकारी नहीं है। इसलिये मैं तो उसी धर्म को अपनाना पसंद करूँगी जिसके बारे में मुझे कुछ सोचने-समझने का मौका मिला है। अभी मैंने ईसाई धर्म स्वीकार नहीं किया है। पर यह निश्चय जान लो कि अब मैं अपने मन और प्राण प्रभु ईसा को सौंप चुकी हूँ।'

'और शरीर?' बिजली के वेग से मैंने प्रश्न किया।

मनिया ने जैसे ठिठककर एक बार बड़े गौर से मेरी ओर देखा। उसके बाद शान्त भाव से धीमे स्वर में बोली—"मेरे शरीर से प्रभु को कोई मोह नहीं है।'

"तो तुमने यह दृढ़ संकल्प कर लिया है कि तुम विवाह तभी करोगी जब मैं ईसाई धर्म स्वीकार करूँ?

"मैंने विवाह के संबंध में अभी कुछ भी निश्चय नहीं किया है।" शांत स्वर में मनिया ने कहा।

मुझे ऐसा अप्रत्याशित धक्का लगा कि मैं कुर्सी पर से गिरते गिरते रह गया। तब क्या मेरी इतने दिनों की प्रतीक्षा, इतने दिनों का धैर्य, इतने दिनों का संयम सब निष्फल सिद्ध होगा? मैंने अपने से यह प्रश्न किया। यदि मेरे सारे त्याग और सेवा का यही मूल्य उसे चुकाना था तो उसने पहले ही क्यों स्पष्ट शब्दों में यह सूचित नहीं कर दिया? इतने दिनों तक मैं अच्छे चक्करलस में फँसा रह गया! मुश्किल यह थी कि अपने उस छोटे से किंतु निश्चित उत्तर के बाद उसने मेरे लिये कोई बात भी कहने के लिये नहीं रख छोड़ी। मैं खिसियाकर चुप रह गया और एक नयी सिगरेट जलाने लगा।

मेरे मुख का भाव उस समय निश्चय ही अत्यंत दयनीय हो उठा होगा, क्योंकि मैं इस कदर मर्माहत हो उठा था कि चाहने पर भी अपने मनोभाव की बाहरी अभिव्यक्ति को दबाने में अपने को नितांत असमर्थ पा रहा था। सिगरेट जलाकर मैंने दियासलाई फर्श पर से दायीं ओर फेंक दी, और बायीं ओर की दीवार की ओर मुँह करके बड़ी तेजी से धुआँ उड़ाने लगा। मनिया की ओर मैंने देखा ही नहीं—देखने का साहस ही मुझमें नहीं रह गया था।

२०

कमरे में एकदम सन्नाटा छा गया था। न मनिया ही कुछ बोलती थी न मैं। कुछ देर बाद परिपूर्ण मौन की वह स्थिति अत्यंत अशोभन हो उठी, इसलिये मैं सहसा उठकर अपने कमरे में चला गया। वहाँ एक आराम-कुर्सी पर बैठकर सिगरेट पीता हुआ ठंडे मस्तिष्क से सारी स्थिति पर एकांत भाव से विचार करने का प्रयत्न करने लगा। उस दिन की और कुछ महीने

 पूर्व की स्थिति में कितना परिवर्तन हो गया था ! सबमें बड़े दुःख और आश्चर्य की बात जो मुझे लग रही थी वह यह थी कि आज मनिया की तेजस्विता के आगे मेरा सारा मनोबल क्षीण पड़ गया था। मुझे वे दिन याद आये जब मैंने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के प्रयोग से मनिया को हिप्नोटाइज करके उसके प्रत्येक मनोभाव पूर्णतः अपनी इच्छानुसार परिचालित करने में सफलता पायी थी। आज भी मैं उसी हिप्नोटिक अस्त्र का प्रयोग करना चाहता था, पर आज मैं अपने को इस कदर पस्त और और पराजित अनुभव कर रहा था कि उसके प्रयोग का उत्साह ही मुझे नहीं मिल रहा था। मैंने सोचा कि यही एकमात्र अस्त्र ऐसा हो सकता है जो मनिया को मेरे अनुकूल पथ की ओर लौटा सकता है। इसलिए मैं पूरे बल से अपनी मन:शक्ति को फिर से केन्द्रित करने के प्रयास में जुट गया। जब अपने भीतर मुझे काफी बल का अनुभव होने लगा, तब उस मानसिक पीड़ा की अवज्ञा करने में मुझे सफलता मिल गयी जो मनिया के रूढ़ किंतु निश्चित उत्तर से प्राप्त हुई थी। कुछ देर बाद सिल्विया मनिया को पढ़ाने आ पहुँची। मैंने देखा कि उसके मुख के भाव में इधर काफी परिवर्तन हो गया है। पहले मुझे देखते ही सकोच की जो जड़ता उसे घेर लेती थी उसका लेश भी अब नहीं दिखायी देता था। वह एक स्थिर गंभीर दृष्टि से परिपूर्ण आत्मविश्वास के साथ मेरी ओर देखकर दूसरे कमरे में चली गयी। मैं बाहर टहलने निकल गया और निरंतर परिस्थितियों के ऊपर—और ऊपर—उठने का प्रयास करता चला गया। यह मानसिक प्रयोग मुझे बहुत ऊँचा और लाभदायक मालूम हुआ।

संध्या को जब मैं घर लौटा तब मेरे मन में ग्लानि की भावना तनिक भी शेष नहीं रह गयी थी। मनिया से मैं सहज शांत और प्रसन्न भाव से मिला। मनिया ने जब मेरा वह बदला हुआ रूप देखा तब निश्चय ही उसे आश्चर्य हुआ होगा। उसकी आँखें भी यही बताती थीं। जब हम लोग खाना खाने बैठे तब मैं उसे बाहरी दुनिया की मनोरंजक घटनाओं का हाल हँस-हँसकर सुनाता रहा। न मैंने विवाह की कोई चर्चा चलायी न सिल्विया की, न भूत की और न भविष्य की। मनिया

भी मेरी वाता से अच्छे विनोद का अनुभव करती
हुई-सी जान पड़ी।

जब मेरा विनोदात्मक मनोभाव समाप्त हो गया और कमरे में कुछ समय के लिये मौन छा गया तब मनिया ने बहुत धीरे से, अत्यंत शांत स्वर में कहा—"तुमने आज दोपहर को जो बात मुझसे पूछी थी उसके संबंध में मैंने सोच लिया है "

मन में गड़े हुए जिस काँटे को बड़े प्रयत्नों के बाद भूल पाया था उसे मनिया ने फिर कुरेद दिया। मैं बोला कुछ नहीं केवल आहत भाव से, व्याकुल उत्सुकता भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। मुंह से मैंने इतना भी नहीं पूछा कि तुमने क्या सोचा है?' पूछने का साहस या प्रवृत्ति ही मुझे नहीं हुई।

मुझे मौन देखकर मनिया स्वयं बोली—"मैं विवाह के लिये तैयार हूं, पर शर्त यही है—कि हम दोनों नियमित रूप से ईसाई धर्म स्वीकार कर लें!"

मेरे मन का सारा संतुलन उलट गया और संयम ढह गया। मेज पर जोर से हाथ पटकते हुए मैंने भर्रायी हुई आवाज में कहा—'ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता, मनिया! मैं ईसाई धर्म स्वीकार करने को कतई तैयार नहीं हूँ—विशेष कर उस हालत में जब कि उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

'तुम्हें आवश्यकता नहीं है, पर मुझे तो है!" शांत किंतु दृढ़ स्वर में वह बोली।

'तुम्हें क्या आवश्यकता है? दृढ़ स्वर में मैंने कहा—"तुम बौद्ध हो और बौद्ध धर्म में ही तुम्हें डटे रहना चाहिये। मैं तुम्हारी खातिर बौद्ध धर्म स्वीकार करने को तैयार हूँ, क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, उसे मैं हिंदू संस्कृति का ही एक अंग समझता हूं।'

पर अब यह संभव नहीं है। मैं तुम्हें बता चुकी हूं कि मैं प्रभु ईसा के चरणों में अपना मन प्राण अर्पित कर चुकी हूँ। अब केवल एक ही रास्ता तुम्हारे और मेरे बीच शारीरिक और मानसिक संबंध स्थापित हो सकने का रह गया है। तुम चाहो तो उसे अपना सकते हो, और न

 चाहो तो न सही। जिस तरह इतने दिनों तक हम दोनो इतने निकट रहने पर भी एक दूसरे से एकदम दूर और अलग रह हैं वहा क्रम आग भी चल सकता है। तुमने मेरे लिय बहुत कुछ किया है, और तुम्हारे ही कारण सिल्विया से मैं मिल पायी इसके लिय बरा बर तुम्हारी ऋणी रहूगी। साथ ही मैं तुम्हें यह भी बता दूं कि जब तक तुम अपने से मुझे छोडकर नही चले जाओगे तब तक मैं कभी तुम्हारा साथ नहा छोडूगी। पर जो निश्चय मैं कर चुकी हू उसस हटना सभव नही है'

सहसा मेरे भीतर की सम्मोहन शक्ति जाग्रत हो उठा जा इधर कुछ दिना म एकदम सो-सी गयी थी। मैंन स्थिर दृष्टि स मनिया की ओर दखत हुए दढ स्वर म कहा—"सुनो मनिया, तुम्हारा निश्चय भ्रमपूर्ण है। उससे तुम अपने आपको धोखा दे रही हो। तुम्हे इसाइ धम की ओर से मुह मोडना होगा और जिस रास्त पर मैं चलने को कहता हू उधर ही चलना होगा। सिल्विया तुम्हारी घोर शत्रु है, उसका साथ तुम्हे छोडना होगा, और उसी धम म रहना होगा जिसे तुम्हारा बाबा

सहसा एक विचित्र ठहाका सुन कर मैं जसे स्वप्न से उचक उठा। पहल क्षण तो मैं इस चक्कर मे रहा कि अट्टहास का वह शब्द आया किधर से। दूसर ही क्षण मैंन देखा, मनिया एक ऐसे विचित्र स्वर म हँस रही है जसा मैंने पहले कभी उसके मुह स नही सुना था। हास्य के उस विस्फोट म मेरी 'सम्मोहन शक्ति बिखर कर चूर चूर हो गयी। और तब मैंन जाना कि जिस शब्द को मैं अट्टहास समझे बठा था वह वास्तव म मनिया की वही खिलखिलाहट थी जिस मैं कई बार पहले सुन चुका था। मेर मन की उस समय की अपेक्षाकृत असाधारण स्थिति मे वह खिलखिलाहट मुझे किसी के अट्टहास की तरह ही लगी थी।

उस खिलखिलाहट से मैं अत्यन्त लज्जित होकर अपनी पीठ कुर्सी की पीठ म अडाकर अपन दोनो हाथो स कुर्सी की दोनो बाँहो को पकडता हुआ हताश भाव स मनिया की ओर देखता रह गया। आज पहली बार सम्मोहन कला म अपनी इतनी बडी असफलता देखकर मेरा ध्यान अपनी नीचता की ओर गया। मुझे यह अनुभव होन लगा कि एक ऐसी ठगी

म रंगे हाथो पकडा गया हूँ जो इतने दिना तक मनिया स छिपी थी और आज जिसकी पोल मेरी चरम हीनता के
कारण खुल गयी है। मैं सोचने लगा कि मेरी उस 'अप्रत्याशित' असफलता का कारण क्या हो सकता है ? क्या मनिया न इन बीच सचमुच अपने भीतर इतनी बडी शक्ति जगा ली है कि मेरी इच्छाशक्ति का कोई प्रभाव अब उस पर नही पड सकता ? या मेरे ही भीतर इतनी कमजोरी आ गयी है कि उस परिपूर्ण आत्म विश्वास उस दृढ इच्छाशक्ति का अब सहसा अभाव हो गया है जो इतने दिना तक मनिया को इधर-उधर भटकने से रोककर अपनी ओर खीच लायी थी ? अथवा दोनो ही कारणो की सम्मिलित प्रतिक्रिया स ऐसा सभव हुआ है ?

२१

मनिया का खिलखिलाना अभी बद नहीं हुआ था। मेरा अपराधी मन अपनी हीनता के बोध से अधिकाधिक सकुचित हुआ चला जा रहा था। मैं लज्जा से गडा जा रहा था और उसस आँख मिलाने का साहस मुझमे नहीं रह गया था। आत्मलघुता की इतनी विकट अनुभूति मुझे पहले कभी नही हुई था।

जब उसका कहकहा कुछ थमा तो अपनी आखें पोछती हुई वह बोली—"तुम्हारी हँसी करने की आदत से मैं परिचित थी, पर यह नही जानती थी कि तुम इतने बडे नाटकी भी हो ! अरे बापरे ! तुमने तो आज वह रूप दिखा दिया कि पहले तो मैं सचमुच डर गयी थी। पर बाद म जब मैं समझ गयी कि तुम नाटक कर रहे हो तब मेरी हँसी रोके नही रुकी ! ओफ !" और फिर एक बार उसने हँसी के कारण निकले हुए आँसू अपने अचल से पोछ डाले।

खिसियानी बिल्ली खभा नोचती है और मैं भी मूर्खो की तरह

मुस्कराने की चेष्टा करता हुआ कुर्सी की बाँह को अपने नाखून से खुरचने लगा। एक बार मेरे मन में इच्छा हुई कि अपनी सफाई में उनकी धारणा का समर्थन करता हुआ कह दूँ कि मैंने सचमुच उन्हें हँसाने के उद्देश्य से नाटक ही रचा था। पर अपनी समस्त शक्ति के पूर्ण प्रयोग के बाद जो मार्मिक असफलता मुझे मिली थी उसने मुझे इस कदर पराजित कर दिया था कि अब बनने की भी स्फूर्ति मुझमें नहीं रह गयी थी। अपनी दीनता पर मुझे स्वयं तरस आ रहा था और यह आशंका होने लगी थी कि मैं प्रतिक्रिया-स्वरूप कहीं सचमुच मनिया के आगे ही रो न पड़ूँ। कुछ देर तक सिर झुकाये, कुर्सी की बाँह को खुरचता हुआ मौन बैठा रहा, उसके बाद सहसा उठ खड़ा हुआ, और यह कह कर कि— 'मुझे बहुत थकान मालूम हो रही है, इसलिये मैं सो जाना चाहता हूँ।' अपने कमरे में चला गया।

बत्ती बुझाकर जब मैं पलँग पर लेट गया तब कुछ देर तक तो मैं कुछ सोच ही न पाया। एक अत्यन्त तीखी वेदना केवल मेरे मन को ही नहीं बल्कि मेरे शरीर की भी नस-नस को मरोड़ रही थी जिसके कारण ऐसी टीस सी उठती थी कि जोर से कराह उठने को जी कर रहा था। मैं सचमुच कराह उठता यदि मुझे यह डर न होता कि मनिया मुझे कराहते सुनकर मेरा हाल पूछने के लिये मेरे कमरे में न चली आवे। मेरे मन की जैसी दशा उस समय चल रही थी उसमें मनिया की उपस्थिति मेरे लिये घातक सिद्ध होती।

धीरे धीरे मेरा चित्त जब कुछ स्थिर हुआ और पीड़ा कुछ कम हुई तब मैं सारी परिस्थिति को सोचने समझने का प्रयत्न करने लगा। मैं सोचने लगा कि यह सब क्या काण्ड आज हो गया! कितनी बड़ी मूर्खता मुझसे हो गयी! मेरी सारी कलई मनिया के आगे कैसे हास्यास्पद रूप में खुल गयी! मनिया के मन में उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? अभी तो उसने इंगित के रूप में केवल इतना ही कहा है कि मैं कितना बड़ा 'नाटकी' हूँ। पर 'नाटकी' शब्द का अर्थ उसके मन में निश्चित रूप से काफी व्यापक होगा। यह सम्पूर्ण सम्भव है कि 'नाटकी' शब्द का अर्थ वह इस रूप में करती होगी— 'तुम कितने बड़े धूर्त हो आज मैं यह जान

गयी हूँ। आज तक मुझसे तुम्हारा यह रूप छिपा जरूर था, पर इतना तो मैं पहले ही से जान गयी थी कि तुम कोई साधारण चलावाज नहीं हो। मेरी दुकान से एक एक करके बकाम की चीजें खरीदते रहने के बाद एक दिन तुमने मेरा पूरा टाट ही उलट डाला और फिर धीरे धीरे जिस चतुरता भरी कला से तुमने मुझे अपने जाल म फासा उसकी पोल आज खुल गयी ह। आज आइने की तरह तुम्हारा सारा भीतरी हुलिया मेरे आगे स्पष्ट हो गया है। अब तुम्हारी कोई चाल भविष्य में नहीं चल सकेगी!' मुझे लगा कि मनिया जस प्रत्यक्षवत् मेरे पास आकर मेरे कान मे यह बात कह रही है! सोच-सोचकर ऐसी उत्कट आत्मग्लानि मेरे मम को पीडित करने लगी कि रह रहकर मुझे अपना सिर पीटने की इच्छा होने लगी।

"पर मेरी मन शक्ति का आज जो इतना बडा पतन सभव हुआ उसका वास्तविक कारण क्या हो सकता ह?"—मैंने अपने आप स यह प्रश्न किया—इसके पहले मनिया के ऊपर मैंने सम्मोहन के जितने भी प्रयोग किय वे कभी व्यथ नही गय। मेरे मन म यह दृढ धारणा जम चुकी थी कि सम्मोहन के प्रयोग के लिये उसस अच्छा पात्र कोई नही मिल सकता। जितनी आसानी से वह सम्मोहन के अस्त्र स प्रभावित हो उठती थी उतनी आसानी से किसी दूसरे पर प्रभाव डाल सकना मैं सभव नही समझता था। तब आज क्या बात हो गयी? माना कि इधर उसने 'प्रभु ईसा के चरणो म अपना मन प्राण अर्पित करने' के फलस्वरूप यथेष्ट मनोबल प्राप्त कर लिया ह पर उसकी प्रकृति की भावुकता तो अब भी कुछ कम नही हुई, बल्कि पहले से बढ ही गयी ह। जिस भावमग्नता से वह आधी रात म क्रास के आगे माथा नवाकर आसू गिरा रही थी उसे मैं प्रत्यक्ष देख चुका हू। कायदे स ऐसे भावुक व्यक्तियो पर हिप्नाटिज्म का प्रभाव आसानी से पडना चाहिये। और यह भी बहुत सभव है कि किसी के हिप्नोटिज्म के प्रभाव से वह अपना हृदय 'प्रभु ईसा' को दे चुकी है। तब क्या सिल्विया भी हिप्नाटिज्म की कला म प्रवीण ह? निश्चय ही यही बात है। केवल इतना ही नही उसका अभ्यास इस कला म इतना अधिक बढा हुआ है कि उसने मनिया के अन्तमन मे बहुत गहरी खुदाई

करके अपना अभीष्ट बीज बोया है। मैं उतने गहरे तक न पहुँच सका, इसलिये आज मेरी सारी कला का तीर उसके सचेत मन के कुछ ही नीचे तक पहुँचकर छिटककर बाहर लौट आया।'

मैं उस दिन को याद करने लगा जब मनिया ने निश्चित शब्दों में मुझे बताया कि मैं दो सौ क्या हजार दो हजार रुपया भी उसे दूँ तो अब दुबारा वह दुकान नहीं खोलेगी और 'बाबा कोई इस गरीब लाचार को एक पैसा दे दो भगवान तुम्हारा भला करे।' कहती हुई दर-दर भीख माँगती फिरेगी। और फिर जब अपने पिछले जीवन की मार्मिक कहानी और अपनी हृदयाग्नि माँ के जीवन का रोमहर्षक वृत्तान्त सुना चुकने के बाद वह जाने लगी थी तब उसकी निपट निराश्रयावस्था और अनिश्चित भविष्य का विचार करके मेरा हृदय आशंका से किस कदर हिल उठा था, और अंतर के उस मार्मिक आंदोलन के ही फलस्वरूप सहसा एक अपूर्व आत्मिक बल एक उदात्त स्फूर्ति मेरे भीतर जग उठी थी। उसी उदात्त मानसिक स्थिति में मैंने मनिया की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए, परिपूर्ण आत्मविश्वास के साथ अत्यंत गंभीर और दृढ़ स्वर में कहा था—"देखो मनिया, तुम अब कहीं नहीं जा सकती। तुम्हारा मन इस समय से एकदम मेरे वश में हो चुका है यह जान लो! मैं तुमसे जैसा करने को कहूँगा वैसा तुम्हें करना होगा।" और तब मेरी आत्मा के भीतर से निकले हुए उस आदेश को उसकी विद्रोही आत्मा ने शांत भाव से बिना तनिक भी संघर्ष के पूर्णतः स्वीकार कर लिया था। वह भी एक दिन था और आज भी एक दिन है जब मेरे उसी ढंग के हिप्नाटिक आदेश को मनिया ने अट्टहास के साथ ठुकरा दिया है। ऐसा कैसे संभव हुआ? ठीक है! सहसा एक बिजली का-सा प्रकाश मेरे भीतर जागते ही मैंने अपने आप से कहा—'इसका मूल कारण मैं स्वयं हूँ दूसरा कोई नहीं। तब मेरी सफलता का कारण यह था कि तब मैं मनिया की सच्ची मंगल-कामना से प्रेरित होकर उसकी दयनीय परिस्थिति को देखते हुए आंतरिक करुणा से सच्चा आत्मिक बल पाकर उसके मन को प्रभावित करने को उद्यत हुआ था। पर आज मैं उसकी वास्तविक

कल्याण-कामना से प्रेरित न होकर अपनी स्वार्थहानि की आशङ्का से ईर्ष्या-दग्ध होकर कृत्रिम मानसिक बल के प्रयोग से उस 'हिप्नोटाइज' करने चला था। इसलिए आज यदि मैं अत्यन्त हास्यास्पद रूप से असफल हुआ हूँ तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह अच्छा ही हुआ कि आज मेरे लुच्चेपन की पोल उसके आगे खुल गयी, नहीं तो मेरे भीतर जो अत्यन्त नीच प्रवृत्ति इतने दिनों तक दबी पड़ी थी वह न जाने कब पूरे वेग से उभर कर क्या न क्या रूप उसे दिखा बैठती! आज तक उसके आगे मैं मेमने का जो रूप धारण किये हुए था वह एक-न-एक दिन उघड़ना ही था। मेरे सचेत मन में न सही, मेरे अज्ञात मे यह खटका सब समय लगा हुआ था कि न जाने कब, किस असावधानी के क्षण में मनिया के आगे मेरा पर्दा फाश हो जाय। आज वह खटका समाप्त हो गया। अब मैं निश्चिन्त हूँ। अब मेरी आत्मविज्ञता से परिचित होने के बाद वह चाहे मुझे फाँसी दे दे चाहे अपने अन्तर की सहज, सरल उदारतावश मुझे क्षमा कर दे। मन लिये समस्त अन्तर्ग्लानि से मुक्त होने का अब केवल एक ही रास्ता है—मैं अपने को पूर्णतः उसी की दया पर छोड़ दूँ। दाता के तीन गुण—दे, न दे, छीन ले। इन तीनों में से किसी भी स्थिति का यथारूप स्वीकार कर लेने के लिये मुझे तैयार हो जाना चाहिये। आज तक मैं उसके मन पर अपना आदेश लादने के फेर में रहता था, अब मेरे लिए प्रायश्चित्त का केवल यही उपाय है कि मैं उलटे उसके प्रत्येक आदेश—प्रत्येक इंगित—के अनुसार चलूँ। हाँ, इसके सिवा और कोई दूसरा गति मेरे लिये नहीं रह गयी है—तभी मैं अपने भीतर की अपराध भावना के बोझ से छुटकारा पा सकता हूँ। ठीक है, कल ही मैं मनिया से क्षमा माँगता हुआ उसके चरणों में आत्म-समर्पण कर दूँगा।'

इस तरह के भावुकता भरे विचार मेरे तात्कालीन मानसिक हिस्टीरिया से ग्रस्त दशा में मन भीतर उमड़ते चले गये। सारी रात मैं इसी तरह सन्निपात-की सी अवस्था में मन ही मन बड़बड़ाता रहा। बीच में कुछ देर के लिए जब नींद आयी तब स्वप्न की अवस्था में भी उसी तरह की विचार धारा कायम रही।

पर जब सुबह हुई तब न जाने मेरी सारी भावुकता कहाँ काफूर हो गयी। रात मे मनिया से क्षमा माँगने का जो निश्चय मैंने किया था अब उसके लिये तनिक भी प्रेरणा मुझे नही मिलती थी। उठकर हाथ-मुह धोकर मैंने अपने लिय चाय अपन ही कमरे म मँगा ली। नवम्बर का महीना था। सर्दी काफी पडने लगी थी। मेरे आदेशानुसार मेरा नौकर किसनसिंह मेरे कमरे की दीवार म लगी अँगीठी म पत्थर के कोयले सुलगा गया था। मैं गरम ड्रेसिंग-गाउन स अपने को अच्छी तरह लपेट कर अगीठी के पास एक कुर्सी पर बठकर धीर धीरे चाय पीने लगा।

मनिया सभवत ड्राइग रूम म मेरा इतजार कर रही थी। जब काफी देर हो गयी और मैं अपने ही कमरे म बठा रह गया तब वह मेरे कमरे मे चली आयी। उसका मुख अत्यन्त गम्भीर किन्तु उतना ही प्रशात भी था।

'आज क्या तुम्हारी तबीयत खराब है?' उसने अपनी सहज कोमल वाणी म पूछा।

मैंने उसकी ओर बिना देखे ही बहुत धीमे और अस्पष्ट स्वर म उत्तर दिया— 'ठीक है।

''पर आज चाय पीने तुम डाइग रूम म नहा आय?'

''तबीयत ठीक नही थी।' उसी अस्पष्ट और धीमे स्वर म मैंने कहा।

''अभी तुमने बताया कि तबीयत ठीक है और अब कह रहे हो कि तबीयत ठीक नही है। कुछ समझ म नही आता!'' स्वाभाविक भालेपन के साथ मनिया न कहा। पर तत्काल व्यग का हलका छींटा कसती हुई बोली— 'मालूम होता है इन दोनो के बीच की कोई बात है। किशनसिंह!

हाँ जी! भीतर स किशनसिंह बोला।

'मेरी चाय भी इसी कमरे म ले आओ।

बहुत अच्छा जी! कहकर किशनसिंह चाय लाने ड्राइग रूम की तरफ गया।

मैं सकोच की एक अजीब, अस्वाभाविक अनुभूति मे गडा जा रहा

था। पर उस सकोच के साथ अभिमान का भी मिथ्यत्व काफी था, यह शायद मनिया के आगे भी स्पष्ट हो चुका था।

मनिया स्वय ही एक कुर्सी उठाकर मेरी बगल मे, अँगीठी के सामने बैठ गयी।

"हाय देखूं, वही बुखार तो नही आ गया।" कहकर सहसा मनिया ने अप्रत्याशित रूप से मेरा बाया हाथ पकड लिया और कुशल और अनुभवी डाक्टर की तरह मेरी नब्ज देखने लगी। वह पहला स्पर्श था जो उसने अपनी शात, स्वस्थ और स्वाभाविक मनोदशा मे स्वेच्छा से मुझे प्रदान किया था। मेरे सारे सकोच और अभिमान के बावजूद वह स्पर्श मुझे बहुत ही प्रिय लग रहा था।

कुछ देर तक वह मेरे हाथ की नाडी पकडे रही। फिर बोली—

"हरारत है। अभी गाल मिच और तुलसी की पत्ती की चाय बनवा दूँगी। आधे घटे म सारी हरारत जाती रहेगी।"

अपनी उस समय की तूफानी मानसिक स्थिति मे भी मुझे उसकी बात के ढग से मन ही मन हँसी आने लगी। पर मैं न हँसा, न कुछ बोला। चाय का प्याला खतम कर चुकने के बाद मैंने उसे चुपचाप नीचे रख दिया और दोनो हाथो की हथेलियो को अँगीठी की ओर फलाकर आग तापने लगा।

निहालसिह मनिया की चाय ले आया था, और गरम-गरम 'टोस्ट' भी। एक टोस्ट मेरी ओर बढाती हुई मनिया आग्रह के साथ बोली—

"लो, तुम भी खाओ। गरम टोस्ट तुम्हे लाभ पहुँचावेगा।"

"मुझे इच्छा नही है।" उसकी ओर बिना देखे ही, मरी हुई जबान से मैंने कहा।

"आज तुम मुझसे बहुत नाराज हो।" टोस्ट को अपने दाँतो से काटती हुई वह बोली।

"मैं किसी से भी नाराज नही हूँ?" पहले से भी धीमे और अस्पष्ट स्वर मे मैंने कहा।

"यह देखो, तुम्हारी आवाज ही बताती है कि तुम नाराज हो!" प्राय हँसते हुए और टोस्ट को चबाते हुए मनिया ने कहा।

"कोई अगर ऐसा ही समझने का हठ करे तो उसका क्या इलाज है !"

"पर कल तुम्हारा नाटक बड़े मजे का रहा !" प्राय ठहाका मारती वह बोली । वह जब कमरे म आयी थी तब उसके स्वर म गम्भीरता , करुणा थी और थी सहज स्निग्ध भाव स उस अशोभन वातावरण को : करने की भावना जिसे मैंने अपने मूर्खतापूर्ण दुराग्रहवश कल रात ही उत्पन्न कर रखा था । पर मेरे रुख म कुछ भी परिवर्तन न देख ट स्पष्ट ही मेरे हठ की प्रतिक्रिया मनिया के मन पर भी हुई थी । ी का यह फल था कि उसने हास्य और व्यंग का हलका सा छिड़काव ारम्भ कर दिया था । उसके अन्तिम छींटे से मैं तिलमिला उठा । मेरी री ग्लानि और सारा सकोच पल म काफूर हो गया, और मेरी निल ज्जतापूर्ण धृष्टता लौट आयी । मैं सीधा बैठ गया और निस्सङ्कोच भाव मनिया की ओर देखता हुआ बोला— नाटकीय व्यक्तियो के साथ ाटकीय कला का ही प्रयोग किया जा सकता है !

"तो क्या मैं नाटकीय व्यक्ति हू ?" अत्यन्त मधुरता से खिलखिलाते ए उसने कहा और फिर एक दूसरा टोस्ट हाथ म लेकर उस भी दाँतो काटने लगी ।

"तुम नाटकीय नही तो क्या हो ! जिस यक्ति के मन म अकस्मात् सरे धम के प्रति इस हद तक आसक्ति हो जाय कि आधी रात म एक ास के आग माथा झुकाकर आसू गिराती रह उस 'नाटकीय' नहा तो ौर क्या कहा जाय !"

अकस्मात उसकी हास्यप्रियता लुप्त हो गयी और उसका मुख असाधा ण रूप से गम्भीर हो आया । कुछ दर तक मेरी ओर एकटक देखती ई वह बोली—"तो तुमने आधी रात म मुझे प्रार्थना करते हुए देख लिया है ? पर इसमे नाटकीयता की कौन-सी बात है ? मैं तुम्ह विश्वास देलाती हू कि मैं कोई पाखण्ड रचने के इरादे से प्रार्थना नही करती हू । ान म न जाने कहाँ से एक लहर सी उठती है और मैं प्रभु के ध्यान मे ग्न हो जाती हूँ । जब प्रभु को काँटो का ताज पहना कर सूली पर ढाया गया था, उनके दोनों हाथो और दोनो पावो पर बड़ी बड़ी कीलें

ठोककर शूली से बाँध दिया गया था, काँटों से बिंधे हुए उनके माथे से खून की धारा बह रही थी और दुष्ट लोग उनके प्रेम और शांति के संदेश के बदले में उन्हें वह दंड देकर, उन्हें देखकर राक्षसों की तरह ठहाका मार रहे थे तब उन्होंने मरते मरते भगवान से प्रार्थना की थी—'हे प्रभु इन लोगों को क्षमा करना क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।' उन लोगों के प्रति तनिक भी बैर का भाव उनके मन में नहीं जगा और न अपने भाग्य को ही उन्होंने कोसा। सबको क्षमा करते हुए सारी पीड़ा को प्रेमपूर्वक सहन करते हुए वह दिव्य ज्योति में लीन हो गये। उनके उस समय के उस स्वर्गीय रूप का ध्यान करके मेरी आत्मा में, मेरे भीतर की सारी ग्लानि पिघल पिघलकर आँसुओं के रूप में बाहर निकल जाती है और एक पवित्र, निर्मल भावना मेरे दुःखी और पापी प्राणों में छा जाती है। ध्यान की उस अवस्था में मेरी माँ की मूर्ति भी मेरे आगे प्रकट हो जाती है—हत्यारी के रूप में नहीं, बल्कि प्रभु के पुनीत स्पर्श से पवित्र अपार स्नेहमयी जगन्माता के रूप में। उस अपूर्व अनुभूति के क्षणों में मेरी आत्मा जिस स्वर्गीय सुख की भावना से गद्गद् हो जाती है उसे मैं किसी को कैसे समझाऊँ! सच मानो, मैंने एक भी बात तुमसे बनाकर नहीं कही है। तुम मुझ पर जो आरोप लगा रहे हो, उसके लिए मैं तुम्हें दोष नहीं देती हूँ पर यह जान लो कि वह गलत है और उससे मेरे प्राणों को भारी पीड़ा पहुँची है।"

उसके जो आँसू पहले ही से उमड़ने लगे थे वे अब पूरे वेग से बहने लगे। उनकी अविरल धारा किसी तरह रुकना ही नहीं चाहती थी।

वह निरंतर आँसू गिराती और बार-बार दोनों हाथों से उन्हें पोंछती जाती थी। वह रोती हुई कहती गयी—"मैं देख रही हूँ कि इधर कुछ दिनों से मेरे प्रति तुम्हारे बर्ताव में बहुत अंतर आ गया है। फिर भी मैं तुम्हारी रुखाई को, तुम्हारे तानों को चुपचाप सहती चली जा रही हूँ। आज मैं जब तुम्हारे पास आयी तब मैंने अपने मन में यह निश्चय कर रखा था कि तुम चाहे कैसी ही कड़ी और कड़वी बात क्यों न कहो, मैं शांत रहूँगी और भरसक उन्हें हँसी में टालती जाऊँगी। पर

 तुम तो जसे इस बात पर तुले हो कि प्रतिक्षण मेरे मन पर चोट पहुँचाये बिना न रहोगे। तुम्हें यह कतई पसद नहीं है कि मैं एकान्त उपासना के सहारे अपने मन के गहरे घावों को भुलाये रहू, अपने भीतर की अशान्ति की, जलन को एक क्षण के लिये भी ठढा कर पाऊँ। मेरी धार्मिक भावुकता, मेरी भक्ति भावना तुम्हें जसे काटे खाती है। तुम साफ कह क्यों नहीं देते कि तुम्हारे यहाँ अब मेरे लिये जगह नहीं है! मैं उसी क्षण चली जाऊगी ' वह आसू पोछती जाती थी, पोछते-पोछते उसकी दोनों आँखें लाल हो आयी थीं, तथापि आसू थमते नहीं थे। न जाने अतर के किस अदृश्य और अक्षय 'रिजर्वायर' से वह अविरल धारा प्रवाहित होती चली जाती थी! उसके हृदय का बाध आज पूरे विस्फोट के साथ एक छोर से दूसरे छोर तक टूट पड़ा था। वह परिपूर्ण भावाद्वेलन भावुकता की वह सीमाहीन बाढ मेरे हृदय को भी दुदमनीय वेग से छाकर उस दुखी दन के लिये पागलों की तरह पछाड खाती हुई उथलती चली गयी।

मैं रह न सका। मेरे अतर से पूर्व सस्कारों का सारा अवरोध, और बौद्धिक तर्कों की सारी रुकावटें उस महाप्लावन म बहकर लुप्त हो गयीं। मेरी आँखें भी प्राय भर आयीं। मैंने भर्राई हुई आवाज मे कहा—'मनिया, मैं तुम्हारे पैरों पडता हूँ। अपनी सभी गलतियों के लिये तुमसे आतरिक क्षमा चाहता हूँ। मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मेरा उद्देश्य वैसा नहीं था जसा तुम समझे बैठी हो। पर यह मैं अब मानता हू कि मेरे अनजान म मुझसे भारी भूल हुई है। अब से मैं कभी तुम्हारी उपासना म कोई विघ्न नहीं डालूगा। तुम्हें अपने विश्वास और श्रद्धा के अनुसार चलने की पूरी स्वतत्रता है। मुझे क्षमा कर दो मनिया, और अब शान्त हो जाओ!

बड़ी मुश्किल से उसे समझा-बुझाकर किसी हद तक शान्त कर पाया।

२२

मेरे मन मे कई दिनो से एक बार सिल्विया से एकात मे बातें करने का विचार उठ रहा था। जिस रहस्यमयी नारी ने मनिया की भावनाओ मे ऐसा आमूल परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था, और उस अपने प्राणों की गहरी पीडा को भूलने का एक अचूक उपाय बता दिया था, धार्मिक विश्वास की एक ऐसी सफेद आग उसके मन मे सुलगा दी थी जिसके ताप से उसके प्राणो की बर्फ की तरह जमी हुई सारी जडता पिघलकर सहस्रो छोटी बडी नदियो की धाराओ से पुष्ट, विशाल नद की तरह फैल गयी थी, उससे मिलकर मैं यह जानना चाहता था कि अपने भीतर की किस शक्ति के प्रयोग से उसने इतनी बडी सफलता पायी है। पर उससे एकान्त मे मिलने का कोई सुयोग ही मुझे नही मिल रहा था। मुझे देखते ही वह कतराकर अलग हट जाती थी। मेरी उपस्थिति मे उसकी सकोचशीलता असाधारण रूप से बढ जाती थी। उसके घर पर तो कोई सुविधा हो ही नही सकती थी, क्योकि वहा वह चौबीसो घटे अपनी मा और बहन से घिरी रहती थी, और मेरे यहाँ भी यह सभव नही था, क्योकि मनिया की उपस्थिति मे मैं सिल्विया से यह नही कह सकता था कि "तुमने क्या और कैसे उसे बहलाया है? इसलिये इस समस्या का समाधान तभी हो सकता था जब कहा तीसरी ही जगह एकात मे उससे मेरी बातें हो पाती। पर ऐसा अवसर मिलता ही नही था, और साथ ही निश्चित था कि बिना सिल्विया से बातें हुए मैं कोई भी नया कदम नही उठा सकता था। जिस दिन मनिया की भावुकता का बाँध पूरे वेग से टूट पडा था उस दिन से मैं सिल्विया से बाते करने की आवश्यकता का और अधिक तीव्रता से अनुभव करने लगा था।

मैं सुयोग की ताक मे रहने लगा। अत मे एक दिन मुझे वह सुयोग मिल ही गया। उस दिन सुबह की चाय पी चुकने के बाद जब मनिया अपने कमरे मे बैठी हुई किसी ईसाई सत की जीवनी अँग्रेजी मे पढ रही थी, मैं उसे सूचित करके टहलने के इरादे से बाहर निकल गया। कुछ ही दूर तक मैंने चढाई पार की होगी कि मैंने देखा मुझसे प्राय दस कदम आगे सिल्विया अकेली चली जा रही है। उसके एक हाथ मे

 तुम तो जसे इस बात पर तुले हो कि प्रतिक्षण मेरे मम पर चाट पहुँचाय विना न रहागे। तुम्हें यह क्तई पसद नहो है कि मैं एकात उपासना क सहार अपने मन क गहरे घावा को भुलाये रहू, अपन भीतर की ग्लानि को, जलन को एक क्षण के लिय भी ठढा कर पाऊँ। मरी धार्मिक भावुक्ता मेरी भक्ति भावना तुम्हें जसे काट खाती है। तुम साफ वह क्या नहीं दत कि तुम्हारे यहाँ अब मेरे लिये जगह नहीं है! मैं उसी क्षण चली जाऊँगी ' वह आँसू पाछती जाती थी, पाछते-पोछते उसकी दोनो आखे लाल हो आयी थी, तथापि आसू थमते नहीं थे। न जाने भतर के किस अदृश्य और अक्षय 'रिजर्वायर' से वह अविरल धारा प्रवाहित होती चली जाती थी! उसके हृदय का बाँध आज पूरे विस्फोट के साथ एक छोर स दूसरे छोर तक टूट पडा था। वह परिपूर्ण भावोद्वेलन भावुकता की वह सीमाहीन बाढ मेरे हृदय को भी दुदमनीय वेग मे दबाकर उस दुबा दन क लिये पागलो की तरह पछाड खाती हुई उथलती चली गयी।

मैं रह न सका। मेरे प्राण मे पूव सस्कारा का सारा अवरोध, और बौद्धिक तर्कों की सारी रुकावट उस महाप्लावन मे बहकर लुप्त हो गयी। मेरी आँख भी प्राय भर आयी। मैंने भर्राई हुई आवाज म कहा—' मनिया, मैं तुम्हारे परा पडता हू। अपनी सभी गलतिया के लिये तुमसे आतरिक क्षमा चाहता हू। मैं तुम्हें कसे विश्वास दिलाऊँ कि मेरा उद्देश्य वसा नही था जसा तुम समझे बठी हो। पर यह मैं अब मानता हूँ कि मेरे अनजान म मुझसे भारी भूलें हुई हैं। अब से मैं कभी तुम्हारी उपासना म कोई विघ्न नही डालूगा। तुम्हें अपने विश्वास और श्रद्धा के अनुसार चलने की पूरी स्वतत्रता है। मुझे क्षमा कर दो मनिया, और अब शात हो जाओ!

बडी मुश्किल से उसे समझा-बुझाकर किसी हद तक शात कर पाया।

२२

मेरे मन में कई दिनों से एक बार सिल्विया से एकांत में बातें करने का विचार उठ रहा था। जिस रहस्यमयी नारी ने मनिया की भावनाओं में ऐसा आमूल परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था, और उसे अपने प्राणों की गहरी पीड़ा को भूलने का एक अनूठा उपाय बता दिया था, धार्मिक विश्वास की एक ऐसी सफेद आग उसके मन में सुलगा दी थी जिसके ताप से उसके प्राणों की बर्फ की तरह जमी हुई सारी जड़ता पिघलकर सहस्रों छोटी-बड़ी नदियों की धाराओं से पुष्ट, विशाल नद की तरह फैल गयी थी, उससे मिलकर मैं यह जानना चाहता था कि अपने भीतर की किस शक्ति के प्रयोग से उसने इतनी बड़ी सफलता पायी है। पर उससे एकांत में मिलने का कोई सुयोग ही मुझे नहीं मिल रहा था। मुझे देखते ही वह कतराकर अलग हट जाती थी। मेरी उपस्थिति में उसकी सकोचशीलता असाधारण रूप से बढ़ जाती थी। उसके घर पर तो कोई सुविधा हो ही नहीं सकती थी, क्योंकि वहाँ वह चौबीसों घंटे अपनी माँ और बहन से घिरी रहती थी, और मेरे यहाँ भी यह संभव नहीं था, क्योंकि मनिया की उपस्थिति में मैं सिल्विया से यह नहीं कह सकता था कि "तुमने क्या और कैसे इसे बहकाया है?" इसलिए इस समस्या का समाधान तभी हो सकता था जब कहीं तीसरी ही जगह एकांत में उससे मेरी बातें हो पातीं। पर ऐसा अवसर मिलता ही नहीं था, और साथ ही निश्चित था कि बिना सिल्विया से बातें हुए मैं कोई भी नया कदम नहीं उठा सकता था। जिस दिन मनिया की भावुकता का बाँध पूरे वेग से टूट पड़ा था उस दिन से मैं सिल्विया से बातें करने की आवश्यकता को और अधिक तीव्रता से अनुभव करने लगा था।

मैं सुयोग की ताक में रहने लगा। अंत में एक दिन मुझे वह सुयोग मिल ही गया। उस दिन सुबह की चाय पी चुकने के बाद जब मनिया अपने कमरे में बैठी हुई किसी ईसाई संत की जीवनी अंग्रेजी में पढ़ रही थी, मैं उसे सूचित करके टहलने के इरादे से बाहर निकल गया। कुछ ही दूर तक मैंने चढ़ाई पार की होगी कि मैंने देखा मुझसे कुछ दस कदम आगे सिल्विया अकेली चली जा रही है। ... ...

 बस्ता-सा भोला था, दूसरे हाथ में मनीबग। इससे अच्छा अवसर फिर दूसरा नहीं मिल सकता, यह सोचकर मैं बड़ी फुर्ती से तेज कदम रखता हुआ आगे बढ़ा। जब मैं केवल दो ही कदम पीछे रह गया तो मैंने कहा—' गुड मानिंग मिस रालिन्सन !"

उसने चौंककर पीछे की ओर देखा। मैं मुस्करा दिया। वह अत्यंत संकुचित भाव से बहुत धीमी आवाज में बोली—"गुड मानिंग !

'मिस रालिन्सन, जरा ठहर जाइए, आपसे कुछ जरूरी बात करनी है।' मैंने कहा।

वह खड़ी हो गयी पर उसके पाँव काँप रहे थे। मुझे भय हुआ, कहीं वह गिर न पड़े। उसके पास पहुँचकर मैंने कहा—' चलिए, हम लोग धीरे धीरे चलते रहें और बातें भी करते रहें। आप आज इतने सवेरे अकेले कहाँ जा रही हैं ? आज जलिया आपके साथ नहीं है।'

'आज माँ की तबीअत ठीक नहीं है। पाँवों में वात हो गया है इसलिए खाना जलिया ही बना रही है।

' आह मुझे दुःख हुआ यह सुनकर। मैं उनके पास जाऊँगा। मेरे पास वात की एक अचूक दवा है, उसे ले जाऊँगा। अच्छा मिस रालिन्सन, यह तो बताइए कि मनिया की पढ़ाई आजकल कैसी चल रही है ?'

' वह तो अब धड़ल्ले से अंगरेजी बोल लेती हैं। कठिन कठिन पुस्तकों के पढ़ने में उनका जी लगने लगा है धीमे स्वर में, संकुचित भाव से सिल्विया बोली।

वह अभी तक हिन्दी में ही मुझसे बातें कर रही थी। मैं भी हिन्दी में ही बोल रहा था। पर सहसा मैंने अंगरेजी शुरू कर दी।

'हाँ उस रोज वह फ्रांसिस टामसन की एक किताब पढ़ रही थी—शायद *'इमिटेशन आफ क्राइस्ट'* उसका नाम था। एक दिन संट आगस्टिन की स्वीकारोक्तियाँ पढ़ रही थी, कल सेन्ट टेरसा की गाथा पढ़ रही थी "

सिल्विया का चेहरा गर्व के भाव से दीप्त होने लगा था।

मैं कहता चला गया—' मैं आपसे पूछता हूँ कि उसका जी केवल धार्मिक पुस्तकों में ही—विशेष कर ईसाई मत से संबंधित धार्मिक पुस्तकों

मे—क्यो लगता है ? दूसरे विषयो की पुस्तकें वह क्यो नही पढना चाहती ? मैं केवल जानकारी के लिये आपसे पूछ रहा हूँ, किसी और दृष्टि से नही।"

सिल्विया ने इस बार पूरी दृष्टि से मेरी ओर देखा—शायद मेरे मुख के भाव से यह जानने के लिये कि वास्तव म मेरा उद्देश्य क्या है। उसके बाद उसने अँगरेजी मे कहा—'ता क्या धार्मिक पुस्तको का पठन आप अच्छा नही समझते ?"

"नहीं, नही, मेरी बात को गलत न समझें, मिस रालिसन" अपने स्वर म आश्वासन का भाव भरने का प्रयत्न करते हुए मैंने कहा—"मेरा भाव यह कदापि नहीं है। धार्मिक पुस्तको का पाठ बुरा कसे माना जा सकता है। मैं केवल इतना ही जानना चाहता था कि चौबीसो घट केवल धार्मिक पुस्तको को ही पढते रहना, धार्मिक चर्चा मे ही व्यस्त रहना और धार्मिक चिंतन म ही मग्न रहना, यह क्या एक सासारिक नारी के लिय कुछ अधिक नही हो जाता ?'

सहसा मैंने देखा कि सिल्विया के मुख पर सकोच और झिझक का लेश भी वतमान नही रह गया था। एक सुदृढ गाभीर्य और निश्चित आत्मविश्वास की भावना उसम स्पष्ट झलक उठी थी।

धीर और दृढ स्वर मे बोली—"धार्मिक भावना को चाहे कितना ही बढा न बताया जाय, वह कभी हानिकर नही हो सकती। यदि कोई सासारिक व्यक्ति धार्मिक भावना मे अधिक से अधिक तन्मय होकर अपने जीवन के अधिक से अधिक क्षण धार्मिक चिंता मे लगा सके ता इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है।'

"यह आप ठीक कहती हैं, मिस रालिसन, पर आपने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि मनिया की इस धार्मिक तन्मयता के कारण मेरे उस सारे उद्देश्य की व्यर्थता सिद्ध हुई जा रही है जिसको सामने रखकर मैंने उसे पढाने लिखाने और यथासभव उच्च शिक्षा प्राप्त कराने की बात सोची थी ?

"आपका वह उद्देश्य क्या था ?" तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई सिल्विया बोली।

"मैं चाहता था कि वह पढ लिखकर मेरे ही मानसिक स्तर पर आ जाये, ताकि उससे मेरा विवाह हो जाने के बाद हम दोनो पति-पत्नी के बीच अधिक वपम्य न रहे और हम दोनो सुख और शातिपूवक अपना विवाहित जीवन बिता सकें। पर जबसे उसके दिमाग म धार्मिक भावनाओं का कीडा घुस गया है तबसे हम दोना एक-दूसरे को समझकर एक-दूसरे के अधिक निकट आन के बजाय हमारे बीच विरोध और वमनस्य ही बढा है। बीच म ऐसे दुलध्य अवरोध खडे हो गये हैं कि विवाह कभी हो सकेगा, इसकी कोई सभावना ही मुझे नही दिखायी देती आइये इसी बेंच पर कुछ देर हम लोग बठ जाय "

हम लोग जिस अपेक्षाकृत निजन सडक से होकर धीरे धीरे चढाई मे चल जा रह थे, वह अब समाप्त होने पर थी। पास ही एक बेंच देखकर मैंने कुछ देर वही रहकर तनिक सुस्ता लेने का प्रस्ताव किया। जब हम दोना बेंच पर बठ चुके तब मैं अपनी बात का सूत्र फिर से पकडते हुए कहने लगा— देखिये मिस रालिसन, माफ कीजियेगा, मैंने आपको इसलिये नियुक्त नही किया कि आप अपने धार्मिक विचारो से उसे प्रभावित करके हम दोनो के बीच एसा व्यवधान उत्पन्न कर दें मुझे भय है कि मुझे मनिया की पढाई स्थगित कर देनी होगी "

सिल्विया का मुह इतना सा हो गया था। उसकी सारी गभीरता और दढता पल म काफूर हो गयी थी। अत्यत दीन भाव से, प्राय गिडगिडाती हुई वह बोली—"मैं आपको विश्वास दिलाती हू मिस्टर रजन कि मेरा उद्देश्य कदापि इस तरह का नही रहा है और न मुझे अभी तक इस बात का पता था कि आप दोनो के बीच वमनस्य उत्पन्न हो गया है। मनिया न मुझे कभी इसका कोई सकेत नही दिया। मेरा तो यह विश्वास है कि वह शायद जानती ही न रही होगी कि धार्मिकता की ओर उसकी रुचि बढने से वह आपसे इस हद तक दूर चली जा रही है। मेरा तो यही विश्वास था कि धार्मिक भावना आप दोनो को एक-दूसरे की ओर अधिक निकट खीच लायेगी। मुझे आपकी बातें सुनकर आश्चय हो रहा है। विवाह के सबध म जिस 'दुलध्य अवरोध' की बात आपने कही, उसे मैं कुछ भी नही समझ पायी हूँ "

"मनिया का कहना है कि विवाह तभी हो सकता है जब हम दोनों ईसाई धर्म को स्वीकार कर लें "

"तब इसमें आपको क्या आपत्ति हो सकती है ?" अत्यंत आश्चर्य का भाव जताती हुई मिल्विया बोली—"विवाह की इमारत यदि किसी धार्मिक आधार पर खड़ी हो तो उसके अधिक दृढ़ और स्थायी रहने की संभावना है। आप क्या यह बात नहीं मानते ?"

"मान सकता हूँ, पर वह 'धार्मिक आधार' केवल ईसाई मत से ही संबद्ध हो यह क्या जरूरी है ?'

"जरूरी नहीं है। पर जब एक पक्ष ज्ञान से या अज्ञान से किसी एक विशेष धर्ममत को अपनाने पर ही तुला हो, उसी में उसे शान्ति मिल रही हो, तब दूसरे पक्ष के लिए क्या यह उचित नहीं है कि वह अपना हठ छोड़कर समझौता कर ले ? यदि केवल ईसाई मत को अपनाने का हठ करना आप दोष मानते हैं तो ईसाई मत को किसी भी हालत में न अपनाने का हठ करने वाला भी उतना ही दोषी माना जाना चाहिये। इसके अलावा, जैसा कि मैं बता चुकी हूँ मनिया अज्ञान से इस बात पर अड़ी गई है कि वह ईसाई मत को ही अपनावेगी, पर आप जानबूझकर इस बात का हठ किये बैठे हैं कि आप ईसाई धर्म को स्वीकार नहीं करेंगे, भले ही बौद्ध धर्म को अपना लें। एक बार तनिक एकांत मन से, ठंडे मस्तिष्क से इस बात पर विचार करें कि आप दोनों में कौन अधिक दोषी है। आप धर्म परिवर्तन के लिये राजी हैं, पर ईसाई धर्म के प्रति आपका अकारण विद्वेष किसी प्रकार भी हटना नहीं चाहता। माफ कीजियेगा, आपके समान पढ़े लिखे और सुसंस्कृत व्यक्ति से मैं इस तरह की आशा नहीं करती थी "

उसकी तर्कशैली ऐसी चतुराई से भरी थी कि मुझसे उसका कोई उत्तर ही देते न बना। जब मैंने पहले दिन उसे देखा था तब मेरे मस्तिष्क के किसी कोने में स्थित लघुतम कोष में भी यह कल्पना नहीं जगी थी कि सामाजिक ज्ञान और धर्म के क्षेत्र में उसका अनुभव इसी उम्र में इस हद तक गहराई को पहुँच चुका है। उसका वह तर्क-कौशल। वह वास्तव में मुझे एक नये आश्चर्य से भरा हुआ लगने लगा था।

वह कहती गयी—"व्यक्तिगत रूप से मैं इस बात को तनिक भी महत्व नहीं देती हूँ कि कौन व्यक्ति किस धर्म को अपनाये हुए है। यदि विभिन्न धर्मावलम्बियों का विवाह आसानी से हो जाय तो अच्छा ही है। पर जब उन दो में से कोई यह हठ करे कि विवाह कोर्ट सिविल मैरिज का रूप धारण न कर किसी धार्मिक आधार पर, धार्मिक विधि से ही हो, तब ऐसी स्थिति में यही अच्छा है कि दोनों एक ही धर्म को स्वीकार करें। वह एक ही धर्म क्या हो इस बात को लेकर झगड़ना मेरी समझ में तनिक भी बुद्धिमानी का काम नहीं है। क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि आप—तथा साधारणतः सभी सामाजिक व्यक्ति—धर्म को जिस अर्थ में ग्रहण करते हैं उसके अनुसार धर्म एक सामाजिक लिबास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ऐसे आदमी संसार में कितने हैं जो चाहे कोई भी धर्म स्वीकार क्यों न करें उसके मर्मगत सत्य को ही आंतरिक निष्ठा से अपनाये रहना चाहते हों? कुछ भी हो आप लोगों के बीच झगड़ा केवल इस बात को लेकर चल रहा है कि वह लिबास लाल हो, हरा हो, पीला हो, नीला हो, सफेद हो या काला। पर वह सामाजिक लिबास चाहे किसी भी रङ्ग का हो, होना चाहिये दोनों के लिये समान ही। यह नहीं हो सकता कि पति एक रङ्ग का लिबास पहने और पत्नी दूसरे रङ्ग का। इसलिये यदि आप यह मान लेते हैं कि साधारण सांसारिक प्राणियों के लिये धर्म एक सामाजिक लिबास है तब आपको इसमें क्या आपत्ति होनी चाहिये कि आप गार्हस्थिक शांति और सुख के उद्देश्य से इस संबंध में दूसरे पक्ष (अर्थात् मनिया) की ही इच्छा के अनुसार अपना लिबास बदल लें? विशेषकर उस हालत में जब कि मनिया आपकी तरह धर्म को एक साधारण सामाजिक लिबास नहीं मानती बल्कि अपने प्राणों की गति से उसका घनिष्ठ संबंध मान बैठी है!"

मिल्ड्रिया को इतने दिनों तक मैंने जिस हद तक मितभाषी पाया था, आज उसी अनुपात में वाणी का स्रोत खुल गया था।

मैंने एक लंबी साँस लेते हुए कहा—"आपके तर्क में बहुत-कुछ सार है, मिस रालिन्सन। मैं एकांत में आपकी बातों पर विचार करूँगा तब अपने निश्चय की सूचना आपको दूँगा। पर एक बात मैं आपसे पूछता

चाहता हूँ। आपने अभी कहा कि मनिया अज्ञान से इस बात पर अड़ी है कि वह ईसाई धर्म को ही अपनावेगी। मैं यह जानना चाहता हूँ कि चाहे वह अज्ञान ही हो, पर क्या उसका बीज आपही ने जानबूझकर उसके मन में नहीं बोया?'

मेरे इस प्रश्न से मिल्लिया कुछ कड़्वी गयी। तनिक तीखे स्वर में बोला—"मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ मि० रंजन कि मैंने कभी जान-बूझकर उसके भीतर किसी भी प्रकार के अज्ञान का बीज बोने का प्रयत्न नहीं किया। यह ठीक है कि मैंने प्रभु ईसा के आदर्श चरित्र की महिमा से उसे परिचित कराने का पूरा प्रयत्न किया, उनकी नानामृत में भरी वाणी उसे सुनायी उनकी जीवनी आदि से अन्त तक उसे सुनायी और उस महान् जीवन की महत्ता को जिस रूप में मैं समझ पायी हूँ उसी रूप में मैंने उसे समझाया। मैंने उसे बताया कि रोग-शोक दुःख दारिद्र्य, पाप-सन्ताप से पीड़ित मानव-समाज के उद्धार और कल्याण के लिए प्रभु ने कितना महान् व्रत स्वीकार किया था इस व्रत की पूर्ति में वह किस प्रकार हँसते-हँसते सूली पर चढ़ गये थे और किस प्रकार अपने प्राणहन्ता नीचों और दुष्टों को आन्तरिक रूप से क्षमा करते हुए वह दिव्य ज्योति में विलीन हो गये थे मैंने उस बहकाने के लिये कोई बनावटी या अपनी गढ़ी हुई बात नहीं बतायी। वही बात बतायी जिस पर मेरा आन्तरिक विश्वास है। और मेरी दृढ़ धारणा है कि मेरी बातों का उस पर अच्छा ही प्रभाव पड़ा है। वह भीतर ही भीतर अपने अनजाने में अपनी दुखियारी माँ के दुखमय जीवन की याद से जिस दबी हुई पीड़ा से घुलती चली जा रही थी, उसके लिये उसे केवल प्रभु के महान पीड़न की अनुभूति से ही सान्त्वना मिल सकती थी और उनके चिर-मंगलमय, विश्व-कल्याणमय और निर्विकार क्षमामय स्वर्गीय रूप के चिन्तन से ही शान्ति प्राप्त हो सकती थी। इसी विचार से मैंने उसके भीतर प्रभु के प्रेम का बीज बोने का प्रयत्न अवश्य किया। यदि यह अपराध है तो मैं अपने को अपराधिनी स्वीकार करती हूँ और उसके लिये कुछ भी दंड स्वीकार करने को तैयार हूँ। मैंने मनिया के अज्ञान की बात केवल इस दृष्टि से कही है कि उसने प्रभु के प्रेम-मय रूप के चिन्तन के लिए ईसाई धर्म को स्वीकार करना अनिवार्य मान

लिया है। मैंने उसे बताया कि प्रभु ने जिस अनन्त प्रेम अनन्त दया, और अनन्त क्षमा का उदाहरण मानव जाति के आगे रखा था वह किसी एक विशेष धर्म और सम्प्रदाय तक कदापि सीमित नहीं हो सकता, और वह चाहे किसी भी धर्म को स्वीकार करे प्रभु की कृपा उस पर समान भाव से बनी रहेगी, बशर्ते वह सच्ची लगन से उनका चिन्तन करती रहे और उनके बताये मार्ग पर चलती रहे। पर उसका हृदय ऐसा भोला, सरल और निष्कपट है कि वह किसी धर्म के बाहरी रूप को उसके भीतरी रूप से अलग देख ही नहीं पाती, और उसका यह विश्वास सहजात है कि किसी धर्म की भीतरी आत्मा को अपनाने से उसके बाहरी चोले को भी हर हालत में अपनाना ही होगा। मैं लाख प्रयत्न करने पर भी उसे इस विश्वास से डिगाने में अपने को असमर्थ पाती हूँ। सच बात यह है मि० रञ्जन कि मनिया की आत्मा प्रकृति से इस हद तक तादात्म्य स्थापित किये हुए है कि वह किसी भी विषय पर मस्तिष्क से विचार कर ही नहीं पाती। प्रकृति प्रदत्त अनुभूति ही उसके लिए सब-कुछ है। और उस अनुभूति की धुर सब समय प्रकृति की चुम्बक-तरङ्ग के अनुसार घूमती रहती है। आज प्रकृति का जो शान्त रूप है कल उसी के तूफानी रूप के प्रकोप से ध्वस्त विध्वस्त हो सकता है। ऊपरी दृष्टि से देखने वाला यह सोच सकता है कि प्रकृति के भीतर कोई नियम नहीं है। पर अन्तर्दृष्टि रखनेवाला जानता है कि उसके अपने कुछ निश्चित नियम हैं। उसका जो शान्त रूप हम देखते हैं उसके पीछे जो निश्चित नियम काम कर रहा है वही उसके तूफानी रूप का भी मूल विधायक है। मनिया की अन्तःप्रकृति के नियम भी बाह्य प्रकृति के उन्हीं नियमों से मिलते-जुलते हैं। यही कारण है कि वह जितनी ही सीधी है उतनी ही हठी भी जितनी ही भोली है उतनी ही क्रोधी भी, जितना ही अधिक प्रेम कर सकती है उतनी ही घृणा भी, जितनी ही शान्त है उतनी ही तूफानी भी। प्रकृति की जब इच्छा होती है प्रातः सन्ध्या सूर्य की स्निग्ध किरणों के रूप में और चाँदनी के तरलित प्रकाश में हँस देती है जब रोने की इच्छा होती है तो वर्षा के रूप में रो देती है, जब क्रोध करना चाहती है तब वज्र के रूप में कड़ककर तूफानों के रूप

म गरजकर और भूकंपा के रूप मे धहरकर अपना रोष प्रकट कर देती है। दुराव और छिपाव की कोई गुंजाइश उसके भीतर नही है। मनिया के सबध म भी यही बात कही जा सक्ती है। ऐसी हालत मे उससे यह आशा करना कि वह अपने या दूसरे के किसी भी स्वाथ के लिये अपना हठ त्याग देगी, भूल है। इसलिये मैं आपसे प्राथना करती हूँ, मि० रञ्जन, कि यदि आप चाहते है कि आप दोना का जीवन सुदृढ वैवाहिक बधन म बँध जाये और दोनो सच्चे गाहस्थिक सुख का अनुभव करें तो आप ही मनिया की बात मान लें। मैं आपको विश्वास दिलाती हू कि ईसाई धम को अपनाने से आपको कभी कोई हानि नही उठानी पडेगी। यदि आप भी धममात्र को सामाजिक लिबास मानने वाले व्यक्तियो म से हो, तब तो हानि का प्रश्न ही नही उठ सक्ता है, और यदि आप धम के भीतरी महत्व पर जोर देते हो तो भी ईसाई धम स्वीकार करने से आप ठगे नही जायगे, क्योकि जड प्राणो म दिव्य ज्ञान की पुनीत ज्योति जलाने मे ईसाइ धम ससार के किसी भी धम से पिछडा हुआ नही है'

मैं एकाग्र चित्त से सिल्विया के उस धाराप्रवाही भाषण को सुन रहा था। वह ऐसी एकात लगन से अपने विचारो को प्रकट किये चली जा रही थी कि बीच मे कही पर भी उसे टोकना, उसकी किसी भी बात से अपना विरोध प्रकट करने का साहस ही मुझे नही होता था। जब वह पूरी बात कर चुकने के बाद चुप हो गयी तब मैंने कहा—"आज आपने बडी कुशल तार्किकता से ईसाई धम का पक्ष समथन किया। मैं आपकी बातो से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। किस हद तक प्रभावित हुआ हूँ, यह मैं स्वय नही जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ कि जिस द्विविधा म मैं पडा हुआ था वह आपकी बातो से बहुत कुछ साफ हो गयी है। इसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। अब मैं जल्दी ही अपना मत निश्चित कर सकूगा, ऐसी आशा है।'

सिल्विया के मुख पर फिर सकोच की वही लालिमा छा गयी जो बीच मे धार्मिक उत्तेजना से दब गयी थी। मैंने कहा—''इस समय मुझे आज्ञा दीजिये, मिस रानिन्सन। मैं आपसे फिर मिलूगा और जल्दी ही

आपको अपने निर्णय की सूचना दूँगा। मैंने आज आपका बहुत समय लिया है। अच्छा गुड बाई !" कहकर मैं उठ खड़ा हुआ और उसकी ओर अपना हाथ बढ़ा दिया।

उसके संकोच का दौरा बेतरह बढ़ गया था। आँखें प्रायः नीची करके उसने भी धीरे से अपना हाथ बढ़ाया। उसे पकड़कर एक हलका-सा झटका देकर मैं चला गया।

२३

घर लौटकर मैंने मनिया को सूचित किया कि मैंने ईसाई मत स्वीकार करने का निश्चय कर लिया है। मनिया कुछ देर तक पुलक भरे आश्चर्य से मेरी ओर ताकती रही, उसके बाद मेरे दोनों गालों पर अपने हाथ फेरती हुई बोली— तुम बहुत ही भले आदमी हो !

दूसरे ही दिन मैंने सिल्विया को भी सूचित किया कि हम दोनों ने ईसाई धर्म में दीक्षित होने का विचार पक्का कर लिया है। सिल्विया के मुख की चमक उस समय देखने ही योग्य थी। जैसे उसे अपनी जीवन-व्यापी साधना में सिद्धि प्राप्त हो गयी हो।

हर्ष-गद्‌गद् स्वर में उसने कहा— चलिए, मैं अभी आप दोनों को गिर्जे में फादर के पास ले जाती हूँ। आज ही बप्तिस्मा हो जायगा !'

जब हम तीनों गिर्जे में पहुँचे तब सिल्विया ने सफेद अचकन और नीली मखमल की टोपी पहने हुए एक अधेड़ अवस्था के पादरी से मेरा परिचय कराया और हम लोगों के आने का उद्देश्य बताया। एक रूखी हँसी हँसते हुए पादरी महाशय बोले—"बड़ी प्रसन्नता की बात है।' उनका रंग मैला था। हिंदुस्तानियों की तरह चौड़ा माथा, तीखी नाक और घनी आँखें उनके असाधारण रूप से चिन्ताशील व्यक्तित्व का परिचय देती थीं। वह अपनी धर्म-पुस्तक लेकर मंच पर जाकर खड़े

हो गये। हम दोनों को उन्होंने अपने सामने नीचे खड़ा कराया, उसके बाद उन्होंने कुछ मन्त्र पढ़ने शुरू किये। बीच बीच में कुछ मन्त्रों की आवृत्ति उन्होंने हम से भी करायी। अन्त में 'पवित्र जल' से उन्होंने हम दोनों को अभिषिक्त किया। सारा विधि विधान समाप्त हो चुकने के बाद उन्होंने हम दोनों के ऊपर अपना हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। मनिया ने आज पहली बार गिर्जा देखा था और सूली पर चढ़े हुए ईसा का चित्र भी पहली ही बार। वह तन्मय होकर उस चित्र को देख रही थी और उसके मुख पर एक अनिर्वचनीय भाव निमग्नता व्यक्त हो रही थी।

जब हम लोग नये धर्म की दीक्षा से चुकने के बाद घर लौटने लगे तब मिल्विया की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। उसकी सारी सङ्कोचशीलता आज फिर न जाने कहाँ गायब हो गयी थी। रास्ते भर वह चिड़िया की तरह फुदकती और चहकती हुई कभी पादरी के आशीर्वाद के महत्व से हम परिचित कराने का प्रयास करती थी और कभी हम दोनों के उज्ज्वल भविष्य का चित्र खींचती हुई हमें अधिकाधिक उत्साहित करने का प्रयत्न करती जाती थी। मनिया यों ही उत्साहित हो रही थी, इसलिये वह मिल्विया की बातों में पूरा भाग ले रही थी। पर मैं कुछ दूसरी ही चिंताओं में मग्न हो गया था। वे चिंताएँ ठीक किस तरह की थीं यह मुझे इस समय याद नहीं है।

मिल्विया अपने घर न जाकर हम लोगों के साथ मेरे ही बँगले में चली आयी। बोली—'आज तो आप लोगों में बिना दावत लिये मैं नहीं छोड़ूँगी। आज इतना बड़ी खुशी का दिन है कि उसे साधारण दिनों की तरह बिताना अच्छा नहीं होगा।"

उसके उत्साह को देखकर मैं विचार करने लगा कि कुछ नारियाँ कभी कभी से अपने स्वभाव का ऊपरी मुखड़ा उतारकर फेंक देती हैं और चाहने पर कितनी फुर्ती से फिर उसी मुखड़े को पहन लेती हैं। पर चाहे जो भी हो, उसका आज का रूप मुझे बहुत ही प्रिय लग रहा था। वह आज सोलह वर्ष की लड़की की तरह नाच रही थी। उसे इतना स्वस्थ, चञ्चल और प्रसन्न इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा था।

 भोकर ने बताया कि चाय तयार है। हम तीनो ड्राइंग रूम मे चले गये। जब चाय आयी तब मनिया ने तीनो प्याला मे चीनी डालना शुरु किया। जब वह दूध डालने लगी तब इत्तफाक से और प्यालो की अपेक्षा मेरे प्याले म कुछ अधिक दूध गिर पडा। सिल्विया झट बोल उठी—"अभी से तुम अपने भावी पति के साथ इस कदर पक्षपात करने लगी हो! मैं तो सोचती थी कि कम से कम विवाह होने के पहले तक तो हम लागो को न भूलोगी!

मनिया बचारी उस साधारण परिहास का भी यथार्थोक्ति मानकर अत्यत सकुचित हो उठी। सिल्विया के प्याले म दुबारा दूध डालती हुई बोली—' माफ करना, आज मैं बहुत नवस' हो गयी हूँ। उनके प्याले म दूध डालते समय न जान क्स मेरा हाथ ही काँप गया!'

' यह लो, मैंने कहा न था!' कहकर सिल्विया ठहाका मारकर हँस पडी।

वास्तव म उसके स्वभाव म मुझे एक विचित्र परिवतन दिखायी दे रहा था। वह जस किसी अवणनीय नशे म चूर थी। उसकी उस असाधारण प्रसन्नता का सुनहरा प्रभाव मेरे बहुत दिनो से अवसादग्रस्त—बल्कि जडता प्राप्त—प्राणा म एक अपूव रूप हिलोर का सचार करने लगा था। वह बात-बात म मनिया से चुटकियाँ ले रही थी। मनिया कभी प्रसन्न हो उठती थी कभी सकुचाती थी और कभी खीझ उठती थी।

जब सिल्विया का हास्य-गुजन कुछ ठण्डा पडा तब वह शात भाव से स्वाभाविक स्वर म बोली—अब हम लोगो का यह तय कर लना चाहिये कि विवाह के लिय कौन तिथि निश्चित का जाय। यह शुभ-काय जल्दी से जल्दी सपन्न हो जाना चाहिये। इसम अब अधिक दर करना किसी रूप से भी उचित नही है। विवाह की खुशियाँ किस रूप म मनानी होगी, इस सबध म आप यदि चाह, मेरी माँ की भी राय ले सकते हैं। माँ को इन सब बातो का बहुत अच्छा तजर्बा है।

मैंने कहा—"मैं भी चाहता हू कि विवाह जल्दी से जल्दी हो जाय। मैं आपकी माँ से अवश्य राय लूँगा। केवल एक बात मैं आपसे पूछना चाहता हूँ मिस रालिन्सन। फादर एथोनी ने हम दोनो के नाम बदल दिये हैं, यह तो आपको मालूम ही है। पर मैं किसी भी

हालत म अपना नाम बदलन को तैयार नही हूँ। मैं बराबर
नृपद्र रञ्जन ही रहना चाहूँगा, नपियर रञ्जन नही।
उसी प्रकार मैं चाहूँगा कि मनिया को सब लोग बराबर मनिया ही कहें, मेडलीन नहीं। यदि आप यह समझती हैं कि धम बदलने के साथ-साथ नाम बदलना अनिवाय है तब तो मैं फिर अपने पूव धम को ही अपना लूगा। क्योंकि इसाई धम स्वीकार करने के लिये मुझे चाहे जितनी बडी प्रेरणा क्या न मिली हो, पर नाम बदलने की प्रेरणा मुझे ससार की कोई शक्ति नही द सकती, इसे आप निश्चित जानिये।"

"नाम बदलने की कोई आवश्यकता नही है मि० रञ्जन। फादर ने तो एक परम्परा का पालन करते हुए मन्त्र पढते समय आप लोगो के नाम बदल दिये थे। पर व्यावहारिक क्षेत्र में नाम बदलना बिलकुल आवश्यक नही है।'

तब ठीक है।' मन की सास लेते हुए मैंने कहा। क्योंकि सारा धम गँवा चुकने पर मेरे मन म उतनी ग्लानि नहीं हुई थी, पर नाम बदल जाने पर मुझे लगा कि नये चक्कर में पडकर मैं अपना सर्वस्व खो चुका हूँ।

"तो विवाह के सम्बन्ध मे आपने क्या सोचा ? मेरी राय मे अगले इतवार को ही विवाह-काय सम्पन्न हो जाय तो क्या हज है ? आज सोमवार है। अभी छ दिन बाकी हैं। इस बीच हम लोग सब तैयारियाँ कर लेंगे। मैं फादर से पूछ लूगी कि अगले इतवार का दिन शुभ है या नहीं। अशुभ होने का कोई कारण नही है। योता आप किन किन लोगो को देना चाहेंगे ? आपके कौन-कौन से मित्र यहाँ रहते हैं ?"

मैंने कहा— 'यहाँ तो मेरे मित्र आप ही लोग हैं।'

"और देश म ?"

"देश म जो मित्र हैं व नही आ पायेंगे।'

"अच्छा तो मैं अपने कुछ मित्रो को निमत्रण दूंगी। आपके मित्र न सही, आपके मित्रों के मित्र तो आ सकेंगे।

मनिया बोली—' मैं भी अपने मित्रो को बुलाऊँगी।'

मुझे हँसी आने लगी। मैंने कहा—"मुझे बडी खुशी होगी। तुम अवश्य बुलाना। अच्छी चहल पहल रहेगी।"

"चलिये हम लोग माँ के पास चलें," सिन्थिया बोली—"उसकी भी राय ले लें।"

जब हम लोग मिसेज रालिन्सन के पास गये तब सिन्थिया ने उन्हें बताया कि हम दोनों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है और ईसाई धर्म के अनुसार ही अगले रविवार को हम दोनों का विवाह होगा। मिसेज रालिन्सन तो जैसे सातवें आसमान पर चढ़ गयी। उनका हर्ष इस सीमा को पहुँच गया कि वह मेरे गले से प्राय लिपट गयीं। उसके बाद हम दोनों के सिरों पर हाथ फेरती हुई आशीर्वाद देने लगीं और दो एक स्नेह-जनित आँसू भी उनकी आँखों से टपक पड़े।

जब वह कुछ शान्त हुई और हम सब लोग इतमीनान से बैठ गये तब उन्होंने बिना पूछे ही यह बताना आरम्भ किया कि कितने प्रकार के कपड़े बनवाने पड़ेंगे, 'वेडिंग केक' किस डिजाइन का कितने बड़े आकार का और किसके यहाँ से बनवाना ठीक रहेगा, भोज का प्रबन्ध किस रूप में होगा और विशेष विशेष डिशें क्या क्या रहेंगी, हँसी-खुशी के क्या क्या प्रोग्राम रखे जा सकते हैं आदि आदि। जूलिया भी ड्राइंग रूम में आ गयी थी, पर वह एक कोने में खड़ी थी। पता नहीं क्या, वह मेरे आने पर कभी इतमीनान से कुर्सी पर बैठती न थी। क्या वह मेरे साथ एक ही कमरे में बैठना अपमान-जनक समझती थी? या किसी एक ऐसी मनोग्रन्थि में वह परेशान थी जिसके कारण वह किसी बाहरी व्यक्ति की उपस्थिति में अपना सारा आत्म विश्वास खो बैठती थी? जो भी हो, मेरे आने पर वह एक बार ड्राइंग रूम में अवश्य आ जाती थी और एक कोने में प्राय दीवार के सहारे खड़ी होकर एक विचित्र दृष्टि से मे... ओर देखती थी। उस दृष्टि में कुतूहल रहता था, स्वागत भरी मुस्... भी रहती थी और खीझ भी। वह खीझ स्वयं अपने प्रति थी या... प्रति, मैं कह नहीं सकता। उसने स्पष्ट ही सब बातें सुन ली थी, इस... आज की उसकी मुखमुद्रा में विचित्रता का पुट और अधिक आ... था। वह धूप से झिलमिलायी हुई सी आँखों से हम लोगों की ओ...

रही थी। उसकी लवी और कुछ उभरी हुई सी नाव के नीचे एक अजीब सिकुड़न सी पड़ गयी थी। वह क्या सोच रही है और किस दृष्टि से हमें देख रही है मैं कुछ भी समझ नहीं पाता था।

मिसेज रालिन्सन ने कहा—'जूलिया, तुमने सुना मि० रत्नन का विवाह अगले रविवार को ईसाई धर्म के अनुसार होगा?'

"हां, मैंने सुन लिया है। अपने दोनों हाथों को अपनी पीठ के पीछे ले जाती हुई जूलिया बोली, और फिर उसी निराशी दृष्टि से हम लोगों की ओर देखने लगी।

मिसेज रालिन्सन ने एक बार फिर जूलिया की ओर देखा और लंबा सांस लेती हुई मुझसे बोलीं—"ओह मि० रत्नन, तुमने मुझसे कभी नहीं बताया कि तुम ईसाई धर्म स्वीकार करने जा रहे हो! आज अचानक यह सुनकर" वह अचानक सिल्विया की ओर देखकर और उसकी आंखों में न मालूम क्या संकेत पाकर रुक गयी। फिर एक लम्बी सांस उन्होंने ली और बोलीं— कुछ भी हो, मुझे बड़ी प्रसन्नता है प्रभु तुम दोनों का मंगल करें"

२४

जब यह अन्तिम रूप से तय हो गया कि विवाह अगले रविवार को होगा तब बड़े जोरों से तैयारियां होने लगीं। मैंने श्रीमती रालिन्सन से निवेदन किया कि सारा काम उन्हीं को निभाना होगा क्योंकि मैं और मनिया दोनों इन सब मामलों में नौसिखिया हैं। मैंने उसी दिन बैंक से रुपया निकालकर एक लम्बी रकम उन्हें सौंप दी। तीनों माँ बेटियों ने ही बाजार से कुल सौदा खरीदा और अपने भिन्न भिन्न मित्रों को निमंत्रण देना उचित समझा, दिया। मनिया भी एक दिन रिक्शा में चक्कर लगाती हुई अपनी भगिनियों को न्योता दे आयी।

मनिया के उल्लास का ठिकाना नहीं था। विवाह के ठीक एक दिन पूर्व सिल्विया संध्या को अँधेरा होने पर उसके पास आयी। उसके कमरे में दोनों सहेलियाँ आपस में न जाने क्या खुसर फुसर करने लगीं। मैं अपने कमरे में बैठा हुआ था। बीच में दोनों खिलखिला उठती थीं। कुछ देर बाद सिल्विया ने आवाज कुछ ऊँची करके उसे यह बताना आरम्भ कर दिया कि विवाह के समय उसे किस ढंग से पेश आना चाहिये क्या करना चाहिये और क्या नहीं। बहुत देर तक दोनों में खूब घुटती रही। उस रात सिल्विया ने हम दोनों के आग्रह से खाना भी यहीं खाया।

दूसरे दिन मैंने देखा मनिया के मुख पर एक अपूर्व, स्निग्ध और कमनीय कांति छायी हुई है। उसकी मंद मधुर मुसकान से जैसे स्नेह रस चू रहा था। यथासमय श्रीमती रालिंसन और उनके मित्रगण—गोरे युवक और युवतियाँ, वृद्ध-वृद्धाएँ और बच्चे भी—मेरे बँगले के बाहर इकट्ठा हो गये। सिल्विया ने मनिया को एक नये ही वेश में सजा दिया था। श्रीमती रालिन्सन की यह राय थी कि वह अँगरेज युवतियों की तरह सफेद रेशम का गाउन और जाली से ढकी हुई टोपी पहने। पर इस पर मनिया ने आपत्ति की थी और मैंने भी। सिल्विया ने सफेद रेशम की एक साड़ी उसे पहना दी थी, जिसपर इन्द्रधनुषी लहरें लहरा रही थीं। उसके नंगे सिर पर सफेद फूलों को एक सुंदर मुकुट की तरह सजा दिया था और उसके जूड़े पर सात रङ्गों के सात फूलों का हार बाँध दिया था। जो जो कीमती गहने मैं लाया था उन्हें भी गले में, कानों में और हाथों में अपने ढंग से पहना दिया था। कुल मिलाकर मनिया का एक विचित्र ही रूप बन गया था। जब वह मेरे पास आयी तो मैं हँसी रोक सका। मनिया भी झेंपती हुई मेरी ओर से आँखें फेरकर हँस लगी। मैं एक कीमती किन्तु सादा ऊनी सूट पहने था।

जब हम लोग गिर्जे में पहुँचे तो सफेद वर्दी पहने हुये कुछ ईस संन्यासिनियाँ हमारे स्वागत के लिये खड़ी थीं। भीतर मंच पर पादरी महाशय मंद मंद मुस्करा रहे थे जिन्होंने हमें ईसाई धर्म की दी थी। पूरा एक घंटा स्वस्तिवाचन, प्रार्थना, वैवाहिक मंत्र पाठ, प्रि

तथा दूसरे कैथालिक विधि विधानों में बीत गया। पुरोहित महाशय शांत किंतु गंभीर-स्वर में जो मंत्र-पाठ कर रहे थे उनके एक एक शब्द का अर्थ मैं एकाग्र मन से समझने का प्रयत्न कर रहा था। और मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे मन पर उन मंत्रों का एक अपूर्व रहस्यात्मक प्रभाव पड़ रहा था। गिर्जे के सीधे, तिरछे, ऊँचे और गोल घेरे में जब वे शब्द कुछ निश्चित छंद, ताल और लय में बँधी हुई लहरियों में प्रतिध्वनित होते थे तब वे मेरे कानों में अपने अर्थ-सहित उदात्त वेदवाणी की तरह लगते थे और एक जादू का-सा प्रभाव डालने में समर्थ होते थे। उस दिन पहली बार मेरी समझ में यह बात आयी कि गिर्जे की भीतरी बनावट विशेष प्रकार की क्यों होती है—क्यों उस ढंग से निर्मित किया जाता है कि पुरोहित की वाणी गंभीर स्वर-लहरियों में तरङ्गित होती हुई निश्चित गति में प्रतिध्वनित होती रहे। मुझे ऐसा लग रहा था कि उन तरङ्ग-समान मन्त्रों के प्रभाव से मैं मनिया के साथ एक रहस्यमय बंधन में बँधा जा रहा हूँ। अंत में पुरोहित महाशय का आशीर्वाद प्राप्त कर जब हम दोनों बाहर निकले तो चारों ओर से बधाइयों की झड़ी लग गयी। युवतियाँ प्रायः किलकारियाँ मारकर हमारा स्वागत करने और बधाइयाँ देने लगीं। बच्चे खुशी में उछल-कूद मचाने लगे। वृद्धा महिलाएँ आनन्दित हृदय से मंगल आशीर्वाद बरसाने लगीं। एक अपूर्व उल्लास और उत्साह से सारा वातावरण गुंजित हो उठा था। मैंने मनिया की ओर देखा। नववधू की पुलक भरी मृदु-मधुर लज्जाभा उसके मुखपर प्रभासित होकर उसे ऐसी कमनीय नमनीयता प्रदान कर रही थी जो मेरे प्रति स्नेहकरुणा का एक अनिर्वचनीय रूप की अनुभूति से तरङ्गित करती थी। झिन्किया ने बड़ी फुर्ती में आकर मनिया का बायाँ हाथ पकड़ लिया था। एक ऐसा अपूर्व गद्गद विह्वल भाव झिन्किया की आँखों में चमक रहा था कि लगता था उस स्नेह-रूप के कारण उसकी आँखों से आँसू निकलने ही को हैं।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर मैंने देखा, मनिया की साथिनियाँ अपने बाल-बच्चों के साथ एक किनारे पर कतार बाँधे खड़ी हैं। उनमें से अधिकांश पूरे आस्तीनवाला, घुटनों से नीचे तक का फ्राक पहने और

 सिर पर एक कपड़ा बाँधे थी। दो एक ऐसी भी थी, जो जीर्ण लहँगा पहने और फटा-पुराना ओढ़ना ओढ़े हुए थी। कुछ देर तक वे शायद मनिया को पहिचान भी न पायी। परिपूर्ण विस्मय से भरी अवाक दृष्टि से कभी वे मेरी ओर देखती थी कभी मनिया की ओर। जब उन्होंने मनिया को पहचान लिया तब उनका विस्मय अकपट स्नेह श्रद्धा और हर्ष मे बदल गया। व अछूतो की तरह दूर ही खडी थी। उस सफेदपोश समाज के बीच म उन्हें आगे बढने का साहस ही नही होता था। जब मनिया की अन्यमनस्कता भग हुई तब उसने उन लोगो की ओर देखा। देखते ही वह मुझे छोडकर बसुध सी उनकी ओर दौडी गयी और "भल्लो जीजी! नगीना बहन! सनोवरिया भाभी! चिनारिया मामी! " कहकर नाम ले लेकर प्रत्येक से इस तरह लिपटने लगी जसे सुबह के बिछुडे हुए बच्चे शाम को अपनी मा को पाकर उससे लिपट जाते है। चिनारिया मामी को तो उसने अपनी दोनो बाहो से इस तरह पकड लिया कि फिर छोड़ा ही नही 'मामी' की आँखो से बहती हुई आसुओ की धारा मनिया के बालो को भिगो रही थी। मैं मन ही मन सोचने लगा कि जिस 'पवित्र जल' से पादर ने हमे गिर्जे मे अभिषिक्त किया था वह अधिक पवित्र था या जिस जल से 'मामी' मनिया के बालो का अभिषिक्त कर रही है वह अधिक पवित्र है!

पर यह दृश्य मेरे मन म भले ही भावोद्वेलन उत्पन्न कर रहा हो, उपस्थित मडली के लिए वह अत्यन्त अशोभन सिद्ध हो रहा था। सफेदपोश गोरी महिलाएँ देखकर नाक भाह सिकोड़ने लगी थी, और कुछ एक दूसरे की ओर देखकर मुह फेरकर हस रही थीं। पुरुषो ने यद्यपि इस प्रकार 'शिष्ट अभद्रता' का परिचय नही दिया, तथापि उनके मुखो के भाव से मुझे यह स्पष्ट दिखायी दे रहा था कि उन्हें भी मनिया का वह 'अछूत प्रेम प्रदर्शन' अशोभन लग रहा था। श्रीमती रालिन्सन का चेहरा एकदम उतर गया था। उन्हे शायद ऐसा लग रहा था कि मनिया ने जानबूझकर उन्हें उनके 'प्रतिष्ठित' मित्रो के आगे अपमानित करने के इरादे से सबके सामने उन गन्दी जिप्सी लडकियो से 'लगाव लिपटाव' आरम्भ कर दिया है। जूलिया उपस्थित मण्डली की खीझ

और मेरी परेशानी—जो मेरे चहरे से स्पष्ट ही व्यक्त हो रही होगी—देखकर अत्यन्त प्रसन्न लगने लगी थी। कुछ ही समय पहले तक उसकी सूरत रोनी-सी हो रही थी। उसकी कजी आंखों की व्यंगात्मक दृष्टि जैसे सबसे यह कहना चाहती थी—"देखो, इस व्यक्ति ने जिस लड़की से विवाह किया है उसे यह समाज के किस कूड़ेखान से उठाकर ले आया है उसका नमूना देख लो!"

पर मुश्किल यह थी कि मनिया उपस्थित और जनता के मनोभाव के प्रति बिल्कुल उदासीन होकर अपनी पूर्व संगिनियों के साथ सुख दुःख की बातों में ऐसी व्यस्त हो गयी थी कि वहां से हटने का नाम ही नहीं लेती थी। सब लोग इस इंतजार में खड़े थे कि वह लौट आवे और वर वधू के साथ सभी दावत खाने चलें। पर मनिया के लिये जैसे उन सबका कोई अस्तित्व ही नहीं था। मेरी अधीरता की पराकाष्ठा को पहुँचने जा रही थी। एक बार मेरी इच्छा हुई कि स्वयं जाकर उसका हाथ पकड़कर ले आऊँ। पर 'वर होने के नाते मुझे अपनी मर्यादा' की रक्षा पूरी गम्भीरता से करनी चाहिये, यह सोचकर मैं फिर रह गया। सिल्विया इस बीच न जाने कहां गायब हो गयी थी। श्रीमती रालिंसन भी उत्कंठित दृष्टि से सम्भवतः उसी को खोज रही थीं। कुछ देर बाद सिल्विया उस भीड़ के बीच में से ऐसे बाहर निकल आयी जैसे काले बादलों को भेदकर चांद। फादर जेरेमिया भी उसके साथ थे। सम्भवतः वह अभी तक 'फादर' से ही कुछ विशेष बातें करने में व्यस्त थी। उसे देखते ही श्रीमती रालिंसन उसके पास प्रायः दौड़ी गयीं, और मनिया की ओर इशारा करती हुई कुछ कहने लगीं। सिल्विया अपनी माँ की दृष्टि का अनुसरण करती हुई मनिया के पास गयी। मनिया अपनी जीजी, चाची मामी, मौसी से इस तरह मग्नमन होकर बातें कर रही थी कि उसे और कहीं की सुधि ही नहीं थी। सिल्विया को भी उसने नहीं देखा। पर सिल्विया भी एक चतुर थी। उसने एक एक करके मनिया द्वारा निमन्त्रित सभी स्त्रियों को सलाम करना शुरू किया और उसके बाद बड़े प्रेम से मुस्कराकर न जाने उन लोगों से क्या कहा, मैंने कुछ सुना नहीं, क्योंकि मैं काफी दूर खड़ा था। उसके बाद मनिया के कान में कुछ कहकर वह उसका

हाथ पकड़कर ले आयी। मनिया के लौट आने पर फिर सब लोगों ने धीरे मथर गति से चलना आरम्भ किया। वर-यात्रा फिर आरम्भ हुई।

श्रीमती रालिंसन के प्रबन्ध में किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं थी। विवाह म सम्बन्धित केक उन्होंने बहुत बड़े आकार का तयार करवा रखा था और उस केक की सजावट भी देखने ही योग्य थी। मैं और मनिया केक काटने लगे। इस कला म हम दोनो ही नौसिखिये थे। हमारे काटने के ढग मे चारो ओर कहकहा मच गया। सिल्विया ने हम लोगों की सहायता की तब उस सकट से प्राण छूटे। श्रीमती रालिंसन ने कुछ विशेष भोज्य पदार्थ स्वय अपनी देख रेख म घर ही पर तयार करा रखे थे शेष सभी चीजों का प्रबन्ध एक होटल के द्वारा कराया गया था। 'लञ्च' का प्रबन्ध बाहर लान पर किया गया था। मनिया के विशेष आदेशानुसार नरङ्गिया बहन, गुलबिया मौजी चिनारिया मामी, सनावरिया चाची आदि सभी के लिये भी निमन्त्रित 'सभ्य जनता' के साथ ही मजें लगायी गयी और उन्हें भी ठीक उसी तरह 'सर्व' किया गया जिस प्रकार दूसरे मान्य अतिथियों को। कहना न होगा कि मनिया के विचित्र आदेश—और उस आदेश के पूर्ण पालन के सम्बन्ध म उसके हठ—से उपस्थित जनता तनिक भी प्रसन्न नहीं थी। पर मनिया ने इस सम्बन्ध म न श्रीमती रालिंसन के आग्रह पर तनिक ध्यान दिया न सिल्विया के इस सुझाव पर कि उसकी सगिनियों को भीतर आराम से बिठाकर खिलाया जाय।

'यह हर्गिज नहीं हो सकता।' मनिया ने ताव के साथ कहा— वे मेरी विशेष अतिथि हैं। उन्हें अछूतों की तरह अलग बिठाकर मैं उनका अपमान किसी भी हालत म नहीं होने दूँगी।

इसके बाद फिर किसी का कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ। मनिया की सगिनियों के छोटे-छोटे बच्चों ने ऐसा ऊधम मचाना शुरू कर दिया कि कुर्सी के ऊपर चढ़ चढ़कर मेज पर से कई तश्तरियाँ तोड डाली, कई चीजें उलट डाली। यह काड भी श्रीमती रालिंसन तथा उनके दृष्टिकोण के दूसरे व्यक्तियों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने बड़बड़ाना शुरू कर दिया। मनिया ने अपनी सगिनियों की घबराहट देखकर उन्हें दिलासा

देते हुए कहा कि बच्चे ऐसा करते ही हैं। और फिर स्वयं बच्चों को ठीक से बिठाकर उनके हाथ में उसने केक-मिठाइयाँ आदि रख दीं।

जब सब लोग खा-पी चुके, और पुरुषगण सिगरेट अथवा सिगार पीते हुए खाना पचा रहे थे और स्त्रियाँ गप्पाष्टक द्वारा, तब सहसा मनिया की जीजी, चाची, मामी, मौसी आदि ने सहसा एक विचित्र स्वर में और विचित्र ही ताल और लय में कोरस में गाना आरम्भ कर दिया—

ऐसो रतन दिन होवे मुबारक
ऐसी खुशी में मनाओ रँगरलियाँ मनाओ रे !

सब लोगों का ध्यान उसी ओर केन्द्रित हो गया। स्त्रियाँ गप्पाष्टक भूल गयीं और पुरुष सिगार पीना। जिप्सी स्त्रियों का सम्मिलित स्वर निरन्तर ऊँचा उठता हुआ पंचम से धैवत और धैवत से निखाद पर पहुँच गया था। पहले सतरा तक तो व बैठी रहीं, फिर उसके बाद सहसा उठ खड़ी हुईं और एक गोल घेरा बाँधकर उन्होंने नृत्य और गीत एक साथ आरम्भ कर दिया। उनके मुखों पर एक अपूर्व उल्लास चमक रहा था, आँखों में एक निराली मद भरी उमंग छलक रही थी। धीरे धीरे वे सब अपने नाच और गाने में ऐसी रम गयीं कि फिर बैठ कर आराम करने का नाम ही उन्होंने नहीं लिया। 'शिष्ट जनता' पहले तो कुतूहल से देखने लगी, फिर धीरे धीरे दबे हुए कहकहे लगने लगे। उसके बाद लोगों ने उकताकर धीरे धीरे अपनी जगह पर से उठकर चलना शुरू कर दिया। पर उन गायिकाओं पर किसी भी बात का कोई असर नहीं पड़ रहा था। वे अपने नाचने और गाने में ऐसी तल्लीन थीं कि इन सब बातों की ओर ध्यान देने का अवकाश उन्हें नहीं था। उन्होंने न किसी की राय से गाना शुरू किया था, और न उसे बंद करने में दूसरों के संकेतों का कोई प्रभाव उन पर पड़ सकता था। अपनी उमंग से वे गा रही थीं और अपनी मौज से ही बंद कर सकती थीं। चूँकि स्पष्ट ही मनिया के विवाह की खुशी से उनका मन अभूतपूर्व रूप से विभोर हो रहा था, इसलिये उसे जल्दी खतम करने का कोई सवाल ही उनके मन में पैदा

महा होता था। मनिया दूर ही से दम-बेखबर पूर्वक विह्वल हो रही थी। उसके लिये भी सम्भवतः खुशियाँ मनाने का इससे अच्छा ढंग दूसरा नहीं हो सकता था। पर श्रीमती रालिंसन की मुद्रा में स्पष्ट ही यह प्रकट हो रहा था कि वह मन-ही-मन उस अद्भुत नृत्य-गीत से बुरी तरह खीझ उठी हैं। वह अपनी खीझ के कारण कभी नौकरों को बात-बात पर डाँटती थीं, कभी सिल्विया से भिड़ककर बातें करती थीं और कभी जूलिया पर बरस पड़ती थीं। जूलिया माँ को खीजते देखकर और सिल्विया की परेशानी देखकर बहुत प्रसन्न हो रही थी। सिल्विया काफी देर तक मनिया के साथ बाहर बैठकर धैर्यपूर्वक सुनने का ढोंग रचती रही। पर दीर्घ समय के बाद भी जब गाना समाप्त न हुआ तो वह उकताकर वहाँ से उठकर भीतर चली गयी और वहाँ रेडियो बजाने लगी। मैं मनिया के पास ही चुपचाप बैठा हुआ अत्यंत विनोदपूर्वक यह सब तमाशा देख रहा था।

काफी देर बाद जब मनिया की जीजी चाची मौसी मामी का दल क्षणिक विश्राम लेने के उद्देश्य से बैठ गया तब मनिया ने उन सबको भीतर चलकर रेडियो सुनने के उद्देश्य से निमंत्रित किया। हम लोग सब भीतर चले गये। बच्चों को स्पष्ट ही पहली बार किसी सजे हुए बँगले के भीतर खुली छूट मिली थी। वे वहाँ भी तोड़-फोड़ तथा उछल-कूद की कारवाइयों में जुट गये। उनकी माताएँ उन्हें विरत करने के प्रयत्न में बहुत परेशान हो रही थीं। मना किये जाने पर कुछ देर के लिये शांत होकर बच्चे फिर उपद्रव मचाना शुरू कर देते थे। नौकर-चाकर भी उन्हें टोक रहे थे। पर मनिया ने यह आदेश जारी कर दिया कि बच्चों को किसी भी बात के लिये निषेध न किया जाय। केवल पन्द्रह मिनट के भीतर सारे कमरे का रूप ऐसा अस्त-व्यस्त हो गया कि मैं स्वयं हौलदिल हो उठा। पर मैंने एकदम निश्चिंत रूप धारण कर लिया। विवाह के पहले ही दिन के शुभतम अवसर को मैं छोटे-छोटे कारणों से आपसी मनमुटाव में परिणत नहीं होने देना चाहता था। रेडियो में गाने पर गाने चल रहे थे। मनिया

अपनी जीजी चाची मौसी मामी से सुख दु ख की बातें करती जाती और तरह-तरह के प्रश्नो द्वारा उनके जीवन की नवीनतम स्थिति के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करती चली जाती थी। मुझे थकावट मालूम होने लगी थी। मै भीतर अपने कमरे म जाकर एक कौच पर आराम से लेट गया।

लेटे-लेटे मैं नयी स्थिति के महत्व पर विचार करने लगा। सहसा मेरे कानो म किसी के बोलने की आवाज आयी। मनिया की अतिथियो म से एक बोल रही थी—"बिटिया, तुमने तो बडा कारोबार जोड लिया है! तुम्हे बहुत बडा आदमी मिल गया है!"

चाची यह सब तुम लोगो का आशीर्वाद है! मनिया कह रही थी।

"तुम्हारा आदमी सिर्फ बडा ही नही है, बहुत भोला और भला भी है!" यह एक दूसरी स्त्री की आवाज थी।

'हा मौसी, प्रभु की कृपा से ऐसा ही है!'

सुना है तुम किरस्टन बन गयी हो?' एक तीसरी आवाज सुनायी द रही थी।

हाँ जीजी, अब प्रभु मुझे पूरे तौर से अपनी शरण म ले लेंगे।'

'किरस्टन बनने के लिये पादरी ने तुम्हे कितना रुपया दिया? सुनते हैं पादरी जिसे किरस्टन बनाते हैं उसे बहुत रुपया देते हैं। क्या यह सच है?"

"अभी तक तो कुछ नही दिया मौसी, आगे की प्रभु जाने। कुछ रुपया अगर वह देंगे तो मैं सब तुम्हे दे दूँगी।" और फिर बडे ही कोमल स्वर मे मनिया को हँसते सुनाया दिया।

"सच्ची, अपने पादरी से पूछना। अगर वह रुपया दे तो मैं भी बाल बच्चो के साथ किरस्टन बन जाऊँ। मेरी जिन्दगी भर के लिये मेरी और बाल-बच्चो की रोटियो का ठिकाना लगा दे तो बस, फिर क्या है!"

"मैं उससे पूछूँगी।'

'जरूर पूछना!"

"पर मौसा नाराज तो नही होगा, मौसी? यह मनिया बोल रही थी।

"भाड म जाय तुम्हारा मौसा! उस मुदुए को तो अब गाँजे भाँग के सिवा और किसी भी बात की फिक्र थोडे ही रह गया है! बच्चा

 तर वो एक घड़ी 'नही देखना चाहता। मैं दुकान भी करूँ, उसका पट भी जलाऊँ, उसके लिए गाँजा भाँग का पैसा भी जुटाऊँ, घर का काम भी करूँ और बच्चा को भी देखूं ! यह सब अब मेरे किये नहीं होगा, मनिया ! जहन्नुम म जाय वह नाकारा ! मैं कहाँ तक उसके साथ अपना गला बाँध सकती हूं ! '

'तो क्या फिर से वनने पर किसी दूसरे का घर करने की बात सोच रही हो, नानी ? एक बीस बाईस वर्ष की नवयुवती का सा वह स्वर था।

'तो इसम हज ही क्या है ? सारी जवानी उस भकुए के साथ मौत के दिन काटकर बरबाद कर डाली। अब अगर इस बुढौती म कोई सुख दुख का साथी इस जले दिल को दिलासा देने वाला मिल जाय तो क्या न उसका घर करूगी !'

सम्मिलित अट्टहास से सारा कमरा गूज उठा।

मिल जायगा, मिल जायगा ! अभी तुमम बुढ़ापा कहाँ आया है ? जवानी तो अब आ रही है ! यह कलयुग है कलजुग। इसम उलटी गति चलती है। घबराओ मत ! यह न जाने कौन सात्वना के स्वर म कह रही थी।

इतने म किसी न गाना शुरू कर दिया। शायद सात आठ साल की कोई लड़की रही होगी। वह ताली पीट पीटकर गाने लगी —

ए रंगीली बुढिया ! जवानी तुझे आ गयी,
ओ रँगीली बुढिया !
दाँत तो तेरे टूट गये, ए रंगीली बुढिया !
मिस्सी का तुझे शौक है, ओ रँगीली बुढिया !
आँख तो तेरे फूट गये, ए रँगीली बुढिया !
सुरमे का तुझे शौक है, ओ रँगीली बुढिया !

"मर छोकरी ! मेरा मजाक उडाने वाली आयी कहीं की !" फिर ठहाका मचा।

मेरी आँखें झपने लगी था। पिछली रात अच्छी तरह नींद नहीं आयी थी। कुछ देर बाद मैं चौके ही पर सो गया।

जब आँखें खुली तो देखा, मनिया मुस्कुराती हुई खड़ी थी। शायद

उसी के पुकारने पर मैं जगा था। मनिया बोली—"अब तो अँधेरा होने लगा। कब तक सोये रहोगे? मिसज रालिन्सन बेचारी 'डिनर' का सारा इंतजाम अकेली कर रही हैं। अभी थोडी देर मे लोग आ जायेंगे। उठो, हाथ मुह धोकर तयार हो जाओ!"

उठते-उठते मैंने कहा—"तुम्हारी 'स्पेशल गेस्ट्स' की टोली क्या चली गयी?"

"वाह, बिना 'डिनर' खाये वे कैसे जा सकती हैं!" सहज प्रसन्न-भाव से मनिया बोली।

"तब ठीक है, चलो 'डिनर' म भी 'लच' की तरह अच्छी रौनक आ जायगी!"

मैं कह नही सकता, मैंने यह व्यंग म कहा था या सहज भाव से, पर मनिया ने उसे व्यंग मे नही लिया, यह जानकर मुझे प्रसन्नता ही हुई। मनिया बोली—"सचमुच वे सब बडी खुशदिल है। और बहुत भली भी हैं, मुझे अपनी ही लडकी की तरह प्यार करती हैं!"

२५

जब मैं हाथ मुह धोकर कपडे बदलकर तयार हुआ, तब तक बाहर शामियाने के नीचे बत्तिया जगमगाने लगी थी। श्रीमती रालिन्सन ने मेजो पर नये कपडे बिछवाकर ताजा गुलदस्ते रखवा दिये थे। वह और सिल्विया अतिथियो के स्वागत की तयारियाँ पूरी व्यस्तता से कर रही थी। एक एक दो-दो करके अतिथियो ने आना भी शुरू कर दिया था। रात म बिजली की जगमाहट म केवल फैशनेबुल युवक-युवतियो की सुसज्जित वेष भूषा ही नहीं, अधेड और वृद्ध स्त्री-पुरुषो तक की व्यक्तिगत सजावट दिन की अपेक्षा अधिक खिल रही थी। इस बार कई नये अतिथि भी दिखायी दिये। उदाहरण के लिये, फादर एंथोनी दिन म नहीं आये थे। इस समय वह

 भी अपने साथ दूसरे पादरियों का एक पूरा दल लेकर पधारे थे। सिल्विया फाटक से ही उनका स्वागत करती हुई उन्हें शामियाने के नीचे लिवा ले आयी थी। उन लोगों को अच्छी तरह बिठाकर वह फादर जेरमिया के साथ परम प्रसन्न भाव से बातें कर रही थी।

मनिया की 'स्पेशल गेस्टस' भी बाल बच्चों के साथ उत्तर पूर्व में स्थित सीटों पर कब्जा किये बैठी थीं। इस मजबूत मोर्चे को भेदकर आगे बढ़ने का साहस किसी का नहीं होता था बल्कि उसके आस-पास की दो चार सीटें छोड़कर ही लोग बैठते थे। मुझे और मनिया को बीच में एक अत्यन्त सुन्दर रूप से सुसज्जित गोल और काफी चौड़ी मेज के पास श्रीमती रालिन्सन ने बिठा दिया था। हम दोनों के सिरों के ठीक ऊपर शामियाने पर तीन चार रंगीन फानूस लटक रहे थे और उनके बीचों बीच एक बहुत बड़े कैंडल पावर वाला बिजली का लट्टू जल रहा था। मनिया हल्के गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी के ऊपर काले रंग का गरम कोट पहने थी। सिल्विया ने उसके गले में रंग बिरंगे विलायती फूलों की एक माला डाल दी थी। मैं काले रंग का एक गरम सूट पहने था। मेरे कोट के बटन होल पर सिल्विया ने पत्तों सहित एक लाल फूल लगा दिया था। हम दोनों सारे आकर्षण का केन्द्र बन गए थे।

पर मेरे आकर्षण का केन्द्र थी मनिया की विशेष अतिथि मंडली। ज्योंही पहला कोर्स आया त्योंही वे सब एसी तेजी से उस पर टूट पड़ी जैसे चूहे पर बिल्ली। सारे बच्चों ने चीखते चिल्लाते हुए जो छीना झपटी शुरू कर दी वह भी देखने ही योग्य थी। 'सूप' के गिरने से सारे टेबिल-क्लाथ खराब हो गये और शीशे का एक गिलास और एक तश्तरी सँभालते-सँभालते गिर ही पड़ी। मनिया दूर ही से देखती हुई स्नेहपूर्वक मुस्करा रही थी। पर मैं देख रहा था अपने पास ही बैठी हुई श्रीमती रालिन्सन की मुद्रा। वह ऐसी दृष्टि से उनकी ओर देख रही थी जैसे आँखों के जरिये आग उगलकर उन्हें जलाकर भस्म कर देना चाहती हों। उनका यदि वश चलता तो वह उसी दम सबको फाटक से बाहर करवा देतीं। मनिया का रुख जानती हुई वह जी मसोसकर चुप्पी साध ले रही थीं। अतिथियों का अच्छा दिखावा हो रहा था। फादर

एथोनी का दल भी उन विशेष अतिथियों में बड़ी दिलचस्पी ले रहा था। पर कुछ सभ्यताभिमानी गोरी ऐंग्लो इंडियन युवतियाँ स्पष्ट ही उस 'असभ्य' दल की ओर दृष्टि पड़ने पर नाक-भौंह सिकोड़ रही थीं और ऐसा लगता था कि वे वास्तव में अपने को अपमानित अनुभव कर रही हैं।

खान पर खास 'सब' होने चले गये और मनिया द्वारा निमन्त्रित विशेष अतिथि मंडली उन पर बड़ी तेजी से हाथ साफ करती चली गयी।

किसी तरह 'डिनर' भी समाप्त हुआ। जब सभी अतिथि चले गये, और केवल विशेष अतिथि ही रह गये, तब श्रीमती रालिंसन मुझे एकान्त में बुला ले गयीं। बोलीं—"मिस्टर रंजन मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि सारा कार्य बड़े ही अच्छे ढंग से निभ गया।"

मैंने हार्दिक कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए कहा—"यह सब आप ही के कारण संभव हो सका है मिसेज रालिंसन, नहीं तो यह मेरे और मनिया के बूते की बात नहीं थी। मैं सच कहता हूँ, अगर आज मेरी माँ जीवित होतीं तो वह भी अपने सारे स्नेह के बावजूद न तो इस लगन से जुट पातीं न इतने बड़े कार्य को सँभाल पातीं। आपने आज सच्चे अर्थों में मेरी माँ का स्थान ग्रहण कर लिया।"

मेरे आन्तरिक आवेग से श्रीमती रालिंसन की भावुकता आँसुओं के रूप में उमड़ आयी। मेरे सिर पर अपना स्नेह-कोमल हाथ फेरती हुई, गद्गद् स्वर में बोलीं—"बेटा तुम्हारा स्वभाव सचमुच ही बड़ा प्यारा है। और तुम्हारी—तुम्हें पत्नी भी अच्छी ही मिली है। भगवान निश्चय ही तुम दोनों का मंगल करेंगे। केवल एक बात है। मनिया में सब गुण अच्छे हैं पर—पर कभी-कभी वह विचित्र हठ कर बैठती है। और उसकी यह मनमानी मेरी समझ में तनिक भी नहीं आयी—जो उसने इन निम्नी औरतों को खाना देकर मेरे सभी मान्य अतिथियों के साथ ही उन्हें बिठाकर प्रकट की है। फिर भी वह बड़ी अच्छी लड़की है। मेरा उससे कोई द्वेष नहीं है तुम जानते हो मैं स्वयं बड़ी दुःखी हूँ, तुम जानते हो ..."

उनकी भावुकता फिर नये सिरे से उमड़ चली। अपने लाड़ की जब

 से रूमाल निकालकर आँसू पोंछने के बाद उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"मेरी एक इच्छा जरूर थी। तुमने जूलिया को देखा है। उसके गुणों की प्रशंसा अगर मैं करूँ तो ठीक नहीं लगता। इतने दिनों तक तुम स्वयं ही उसकी योग्यता से परिचित हो चुके होगे। मेरी इच्छा थी—मैंने संकोचवश आज तक तुमसे कहा नहीं—कि वह तुम्हारे साथ वैवाहिक बंधन में बँध जाती। मैं किसी और दृष्टि से यह बात नहीं कह रही हूँ। मनिया के खिलाफ मुझे कोई शिकायत नहीं है। तुम जानते हो। पर माँ का हृदय मोहवश कभी-कभी ऐसी बातें भी सोच उठता है जो दूसरों को अनुचित लग सकती हैं। मैं अपने मन के भाव को तुमसे छिपा नहीं पाती हूँ, इसलिये क्षमा करना—अगर मेरे मुँह से कोई अनुचित बात निकल गयी हो तो। पहले ही दिन से तुम्हारे प्रति मेरे मन में अनायास ही पुत्र के समान स्नेहभाव जग उठा था। इसी कारण मैं आज तुम्हारे आगे अपना हृदय खोले बिना न रह सकी। अब मैं चैन से रात में सो सकूँगी। अपने मन की जो बात मैंने तुमसे कही है उसे तुम भी अपने मन तक रखना, यदि सिल्विया के कानों में इस बात की भनक भी पड़ गयी तो वह मुझे कच्चा ही खा डालेगी। जूलिया तो बेचारी बड़ी सीधी है पर सिल्विया बाहर से सीधी बनी रहने पर भी भीतर से बड़ी तेज है। जो भी हो आज मेरे लिये बड़ी ही प्रसन्नता का दिन है। अब तुम जाओ। दिन भर के थके हो, जाकर आराम करो। केवल एक बात का खयाल रखना, ये जिप्सी औरतें बड़ी चार हानी हैं। उनसे सावधान रहना"

मैं श्रीमती रालिन्सन की स्पष्टोक्ति और छल रहित व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुआ। उनसे विदा होकर जब मैं मनिया के पास पहुँचा तब वह अपनी जीजी चाची मामी मौसी के पास चली गयी थी।

वह अपनी 'मौसी' से पूछ रही थी—'मौसी, तुम्हारा पेट भरा या नहीं?'

'खूब भर गया बिटिया इतना खा लिया कि दो दिन के लिये बफिक्र हो गयी।"

मैंने मनिया के पास खड़े होकर उसके कान में कहा—"इन लोगों के लिये क्या कपड़ा मँगवा दिये जायें?'

"नही, इतनी रात घर लौटकर ये क्या करेंगी ।
ग्राज यही सोजायेंगी । क्या सनोवरिया चाची !"

"हा, क्या कहा तुमने ?" सनोवरिया चाची अपने प्राय पाँच साल के बच्चे मे उलझ रही थीं, जो जमीन पर पडे कटलेट के एक टुकडे को उठाकर मुह मे डालने के लिये छटपटा रहा था । उन्होने पूरी बात सुनी नही थी ।

'मैं कह रही थी,' मनिया बोली—"आज तुम लोग इतनी रात गये घर लौटकर क्या करोगी ? आज यही सो रहो, कल दोपहर मे खाना खाकर चले जाना ।"

'हा, हा, तुम ठीक कहती हो,' मौसी ने सनोवरिया चाची की ओर से उत्तर दिया—"पेट इतना भर गया है कि अब उठने को जी नही करता । फिर आज बिटिया की शादी का दिन है । रोज-रोज शादी थोडी होती है । आज हम सब लोग उसी के साथ रहें कल चले चलेंगे, क्या चितारिया भौजी ?"

पर चितारिया भौजी को यह प्रस्ताव कतई पसद नही आया । वह बोली—"यही रह जाने की तुमने अच्छी कही ! तुमने तो जमाई के घर एसा धरना द दिया जसे शादी मनिया की नही तुम्हारी हुई हो ! अरे, तुम लाग सब मनिया को घेरकर यही बठ जाओगी तो जमाई क्या तुम्हारा मुह ताकता रहेगा ? चलो उठो ! खुशी मना ली, खा-पी लिया, नाच-गा लिया, अब बठकर क्या करना है ? तुम्हें रहना है तो रहो, मैं तो चल दी !" और वह सचमुच उठ खडी हुई।

उसके उठते ही चारो ओर स आवाजें आने लगी—"ओ भाभी ! मैं भी चलती हूँ ! आ भौजी, मैं भी आयी ! ठहर जा !" 'नानी, यह लो मैं भी उठी !' उसके बाद मनिया के आग्रह पर भी कोई ठहरने को राजी न हुई। मनिया ने प्रत्येक से हाथ जोडकर कहा—'कम से कम रिक्शा आ जाने तक तो ठहर जाओ, नहीं तो मैं बहुत बुरा मानूंगी ।" फलत सब रुक गयी । रिक्शा लाने को आदमी भेजा गया । प्राय २० मिनट बाद छ रिक्शा आ पहुँचे । मनिया एक-एक करके सब से गले मिली, और बच्चो के से निष्कपट आग्रह भरे स्वर म कहने लगी —"भाभी, भूल न जाना फिर आना !" "मौसी, मैं जल्दी ही तुम्हें

बुलाने के लिए आदमी भेजूंगी!" "बुलानिया यहां, तुम तो कम से कम आज रह ही जाती!" "सिलारिया जीजी! फिर कब आओगी! उसकी आँख छलछला आयी थी और उसकी अतिथियों में भी कोई ऐसा नहीं बचा जिसकी आँखों से दो बूंद आँसू न टपक पड़े हों। मेरी आखें भी न जाने कब डबडबा आयी थीं मुझे पता नहीं चला।

अपनी अपनी ओर से मनिया को दिलासा देकर अंत में वे सब रिक्शा में बैठ गयीं। उनमें से अधिकांश शायद जीवन में पहली बार रिक्शा में बैठी होंगी। सभी रिक्शावालों को मनिया के आदेशानुसार भाड़ा पहले ही चुका दिया गया था। जब तक अंतिम रिक्शा आंखों से ओझल न हो गया मनिया एकटक उसी ओर देखती रही। उसके बाद एक लम्बी साँस लेकर आँख पोंछती हुई भीतर की ओर चली। मेरी ओर उसने एक बार लाज और संकोच भरी तिरछी दृष्टि से देखा और फिर भीता हरिणी की तरह मुंह फेरकर जैसे भाग चली।

आज वह सुबह से ही मुझसे लजा रही थी और भरसक कतराती थी। पर उसका वह लजाना और कतराना मेरे भीतर ऐसी स्निग्ध और मधुर अनुभूति को उभाड़ रहा था जिसकी कल्पना तक मैं पहले नहीं कर सकता था। अपने जीजी चाची मामी-मौसी के दल को जो वह रात में भी अपने पास रह जाने के लिए आग्रह कर रही थी उसके कई कारणों में से एक प्रमुख कारण मुझको यह भी लग रहा था कि वह उन्हें उन सबको मेरे और अपने बीच में दीवार की तरह आड़ बनाना चाहती थी। जैसे उसकी कोई अध-चेतन प्रेरणा उसे सचेत कर रही थी कि जिस पुरुष से उसका विवाह हुआ है वह आज उसका सर्वस्व हरण करने पर उतारू हो जायगा। प्रथम मिलन की रात्रि में नववधू के भीतर सहज आत्मरक्षा का जो संस्कार पूरे प्रतिरोध के लिये सजग हो उठता है मनिया भी मुझे वैसी संस्कार से प्रेरित लग रही थी। इतने दिनों से उससे जो मेरा परिचय था उसे वह जैसे एकदम भूल गयी थी। आज जैसे उससे मेरा पूर्णतः नया परिचय हुआ हो।

उसका अनुसरण करता हुआ मैं भी भीतर गया। अपने कमरे में पहुँचते ही मैंने जो उसका बदला हुआ रूप देखा उससे मैं चकित रह

गया। सारे कमरे की सफाई नये सिरे से की गयी थी और सजावट भी एकदम नये ढंग की थी। फर्श पर आर-पार एक हरे रङ्ग का नया कालीन बिछवा दिया गया था जो लान पर अच्छी तरह कटी हुई घनी और मुलायम दूब की तरह लगता था। पलंग भी बदला हुआ था। मेरी अपेक्षाकृत छोटी चारपाई के स्थान पर एक लम्बा चौड़ा पलँग दिखायी दिया जिस पर सफेद साटिन के दो झालरदार तकिये झलझलाती हुई चादर के ऊपर करीने से रखे हुए थे। पलँग के ऊपर चारों तरफ चार डण्डे पड़े हुए थे जिन पर गुलाबी रङ्ग के खूबसूरत पर्दे सर्पाकृति में मुड़े हुए थे। डण्डों के ऊपर भी चार कोनों में चार गुलदस्ते बाँध दिये गये थे। पलँग पर इन्द्रधनुषी रङ्गों से चमचमाता हुआ एक नया लिहाफ तहाकर रख दिया गया था। पलंग के ठीक ऊपर गहरे नीले 'शेड' में ढकी हुई एक बत्ती मन्द प्रकाश से जल रही थी। कमरे में नितान्त रूप से आवश्यक वस्तुओं को छोड़कर एक भी फालतू चीज कहीं नहीं थी। जो-कुछ भी था सब व्यवस्थित, सजा और सुलझा हुआ।

"क्या मनिया की रुचि में इतना परिवर्तन हो गया है?" मैंने मन-ही-मन सोचा। और एक पुलकानुभूति मेरे शरीर, मन और प्राण को गुदगुदाने लगी। पाँवपोश पर सावधानी से जूते पोंछकर मैंने सूट उतार डाली और सोने के कपड़े पहने। बगलवाले कमरे में दो व्यक्तियों के बहुत ही धीमे स्वर में बोलने—प्रायः फुसफुसाने—की आवाज आ रही थी। यदि उस समय मैं जागता न होता तो शायद वह आवाज मुझे सुनायी न देती। उनमें निश्चय ही एक मनिया होगी और दूसरी सम्भवतः सिल्विया, इतना अनुमान मैंने लगा लिया। पर उन दोनों के बीच क्या बातें हो रही थीं वह मैं न सुन सका।

मैं लेटने की तैयारी कर ही रहा था कि सहसा मैंने देखा, सिल्विया मनिया का हाथ पकड़कर उसे प्रायः खींचती हुई-सी मेरे कमरे की ओर ले आयी। दरवाजे के पास पहुँचते ही सिल्विया ने प्रायः एक धक्के से मनिया को मेरे कमरे के भीतर ढकेल दिया और मनिया के कमरे की तरफ से दरवाजा बन्द करके, उस पर कुण्डा चढ़ाकर वह भीतर से खिल-खिला कर हँसने लगी।

मनिया लजाती और मुसकाती हुई दरवाजे पर हलके दस्तक देती हुई स्कूली लडकिया की तरह शिकायत भरे स्वर म कहने लगी—"खोलो, सिन्विया, खोलो !" साथ ही बीच मे एक बार वह कनखिया से मेरी ओर भी देख लेती थी। वह जितना ही कहती जाती थी, सिल्विया उतना ही खिलखिला उठती थी। मैं पलँग पर स्थिर भाव से बठा हुआ कुछ देर तक यह नाटक देखता रहा। उसके बाद उठ कर मैंने धीरे स मनिया का हाथ पकडा और अपने स्वर मे यथाशक्ति कोमलता भरते हुए कहा— मनिया, कुछ दर मेरे साथ बठकर सुस्ता लो। तब तक सिल्विया अपने आप ही दरवाजा खोल देगी।' और मैंने धीरे-से उसे अपनी ओर खींचा—यह सोचकर कि यदि वह तनिक भी प्रतिरोध करेगी तो हाथ छोड दूँगा। पर मनिया न प्रतिरोध नहीं किया और धीरे-से मेरे साथ चली आयी। ज्योंही मैंने उसे पलँग पर अपनी बगल म बिठाया त्योंही भीतर स सिल्विया बोल उठी—"टा-टा ! विश यू ए लवली नाइट !" और यह कहकर वह चली गयी—सभवत मेरी नौकरानी रमिया को कुछ हिदायत देकर।

मैंने पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे दिलासा देते हुए कहा—"मुझे बहुत दुख है मनिया, तुम्हारी मनोवरिया चाची चिनारिया मामी और साथ की दूसरी स्त्रियाँ चली गयी। वे रात मे तुम्हारे ही साथ रह जाती, बडी चहल पहल रहती। उन लोगो की वजह स विवाह म बडी रौनक आ गयी थी।"

'मुझे मौसी के चले जाने का दुख है' सिर नीचा किये हुए और अपने पाँव के अँगूठे से कालीन को खुरचने की चेष्टा करती हुई मनिया बोली—' बेचारी बडी दुखी है। मौसा चौबीसो घण्टे नशे पानी मे चूर रहता है, न बाल बच्चो की ओर देखता है न मौसी की सुध लेता है। मौसी बिसाती की दुकान खोलकर जो-कुछ पाती है उतने स परिवार को भी खिलाती है और मौसा के नशे पानी का भी खर्च जुटाती है। अगर किसी दिन मौसी बीमार हो जाय तो घर के सब लोग भूखे रहें। मैंने सोचा था, मौसी से कह कि बराबर के लिए मेरे ही पास रह जाय '

"तब कहा क्या नहीं ?

"फिर सोचा कि मौसी यहाँ रहेगी तो मौसा कहा जायगा !"

"वह भी यहीं रह जायगा।"

"सच ?" इस बार मनिया ने आँख उठाकर उत्साहित दृष्टि से मेरी ओर देखा।

"हर्ज क्या है ?"

"पर वह जो चौबीसा घन्टे नशे मे चूर रहता है, वह अच्छा आदमी नही ह।

' उसे सुधारने की कोशिश की जायगी।"

"सच कहते हो ? उल्लास भरी आखो से मेरी ओर देखती हुई वह बोली।

"जहा तक मुझे याद है, मैंने आज तक तुमसे कोई ऐसी बात कभी नही कही, मनिया, जो बाद म गलत साबित हुई हो। तुम्हे धोखा देने या झूठी प्रतिज्ञा करने का कोई उदाहरण तुम्हारे पास है तो कहो !" मेरे स्वर मे अभिमान भरी शिकायत थी।

' न, न, न, मेरा मतलब यह कभी नहा था। मैं तुम्हे जानती हू। मैंने या ही जानना चाहा था और अब दिलासा देने की उसकी बारी थी। वह मेरी पीठ पर हाथ रखकर थपथपाने लगी—जैसे किसी बच्चे को सुलाना चाहती हो।

इस प्रकार हम दोनो के बीच नयी सधि हुई और नयी घनिष्टता स्थापित होने के पव का आरम्भ हुआ।

२६

दूसरे ही दिन से मनिया की बातो से और व्यवहार से मुझे ऐसा लगा कि उसमे अपनी गार्हस्थिक योग्यता के सबध म परिपूर्ण आत्मविश्वास का भाव जग उठा है। इतने दिनो तक वह नौकरो को भी पूरे अधिकार के साथ

आदेश देने में उसे हिचकनी थी। उसकी प्रत्येक गति विधि में सदा और अपने ऊपर विश्वास का अभाव सा प्रकट होता था। पर विवाह के बाद से—और विशेष कर विवाह के दूसरे दिन से—वह पूरे अधिकार के साथ सब विषयों पर अपनी सत्ता कायम करने लगी थी और गृहस्थी की व्यवस्था उसने पूर्णतः अपने हाथों में ले ली थी। घर के प्रबंध से संबंधित किसी भी विषय पर मेरी राय लेने की कोई आवश्यकता ही जैसे उसे नहीं जान पड़ती थी। मैंने घर के खर्च के लिए एक काफी बड़ी रकम उसके हाथों में सौंप दी थी। वह मुक्त हस्त होकर खर्च करने लगी। घर में यदि पाँच आदमी खाने वाले होते तो वह दस आदमियों के लिए खाना तैयार करवाती। विवाह के पहले जितने प्रकार के व्यंजन मेरे यहाँ बनते थे, विवाह के बाद उनकी संख्या दुगनी हो गयी थी। जो खाना बचता था उसे नौकर-चाकर मनिया की आज्ञा से पास पड़ोस के कुली मजदूरों के परिवारों में बाँट देते थे। हमारे बँगले के कमरों में जो फर्नीचर था वह मनिया को सहसा अपर्याप्त मालूम हुआ। उसे बढ़ाने के लिए वह अत्यंत चिंतित हो उठी।

एक दिन सुबह उठते ही उसने मुझसे कहा—'देहरादून चलना होगा।'

उसके उस अप्रत्याशित आदेश का उद्देश्य न समझकर मैंने पूछा—'किस लिए?'

'बहुत-सा नया फर्नीचर खरीदना है। बँगले में जो फर्नीचर है वह एक तो पुराना है, दूसरे काफी नहीं है। नाश्ता अच्छी तरह कर लो। उसके बाद अभी देहरादून चले चलेंगे। शाम को लौट आयेंगे।'

मुझे यद्यपि देहरादून जाने का उत्साह तनिक भी नहीं हो रहा था, फिर भी उसकी आज्ञा को मैं टाल न सका। एक किराये की कार पर हम दोनों एक नौकर को साथ लेकर देहरादून पहुँचे। वहाँ फर्नीचर की जितनी भी छोटी-बड़ी दुकानें थीं सब मनिया ने छान डालीं। प्रत्येक दुकान में से कुछ-न-कुछ सामान अवश्य खरीदा गया। शाम को जब सब दुकानों से सामान बटोरकर एक मोटर ठेले पर रखा गया तब सोफा-सेटों, कुर्सियों, मेजों, पलंगों, पगटेबिलों आलमारियों आदि का

कुमार खड़ा हो गया। इन सब चीजों के अलावा बिजली
की बत्तियों के विविध प्रकार और विभिन्न वर्णों के शेड, विचित्र विचित्र आकृतियों के टेबिल-लैम्प, चीनी मिट्टी के चित्र विचित्र गमले, रंग बिरंग पर्दे, कीमती साड़ियाँ, नौकर चाकरों के लिये तथा और भी न मालूम किन किन वास्तविक अथवा काल्पनिक व्यक्तियों के लिये खरीदे गये कपड़े आदि का ढेर हम लोगों ने अपने साथ कार में लादा। सब कुछ लद चुकने के बाद जब हम लोग मसूरी के लिये रवाना हुए तब मनिया के मुख पर एक अवर्णनीय उल्लास की दीप्ति छायी हुई थी। जब वह मनमाने ढंग से चीजें खरीद रही थी तब भी मैंने उसे एक बार भी नहीं टोका था और बाद में भी एक शब्द द्वारा यह इंगित नहीं किया कि उनमें सब चीजें बेकार हैं, उनमें व्यर्थ पैसा नष्ट किया जा रहा है।

जब उतना सब चीजें लेकर घर पहुँचे तब श्रीमती रालिन्सन उन्हें देख कर अदृनिम आश्चर्य में प्रायः हाँफती हुई सी बोल उठीं—'ओ-!-!-!'

सिल्विया अपनी माँ का वह आश्चर्य देखकर हँस पड़ी। मुझे भी हँसी आये बिना न रही।

सिल्विया सस्नेह मुस्कराती हुई बोली—"आप को अच्छी गृहिणी मिल गयी है मि० रतन! आप की आज तक की सारी कंजूसी का बदला वह दो ही दिन में चुका डालेगी!"

"पर इतनी सब चीजों का होगा क्या?" श्रीमती रालिन्सन ने उसी परेशानी के साथ कहा।

"जो होगा वह आप भी देखेंगी और मैं भी देखूँगा।" मैं इसी हँसी हँसता हुआ बोला।

"और इतनी चीजों के लिये जगह भी आप के बँगले में कहाँ है?" पास ही खड़ी जूलिया भी बोल उठी।

मनिया बेचारी इन सब मंतव्यों से विचलित हो उठी। उतनी देर तक उसके मन में संभवतः यह निश्चित विश्वास जमा हुआ था कि उसने कोई बहुत बड़ा काम कर डाला है, जो उसकी गार्हस्थ्य-कला सम्बन्धी निपुणता का अकाट्य प्रमाण सब लोगों के आगे उपस्थित कर देगा।

पर जब उस पर चारों ओर से व्यंग-बौछारें होने लगी तब उसका मुख इतना सा हो गया। मैं उसे भीतर ले गया। भीतर पाँव रखते ही वह प्राय रोनी सी सूरत बनाती हुई बोली—'क्या सचमुच सामान अधिक हो गया? तब तुमने मुझे टोका क्यों नहीं?'

"नहीं मनिया, कुछ भी अधिक नहीं हुआ, उन लोगों को कहने दो। और अगर अधिक हो भी गया होगा तो वह कहीं न कहीं अवश्य ही खप जायगा, तुम तनिक भी चिन्ता न करो।"

"नहीं, नहीं, तुम मुझे दिलासा देने के लिये इस तरह की बात कह रहे हो!' रोने की तयारी करती हुई मनिया बोली—"तुम बहुत ही भले हो, और मेरे ऊपर तुम्हारी दया का अन्त नहीं है। पर तुमने कभी इस बात पर भी ध्यान दिया है कि मेरे ऊपर तुम्हारी इतनी अधिक दया के कारण मेरी आदतें बहुत बिगड़ रही हैं? तुमने मुझे इतना अधिक रुपया क्यों सौंप दिया? इतना रुपया लेकर मैं क्या करूँ मेरी समझ में नहीं आता। इसलिये मैं चाहती हूँ कि वह जल्दी से जल्दी खतम हो जाय, और खतम करने का दूसरा तरीका मुझे जल्दी में नहीं सूझ पड़ा। कल से यह सब रुपया तुम ही रखना मैं इसमें हाथ नहीं लगाऊँगी।" और वह पलंग पर प्राय पछाड़ खाकर लेट गयी और दोनों हाथों से उसने अपना मुँह ढक लिया।

उसे मनाने में मुझे पूरा आधा घंटा लग गया।

दूसरे दिन मनिया ने फिर यह नहीं कहा कि 'यह सब रुपया तुम ही रखो मैं अब से इसमें हाथ नहीं लगाऊँगी।' उसने पिछले दिन की तरह ही एसे धड़ल्ले से खर्च करना आरम्भ कर दिया कि इस तरह की बात उसने कभी कही है यह शायद उसे याद दिलाये जाने पर भी मुश्किल से याद आ पाती।

एक दिन उसने मुझे सूचित किया कि वह मौसी के यहाँ जाकर उसे अपने पास ले आना चाहती है। उसने मुझसे भी चलने के लिये कहा, पर मैंने सिर-दर्द का बहाना बनाकर टाल दिया। वह नौकरानी को साथ लेकर चली गयी। सन्ध्या को निराश लौट आयी मैंने पूछा तो पता चला कि मौसी आना तो चाहती है, पर अपने 'नाकार' की राय

लिये बिना नहीं। और वह 'नाकारा' सुबह से बाहर निकला हुआ अभी तक लौटा नहीं था। जब मनिया इंतजार करते-करते थक गयी तब निराश लौट आयी। उसने कहा कि वह फिर किसी दूसरे दिन जायगी।

२७

सर्दी दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही थी। श्रीमती रालिन्सन ने राय दी कि हम लोग जाड़ों में किसी गरम स्थान में जाकर रहें। उन्होंने कहा कि विवाह के बाद लोग 'हनीमून' मनाने के लिये लंबी यात्रा के लिए निकल जाते हैं। और हम लोग यदि जाड़ों में भी मसूरी जैसे ठंडे स्थान में पड़े रहें तो यह बुद्धिमानी न होगी। मैंने उन्हें सूचित किया कि मसूरी के प्रति मेरे मन में कुछ ऐसा मोह उत्पन्न हो गया है कि अब उसे एक दिन के लिये भी छोड़ने से जी उदास हो जाता है। श्रीमती रालिन्सन स्नेहपूर्वक मुस्कराने लगीं।

नवम्बर का महीना बीत चुका था और दिसम्बर का पहला सप्ताह चल रहा था। दिन में यदि धूप रहती और हवा न चलती तो बाहर बैठकर धूप खाते हुए अगल बगल की हरी भरी पहाड़ियों का एकांत दृश्य बहुत सुहावना लगता था, और जब बीच-बीच में उस एकांत को चीरती हुई सुदूर आकाश में चक्कर लगाने वाली चील तीखी आवाज में चीख उठती तो उसका वह मर्मभेदी स्वर प्राणों को एक अजीब सी मीठी उदासी में छा देता था। ऐसा अनुभव होने लगता था कि जीवन में कहीं कोई संघर्ष नहीं है, कहीं किंचिमात्र भी अव्यवस्था या अशांति नहीं है, और यदि अनन्तकाल के लिये वही मीठी धूप रहे, वही एकांत वातावरण रहे और बाहर में मनिया बैठी हुई उसी तरह गरम बनियाइन बुनती रहे, तो सारे अनंत को एक सुखद स्वप्नमय झूले की तरह बड़ी आसानी से बिताया जा सकता है।

पर जिस दिन तेज हवा चलने लगती उस दिन जी बुरी तरह घवरा उठता। जीवन के जिन सघर्षों की अनुभूति को मैं भुलाए या अपने भीतर दबाय रहता वे हवा की उस तीव्रता के वेग से उभरकर चारो ओर से जैसे मेरा गला पकडने लगते। उस दिन मैं भीतर किवाड़ बद किये लेटा रहता। या तो लेटे लेटे कुछ पढ़ता या मनिया से किसी नयी गार्हस्थिक योजना के सम्बन्ध म सलाह मशविरा करता।

मनिया को कुछ दिनो से बँगले को बाहर और भीतर से अधिकाधिक सुसज्जित करने की धुन सवार हो गयी थी। जो फर्नीचर वह लायी थी उस सभी कमरो म बरामदे म और नौकरो के आवास म यथास्थान स्थापित करने के बाद जितना बचा रह गया उसे उसने श्रीमती रालिन्सन को दे दिया। बहुत से गमले मगाकर उसने श्रीमती रालिन्सन की सहायता से उनमे ऋतु के योग्य फूल पत्ते तथा पत्तियाँ लगाकर बरामदे म चारो ओर सजा कर रख दिए। एक अनुभवी माली को नियुक्त करके बाहर दालान म भी क्यारियाँ खुदवायी और फूल लगवा दिये।

रालिन्सन परिवार को वह अक्सर चाय के लिये निमन्त्रित करती रहती थी। श्रीमती रालिन्सन से उसने विशेष विशेष पकवान—केक सडविच सलाद आदि पटरसमय भोज्य-पदार्थ तयार करने सीखे थे, उनमे अपनी रुचि के अनुसार नये-नये परिवर्तन करने का ढग भी वह सीख गयी थी। अपनी छोटी-सी गृहस्थी को सरस सुरमय कलात्मकपूर्ण और व्यवस्थित बनाने के उद्देश्य से उसके उत्साह म तनिक भी कमी नहीं पायी जाती थी।

मिल्ड्रिया अब भी नियमित रूप से उसे पढ़ाने के उद्देश्य से आती थी। मनिया का अग्रेजी भाषा सबधी ज्ञान दिन पर दिन बडी तेजी से बढता चला जा रहा था और वह रालिन्सन परिवार के व्यक्तियो के साथ धड़ल्ले से अंग्रेजी म बातें करना सीख गयी थी। साथ ही हिन्दी भाषा का ज्ञान बढाने की ओर भी उसके प्रयत्न म कुछ कमी नही आयी थी। मैं इस सबध म यथासभव उसकी सहायता कर दिया करता था। बाहर से हिन्दी की अच्छी अच्छी ज्ञानवर्द्धक पुस्तकें मैं उसके लिये मँगा लिया करता था। एक बार मेरी इच्छा हुई कि मैं उसके लिए

धार्मिक पुस्तकें, जैसे तुलसीकृत रामायण, हिंदी महाभारत,
भागवत की कथा, गीता तथा उपनिषदों के अनुवाद आदि मँगाऊँ। पर—फिर यह सोचकर रह गया कि अभी उसके भीतर की कोमल मिट्टी में ईसाई धर्म का जो कच्चा ज्ञान भरा पड़ा है वह जब तक पक्का नहीं हो जाता, उस धर्म के सभी अंगों और सभी पहलुओं से वह जब तक भली भाँति परिचित नहीं हो जाती और वास्तविक जीवन के अनुभवों से उन सभी पहलुओं का मेल कहाँ तक बठता है, इसका ज्ञान स्वयं नहीं प्राप्त कर लेती, तब तक किसी दूसरे धर्म से संबंधित चक्रों में उसे उलझाना उचित नहीं होगा। फिर भी मैं भारतीय संतों की जीवनियों और वाणियों से उसे परिचित कराता रहा। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भारतीय संतों और ईसाई संतों की जीवनियों में जो समता थी वह तत्काल उसकी सरमय रहित दृष्टि की पकड़ में आ गयी। ऊपरी प्रभेद जो-कुछ था उसे उसने तनिक भी महत्व नहीं दिया। मैंने जब उसे रामकृष्ण परमहंस की जीवनी पढ़ने को दी और उसने यह जाना कि वह एक बार ईसाई धर्म में प्रविष्ट हुए थे और ईसा के भक्त वह बराबर बने रहे तब उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। स्वामी राम-कृष्ण के प्रति और भी कई कारणों से उसकी श्रद्धा जग गयी थी। उनके उपदेशों की सूक्ष्मता को समझने में उसने अपने को असमर्थ पाया, पर मोटे तौर से वह जितना भी समझ पायी उससे बहुत प्रभावित हुई। काली के प्रति उनकी भक्ति से उसने मरियम के प्रति अपनी भक्ति के रूप की तुलना की और दोनों भावनाओं में कोई विशेष अंतर उसे नहीं मिला। गरज यह कि भारतीय संतों की जीवनियों में जो कुछ भी विशेषता वह पाती थी, जिस किसी भी बात से वह प्रभावित होती थी उससे प्रभु 'ईसा' और माता 'मरियम' के प्रति उसकी भक्ति भावना को और अधिक पुष्टि मिलती थी। क्रास पर लटकते हुए ईसा और स्वर्ग की आभा में लीन मरियम के दो सुंदर चित्र उसे मिशनरियों से प्राप्त हो गये थे। उन दोनों को अपने कमरे में पूरब की ओर फर्श से कुछ ही ऊपर दीवार पर टाँगकर वह रात में सोने के पहले और सुबह उठने पर नियमित रूप से उनकी उपासना किया करती थी। यह ठीक है

 नहीं खायगी। मैंने आश्चर्य से पूछा—"किसके यहाँ है निमन्त्रण ?"

"सिल्विया की एक सहेली है लीला। वह हिन्दू है, तुमने देखा होगा उसे। वह घुंघराले बालों वाली लड़की जो अक्सर काले गाउन वाली 'नन' के साथ जाती हुई दिखायी देती है।

'उससे तुम्हारा परिचय कैसे हुआ ?

"वह सिल्विया के यहाँ आती-जाती रहती है। दोनों एक ही स्कूल में एक ही दरजे में साथ साथ पढ़ती रही हैं। एक दिन सिल्विया उसे यहाँ भी ले आयी थी। तब तुम घर पर नहीं थे।"

'ओह! ठीक!' कहकर मैं खाने लगा।

खाना खा चुकने के बाद मैं हाथ में एक पुस्तक लेकर लिहाफ ओढ़कर पलंग पर चित लेटकर पढ़ने लगा। पढ़ते पढ़ते न जाने कब आँखें लग गयी। जब आँखें खुली तो मैंने घंटी का बटन दबाकर नौकर को बुलाया। उससे एक ग्लास पानी लाने को कहा। पानी पीकर मैं उठ बैठा। यद्यपि दोपहर का समय था तथापि बाहर एक दम घना अन्धकार दिखायी दिया। बादलों का गम्भीर गर्जन सुनकर मैं समझ गया कि मामला कुछ गहरा है। बरामदे की ओर किवाड़ खोलते ही बरफ से भी ठंडी हवा का एक झोंका सारे शरीर में तीव्र सिहरन पैदा कर गया। मैंने तत्काल किवाड़ बन्द कर दिया। नौकर से पूछने पर मालूम हुआ कि जब मैं सोया था तभी मनिया सिल्विया के साथ बाहर निकल गयी थी। मैंने अकेले ही काफी पीने का विचार करके नौकर को उसके लिये आदेश दे दिया। पर उसके पहले कमरे की दीवार में लगी हुई अँगीठी में कोयला सुलगा जाने के लिये कहा। ध्यानसिंह कोयले ले आया और पाँच मिनट के अन्दर उसने उन्हें सुलगा दिया। उसके बाद वह काफी तयार करने चला गया। इसी बीच मैं पलँग पर फिर लिहाफ ओढ़कर लेट गया और कहानियों की एक पुस्तक उठाकर पढ़ने लगा।

यद्यपि सभी किवाड़ और खिड़कियाँ बन्द थीं, तथापि बाहर हवा के तीव्र वेग में सनसनाने की आवाज शीशों का आवरण भेदकर कमरे में

स्पष्ट सुनायी दे रही थी। कहानी पढ़ते-पढ़ते मेरी दिलचस्पी उसमे बढ़ने लगी थी। मैं मग्न भाव से पढ़ रहा था। सहसा
भीतर से किवाड़ खुलने का शब्द सुनकर मेरा ध्यान भंग हुआ। नौकर एक ट्रे में काफी ले आया था। पलंग की बगल वाली मेज पर उसने काफी रख दी। मैं उठ बैठा। खिड़की के शीशे से होकर नजर पड़ते ही मैंने देखा, एक काली सी छायामूर्ति—'सिलूहट' की तरह—बरामदे में खड़ी है। बाहर बिना पानी पड़े ही सीधे-सीधे बरफ गिरनी शुरू हो गयी थी, यह भी मैंने पलंग पर बैठे बैठे देख लिया। पर वह काले आवरण से ढकी हुई छायामूर्ति कौन हो सकती है? मेरा कुतूहल बढ़ा। मैंने ध्यानसिंह से किवाड़ खोलकर देखने को कहा। ध्यानसिंह ने किवाड़ खोला, खोलकर देखा और फिर लौटकर चुपके से मुझे बताया कि फादर जेरेमिया खड़े हैं।

मैं आलस त्याग कर तत्काल पलंग पर से कूद कर बाहर गया और "हल्लो फादर!" कहकर उनका अभिवादन किया। फादर ने मेरी ओर देखा और प्रेमपूर्वक मुस्कराते हुए बोले— कैसा सुहावना मौसम है आज का! जरा आगे बढ़कर देखो!

विकट सर्दी के कारण मेरे दांत किटकिटाने लगे थे। अनिच्छा से कुछ आगे बढ़कर मैंने देखा असंख्य श्वेत पुष्पों की तरह रुई से भी कोमल असंख्य हिमकण अविरल रूप से बरसते चले जा रहे थे और धीरे धीरे जमीन पर और पेड़ों पर जमने लगे थे। मैंने कहा—' बहुत सुन्दर है!" पर मेरे मुंह से निकले शब्द भी उस बरफ की तरह जम गये थे। फादर ने कहा—"तुम्हें सचमुच बड़ी सर्दी मालूम हो रही है!"

मैंने कहा—"आप बाहर क्यों खड़े हैं चलिये भीतर चलें!"

फादर ने अपना काला लबादा उतारा और उसे दोनों हाथों से फटकार कर उसमें जमी हुई बरफ को झाड़ दिया। उसके बाद मेरे साथ वह भीतर चले आये। भीतर से किवाड़ बन्द करके जब मैं अंगीठी के पास कुर्सी लगाकर बैठा तब मेरे जी में जी आया। ध्यानसिंह ने फादर के लिये भी एक कुर्सी अंगीठी के पास ही रख दी। काफी की ट्रे भी पास ही एक छोटी सी मेज पर रख कर उसने दो प्यालों में काफी ढाली।

दूध-चीनी मिलाकर उसने एक प्याला फादर की ओर बढ़ाया और एक मुझे दिया।

फादर प्याले को हाथ में लेते हुए बोले— 'मैं बड़ा भाग्यशाली रहा। बहुत अच्छी साइत में बाहर निकला था। तुम्हारे यहाँ आते ही कॉफी मिल गयी, यह मेरा बहुत ही प्रिय पेय है।'

'पर आप न जाने कितनी देर से बरामदे में खड़े थे, मुझे कुछ पता ही न चला। आपको चाहिए था कि किवाड़ खटखटाते! इतनी देर तक आप व्यर्थ में बाहर ठण्ड में खड़े रहे!'

'मुझे कतई जाड़ा नहीं मालूम हो रहा था।' स्नेहपूर्वक मुस्कराते हुए फादर ने कहा— 'मैं तो उस सुहावने दृश्य का पूरा उपभोग कर रहा था। घर से जब निकला तब इस बात की कोई संभावना ही मुझे नहीं दिखायी दी थी कि इतनी जल्दी बरफ पड़ने लगेगी। पर आपके बँगले के पास पहुँचते ही ऐसी तूफानी आँधी चलने लगी कि मैंने कुछ देर यहाँ ठहर जाना उचित समझा।'

'आपने बड़ी कृपा की।'

फादर ने कॉफी पीते हुए एक बार अपनी पैनी दृष्टि सरसरी तौर से कमरे में चारों ओर—ऊपर नीचे—दौड़ायी। मनिया ने तीन ही चार दिन पूर्व क्राइस्ट के जीवन से सम्बन्धित कुछ बड़े बड़े चित्र फ्रेम में जड़वाके मेरे कमरे में टँगवा दिये थे। सूली पर चढ़े हुए ईसा के सामने ही एक चित्र स्वर्ग से दिव्य ज्योति की आनन्दमयी किरणें बरसाने वाले ईसा का भी था।

'स्वर्ग और मर्त्य!' फादर ने कहा। और फिर एक घूँट कॉफी की पी।

वह जैसे अपने आप से ही कुछ कह रहे थे। पर मैं जानता था कि वह कभी कोई भी बात बिना किसी विशेष उद्देश्य के नहीं कहते। मैंने कहा— 'मैं आपका आशय या मतलब कुछ समझा नहीं। बड़ी कृपा हो, यदि आप अपने सूत्र को तनिक व्याख्या के साथ समझाने का कष्ट करें।'

"मेरा कोई विशेष आशय नहीं था। यों ही एक बात मेरे मुँह से

निकल आयी। आपके चित्रों को देखकर यह विचार मेरे मन मे जगा कि स्वर्ग-सम्बन्धी कल्पना एक चीज है और मर्त्य का सत्य दूसरी चीज। ईसा को शूली पर चढाया गया, यह मर्त्यलोक के जीवन का जीवित सत्य है। पर यह धारणा कि वह स्वर्ग मे पहुँचकर पापी-तापी मर्त्य वासियो पर अपार प्रेम, क्षमा और करुणा की अमृत-मयी किरणें बरसा रहे हैं, यह कवियो की स्वर्गीय कल्पना है, जो उनकी सभी कल्पनाओ की तरह सुन्दर है"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही था। मैंने कहा—"तो क्या आप यह स्वीकार करते हैं कि ईसा किसी दिव्यलोक से ईश्वर की दिव्य शक्ति लेकर नही अवतरे थे, और न मरने के बाद वह किसी दिव्य धाम को ही पधारे?"

'इसमे स्वीकार करने की कौन सी बात है!" सभवत कुछ अप-मानित-सा अनुभव करते हुए फादर ने कहा—"यह तो एक साधारण सत्य है जिसे किसी भी साधारण व्यक्ति की साधारण बुद्धि समझने मे समर्थ है।'

"आपका आशय मैं क्या यह समझू कि ईसा साधारण मनुष्यो के बीच मे उत्पन्न एक साधारण ही मनुष्य थे?"

'बिलकुल यही—केवल एक अतर के साथ, वह साधारण मनुष्यो के बीच मे उत्पन्न साधारण ही मनुष्य थे, सदेह नही, पर उनकी भाव-नाएँ साधारण स्तर के मनुष्य से बहुत ऊपर उठी हुई थी, और साथ ही मन की असाधारण गहराइयो तक पहुँची हुई थी।'

तो उनके ईश्वरत्व का जो प्रचार बाद मे किया गया उसे आप झूठा मानते हैं?

"झूठा तो मैं नही कहूँगा, पर इतना अवश्य कहूँगा कि वह भ्रमा-त्मक था। झूठा इसलिये नही था कि जिन लोगो ने उनके देवत्व का प्रचार किया था वे ईसा की असाधारण भावना शक्ति द्वारा इस हद तक प्रभावित हो चुके थे कि ईश्वरत्व के अतिरिक्त दूसरी कल्पना ही वह उनके लिये नहीं कर सकते थे। और तो और, स्वय ईसा अपनी शक्ति के सम्बन्ध मे भ्रम मे पड़े हुए थे। कभी-कभी स्वय उन्हें यह भ्रम होने लगता था

कि वह ईश्वर द्वारा प्ररित और प्रेषित हैं। इसके कारण थे

फादर के मुख के भाव मे एक तीव्रता आ गयी थी और मुसकान
एकदम निरोहित हो चली थी। अन्तिम घूट समाप्त करके उन्होने प्याला
नीचे रख दिया था। ध्यानसिंह ने उसे दुबारा भर दिया और दूध-चीनी
मिलाकर फिर उसे फादर के हाथ मे दे दिया। फादर ने अन्य मनस्क
भाव से एक बार ध्यानसिंह की ओर देखा, फिर प्याला मुह से लगा लिया।
मैं उनके प्रत्येक हाव भाव और प्रत्यक चेष्टा मे बडी गहरी दिलचस्पी ले
रहा था। आज उनका बिलकुल एक नया ही रूप मेरे आगे प्रकट हो रहा
था। मैं तब तक सोचता था कि वह भी सभी पादरियो की तरह कट्टर
और हठधर्मी होंगे।

मैंने कहा—"क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि उनके उस भ्रम
के क्या कारण थे?"

"अभी बताता हू।" कहकर उन्होने शेष काफी को जो ठडी हो चली
थी, दो घूट म समाप्त कर डाला। मैं अपनी काफी पहले ही समाप्त कर
चुका था।

प्याले को नीचे रखकर रुमाल म मुह पोछकर फादर ने कहना शुरू
किया—'ईसा ने जब जन्म लिया तब उनका देश असाधारण परिस्थि
तियो स होकर गुजर रहा था। एक ओर रोमन शासको के लौह चक्र के
नीचे साधारण यहूदी जनता बुरी तरह कुचली हुई थी, दूसरी ओर पुरो
हित वग की अधिकार प्राप्ति की भावना राजनीतिक क्षेत्र म अपने को
पराजित पाकर धार्मिक क्षेत्र म दुगनी तीव्रता स विकसित हो उठी थी
और वह जनता के मन म पारलौकिक भीति की भावना जगाकर उससे
अधिक से अधिक लाभ उठाकर अपने अहंभाव की पूर्ति करने म सलग्न
था। तीसरी ओर महाजन वग अपने स्वाथ-साधन म पूरे प्रयत्नो स जुटा
हुआ था। इन विविध शक्तियो के निपीडन स दीन-दुखी, अशिक्षित और
असहाय जनता निमम रूप से पिसी चली जा रही थी। उसके भीतर
का दमित हाहाकार सारे वातावरण को आक्रान्त किये हुए था और
धीरे धीरे अदृश्य रूप से सामूहिक चेतना-लोक म कुछ विचित्र रासायनिक

परिवर्तन उत्पन्न करने लगा था। सामूहिक अवचेतना के इन्हीं सूक्ष्म परिवर्तनों की चरम परिणति ईसा के जन्म में हुई, जिसके फलस्वरूप एक विशेष प्रकार की दार्शनिकता की उत्पत्ति हुई। इस नयी दार्शनिकता ने जन साधारण की जड़ चेतना के भीतर विस्फोट उत्पन्न कर दिया। इस दार्शनिकता का साधन था दरिद्र-नारायण के सहज आत्म-समर्पणशील भीरु मन के भीतर अहं का स्फुटन और आत्म विश्वास का जागरण और साध्य था सभी शोषक वर्गों के विरुद्ध शोषितों का विद्रोह ..."

उनकी सतेज आँखें वत्ती के प्रकाश में और अधिक तीक्ष्णता से चमकने लगी थीं और उनके ओठों के साथ ही उनकी तीखी नाक का सिरा भी जैसे हिलने लगा था।

मैंने कहा—"सभी धार्मिक नेता जनता को बराबर अपने अहं को विलीन करने का उपदेश देते रहे हैं। स्वयं ईसा ने स्थान-स्थान पर इसी तरह का उपदेश दिया है। इसलिए आपकी इस बात में संगति कहाँ पर रह जाती है कि ईसा की दार्शनिकता का साधन था जनता के अहं का स्फुटन?"

फादर मुस्कराये। वह एक विचित्र व्यंग भरी मुसकान थी जिसमें संभवतः मेरी अज्ञता के प्रति तरस की भावना भी भरी हुई थी। बोले—"यही तो उस रहस्य का मूल है जिसने सारे युग को—बल्कि युगों को—एक आश्चर्यजनक भ्रम के फेर में डाल दिया। इसमें ईसा का कोई दोष नहीं था, दोष था समझने और समझाने वालों का। ईसा ने अवश्य समय-समय पर अपने उपदेशों में विनय, नम्रता, अहंभावशून्यता और आत्मसमर्पणशीलता पर जोर दिया है, पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह विनय, वह नम्रता, वह अहंभावशून्यता, वह आत्मसमर्पणशीलता दमित अहम् का ही परिपूर्ण परिस्फुटन है—यद्यपि उलटी दिशा में। वह अधिकार प्राप्ति की भावना या सत्ताकांक्षा का ही दूसरा रूप है। रोमनों के पास राजनीतिक और शस्त्रास्त्र का बल था, पुरोहित वर्ग के पास लौकिक धर्माधिकार का बल था, और यहूदी महाजन वर्ग के पास आर्थिक बल था। इन तीनों बलों की सम्मिलित सत्ता के विरुद्ध संगठित विद्रोह के

लिये एक ऐसे अस्त्र की आवश्यकता थी जो सारी भौतिक दीवार का काम्पित किरणों की अदृश्य किंतु अतर्भेदिनी शक्ति से भेदकर उसे ध्वस्त कर सके। और वह अस्त्र क्या हो सकता है, यह जानने में ईसा के समान तीव्र अतद्दृष्टि रखने वाले महापुरुष को देर न लगी। वह समझ गये कि निरीह जनता को कुचलने वाली वे भौतिक शक्तियाँ तभी छिन्न भिन्न हो सकती हैं जब जनता के भीतर की आध्यात्मिक अणु शक्ति को जगाया जाय। और उस अणु शक्ति को जगाने का एकमात्र उपाय यही था कि अधिक से अधिक विनय, अधिक से अधिक आत्मत्याग, और सासारिक विषयों के प्रति अधिक से अधिक विराग के आदर्श को व्यावहारिक रूप देकर जनता के मन में यह विश्वास जमा दिया जाता कि उसके भीतर एक ऐसी शक्ति निहित है जो सभी सासारिक शक्तियों को तुच्छ कर सकती है। सीधे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ईसा एक धार्मिक नेता उतने नहीं थे जितने राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक चक्रों से पीड़ित और असन्तुष्ट जनता के सगठित विद्रोह के नेता। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था—मैं ससार में शांति स्थापित करने नहीं आया हूँ, बल्कि पिता और पुत्र के बीच, भाई-भाई के बीच विरोध और विद्रोह खड़ा करने के लिये आया हूँ। उन्होंने यह भी कहा था कि वेंजेंस इज माइन, आई विल रिपे।" 'प्रतिहिंसा का मूल सूत्रधार मैं हूँ और मैं बिना बदला चुकाये रहूँगा नहीं। इसका अर्थ भले ही कुछ लोग यह लगायें कि ईसा ने साधारण जनता में बदला चुकाने की भावना से विरत रहने का उपदेश देते हुए कहा था कि 'बदला चुकाने का अधिकार केवल मुझे है', पर इससे मूल बात में कोई अतर नहीं आता। वह यह कि बदले की भावना ईसा को अभीष्ट थी। उनके भीतर का अहम् अपने युग के सत्ताधिकारियों से लोहा लेने के लिये वचन था। पर बदला चुकाने का अस्त्र उनका अपना निजी था। अतिशय विनय परिपूर्ण आत्मत्याग, दूसरों की बुराई के प्रति क्षमा भावना आदि अहिंसात्मक उपायों से निष्क्रिय प्रतिरोध द्वारा सत्ताधिकारियों के अत्याचारों और अन्यायाचरणों का सामना करते हुए, हिंसात्मक प्रवृत्तियों की सारी चोट अपने

ऊपर लेकर जनता के अवचेतन मन की गहराई में अन्याय के प्रति क्षोभ और असंतोष उभाड़ना—यह था उनका उद्देश्य।

और अपने इस उद्देश्य में वह कुछ तो अपने जीवन-काल में और अधिकांशत: अपनी मृत्यु के बाद सफल हुए, इतिहास इसका साक्षी है। उनकी मृत्यु अत्यंत दुर्गति के साथ हुई—उन्हें काँटों का ताज पहनाया गया, पुरोहितों और रोमन शासकों की गुलामी के कारण पतित जनता ने तालियाँ पीटकर मुँह चिढ़ाकर उनका मजाक उड़ाया और उनके ऊपर थूका, उनके ऊपर पत्थर फेंके गये और तब सूली पर लटकाया गया। "देखो! देखो! अपने को जननायक बतानेवाले इस व्यक्ति को देखो!" काँटों से तथा कीलों से छिदे हुए शरीर से बहनेवाली रक्त की धारा से नहाते हुए उस शांत और अहिंसात्मक—तथापि आत्मा की अतलता में अशांति की आग भड़कानेवाले—उस विद्रोही महापुरुष की ओर लक्ष्य करके दास मनोवृत्ति से प्रेरित जो जनता उपहास कर रही थी उसे पता नहीं था कि उस महामृत्यु का कैसा जीवित प्रभाव युग युग तक विश्व की व्यापक जनता पर पड़ेगा। 'हे प्रभु! इन सबको क्षमा करना क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं!' यह मार्मिक प्रार्थना करते हुए उस महाप्राण का निर्वाण हो गया। इस प्रार्थना ने उनके उस पुंजीभूत पीड़न को चरम मार्मिकता का रूप दे दिया। यह सब जैसे उस महाविद्रोही आत्मा की निश्चित योजना के अनुसार हुआ। वह जैसे अपने जीवन की सारी साधना उसी घोर अवमाननापूर्ण—और साथ ही निदारुण रूप से कारुणिक—मृत्यु की सिद्धि के लिये नियोजित किये चले जा रहे थे, क्योंकि उन्हें यह निश्चित विश्वास था कि 'Vengeance is mine I will repay' 'प्रतिहिंसा मेरी है मैं बदला चुकाऊँगा।' और यह बदला वह तभी व्यापक और स्थायी रूप से चुका सकते थे जब वह अपने जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकें जिनके कारण उनकी मृत्यु अत्याचारियों के हाथों से हो, और साथ ही अधिक से अधिक हृदय विदारक और अधिक से अधिक मर्मघाती रूप में हो। अपनी घोर आतंकोत्पादक और लोमहर्षक मृत्यु को वह एक एमे महास्त्र के रूप में अपने शिष्यों के पास छोड़ जाना चाहते थे जो समय आने पर भौतिक मद में मत्त अधिनायकों

तथा शोषकों और उनके पोषकों की जड़ सत्ता को नींव से हिला सके और एक नये आदर्श राज्य की—जनसत्ता की—प्रतिष्ठा संसार के एक बहुत बड़े भूभाग में कर सके।

२६ "इन सब तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि ईसा एक धार्मिक नेता उतने नहीं थे जितने कि जनसत्ता के पोषक, महान क्रान्तिकारी नेता। 'नम्र—दीन हीन—जन धन्य हैं क्योंकि भविष्य में इस पृथ्वी पर वे ही राज्य करेंगे।' यह भविष्यवाणी वह अपने जीवन काल में कर चुके थे। उनकी मृत्यु के बाद उनकी यह भविष्यवाणी इस अर्थ में सफल हुई कि उन 'दीन हीन जनों'—अपने देश से प्रताड़ित दीन दरिद्र ईसाइयों—ने समग्र रोमन राज्य में धीरे धीरे गुप्तरूप उपायों से, जन साधारण के भीतर रोमन शासकों और उनके पोषक सामंतों के विरुद्ध ऐसे भयंकर असंतोष के बीज बो दिये जिन्होंने पनपकर विशाल रोमन साम्राज्य को तहस नहस कर दिया। ईसा ने जिस प्रतिहिंसा की बात कही थी वह सफल होकर रही। उस युग में रोमन शासकों का जैसा दबदबा था, जैसी सुदृढ़ भित्ति पर उनका साम्राज्य प्रतिष्ठित था उसे देखते हुए इस बात की कल्पना नहीं की जा सकती थी कि ईसा के कुछ मुट्ठी भर अकिंचन शिष्य निःसंबल और निराश्रय अवस्था में उन्हीं रोमनों की राजधानी में पहुँचकर, जिन्होंने उनके महागुरु को शूली पर चढ़ाये जाने का आदेश दिया था, धीरे धीरे, पत्थर के कीड़े की सी लगन से उस सुदृढ़ साम्राज्य की अभ्र दीवार में दरार पैदा कर देंगे, और बाद में उसकी नींव को ही खोखला कर डालेंगे। यह असंभव इसलिये संभव हुआ कि ईसा ने अपने लिये अत्यंत पीड़क मृत्यु बुलाकर अपनी महाप्राण शक्ति द्वारा उसे अत्यंत मार्मिक रूप देने में सफलता प्राप्त की। उस मृत्यु के लोमहर्षक दृश्य ने

उनके शिष्यों की आत्मा में प्रतिक्रिया की एक ऐसी अजेय मन्त्र शक्ति भर दी जो उद्धत सामंत वर्ग के उच्छेद के बिना विराम नहीं ले सकती थी ।"

मैं कह नहीं सकता कि फादर की आंखें अंगीठी में दहकते हुए अंगारों की प्रतिच्छाया से चमक रही थीं या अपने असाधारण उद्गारों के आवेश से । मैं आज उनका बिल्कुल ही नया और अप्रत्याशित रूप देख रहा था । वह एक विचित्र अनमने भाव से, असाधारण दृष्टि से मेरी ओर देख रहे थे । ऐसा लगता था जैसे वह मुझसे नहीं, बल्कि स्वगत कह चले जा रहे हों—

"ईसा और ईसाई धर्म को लेकर केवल पादरी-पुरोहितों ने ही नहीं, बल्कि कवियों और रहस्यवादियों ने भी निराली भावुकतापूर्ण धारणाएँ जन-साधारण के मन में भरने में कोई बात उठा नहीं रखी । उन्हें अत्यंत सरल, शांत, विनयी, विनम्र, दीन, करुण और धर्मप्राण महात्मा के रूप में प्रचारित किया गया है । पर वास्तविकता इसके विपरीत थी । उनके अहिंसक रूप के भीतर एक योद्धा की आत्मा छिपी हुई थी । उन्हें अकेले इस युग की नाना विरोधी भौतिक और राजनीतिक शक्तियों से मोर्चा लेना था और अहिंसा ही एकमात्र ऐसा अस्त्र हो सकता था जिसके द्वारा वह विकट रूप से हिंसक शक्तियों से मोर्चा ले सकते थे । वह बड़े ही कूटनीतिज्ञ थे और नेतृत्व की प्रचंड महत्वाकांक्षा लिये रहने पर भी घोर मर्यादावादी थे । उन्होंने तत्कालीन शासक-शक्तियों से कभी सीधा मोर्चा नहीं लिया । दुखियों और रोग-पीड़ितों की निरंतर सेवा करते हुए वह धीरे धीरे धार्मिक क्षेत्र में अपने विद्रोही और क्रान्तिकारी विचारों को जनता में प्रचारित करते रहे । जब उन्होंने देख लिया कि जनता का एक बहुत बड़ा भाग उनपर विश्वास स्थापित कर चुका है तब उन्होंने अपना मसीहाई रूप प्रकट किया और उस युग के भ्रष्टाचारी, ढोंगी नेताओं के विरुद्ध आवाजें कसते हुए उन्हें उनके मुख पर अत्यंत बड़े शब्दों में फटकारना आरम्भ कर दिया । जब वह यहूदी नेताओं से खुला मोर्चा लेने के लिये जेरूसलेम की यात्रा कर रहे थे तब चारों ओर से श्रद्धा-परायण जनता की अपार भीड़ 'होसाना ! होसाना !' (जय

 हो ! जय हो !) का नारा लगाती हुई उनका स्वागत कर रही थी।

"जेरुसलेम उस समय धार्मिक और अध-पार्थिव यहूदी अधिकारियों, रोमन शासकों के 'जी हुजूर' पंथी चाटुकारों और महाजनों के भ्रष्टाचार का मूल केन्द्र था। वहाँ जाकर ईसा ने पूरे आत्म विश्वास के साथ उन लोगों को धिक्कारना शुरू कर दिया। वहाँ के प्रसिद्ध मंदिर का विशाल अहाता फिलस्तीन के प्रमुख व्यापारियों और महाजनों का केन्द्र बना हुआ था। ईसा ने वहाँ पहुँचते ही उन्हें तत्काल बाहर निकल जाने और अपनी भ्रष्टाचारिता से मंदिर को कलुषित न करने का आदेश दिया। मोहाच्छन्न व्यक्तियों की तरह सब व्यापारी बाहर चले आये। उसके बाद उन्होंने धर्मध्वजियों को फटकारना शुरू किया—'यहूदी कर्मचारियो और कट्टर-पंथी फरीसियो! पाखंडियो! तुम्हें धिक्कार है। कुत्सित साँपो! विषैल कीटो! तुम लोग बाहर से कट्टर धार्मिक और नीतिनिष्ठ बने रहते हो, पर तुम्हारे भीतर पाखंड रूपी कालकूट भरा हुआ है। तुम लोग कब्र के उन दवेत गुंबद की तरह हो जो बाहर से देखने में सुन्दर लगता है, पर जिसके भीतर मनुष्य के कंकाल भरे पड़े रहते हैं'

उन्होंने अपने शिष्यों से स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'मैं पृथ्वी पर आग उगलने आया हूँ। काश मेरे जीवन काल में ही यह आग पूरे जोरों से भड़क उठती!' जब यहूदी पंडों को (जो रोमन गवर्नर के अधीन रह-कर जनता पर किसी हद तक राजनीतिक शासन भी किया करते थे) जी भर कर गालियाँ देकर वह मंदिर से लौट रहे थे, तब उनके एक शिष्य ने उस इमारत की विशालता की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना चाहा। उन्होंने एक बार जलती हुई दृष्टि से सरसरी नजर फेरी और तब धीरे से कहा—'इसकी एक भी ईंट बची नहीं रहेगी, देख लेना।'

"पृथ्वी पर उनके अवतरण के फलस्वरूप भविष्य में सर्वत्र युद्ध और विग्रह जनित अशांति मचनी रहेगी, इस बात का निश्चित विश्वास उन्हें था। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था—'और तुम लोग युद्ध के समाचार सुनोगे या युद्ध संबंधी अफवाह सुनते रहोगे। पर घबराना मत। एक-

राष्ट्र दूसरे राष्ट के विरुद्ध लड़ेगा, एक राज्य दूसरे राज्य पर आक्रमण करेगा। चारो ओर से अकाल और महा
मारियां फलने की खबरें आयेंगी और भूकंप से पृथ्वी हिल उठेगी। पर इन चिह्नों को अंत न समझना। इन्हें एक नये जीवन की उत्पत्ति की प्रसव वेदना के रूप में ग्रहण करना '

' इतनी बड़ा दूरदर्शिता जिस व्यक्ति में वर्तमान थी वह राजनीतिक समस्याओं की ओर से विमुख रहा होगा ऐसा जो लोग सोचते हैं वे निपट अज्ञतावश ही ऐसा सोचते हैं। मेरे मन में दिन पर दिन यह विश्वास जमता चला जा रहा है कि संसार में कम्यूनिज्म का सबसे बड़ा और सबसे पहला प्रचारक और बीज वपनकारक व्यक्ति प्राय दो हजार वर्ष पूर्व फिलस्तीन में पैदा हुआ था। कार्ल मार्क्स ईसा से बड़ा कम्यूनिस्ट किसी भी हालत में नहीं था। शोषण शोक और दुख दारिद्र्य से पीड़ित जनता में असन्तोष की भावना भरना कम्यूनिस्टों की विशेषता है, ईसा ने वही किया। उन्होंने दीन दरिद्र और पापी तापियों के प्रति आत्तरिक सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उनके भीतर निहित आत्म शक्ति को जगाया और उनके चारों ओर की परिस्थितियों के प्रति—शासकों और धनपतियों की अत्याचार परायणता और भ्रष्टाचार के प्रति—असन्तोष और विद्रोह की भावना जगायी। ईसा ने कहा था— मैं तुम लोगों से कहता हूँ कि एक ऊँट सुई के छेद के भीतर भले ही घुस जाये पर कोई धनी व्यक्ति स्वर्गीय राज्य में प्रवेश नहीं पा सकता।' पर वेश्याएँ, अनाथ विधवाएँ, लूले, लँगड़े, कोढ़ी, दरिद्र और निर्यातित श्रमिक स्वर्ग पा सकते हैं, यह विश्वास उन्होंने दिलाया था। राष्ट्रीय भावना की चहारदीवारी लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र को अपनाना कम्यूनिज्म के प्रधान लक्ष्यों में से है। ईसा ने यही किया। इजराइलियों ने अपने छोटे से राष्ट्र के चारों ओर जो एक वज्र की सी अभेद्य दीवार खड़ी कर रखी थी उसके भीतर किसी भी पर राष्ट्रीय तत्व का प्रवेश एकदम निषिद्ध था। 'इजराइली जनता ईश्वर की विशिष्ट रूप में चुनी हुई जनता है', यह विश्वास यहूदियों के भीतर कूट कूटकर भरा हुआ था। अन्य सभी जातियों के लोगों को वे अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे और उन्हें अछूत समझ-

कर उनसे अलग रहते थे। उनके सभी धार्मिक नेता केवल इजराइली राष्ट्र के ह्रास और विकास, उत्थान और पतन र अपने उद्गार प्रकट किया करते थे और केवल उसी का विश्व की ाष्ट्रीय मानव शक्ति मानकर अपने प्रवचन सुनाया करते थे। पर ईसा ने मस्त गैर इजराइली जनता में और इजराइलियों में कभी कोई भेद नहीं ाना और पिछले सभी इजराइली नेताओं के संकीर्ण दृष्टिकोण को क्रा कर अपने शिष्यों को यह उपदेश दिया कि वे समग्र अन्तरराष्ट्रीय ानवता के उद्धार का बीड़ा उठायें और उनकी वाणी का प्रचार दूसरे ों में जाकर सभी जातियों के मनुष्यों में करें। उस युग में, और ोपकर यहूदियों के देश में, इस प्रकार के व्यापक दृष्टिकोण को अप-ाना एक ऐसा मूलतः विद्रोहात्मक कदम था जिसे कट्टर यहूदी जनता भी सहन नहीं कर सकती थी।

"इन सब दृष्टियों से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ारम्भ ही से ईसा का उद्देश्य एक मामूलिक जन क्रांति मचाने का था जो मस्त विश्व की दलित और निर्यातित जनता के भीतर ऐसी आग फूंक े जिससे उस युग की समस्त शोषणशील सत्ताएँ—चाहे वे धार्मिक ्र से सम्बन्धित हों, चाहे राजनीतिक क्षेत्र से और चाहे आर्थिक क्षेत्र —ध्वस्त हो जायें, और यह महावाणी सत्य हो जाय कि 'दीन और लितमन जनता धन्य है, क्योंकि एक दिन पृथ्वी पर उसी का अधिकार हो ायगा।'

'पर ईसा द्वारा प्रचारित कम्यूनिज्म में और मार्क्स द्वारा प्रचारित लेतेरियन क्रांति के स्वरूपों में बहुत अन्तर था। दोनों में मूलगत अन्तर ह था कि ईसा ने अहिंसा, आत्म त्याग और आत्मपीडन के सिद्धान्त को ांति के प्रचार का प्रमुख अस्त्र बनाया था, जब कि मार्क्स ने हिंसात्मक पायों के अतिरिक्त दूसरा कोई साधन कम्यूनिस्टिक सिद्धान्तों की सिद्धि लिए नहीं बताया। ईसा ने दलित जनता की विश्वव्यापी विजय के द्देश्य से जो आग भड़कायी वह केवल आत्म साधना द्वारा, जनता की ीतरी प्रवृत्तियों की चीर फाड़ द्वारा ही संभव हुई जब कि मार्क्स ने वल आर्थिक और राजनीतिक चक्रों की बाहरी प्रतिक्रियाओं को अस्त्र

नाकर उनसे पूरा लाभ उठाने का उपदेश दिया। सफलता दोनों को मिली—प्रत्येक की मृत्यु के बाद। पर जहाँ ईसा की सफलता—मध्ययुगी ईसाइयों की भ्रष्टाचारिता और आज के युग की धर्म विरोधी प्रवृत्तियों के बावजूद—एक सुदृढ़ चट्टानी, आध्यात्मिक नींव पर स्थिर रहने के कारण अभी तक प्रत्यक्ष या परोक्ष में स्थायी शान्ति की सम्भावना का मूल उपादान बनी हुई है, वहाँ मार्क्सीय सफलता आज संसार के बाहरी राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव डालते रहने पर भी भीतरी आधार की अनिश्चितता के कारण अभी तक स्थायित्व के उपादानों की खोज रही है।

'आश्चर्य है कि मार्क्सवादियों ने उस वज्रवत् दृढ़ आधार को एकदम अस्वीकृत कर दिया, बल्कि ठुकरा दिया, जो जनता के भीतर युग युग में नित्य नया बल और नयी स्फूर्ति उत्पन्न करने में समर्थ है, जो स्थायी शक्ति का अक्षय रिजर्वायर है। वह आधार है मानवीय अवचेतना का अगाध अतल लोक। अवचेतना की उस अतलता को जितना ही खोदा जाय उतने ही अधिक शक्ति-स्रोत उसमें से फूट पड़ते हैं। ईसा ने वहीं खनन और बीजवपन की क्रिया आरम्भ की थी, यही कारण है कि आज भी उनका वह शक्ति-स्रोत समाप्त नहीं हो पाया है, आज भी उनके द्वारा निर्देशित साधन—गाथा के माध्यम से—आर्थिक और राजनीतिक विकृतियों से ग्रस्त-व्यस्त विश्व के जड़ प्राणों में नयी सजीवनी चेतना फूँकने में समर्थ है। पर मार्क्स ने इस मूल शक्ति-स्रोत की एकदम अवहेलना की, और उसके अनुयायियों ने उसे भुला देने तक के असम्भव और अस्वाभाविक प्रयास किये। फिर भी आज मार्क्सवाद ईसा के मूल सिद्धान्तों के बदले हुए प्रतीक के रूप में हमारे सामने आता है। जन-चेतना की ऊपरी सतह पर मार्क्सवादी सिद्धान्तों का विश्वव्यापी प्रभाव सुस्पष्ट है। यद्यपि वह प्रभाव एक ऐसे कुहरे की तरह लगता है जो प्रकट में समस्त वातावरण को ढककर तत्काल के लिये उसे जैसे पूर्णतया मिटा देता है पर दूसरे ही क्षण वह कुहरा फटकर साफ हो जाता है और पृथ्वी और आकाश अपने सच्चे और स्वाभाविक रूप में हमारे

सामने आते हैं। इसलिये आज की परिस्थितियों में मार्क्स वाद का महत्व तनिक भी उपेक्षणीय नहीं है।

'ईसा और मार्क्स दोनों संसार से आर्थिक वैषम्य दूर करने और पृथ्वी पर सर्वहारा वर्ग का स्वर्ग स्थापित करने के पक्ष में रहे हैं दोनों धार्मिक पाखंड के निराकरण के उद्देश्य से प्रयत्न करते रहे हैं दोनों ने युग की बाहरी परिस्थितियों से लाभ उठाया है, और दोनों अपने-अपने उद्देश्यों में आपेक्षिक रूप से सफल हुए हैं। पर जैसा कि मैं बता चुका हूँ, एक ने सुदृढ़ भीतरी नींव को अपनाया है और दूसरे ने केवल बाहरी परिस्थितियों के बदलते हुए चक्रों को ही अपना साधन माना है।

दोनों ने एक मूल सिद्धांत के दो बदले हुए रूपों को अपनाया है। एक ने उत्कट आत्म पीडन द्वारा विश्व के जनदल को अपनी ओर खींचने का प्रयास किया है दूसरे ने युग धर्म के अनुसार आत्म-पीडन के साथ साथ शोषकों के दमन को भी सर्वहारा वर्ग की विश्व व्यापी विजय का प्रमुख साधन माना है। एक ने अहिंसा और शत्रु के प्रति प्रेम भावना के पावन को अपना अस्त्र माना है, दूसरे ने सामूहिक उपायों द्वारा शत्रु के दलन की भावना को सफलता की मूल कुंजी बताया है। इन दोनों में किसका मतवाद अधिक महत्वपूर्ण है इस सम्बन्ध में कोई भी राय निष्पक्ष रूप से नहीं दी जा सकती, फिर भी इतना निश्चित है कि जो मतवाद सामूहिक जन हित को ध्यान में रखते हुए यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाता हुआ चलेगा वर्तमान अस्त-व्यस्त आर्थिक या राजनीतिक परिस्थितियों में दलित वर्गों की जनता में उसकी सफलता स्वाभाविक है। अगले महायुद्ध में उसकी विजय की बहुत बड़ी संभावना है। पर यह सब होने पर भी वह संसार में तब तक कभी अपना स्थायित्व कायम नहीं कर सकता जब तक वह केवल हिंसा और भय प्रदर्शन द्वारा नहीं, अहिंसा और प्रेम द्वारा मानव मन पर अपना अधिकार नहीं जमा लेता और जब तक उसके नायकगण विश्व जनता के आर्थिक पुनरुद्धार के साथ ही सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी व्यापक विकास की ओर अपनी शक्तियों को पूर्ण तत्परता से नियोजित नहीं करते।

30 बाहर अविराम गति से घन घन हिमवर्षा हो रही थी। किवाडों पर लगे हुए शीशों से मैं बीच बीच में बिना किसी इच्छित प्रयास के बाहर की ओर देखता जाता था। ऐसा लगता था जैसे सारे विश्व का सम्पूर्ण पार्थिव तत्व बरफ के रूप में परिणत होकर समस्त पृथ्वी पर जम जायगा। बर्फ के चारों ओर जम जाने से जो सफेदी छा गयी थी उसमें सघन बादलों के घटाटोप के बावजूद एक उज्ज्वल प्रकाश की अदृश्य किरणें जैसे चारों ओर बिखर गयी थी। सघन मृत्यु का-सा सन्नाटा छाया हुआ था—ऐसा सन्नाटा जिसमें कहीं एक झींगुर तक नहीं बोल रहा था।

फादर जेरेमिया के अप्रत्याशित धारावाही भाषण के लिये इससे उपयुक्त समय जैसे कोई दूसरा हो ही नहीं सकता था। सचमुच मैं एक पादरी के मुख से इस तरह की बात सुनने के लिए तैयार नहीं था। मैंने घंटी का बटन दबाकर नौकर को बुलाया। जब वह आया तब उससे फिर काफी तैयार करने को कहा।

अँगीठी से जो आंच आ रही थी वह अत्यंत प्रिय और सुखद लग रही थी। फादर जेरेमिया अपने दीर्घ भाषण पर जैसे स्वयं एकान्तपूर्वक विचार कर रहे हों, ऐसा लगता था। अपने दोनों हाथों को अँगीठी की ओर बढ़ाकर आग तापते हुए वह जैसे स्वयं अपने ही अंतर के साथ वार्तालाप करने लगे थे। कुछ देर तक हम दोनों चारों ओर की प्रकृति की स्तब्धता के साथ एकप्राण होकर मौन बैठे रहे।

उसके बाद पहले मैंने ही मौन भंग करते हुए कहा—"आपको इस रूप से मैं न तो परिचित ही था न इसकी कभी आशा ही करता था। पादरियों के संबंध में मेरी जो धारणा थी आज उसे आपने खण्डित कर दिया।"

फादर के मुख पर एक अत्यन्त गम्भीरतापूर्ण मुसकान झलक उठी। अपनी सुन्दर, कलात्मक दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए वह बोले— 'जहाँ पर मैं पादरी हूँ वहाँ किसी भी दूसरे पादरी से आप मुझे भिन्न न समझें। पर इस समय मैं एक पादरी की हैसियत से आपसे बातें नहीं कर रहा हूँ। दीर्घ काल तक मैंने अपने भीतर और बाहर एकाकी जीवन बिताया

है। अपने उस भीषण एकाकीपन को भूलने के लिये मैं जीवन और जगत के सबध म कुछ विचित्र विचित्र दृष्टिकोणो से विचार करता रहा हूँ। मेरे उसी एकाग चिंतन की एक झलक आज आपके आगे जमे वरवस प्रकट हो गयी। कभी कभी अचानक किसी अप्रत्याशित क्षण मे व्यक्ति के भीतर का बहुत सावधानी से रुद्ध किया गया द्वार खुल पडता है और तब अतर म पाले हुए विचारो की ऐसी अटूट झडी वाहर का फूट पडती है कि स्वय आश्चर्य होने लगता है '

'जो भी हो, यह तो स्पष्ट ही हो गया है,' मैंने कहा, "कि आप कट्टर ईसाई नही हैं।

कट्टर ईसाई से आपका क्या आशय है मैं ठीक समझा नही। जहाँ तक ईसा के व्यक्तित्व और उनके भीतरी विश्वासो का प्रश्न है, मैं उनका बहुत बडा प्रशसक हू। पर उनकी मत्यु के बाद उनके प्रवचनो के ऊपरी रूपो को मनमाने ढग स तोड मरोड कर, उनका मनमाना अथ लगाकर उनके शिष्यो और प्रशिष्यो न जो एक धमवाद खडा किया और फिर एक शती स दूसरी शती म उस धमवाद के जो रूप बदलते चले गये और आज भी वह जिस रूप म वतमान है उन सब मे मेरे विचारो का कोई मल नही बठता। मैं न आज के ईसाई धम म प्रचलित रीति रिवाजो क महत्व को स्वीकार करता हू, न इस बात पर विश्वास करता हू कि तथाकथित ईसाइ धम के प्रचार द्वारा ससार की अधिक से अधिक जन-सख्या को ईसाइ धम के बाडे के भीतर ले आन म किसी भी पक्ष का कोई हित है।

'यदि यही बात है" एक हलका-सा छीटा कसने के इरादे से मैंने कहा— 'तो जब मनिया न और मैंने ईसाई धम को अपनाया तब आपने प्रसन्नता क्यो प्रकट की ?'

फादर जेरमिया के शात और गम्भीर मुख पर अविश्वास की एक हलकी सी मुसकान झलक उठी। सहज शात स्वर म वह बोले—"क्षमा कीजियगा, आपको किसी कारण से गलतफहमी हुई है। मैंने कभी आपके और श्रीमती रजन के ईसाइ धम का अपनान की बात पर प्रसन्नता प्रकट नही की। यह ठीक है कि मैंने आपके आगे कभी यह भी प्रक-

नहीं किया कि मुझे आपके धर्म-परिवर्तन से दुःख हुआ है। पर ऐसा प्रकट न करने का अर्थ यदि आपने यह लगाया है कि मैं ईसाई संसार में दो नये व्यक्तियों की भरती देखकर प्रसन्न हुआ हूँ तो आप भूल करते हैं। सच पूछिये तो मुझे दुःख ही हुआ है।"

मैं दंग रह गया। ईसा को सबसे पहला कम्यूनिस्ट बताते हुए उन्होंने जो लंबा भाषण दिया था उसे सुनने के बाद भी मैंने उनके मुख से इस प्रकार की बात सुनने की कल्पना कभी नहीं की थी। मेरे सिर के भीतर की किसी एक विशेष नस में ऐसी ऐंठन होने लगी कि मैं वहां पर हाथ रखकर उसे दबाने लगा। धर्म परिवर्तन के बाद आज पहली बार मुझे ग्लानि का अनुभव होने लगा। साथ ही फादर जेरेमिया के विरुद्ध एक उत्कट खीझ की भावना मेरे भीतर जग उठी।

कुछ देर तक मैं भ्रांत भाव से उनकी ओर देखता रहा, उसके बाद अत्यंत हताश स्वर में बोला—"आपने मेरे साथ बड़ा ही अन्याय किया है फादर! जब आप समझे हुए थे कि मैं अपना धर्म बदलकर ईसाई धर्म को अपनाकर गलती कर रहा हूँ, तब आपने क्या उसी समय मुझे एकांत में बुलाकर अपने विचार से परिचित नहीं कराया? आपको पता नहीं है कि धर्म-परिवर्तन करने के पहले मैं कैसी विकट मानसिक स्थिति से होकर गुजर रहा था। कोई निश्चित निर्णय न कर सकने के कारण रात रात भर मुझे नींद नहीं आती थी। मैंने कभी खुशी से ईसाई धर्म को स्वीकार नहीं किया। मैं बुरी तरह छटपटाता हुआ किसी ऐसे व्यक्ति की खोज रहा था जो मुझे धर्म-परिवर्तन न करने की सलाह देता। ऐसा होने से अपने मन की उस बेबसी की स्थिति में मुझ डूबते हुए को तिनके का सहारा मिल जाता। सलाह मुझे अवश्य मिली, पर ऐसी जिससे धर्म-परिवर्तन के पक्ष में मेरी रही-सही हिचक भी जाती रही।"

"क्या मैं जान सकता हूँ, आपका वह सलाहकार कौन था?" फादर जेरेमिया ने उत्सुक भाव से प्रश्न किया।

"मिन्विया। वह प्रारम्भ ही से मनिया को ईसाई मत की ओर

भुलाने का प्रयत्न करती आ रही थी। मनिया के मन पर उसने ऐसा जबदस्त प्रभाव डाल दिया था कि वह केवल एक ही बात पर मुझसे विवाह करने को तयार हुई—वह यह कि हम दोनो ईसाई धर्म स्वीकार कर लें। मने सिल्विया को जब अपने सकट म परिचित कराया तब उसने भी मुझे यह समझाया कि मेरा कल्याण इसी में है कि मैं ईसाई धर्म स्वीकार कर लू। अपनी उस समय की अव्यवस्थित मनोदशा म मैंने उसकी बात मान ली ”

फादर जेरेमिया के मुख पर एक असाधारण रूप से गम्भीर चिन्ता की छाप पड गयी थी। कुछ देर तक वह अनमने भाव से कुछ सोचते हुए अगीठी म दहकते हुए लाल लाल अगारो की ओर देखते रहे, उसके बाद एक लम्बी सांस को बलपूर्वक दबाने का प्रयत्न करते हुए बोले—‘सिल्विया एक बहुत उत्साही धार्मिक महिला है। यदि परिस्थितियाँ उसके अनुकूल होती तो वह पृथ्वी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रत्येक मच से ईसाई धर्म का प्रचार उसी लगन और तन्मयता के साथ करती जिस प्रकार एनी बीसेन्ट थियोसोफी का प्रचार करती रही हैं। जब तक ससार का प्रत्येक व्यक्ति ईसाई धर्म स्वीकार न कर लेता तब तक वह कभी चैन न लेती। उसकी आत्मा का एक एक अणु इस विश्वास से ओत प्रोत है कि ससार के सभी दीन-दुखी, पापी-तापी और कर्म भार ग्रस्त मनुष्यो का उद्धार तभी हो सकता है जब वह ईसाई धर्म को अपनाय। इसी सिलसिले म मैं आज आपको एक बात यह बता दूं कि मैं आज भी जो पादरी का जामा पहने हू उसका एकमात्र कारण सिल्विया ही है।

यह मेरे लिये एकदम नया आश्चर्य था यद्यपि मैं जानता था कि फादर जेरेमिया और सिल्विया म बडी घुटा चलती है और दोनो अक्सर एक-दूसरे के निकट सपर्क म दिखायी देते थे। तब तक इन दोनो के इस रहस्य और घनिष्ठता के ऊपर एक ऐसा कठिन पर्दा पडा हुआ था कि उत्सुकता रहने पर भी कभी मुझे इस सम्बन्ध म कोई प्रश्न करने का साहस नही हो सकता था। रहस्यमयता का एक ऐसा कठिन, कठोर आवरण उन दोनो के पारस्परिक सम्बन्धो के ऊपर पडा हुआ था कि

उस आवरण को भेदने क्या छूने तक की बात मैं सोच नहीं सकता था। पर आज फादर जब स्वयं ही उसे तोड़ने की ओर प्रवृत्त हुए तब स्वभावतः मेरी ढिठाई बढ़ी।

मैंने कहा—"क्या मैं जान सकता हूँ कि सिल्विया इसका एकमात्र कारण किस रूप में है ?"

फादर जेरेमिया एक बार अपनी कुर्सी पर कुछ हिले, जैसे अपना आसन बदलना चाहते हों, उसके बाद फिर जमकर बैठ गये और बोले—"आप चूंकि राबिंसन परिवार के इतने निकट आ चुके हैं, इसलिये आपके आगे यह एकांत गोपनीय बात प्रकट करने में कोई हानि मैं नहीं देखता। बात स्पष्ट यह है कि मैं सिल्विया को चाहता हूँ। काफी लंबे अर्से तक मैंने सन्यासी का जीवन बिताया है। इस समय मेरे जीवन का बावनवां वर्ष चल रहा है। यदि मैं इस आंतरिक विश्वास से सन्यास ग्रहण किये होता कि मेरे इस आचरण से प्रभु ईसा की आत्मा तृप्त होगी और इस उपाय से मैं निश्चय ही स्वर्ग के राज्य में प्रवेश पा जाऊँगा तब दूसरी बात थी। उस हालत में प्रथम तो मेरे भीतर पार्थिव प्रेम की भावना कभी सचेत रूप से पैर न करती और यदि करने भी लगती तो मैं निश्चय ही उसे अपने भीतर इस तरह गाड़ देता कि वह फिर कभी सिर न उठा पाती। पर मेरे मन में इस तरह का कोई विश्वास कभी नहीं रहा। मेरे मन में न कभी ईसा की आत्मा को प्रसन्न करने की इच्छा रही न स्वर्ग के अस्तित्व के संबंध में ही कोई विश्वास रहा। कुछ विशेष पारिवारिक परिस्थितियों और मानसिक उलझनों के फेर में पड़कर मैंने पादरी बनना स्वीकार किया। आज एक ओर मेरी बौद्धिकता मुझे पादरी-समाज से बहुत दूर ले गयी है और दूसरी ओर स्नेह प्रेममय सांसारिक जीवन बिताने की इच्छा मेरे मन में प्रबल हो उठी है। सिल्विया की धार्मिक प्रवृत्ति से मैं तनिक भी प्रभावित नहीं हुआ हूँ। पर उसके स्वभाव में एक ऐसी जीवनी-शक्ति दिखायी दी है जो बरबस मुझे अपनी ओर खींच ले गयी है। उसके भीतर जो धार्मिक उत्साह पाया जाता है वह भी उसी जीवनी शक्ति का ही एक अंग है। और वह जो मेरे प्रति आकर्षित हुई है उसके दो कारण मुझे लगते हैं। एक कारण तो स्पष्ट ही यह है कि

मैं पादरी हूँ, और फलत (उसकी आँखो मे) पृथ्वी पर ईसा के प्रतिनिधियो म से एक हूँ। दूसरा कारण सभवत यह है कि दीघ अध्ययन और चिन्तन के फलस्वरूप मुझे धार्मिक और पार्थिव क्षेत्रो म जो अनुभव हुए हैं, उसके तरुण प्राणो के लिय उनका बडा मूल्य है। पर कारण चाहे जो भी है, इसम सदेह नही है कि मेरे प्रति वह सहृदय और स्नेहशील है और मेरे मन का भाव भी उसके प्रति कुछ एसा ही है।

"पर हम दोनो का एक-दूसरे के प्रति यह जो खिचाव है उसकी परिणति म सामाजिक और धार्मिक दृष्टियो से बडी भयकर बाधाएँ उठ खडी होगी, इसका अनुमान सहज मे लगाया जा सकता है। सिल्विया ने शायद अभी इस प्रश्न पर सर्वांगीण दृष्टि स विचार नही किया है। वह उसे एक सहज और साधारण बात समझे बठी है। वह यह नही [देख] पा रही है कि एक स्त्री और एक पुरुष के बीच म जहाँ एक बार [प]रस्परिक खिचाव आरभ हो जाता है, दोनों के भीतर एक-दूसर के [प्र]ति प्रेम का बीजाणु जहाँ एक बार घर कर लेता है, फिर बडी स बडी [ता]कती शक्ति भी उसके विकास को नही रोक सकती, और उस विकास [क]ी चरम परिणति जब होने आयगी तब न समाज हमारा साथ देगा [न] ससार। मैं आज यदि सिल्विया से सामाजिक बधन मे बँधना चाहूँ [त]ो धमसघ मुझे उसी क्षण बहिष्कृत कर देगा और चारो ओर स व्यग, अट्टहास और धिक्कार भरी आवाजें कसी जायेंगी, पर सामाजिक बधन के बिना किसी प्रेम की कोई साथकता मैं नही मानता। सिल्विया प्रश्न के इस गभीर पहलू पर विचार करने का प्रवृत्त नही जान पडती। उसने अपनी अतश्चेतना को टटोलने की कोई चेष्टा कभी नही की है, और न मैंने ही कभी उसे इस ओर प्रवत्त करना उचित समझा है। मेरा ऐसा अनुमान है कि वह हम दोनो के पारस्परिक आकषण को दो समान धर्मा व्यक्तियो के बीच उत्पन्न होने वाले सहज सौहार्द या घनिष्ट मैत्री से अधिक कुछ नहीं मानती। यदि किसी दिन उसके सचेत मन मे भीतरी वास्तविकता के सबध म थोडा बहुत प्रकाश पडे भी, और यह चेतना उसके मन में जगने लगे कि जो भावना हम दोनो को एक-दूसरे

के निकट खींच लायी है वह साधारण मैत्री नहीं बल्कि निगूढ़ प्रेम है, तो भी वह उसके आध्यात्मिक रूप को ही
स्वीकार करेगी, सामाजिक रूप को नहीं, उसके स्वभाव को देखते हुए मुझे ऐसा लगता है। वैसे कब, किस कारण से और किस रूप में किसी मनुष्य के स्वभाव में क्या परिवर्तन हो जाये, यह कोई नहीं कह सकता "

नौकर कॉफी ले आया था। बाहर अविराम गति से बरफ गिरती चली जा रही थी, जैसे इस पाप-ताप-त्रस्त भूलोक पर स्वर्गिक पूना की अविरत वृष्टि हो रही हो।

कॉफी का प्याला हाथ में लेते हुए मैंने पूछा—"क्या सिल्विया आपके इन स्वतंत्र विचारों से परिचित हो चुकी है जिन्हें आज आपने मेरे आगे प्रकट किया है ?"

"नहीं मैंने कभी इस तरह की एक भी बात का आभास तक उसे नहीं दिया है। जिस दिन वह यह जान लेगी कि मैं भीतर से एक पादरी नहीं, बल्कि स्वतंत्र विचारक हूँ, उस दिन से मेरे संबंध में उसकी क्या धारणा हो जायगी, मैं कह नहीं सकता। यही कारण है कि मैं इच्छा होने पर भी अपना पादरी का चोला उतारकर फेंकने में अभी असमर्थ हूँ। पर साथ ही यह भी ठीक है कि अधिक समय तक उसके आगे मैं अपना असली रूप छिपा नहीं पाऊँगा और उसके प्रति मेरे मन का भाव भी एक न एक दिन अपनी वास्तविकता प्रकट किये बिना नहीं रहेगा। तब उसका परिणाम क्या होगा, उसके मन पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, यह मुझे देखना है। उसी क्षण की प्रतीक्षा में मेरे जीवन की घड़ियाँ बीती चली जा रही हैं।" यह कह कर फादर ने एक घूंट कॉफी ली और फिर अपनी मूँछें, जो कॉफी से कुछ भीग गयी थीं, हाथ से पोंछने लगे।

दो-तीन घूट पीने तक हम दोनों चुप रहे, उसके
बाद मेरे मन म एक प्रश्न जगा । मैंने कहा—

३१

"मान लीजिये कि सिल्विया आपके स्वतंत्र विचारा
से परिचित होने पर भी आपसे विमुख न हुई और आपसे सामाजिक
सबध स्थापित करने मे कोई आपत्ति उसने न जतायी, तब आपकी क्या
स्थिति रहेगी ? तब आप जीवन के किस रूप का अपनाना चाहेंगे ?"

"यह तो स्पष्ट ही है कि तब इसाई धर्म-सघ से मेरा कोई सम्बन्ध
नही रह सकता, तब मुझे कोई दूसरा ही पेशा अपनी जीविका के लिये
अपनाना होगा । इस सम्बन्ध म भी मैं पहले ही से निश्चय कर चुका
हूँ । तब मैं एक स्वतंत्र सासारिक व्यक्ति की हैसियत से सिल्विया को
लेकर अमेरिका चला जाऊँगा । वहाँ पत्रकारिता द्वारा और पुस्तकें लिख
कर अपनी गुजर कर सकूगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।'

'किस तरह की पुस्तक लिखने का विचार आपका है ?' काफी के
अतिम घूट को नि शेष करते हुए मैंने पूछा ।

फादर जेरेमिया भी प्याला समाप्त कर चुके थे । प्याले को नीचे
रखते हुए उन्होंने कहा—' म विभिन्न विषयो पर पुस्तकें लिख सकता
हू । इसा और ईसाई मत के सम्बन्ध म जो विचार मैंने अभी आपके आगे
प्रकट किये हैं उन्हे भी एक पुस्तक के रूप मे विस्तार के साथ लिपिबद्ध
किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त

पर क्या आपकी यह धारणा है, बीच ही मे उनकी बात काटते
हुए मैंने कहा—' कि अमेरिका की जनता इस प्रकार के विचारा का
स्वागत करेगी ?

"जाहिर है कि मेरे विचारो का वहाँ घोर विरोध होगा ' फादर ने
काफी से भरा हुआ दूसरा प्याला उठाते हुए कहा—' वहाँ के पूजीप
और पादरी बौखला उठेंगे । पर इसी कारण इस बात की आवश्यक
है कि सौ-सौ विरोधो और अपराधो के बावजूद वहाँ इस तरह के विचा
का निरतर प्रचार किया जाय । वहाँ की साधारण जनता असलि
जानने के लिये उत्सुक है, इसलिये विघ्ना के भय से कर्तव्य से
खीच लेना उचित नही । इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान

योग्य है। मेरे विचारो का विरोध अवश्य होगा, पर इसका यह अर्थ नही है कि मेरा मुह ही एकदम बद कर दिया जायगा। अपनी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के औचित्य और स्थायित्व के सबध मे अमेरिकी नायक इतने अधिक आश्वस्त हैं कि किसी भी विपरीत मत के प्रचार और प्रकाशन से वे अधिक भयभीत नहीं होते।"

"यह आपने बहुत बडी प्रशसा की बात अमेरिकनो के लिये कही है। क्या आप सचमुच उन्हे इतना उदार मानते हैं ?"

'मुझे भय है कि आप मेरी बात का गलत अर्थ लगा रहे हैं,' फादर ने कहा, 'मेरे कहने का तात्पर्य केवल यह था कि अमेरिका का नायक वर्ग इतने बडे भ्रम मे है कि विरोधी विचारो का कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव अमेरिका की प्रचलित व्यवस्था पर पड सकता है, ऐसा मानने को वह तयार नही है। यह उसकी उदारता नही, भ्रम है। इस भ्रम का पूरा लाभ हम उठाना चाहिये।"

'क्या आपकी यह धारणा नही,' विषय को कुछ बदलते हुए मैंने कहा—' कि ससार की वर्तमान आर्थिक विषमता और राजनीतिक अशाति के मूल मे अमरीकी पूजीवादी व्यवस्था ही है, जिसने एक सहस्र हस्तपदीय दानव की तरह अपने अत्यधिक विकसित आर्थिक और राजनीतिक चक्रजाल से आज की सपूर्ण विश्व-व्यवस्था को छा लिया है ?"

फादर ने कॉफी का एक गहरा घूट लिया और दूसरे घूट मे उसे समाप्त करके प्याले को रख दिया। रुमाल से मुह और मूछें पोछ चुकने के बाद उन्होने कहा—"आज की विश्व-व्यापी अशाति के मूल मे जो प्रमुख कारण हैं उनमे अमरीकी सभ्यता भी एक है, इसमे सन्देह के लिये कोई गुजाइश नही है। पर उस अशाति का एकमात्र कारण वही है ऐसा मानने को मैं तयार नहीं। युगो से मानवता ससार के दूसरे प्राणियो पर अपना भौतिक आधिपत्य कायम करने के बाद स्वय अपनी ही जाति के अपेक्षाकृत दुर्बल वर्गों को दबाने के उद्देश्य से अपने मस्तिष्क के जिन विशेष कोषो का विकास सुनिश्चित गति से करती चली आ रही थी वे अमेरिका की अनुकूल मिट्टी को पाकर इतने अधिक फूल उठे हैं कि अब

उन्हें दबाना असम्भव सा हो गया है। वे अब भी निरंतर अधिकाधिक फूलते चले जा रहे हैं। और अब उनका विकास अपने आप यन्त्रवत्, ऐसे विराट दानवीय रूप से हो रहा है कि लाख चाहने और सिर पटकने पर भी मानवता स्वयं अपने आपको दीमक-वाली उस भीषण यान्त्रिक प्रगति को रोकने में अपने को असमर्थ पा रही है। उसे नियन्त्रण में रखना अब उसके वश की बात ही नहीं रह गयी है और उसके असख्य चक्रजाला में उसने अपने को इस कदर उलझा लिया है कि अब वह जितना ही उस उलझन को सुलझाने का प्रयत्न करती जाती है उतना ही अधिक अपने को उलझाती चली जा रही है। विडम्बना यह है कि आज विश्व-व्यापी अशान्ति और अव्यवस्था वैषम्य और वपरीत्य दुःख और दारिद्र्य के लिये वह इस प्रकृति विरोधी प्रगति को दोषी न ठहराकर दूसरी शक्तियों को—जन-जागरण की विश्वव्यापी प्राकृतिक प्रवृत्तियों को—उनके लिये दोषी ठहराना चाहती है।'

"तब क्या आपके इस मत का अर्थ यह लगाया जाय कि आप उस राष्ट्र-समूह की प्रगति को स्वाभाविक मानते हैं जिसने अपनी शक्ति जनमात से खींची है?" मैंने प्रश्न किया।

"उस प्रगति को मैं स्वाभाविक अवश्य मानता हूँ पर उसमें जो खामियाँ रह गयी हैं उनके प्रति उदासीन नहीं हूँ। मानवता का यह घोर दुर्भाग्य है कि जो जनशक्तियाँ इस युग में ससार के विभिन्न क्षेत्रों में उभरी हैं उन्होंने भी उसी यान्त्रिक विकास से प्रेरणा पायी है जो दानवीय शक्तियों के उत्थान के फलस्वरूप विश्व के समस्त मूलगत और केन्द्रीय सांस्कृतिक तत्त्वों को अत्यंत निर्ममता से कुचलने का बीड़ा उठाये हुए है। इस युग में आवश्यकता से अत्यंत अधिक यान्त्रिक उन्नति के फलस्वरूप, साधारण जनता के निर्मम निपीड़न की जो भौतिक क्रियाएँ चल रही हैं, उनका निराकरण तभी हो सकता है जब आध्यात्मिक शक्तियों के अधिकाधिक विकास द्वारा उनका नियन्त्रण किया। पर आज ससार के दोनों प्रधान पक्ष आध्यात्मिक शक्तियों के विकास का परिहास उड़ाने पर तुले हुए हैं, और इस बात की होड़ चल रही है कि कौन पक्ष विश्व

विघाती यान्त्रिक और भौतिक शक्तियों के आर्थिक और कूट-नीतिक प्रनिरूपा का कितने समय में कितने अधिक परिमाण में विकसित कर सकता है। कहना न होगा कि इन उपायों से विश्व शांति और मानवता के व्यापक कल्याण की समस्याएँ हल होने के बजाय नयी नयी जटिलताएँ और नयी-नयी उलझनें पैदा होती चली जायेंगी, जो तभी विरत होंगी जब सपूर्ण मानवता पिछले युगों में विकास प्राप्त अपने दाम्भिक यथबल के दो एक और भीषण सामूहिक विस्फोटों द्वारा, भौतिक दृष्टि से, पूर्णतया ध्वस्त विध्वस्त हो जाय। तभी उस ध्वस की रक्त-सिंचित मिट्टी पर भौतिक और आध्यात्मिक समता के नये बीजों का वपन हो सकेगा।"

"और उन नये बीजों का रूप क्या हो सकता है, क्या आप अपनी इस बात को स्पष्ट करने की कृपा करेंगे?"

मेरा प्रश्न सुनकर फादर जेरेमिया कुर्सी की पीठ पर अपनी पीठ अच्छी तरह जमाकर आराम से बैठे गये, और तब बोले—'आज पिछली ईसाइयत मर चुकी है और उस मृत शक्ति को नये सिरे से उभारने से कोई लाभ न होगा। वह अपना काम बहुत पहले पूरा कर चुकी थी। आर्थिक स्वार्थ, राजनीतिक मोह और साम्राज्यवादी लाभ से मदमत्त और अंधी दुनिया के जड प्राणों के भीतर आध्यात्मिक विद्रोह जगाकर और रहस्यवादात्मक क्रांति मचाकर ईसा ने एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक जन-जागरण की बाढ उत्पन्न करके एक नयी मंगलकारी चेतना की जो लहर जगा दी थी उसके उद्देश्य की पूर्ति सदियों पहले हो चुकी थी। बाद में उस बाढ की और उस लहर की सूक्ष्म गतिशीलता एकदम रुद्ध हो गयी थी और उसका पानी वेटिकन में एकदम जम जाने के कारण गँदला हो गया था और विषैले कीटाणुओं से भर गया था। धीरे धीरे वह धारा भी सूखती चली गयी और आज एकदम सूख चुकी है—केवल बालू ही बालू शेष रह गयी है। आज आवश्यकता इसकी है कि उस मृत शक्ति की बंजर मिट्टी को एकदम साफ करके उसके स्थान पर पिछले युगों की वैज्ञानिक प्रगति और आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों के व्यापक अंतरराष्ट्रीय संघर्ष से ज्ञान की उपजाऊ मिट्टी पर एक नयी

संस्कृति का उत्पादन किया जाय, जो विश्व को एक नया संदेश देकर, उसे एक नये प्रगतिशील प्रकाश की ओर प्रावपित कर सके। 'ईसाई धर्म खतरे में,' 'इस्लाम खतरे में,' इस तरह के नारे लगाने वाले राजनीतिक नेताओं की धूर्तता आज किसी से छिपी नहीं है। ईसाई धर्म के ये तथाकथित ठीकेदार जिन विश्वविनाशी योजनाओं को प्रोत्साहन दे रहे हैं वे आज सबके आगे स्पष्ट हैं। ईसाई धर्म के मेमने की खाल की ओट में छिपे हुए ये भेड़िये ही ईसाई सभ्यता के मूल हन्ता हैं। इसलिये उनसे वास्तविक विश्व-कल्याण के किसी नये आदर्श की आशा नहीं करनी होगी। आज संसार के जो-जो महान चिंतक राजनीतिक प्रभावों से मुक्त हैं साथ ही सभी आर्थिक और राजनीतिक षड्यंत्रों से भली भाँति परिचित हैं उन्हीं के संगठित प्रयत्नों से नयी 'ईसाइयत' या इनसानियत जन्म लेगी। संसार में आज तक मानवता के सामूहिक कल्याण के जितने भी महान प्रयत्न हुए हैं उन सब का समन्वय इस नये धर्म में होगा। गांधी और मार्क्स के आधुनिक मतवाद भी अपना साम्प्रदायिक और राजनीतिक चोला त्याग देंगे और उनके मूलगत तत्त्व अपने आप इस महामानवीय धर्म में मिलकर एक रूप हो जायेंगे। सभी आदर्शों और मानवोद्धार के उद्देश्य से प्रेरित वादों के परिमार्जित और परिशोधित तत्त्वों का जो रासायनिक मेल उस नव विकसित महाधर्म में होगा उसे किसी विशेष साम्प्रदायिक धर्म के भीतर बाँधा नहीं जा सकेगा। उसका नाम महामानव धर्म या इसी ढंग का कुछ होगा। उसी के विकसित रूप की प्रतीक्षा आने वाली पीढ़ी से करनी है।'

३२

बाहर से किसी के दरवाजा खटखटाने का शब्द सुनकर मेरी तन्मयता भंग हुई। दरवाजे के शीशे के पार मुझे मनिया और सिल्विया खड़ी दिखाई दीं। मैंने तुरन्त उठकर दरवाजा खोल दिया। एक ठंडी हवा का झोंका मुझे

कँपा गया। मनिया और सिल्विया दांत किटकिटाती हुई उसी दम भीतर चली आयीं। मैंने भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया। फादर ने और मैंने उन दोनों के अग्नि-सेवन के लिये जगह खाली कर दी। हम दोनों पीछे की ओर हटकर बैठ गये, और वे दोनों अँगीठी के पास जा बैठीं। सिल्विया बीच-बीच में फादर की ओर एक झलक देख लेती थी। उसके मुख पर एक ऐसी चमक, आंखों में उल्लास की ऐसी दीप्ति आ गयी थी जिसकी आशा नहीं की जा सकती थी। स्पष्ट ही उसे फादर को उस समय मेरे यहां देखने की आशा नहीं थी। फादर के भी गम्भीर दार्शनिक रूप में सरस स्निग्धता आ गयी थी।

"इस हिम-वर्षा में बाहर निकल कर तुम लोगों ने निश्चय ही बहुत बड़े साहस का काम किया है।" मैंने उन लोगों को बातचीत में घसीट लाने के उद्देश्य से कहा।

"मैं तो राजी नहीं थी," सिल्विया बोली—"पर इन्होंने बड़ी जिद की!"

मनिया ने कहा—"मुझे बड़ी भूख लग रही थी, और वहां कुछ अच्छा नहीं लग रहा था।

"क्या निमन्त्रण में आधा ही पेट खाने को मिला?" मैंने परिहास में कहा।

"बात बिलकुल सही है!" सिल्विया मुस्कराती हुई बोली—"इन्होंने वहां कुछ खाया ही नहीं, केवल कुछ चुगकर रह गयीं!"

'चुगने' की बात सुन कर फादर जेरमिया और मैं दोनों हँस पड़े। पर मनिया तनिक भी नहीं हँसी, बल्कि खीझ के स्पष्ट चिह्न उसके मुख पर प्रकट हो रहे थे। बिना कुछ बोले वह भीतर चली गयी। थोड़ी देर बाद जब लौटी तो वह कपड़ा बदले हुए थी और ऊपर से एक काला गरम ओवरकोट उसने पहन लिया था। एक कोट वह सिल्विया के लिये भी ले आयी थी। सिल्विया ने बिना किसी आपत्ति के परम प्रसन्न भाव से उसे पहन लिया। उसके बाद दोनों फिर अँगीठी के पास बैठ गयीं।

"क्यों ? क्या बात हो गयी थी, मनिया ?' मैंने अपने स्वर को कुछ गम्भीर रूप देकर सांत्वना के तौर पर कहा।

"मुझसे वहाँ कुछ खाया नहीं गया। बड़ा अजीब सा वातावरण लगा मुझे। लीला बेचारी तो बड़ी भली लड़की है पर उसके घर के दूसरे लोग हमारी छूत मान रहे थे, और हमारे आने से तनिक भी प्रसन्न नहीं हो रहे थे। हम तीनों को अलग एक कमरे में खाना खिलाया जाने लगा। घर के दूसरे लोग—लीला की माँ, दूसरी बहनें, बच्चे और बूढ़े सब—हम लोगों के पास फटकने तक नहीं थे। केवल दूर से देख रहे थे, जैसे हम कोई तमाशे की चीज हों। बच्चे हमारे पास आना चाहते थे, पर उन्हें बुरी तरह फटकारा जा रहा था। मुझे अगर पहले से यह मालूम होता तो मैं हर्गिज न जाती" और वह सिल्विया की ओर शिकायत भरी दृष्टि से देखने लगी।

सिल्विया अत्यन्त शांत भाव से बोली—' पर इस तरह की छोटी-मोटी बातों को बहुत महत्व देने से कैसे काम चलेगा। यह तो जानी हुई बात है कि कट्टर हिंदू-परिवार ईसाइयों की छूत मानते हैं। हालांकि अब यह कट्टरता बहुत कम परिवारों में रह गयी है, पर कहीं कहीं अब भी शेष है। ज्यों-ज्यों देश में शिक्षा और संस्कृति बढ़ती चली जायगी त्यों-त्यों यह रही-सही कट्टरता भी अपने आप नष्ट होती जायगी। उस पर रुष्ट होना बेकार है, बल्कि उन लोगों की अज्ञानता पर दया करनी चाहिए

पर केवल धर्म भिन्न होने के कारण ही मनुष्यों का एक वर्ग दूसरे वर्ग को इस कदर हेय समझे यह तो बड़ी विचित्र बात है।'

"इसमें आश्चर्य की कुछ भी बात नहीं है' अत्यन्त शान्त भाव से आदर न कहा—' यह मानव-स्वभाव है। स्वयं ईसाई लोग गैर ईसाइयों को बराबर काफिर समझते रहे हैं। आदिम मानव जब जंगली जीवन बिताता था तब उसे छोटे छोटे गुट बाँध कर रहना पड़ता था। जीवन की ऐसी कठिन परिस्थितियों में उसे रहना पड़ता था कि जब कभी जंगली जानवरों का शिकार प्राप्त न हुआ तब किसी अपने ही स्वजातीय जीव—अर्थात् मनुष्य—को मारकर उसे अपना पेट भरना पड़ता था।

यह इस प्रकार होना था कि किसी एक गुट के मनुष्य मिल कर किसी दूसरे गुट के मनुष्य की टोह मे रहते थे और उसे पकडकर मारकर उत्सव मनाकर उसे खा जाते थे। केवल अपने गुट के मनुष्य को नही मारते थे। अपने अपने गुट को सभी भिन्न गुटो से उन्नत और पवित्र मानते थे, और अपने से दूसरे किसी भी गुट के विरुद्ध उनके मन मे सहज ही घोर घृणात्मक और हिंसक भावना वर्तमान रहती थी। पारस्परिक घृणा और हिंसा की जो यह भावना उस समय छोटे छोटे गुटो के बीच वर्तमान थी वही सभ्य युग मे बडे-बडे गुटो के बीच पायी जाने लगी क्योंकि सभ्यता के साथ-साथ छोटी छोटी गुटबंदियाँ बडी गुटबंदियो मे परिणत हो गयी। ये गुट कभी तो किसी बडे धार्मिक घेरे के भीतर बँधे हुए पाये जाते रहे हैं और कभी वर्ण अथवा जाति के घेरे के भीतर। आर्य जाति का एक बहुत बडा परिवार या गुट था। पर उस बडे परिवार के बाहर वाले किसी भी गुट के प्रति उनकी घृणा और हिंसा का ठिकाना नही था। इसी हिंदुस्तान मे जब आर्य लोग आये तब उन्होने यहाँ भी अपने से भिन्न सभ्य जाति को ध्वस्त करने का बीडा उठा लिया और उन्हें दास समझने लगे। आज तक काली और गोरी जातियो के बीच जो पारस्परिक विद्वेष भावना ससार मे पायी जाती है उसका भी मूल कारण वही आदिम प्रवृत्ति है। यहूदियो का गुट यद्यपि बहुत छोटा था, तथापि वे ससार भर की अन्य सभी जातियो को अत्यन्त घृणित, पतित और हेय समझते रहे हैं। केवल इतना ही नही, एक बडे गुट के भीतर जो बहुत-से छोटे गुट होते हैं उनमे भी आपस मे एक-दूसरे को छोटा समझने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसी देश मे अभी तक हिन्दुओ के बीच ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारो के भीतर एक-दूसरे के प्रति विद्वेष भावना पायी जाती है। ब्राह्मणो मे भी कई उप-जातियाँ हैं जो एक दूसरे को अपने से हीन समझती रहती हैं। केवल भारत मे ही नहीं, पश्चिमी देशो मे भी लोग, इस वैज्ञानिक सभ्यता के युग मे भी, अभी तक कुछ विभिन्न सामाजिक स्तरो मे रहकर सामाजिक असमानता का जीवन विताते हैं। यही प्रवृत्ति ससार के विभिन्न राज-नीतिक और आर्थिक गुटो के बीच पायी जाती है। पूँजीवादी वर्ग और

मजदूर वर्ग के बीच पारस्परिक हिंसा प्रतिहिंसा के जो दाँव पेंच चलते रहते हैं वे किसी से छिपे नहीं हैं। साम्राज्यवादियों और पराधीन जातियों के बीच अलग संघर्ष चलता रहता है। मार्क्सवादियों और पश्चिमी यूरोपियन और अमेरिकन राष्ट्रों के बीच जो सनातनी वार बार चलती रहती है उसका भी यही कारण है। इसी देश में गांधीवादियों, कम्यूनिस्टों और समाजवादियों के बीच एक-दूसरे के प्रति विरोधी भावना बराबर पायी जाती रही है। और तो और, सांस्कृतिक क्षेत्र में भी यही गुटबन्दी चला करती है। एक विशेष कोटि के साहित्य या कला के उपासक दूसरी कोटि के साहित्य और कला के अनुयायियों की निन्दा किया करते हैं। एक विशेष दार्शनिक दृष्टिकोण रखने वाले किसी दूसरे दार्शनिक मतवाद के मानने वालों के प्रति अत्यन्त असहनशील रहते हैं। इन सबके मूल में वही विरोधी भावना काम करती है जो आदिम मानव को अपने अनिश्चित जीवन की अनियमित परिस्थितियों के कारण पालनी पड़ती थी।

आज फादर स्पष्ट ही सबे-सबे भाषण देने की मनास्थिति में थे। हम सब लोग एकाग्र मन से उनकी बात सुन रहे थे। सिल्विया तो जैसे अपने भीतर की सारी शक्ति बटोरकर अपने कानों में केन्द्रित किए हुए थी। फादर जेरमिया की धारावाहिकता जब रुकी तब सिल्विया ने प्रश्न किया— तब क्या आपका यह खयाल है कि गुटबन्दी की यह अत्यन्त हीन और संकीर्ण भावना मानव-स्वभाव में सदा किसी-न किसी रूप में वर्तमान रहेगी ?

नहीं मैं ऐसा कदापि नहीं समझता। पूरी गम्भीरता के साथ फादर ने कहा— इस भावना ने आज सारे संसार को एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक जिस कदर अशांत और अव्यवस्थित बना रखा है उसके भार-केन्द्र को ही अपने मूल स्थान से च्युत करके समस्त आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त और डावाडोल कर दिया है यह किसी से छिपा नहीं है। दो वृहत्—पूर्वी और पश्चिमी—गुटों की पारस्परिक सनातनी ही इस विश्वव्यापी अस्त-व्यस्तता के मूल में है। इन दो वृहत् गुटों के भीतर कई छोटे-मोटे गुट और हैं जो

आपस में एक-दूसरे से जूझने में अपनी सारी शक्तियों का अपव्यय कर रहे हैं। पर इन्हीं सब कारणों की जो प्रतिक्रिया आज के मानव की अन्तश्चेतना में हो रही है वह एक-न-एक दिन निश्चय ही उसके आपस के तुच्छ व्यवधानों और अवरोधों को हटाकर ही रहेगी। मानव को आज महाविश्व के बीच में अपने परिवार की लघुता का बोध होने लगा है। उसका अंतर्मन यह महसूस करने लगा है कि समस्त पृथ्वी में मानवता की केवल एक ही इकाई शेष रह सकती है। शेष सब इकाइयाँ उसके तुच्छ अहम् से निकले हुए निस्सार बुलबुले हैं। आज का मानव पृथ्वी के चेतन विकास के सबसे अधिक महत्वपूर्ण मील के पत्थर पर पहुँचने जा रहा है, जहाँ पर उसके पिछले युगों से जमे हुए अघ-संस्कार प्रचंड अन्तर्विस्फोटों के फलस्वरूप ध्वस्त होने को हैं।"

फादर जेरेमिया की आँखें किसी क्रान्तद्रष्टा ऋषि की अन्तर्भेदिनी मनःकिरणों से जैसे प्रज्वलित हो रही थीं। मनिया उनकी गम्भीर वाणी का महत्व किस हद तक समझ पायी थी, मैं कह नहीं सकता, पर विस्मय-भरी श्रद्धा उसकी आँखों में स्पष्ट व्यक्त हो रही थी। मिन्विया तो जैसे समाधि-मग्न हो गयी थी। वह आत्मविस्मृत-सी होकर अधमुँदी आँखों से फादर की ओर देख रही थी।

मनिया ने घंटी का बटन दबाकर ध्यानसिंह को बुलाया और उसे टोस्ट, आलू चाप और कॉफी तैयार करने को कहा।

३३

कमरे में फिर एक बार स्तब्ध शान्ति छा गयी थी। दरवाजे पर लगे हुए शीशों से बाहर की ओर देखने पर हिमकणों की अनन्य फुलझड़ियों की अविरत बौछार दिखायी दे रही थी। मैंने सब लोगों की आज्ञा लेकर फिर एक

बार दरवाजा खोला। तीखी किंतु मीठी ठंढी हवा शरीर मे और प्राणो मे पुलक की सी सिहरन पदा कर रही थी। ठढ के कारण सिसकारी भरता हुआ भी मैं बरामदे से बाहर का दृश्य देखने लगा। प्राय ६ इंच बरफ जम चुकी थी। सभी दिशाएँ बादल और कुहरे से इस तरह ढक गयी थी जसे एक अत्यत सीमित खड के सिवा विश्व का और कोई भाग कही शेष नही था। प्रकृति जसे अपने अहम की कुहेलिका से स्वय अपने को चारो ओर से ढककर उस सकीर्णता मे ही परिपूर्ण आत्म-तुष्टि पाकर शात थी। कुहरे के बावजद एक विचित्र प्रकाश भी उस अहम से उद्भासित हो रहा था।

मेरे बाहर निकलने पर फादर जेरमिया, सिल्विया और मनिया तीनो बाहर निकल आये। मनिया तो सिसकारियाँ भरने के साथ ही साथ बच्चो की तरह आनन्द की किलकारियाँ भी मारने लगी थी, सहसा वह बरामदे से बाहर, खुले मदान म जमीन पर बिछी हुइ बरफ के ऊपर कूद पडी। ऊपर से हिमकणो की जो पुष्पवर्षा उस पर हो रही थी वह उसके काले कोट पर चमकर उसे एक विचित्र अलकारिता प्रदान कर रही थी। उसकी देखादेखी सिल्विया भी किलकती हुई बाहर कूद गयी। मनिया ने नीचे से थोडी सी बरफ उठाकर सिल्विया पर फेंकी। सिल्विया ने भी पलटे म ऐसा ही किया। दोनो की किलकारियो म सारा वातावरण आनन्द स्फुरित पटाखो की आवाज स गूज उठा। फादर जेरेमिया और मैं बरामदे म ही खडे थे और प्रसन्न भाव स तमाशा देख रहे थे। केवल एक बात की चिता मुझे हो रही थी—कहा मनिया को ठढ न पकड ले और वह बीमार न पड जाय।

फादर जरमिया भी रह न सके और थोडी देर बाद वह भी कूद पडे। ऊपर आकाश की ओर मुह करते हुए वह बोले—'वाह ! बहुत सुन्दर ! चले आइए मि० रजन आप भी ! ऐसा सुखद स्वास्थ्यकर और आनन्दमय वातावरण सदा नही मिला करता। आइ !'

पर मुझे तनिक भी साहस नहीं होता था। जीवन म पहली बार मैं हिमपात का दृश्य देख रहा था। न जाने उसका क्या प्रभाव मेर

शरीर पर पडे इस आशका से मैं यथाशक्ति सावधान रहकर चलना चाहता था।

मैंने कहा—'मुझे क्षमा कीजिये, फादर, मैं यहीं से इस सौंदय का पूरा पूरा उपभोग कर रहा हूँ।"

फादर निपट बच्चा की तरह अपनी जीभ बाहर निकाल कर ऊपर को मुह किये हुए थे, और हिम के जो कण उनकी जीभ पर बठ जाते थे उन्ह चटखार भरे न द के साथ निगल जाते थे।

सहसा पीछे से मनिया की आवाज आयी—"फादर, फादर!"

फादर लौटकर देखना चाहते थ। पर तब तक सिल्विया शरारत कर चुकी थी। फादर ने "आह!" कहकर अपना सारा मुह और शरीर सिकोड लिया। सिल्विया और मनिया खिलखिलाकर हँस पडी। बात यह हुई थी कि सिल्विया ने चुपके से पाछे से थोडी सी बरफ फादर की गदन के नीचे कोट के भीतर डाल दी थी। वह बरफ जब फादर की रीढ स होकर नीचे सुरसुराती हुई गयी होगा तब जा पुलक भरी कटीली सिहरन उनके सार शरीर मे दौडी हागी वह निश्चय ही बडी कौतुकप्रद रही होगी।

कुछ देर तक फादर बच्चा की तरह मुह बनाय हुए कमर झुकाय खडे रहे उसके बाद उन्ह भी लडकपन सूझा और पलट मे उन्होंने भी थोडी सी धुनी हुई रुई की तरह कोमल बरफ जमीन पर से उठायी और सिल्विया की आर दौडे। सिल्विया किलकारियाँ भरती हुई वहा स भागी। फादर भी उसके पीछे-पीछे दौडन लग। अत म या तो सिल्विया जान-बूझकर स्वय पकड मे आ गयी या फादर ने ही उससे अधिक फुर्ती दिखाकर उसे पकड लिया और पकडकर उन्होंने छटपटाती हुई और रेल क इजन की सीटी की तरह कूकती हुई सिल्विया की गदन के नीचे, कोट—और सभवत फाक के भी—भीतर वह बरफ डाल ही दी। सिल्विया सभवत तीखी सिहरन क कारण, दुगनी तीव्रता से कूकन लगी। मनिया यह दृश्य देख देखकर आनन्द से किलकती हुई तालियाँ पीटन लगी। मुझे भी यह हास परिहास अत्यन्त सुखद प्रतीत हो रहा था।

जब वाक्या कौतुक हो चुका तब सब लाग भीतर बरामद म चल

 आये । अपना अपना कोट उतारकर सबने उसे झाड़ा । मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब मैंने देखा कि बरफ के झाड़े जाने के बाद कोट में किसी प्रकार की नमी का लेश न रहा ।

उसके बाद भीतर अँगीठी के पास बैठकर सब लोग सिसकारियाँ भरते हुए अपने ठंड से अकड़े हुए हाथ गरम करने लगे । कुछ देर बाद ध्यानसिंह टोस्ट, चाप, आमलेट आदि कई चीजें तैयार करके ले आया । सबके आगे छोटे छोटे टेबिल लगाकर अलग अलग प्लेटों में सजाकर उन्हें रख दिया गया । छोटी छोटी शीशियों में पिसा हुआ नमक और पिसी हुई काली मिर्च भी लाकर उसने रख दी । उसके बाद ही कॉफी आयी ।

मनिया को वास्तव में बड़ी भूख लगी हुई थी और वह बड़ी फुर्ती से टोस्ट, चाप आदि पर हाथ साफ करती जाती थी । सिल्विया सबके प्यालों पर काफी ढाल चुकने के बाद बड़ी ही शालीनता के साथ धीरे धीरे टोस्ट कुतरने लगी ।

फादर ने सिल्विया से कहा— मेरी राय में तुम्हें केवल हवा खाकर रह जाना चाहिये । तुम्हारी जैसी, ईथर की तरह सूक्ष्म, हवाई प्राणियों का स्थूल पदार्थों का भोजन कुछ शोभा नहीं देता ।"

मनिया का मुह दाँत से पिसे हुए खाद्य से भरा होने पर भी वह बीच ही में बरबस खिलखिला उठी ।

सिल्विया पहले तो कुछ सकुचाया, पर फिर उससे चुप न रहा गया । बोली— मेरी समझ में नहीं आता कि आप जैसे ईश्वर के प्रेमामृत-पान से तृप्त धर्मात्मा लोग क्यों सांसारिक मनुष्यों की तरह खाने पीने की चीजों में दिलचस्पी लेते हैं ।"

'जल्दी ही समझ में आ जायगा ।" अपनी बात को सघन रहस्यमयता के आवरण में लपेट कर फादर ने कहा ।

मनिया बोली— 'आप दोनों आपस में न जाने किस भेदभरी भाषा में बात करते हैं ।'

"आप लोगों के आगे भी जल्दी ही सारा भेद खुल जायगा, इसलिये आप भी अधीर न हों ।

"ऐसा कहकर आपने अपनी बात पर भेद की दुहरी चादर डाल दी है !" और वह दुष्टतापूर्वक मुस्कराती हुई सिल्विया की ओर देखने लगी।

सिल्विया के मुख की लालिमा पर और अधिक गहरा लाल रंग गया था। आज फादर के बात और व्यवहार में उसे जैसे कोई नय लग रहा था। यह मेरा अनुमान मात्र था, क्योंकि उनके मन की य बात जानने का कोई साधन मेरे पास नहीं था।

फादर ने ज्यों ही कॉफी का एक घूंट गले के नीचे उतारा त उनका हास्यात्मक व्यंग और अधिक खिल उठा। सिल्विया की देखते हुए बहुत धीरे से बोले—"तुमने ठीक ही सोचा था कि तु मीठे हाथों से बिना चीनी के भी कॉफी अपने आप मीठी हो जाय पर अफसोस कि आज के नीरस युग की कॉफी भी बड़ी बेहया उठी है !"

"क्या सचमुच आप की कॉफी में चीनी नहीं पड़ी है ? सि संकोच का बरबस झाड़ती हुई सी बोली और उसने दो चम्मच उनके प्याले में डाल दी। प्याले में चम्मच चलाती हुई मनिषा की मुंह करके बोली—"पादरी लोग बहुत अधिक मीठा पसन्द करते पता नहीं इसका क्या कारण है ! यदि फादर इस रहस्य पर प्रकाश डालने की कृपा करें तो अच्छा हो।" और फिर रसीली मु भरी तिरछी नजर से फादर की ओर देखने लगी। सिल्विया के ठंडे मस्तिष्क और ठंडे हृदय वाली लड़की में इस कदर चंचलता पा सकती है, इसकी कल्पना मैंने पहले नहीं की थी।

फादर ने कहा—"यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। मीठ एक मात्र ऐसा रस है जो जीवन के समस्त कटु और दाहक र तीखी अनुभूति को तत्काल मिटाने में समर्थ है। दुनिया को जा सबसे अधिक प्रिय है वह 'मधुर' ही है। निष्कपट बालकों का स प्रिय मिठाई ही लगती है। उसी प्रकार कोई भी शान्तिवादी दार्शनि अवश्य मीठे के प्रति सबसे अधिक आकर्षित होगा, यह स्वाभाविक ही

"पर बहुत से शान्तिप्रेमियों को नमकीन और चटपटा भोजन

करते देखा गया है, इसका क्या कारण हो सकता है?"
सिल्विया ने पूछा।

"ऐसे लोग बाहर से भले ही शांतिकामी लगते हों, पर यदि मनोवैज्ञानिक 'एक्स' किरणों से उनके भीतर देखा जाय तो मालूम होगा कि उनके भीतर घोर अशांति की ज्वालाएँ धधक रही हैं। ऐसे लोग भीतर से रक्तमय क्रांति के उपासक होते हैं, उसी की कल्पना में अपनी भीतरी अशांतिप्रियता को डुबाना चाहते हैं, यद्यपि वे स्वयं कभी ऐसी क्रांति में भाग लेने का साहस नहीं रखते। मनुष्य का भोजन निर्भ्रान्त रूप में बता देता है कि उसकी भीतरी प्रवृत्तियाँ कैसी होंगी।"

"यदि ऐसी ही बात है," सिल्विया ने कहा—"तो मिष्टान्न प्रेमी व्यक्तियों के बारे में यह कल्पना की जा सकती है कि वे जीवन की यथार्थता से भागकर अपने मन की स्निग्ध मधुर कल्पनाओं के शांतिलोक में डूबे रहना चाहते हैं। ऐसे लोग न तो किसी कठोर त्याग व्रत को ही दीर्घ काल तक निभा पाते हैं न जीवन के ऐसे बंधनों को ही स्वीकार करने का साहस रखते हैं जो उन्हें कठोर संघर्षों में घसीटें।"

इस बार फादर ने बड़े गौर से सिल्विया की ओर देखा। स्पष्ट ही उसकी बात में उन्हें एक विशेष अर्थ की ध्वनि छिपी हुई सी लगी। कुछ सोचकर उन्होंने कहा—"मधुर रस का जो सच्चा प्रेमी होगा उसकी शांति कामना कभी किसी कच्ची नींव पर आधारित नहीं हो सकती। उसका शांतिवाद कभी छुई मुई नहीं हो सकता, जो यथार्थ जीवन के तनिक से स्पर्श से मुरझा जाय। भीतर और बाहर के लाख आघातों और प्रत्याघातों के बीच में भी उसका विश्वास अडिग रहेगा। ऐसा व्यक्ति यथार्थ की गन्दगी को कभी अपनाता नहीं, यह ठीक है, पर यथार्थ की कठोरता से वह कभी कतराता भी नहीं।"

"पादरी जन्मजात तार्किक होते हैं, इसलिये उनसे तर्क में जीत पाना संभव नहीं है!" कहकर सिल्विया एक बार कटीली दृष्टि से फादर की ओर देखकर पलकों के भीतर मुसकराने लगी।

फादर जेरेमिया यह मन्तव्य सुनकर अट्टहास कर उठे।

जब सब लोग कॉफी पी चुके तब अँधेरा हो चला था। कमरे की

बत्ती जला दी गयी थी। फादर मुझे धन्यवाद देते हुए उठ खड़े हुए। बोले—'आज का दिन आपके यहां बहुत सुख मे कटा। आपकी अँगीठी की मीठी गरमी को छोडकर जाने की इच्छा नहीं होती, पर अँधेरा हो चला है और समय बहुत हो गया है, इस लिये अब चलता हूँ।' कहकर उन्होंने हिंदू ढग से मेरी और मनिया की ओर दोनो हाथ जोडे।

मनिया ने कहा—'अगर आप जा ही रहे हैं तो कृपया मिस रालिंसन को भी उनके घर तक पहुँचा दें। बर्फ के कारण रास्ते में बडी फिसलन है।'

'मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है!" सिल्विया की ओर अर्थ भरी दृष्टि से देखते और मद मद मुस्काते हुए फादर ने कहा।

मनिया ने सिल्विया को सबोधित करते हुए कहा— मिस रालिन्सन शाम हो गयी है अँधेरा होने लगा है। इस बर्फानी मौसम में तुम्हारा अकेले जाना ठीक नहीं है। इसलिये मेरी राय में तुम फादर के साथ चली जाओ।"

सिल्विया धीरे से खड़ी हुई। लाज का एक बहुत ही झीना आवरण उसके मुख पर छाया हुआ था। आज फादर की बातें सुन चुकने के बाद मैं चूकि उसकी छोटी-से-छोटी हरकत पर गौर कर रहा था, इसलिये उसके मुख पर चढनेवाला हलका से हलका रग भी मेरी दृष्टि से बचने नहीं पाता था।

मैं सोचने लगा कि क्या मनिया भी इन दोनो की भीतरी भावना से परिचित है? जो उसने यह प्रस्ताव रखा कि फादर जेरमिया सिल्विया को उसके घर तक पहुँचा दें वह क्या दुष्टतावश रखा गया था या सिल्विया की वास्तविक कठिनाई का अनुभव करते हुए?

फादर और सिल्विया के साथ जब हम लोग बरामदे तक गये तब बरफ उसी रफ्तार से, अविराम गति से गिरती चली जा रही थी।

"अच्छा नमस्ते!" फादर ने हिंदी मे कहा। मनिया और मैं सुन कर खूब जोर से हँस पड़े। सिल्विया हम लोगो की ओर देखती हुई बोली—"सलाम!" फिर एक बार सब लोग अकारण ही ठहाका मार-कर हँस पडे। अकारण हँसी की इस लहर का अर्थ स्पष्ट ही यह था कि सबका मनोवातावरण आज एक अज्ञात रगीनी से भर गया था।

३४

फादर और सिल्विया के चले जाने के बाद जब मैं मनिया के साथ कमरे के भीतर गया और किवाड़ बंद करके फिर अँगीठी के पास बैठ गया तब मनिया सीधे पलँग पर जाकर मेरी ओर मुँह करके दाईं करवट लेट गयी।

"आज फादर इतने खुश क्यों थे, जानते हो ?" मनिया ने कहा।

"अनुमान लगा सकता हूँ।"

"क्या अनुमान तुमने लगाया, बताओ ?"

"पहले तुम बताओ कि तुम क्या जानती हो ? तुम्हारी समझ में इसका कारण क्या हो सकता है ?"

'बात यह है कि फादर ईसा के सच्चे भक्त हैं। इसलिये जब कभी उन्हें अंधकार के बीच में प्रकाश दिखायी देता है तब उनकी आत्मा में इस भावना से उल्लास छा जाता है कि वह प्रकाश जीवन के अंधकार के बीच में ईसा की ही पुण्य आत्मा की अमर ज्योति है। आज बरफ पड़ने से चारों ओर के घन अंधेरे के बीच में जो सफेदी बिना किसी बाहरी प्रकाश के अपने आप चमक रही है वह निश्चय ही उनके प्राणों को गुदगुदा रही होगी। उनकी खुशी का कारण मैं तो यही समझती हूँ।'

मैंने मृदु मंद मुस्कराते हुए उसकी ओर देखा। उसकी स्वच्छ तरल आँखों में व्यंग्य का लेश भी नहीं था। वे सरल विश्वास से टिमटिमा रही थीं।

मैंने कहा—'तुम्हारा अनुमान ठीक हो सकता है। मेरा भी यह अनुमान है कि आज की हिमवर्षा उनकी प्रसन्नता का एक महत्वपूर्ण कारण है। पर मूल कारण केवल यही है, ऐसा मैं नहीं मानता।'

'वह दूसरा कारण तुम्हारी राय में क्या हो सकता है ?'

मैंने जेब में सिगरेट का पैकेट निकाला और उसमें से एक सिगरेट निकालकर जलाकर आराम से पीने लगा। उसके बाद बोला—'क्या तुमने इधर फादर और सिल्विया की घनिष्ठता पर ध्यान नहीं दिया है ?'

मनिया सहसा उठ बैठी और पलंग के नीचे पाँव लटकाकर बोली—"तो इससे क्या हुआ ? इसमें कौन सा नया रहस्य छिपा हुआ है ? सिल्विया का झुकाव धर्म की ओर किस हद तक है यह तुम भी जानते

हो और मैं भी। एक धर्मप्राण व्यक्ति की घनिष्ठता दूसरे धर्मप्राण व्यक्ति से होगी, इसमे आश्चर्य की क्या बात है।"

"यह ठीक है। पर दो धर्मप्राण व्यक्ति आपस मे एक दूसरे के प्रति मीठे व्यग कसे, एक दूसरे के साथ बच्चो की सी शरारत करें, बीच-बीच म एक-दूसरे को देखकर लजाने लगें, यह बात क्या तुम्हे कुछ विशेष अर्थ भरी नही मालूम होती ?"

"तुमने इस बात का क्या अर्थ लगाया है, जरा सुनू।"

"मुझे तो स्पष्ट ही यह लगता है कि दोनो एक दूसरे को चाहते हैं। हो सकता है अभी यह चाहना केवल आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित हो, पर यह धीरे-धीरे दो प्राणियो को कहा तक खीच ले जा सकता है इसकी कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती ?"

मनिया अपनी विस्मित आखो को मेरी ओर गडाकर जैसे अपने ही भीतर की किसी गभीर समस्या पर विचार करने लगी।

उसने बाद बोली—"क्या यह सभव है ?"

"ससार म असभव कुछ नही है, इस स्वय सिद्ध सूत्र की गाँठ बाध कर तुम चलो तो जीवन म कभी ठगी नही जाओगी।"

"पर फादर—और सिल्विया ! खासकर फादर तो अपने धर्म-कर्म और चिंतन और अध्ययन से ही कभी छुट्टी नही पाते। उनके दिमाग म भी कभी सासारिक प्रेम का कीडा घुस सकता है, यह कल्पना मैं नही कर सकती। पर—पर तुम्हारे सुझाव से मुझे भी कुछ ऐसा लगने लगा है कि कहा कुछ बात अवश्य है। पर ठीक किस रूप म, यह जानना कठिन है।"

मेरे मन म एक बार यह तरग उठी कि फादर ने आज मुझसे अपने धार्मिक विचारो के सबध म और सिल्विया के विषय म जो-जो बातें कही थी उन्हे मनिया के आगे प्रकट कर दूँ। पर तत्काल ही मैं यह सोच कर रह गया कि जब फादर जेरेमिया ने स्वय सिल्विया के आगे सभी बातें स्पष्ट रूप म प्रकट नही की हैं तब मनिया के आगे सारा रहस्य यथार्थ खोलने म उनके प्रति घोर विश्वासघात होगा। इसलिये मैंने उस चर्चा को आगे चलाना उचित नही समझा। विषय को बदलने के विचार से

मैंने कहा—"मसूरी में तो अब बड़ी बड़ी सर्दी पड़ने लगी है, और यह भी निश्चित है कि दिन पर दिन सर्दी बढ़ती ही चली जायेगी। तुम्हारा तो सारा जीवन पहाड़ में बीता है इसलिये तुम बड़ी से बड़ी सर्दी सहन करने की आदी हो, पर मैं पहली बार जाड़ों में पहाड़ की सर्दी खा रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि बरफ गिरने का दृश्य मुझे भी बहुत अच्छा लग रहा है, पर जब जाड़ों भर सुबह शाम इसी तरह की सर्दी होगी तब तो बड़ी कठिनाई होगी।'

मनिया खिलखिला पड़ी। बोली—"तुम क्या यह समझे बैठे हो कि प्रतिदिन सुबह शाम इसी तरह बर्फ गिरती ही रहेगी? ऐसा उसी दिन सम्भव होगा जिस दिन प्रलय होने को आयेगा। अभी दो ही तीन दिन बाद मौसम साफ हो जायगा और धूप निकल आयेगी। पर हाँ यह ठीक है कि अब सर्दी बढ़ती चली जायगी। और तुम्हारे लिये तो निश्चय ही यह बात बड़े कष्ट की होगी।'

"एक काम अगर किया जाय तो कैसा रहे?

"क्या काम?"

मैं सोच रहा हूँ कि सर्दी के दिन हम लोग कहीं नीचे जाकर काट आवें।'

'कहाँ जाने का विचार है?'

"बबई, कलकत्ता या और किसी बड़े शहर में जाने की बात सोच रहा हूँ। जाना तो मुझे घर भी था। मैनेजर साहब की कई चिट्ठियाँ आ चुकी हैं मैंने अभी एक का भी उत्तर नहीं दिया है

'कौन मैनेजर साहब?

"जो मेरी जमींदारी का प्रबंध करते हैं।

'आह! तब तो तुम्हें जरूर जाना चाहिये। घरवालों से बिछुड़े तुम्हें बहुत दिन हो गये" उसने बहुत धीरे से, बिना किसी उत्साह व जिज्ञासा भरी गंभीर दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए कहा।

'पर अभी घर जाना मेरे लिये न तो उचित ही होगा और न मेरे मन में ही कोई उत्सुकता है।'

'क्यों, उचित क्या न होगा?" अत्यन्त उत्कंठित भाव से मनिया

बाली । न चाहने पर भी, न जाने मेरे मुह से इस तरह की बात क्या निकल आयी थी, मैं कह नही सकता । लीपा पोती करने के उद्देश्य मे मैंने कहा—"कोई खास कारण नही है "

"पर कुछ कारण तो अवश्य ही है । तुमने निश्चय ही इस सबध मे कुछ सोचा होगा कि वहाँ जाना क्यो उचित है और क्या अनुचित ! तभी तो तुमने इस तरह की बात कही है। वह कारण क्या है मैं तनिक जानना चाहती हू ।'

मैंने देखा कि अपनी व्यर्थ की बात से मैंने अपने को बुरा फँसा लिया है । उसका निराकरण कैसे हो, इस सम्बन्ध मे मेरी बुद्धि ठीक से जग नही रही था ।

कारण और कुछ नही है, असल मे मुझे देहात कभी पसद नही रहा । मैं देहाती वातावरण से इस कदर ऊब गया हूँ कि जहा तक सम्भव हो सके उससे छुटकारा पाना चाहता हूँ। देहाती जनता किस हद तक मूर्ख होती है, इसकी कल्पना तुम नही कर सकोगी । उसकी मूर्खता से मैं उकता उठा हूँ इसी कारण टले रहना चाहता हूँ '

"साफ शब्दो मे यह क्यो नही कहते," अपने स्वर मे कुछ तीखापन भरती हुई मनिया बोली—"कि तुम्हारे घर और गाववाले मेरे साथ तुम्हारे विवाह की बात से बहुत भडक उठेंगे, यह तुम जानते हो और इसीलिये उनके पास जाने से डरते हो। गाँववाले जब यह जान लेंगे कि तुमने एक ईसाई लडकी से विवाह किया है और तुम स्वय भी ईसाई बन गये हो तो तुम्हारा केवल बहिष्कार ही नही करेंगे, बल्कि कटु व्यगो की बौछार से तुम्हारा जीना मुश्किल कर देंगे । यह मैं जानती हूँ। मुझे दुख है कि मेरे कारण तुमने अपने को इतनी बडी परेशानी मे डाल दिया है "

और वह पलँग पर उठकर मेरे पास चली आयी । फर्श पर घुटनो के बल बैठकर उसने अपने दोनों हाथ मेरे कधो पर डाल दिये । अपनी दो प्यारी-प्यारी छोटी आँखो को मेरी आँखों के एकदम निकट ले जाकर वह विस्मय विमुग्ध और साथ ही स्नेह विह्वल दृष्टि से मुझे देखती हुई जैसे मेरी आँखो के जरिये मेरे अन्तस्तल की थाह नापने लगी । धीरे-धीरे उसकी आँखें जैसे कृतज्ञता से छलछला आयी । मेरे सिर पर अपना

 सिर रखते हुए वह बायें हाथ से धीरे—बहुत धीरे—मेरी पीठ थपथपाने लगी, जैसे किसी बच्चे को सुलाना चाहती हो। उसी स्थिति मे बोली—"तुमने मेरे लिये कितना बडा त्याग किया है यह बात मैं मरते दम तक नही भूलूगी—शायद मरने के बाद भी नही। मैं तुम्हें बात-बात मे अपने मूर्खतापूर्ण हठ से परेशान करती रही हूँ, पर तुमने बिना तनिक भी विरोध के मेरा प्रत्येक हठ पूरा किया। मेरी बकझकियो को तुमने अपने स्नेह और करुणा से बार-बार दुलराया है। न कभी तुमने मुझे मेरे किसी दुराग्रह के लिये डाँटा न छोटी से छोटी भी माँग की अवज्ञा की। तुम महान आत्मा हो। मैं तुम्हारे योग्य कदापि नही हूँ। मुझे क्षमा करना "

और टपाटप गरम आँसुओं की बूँदो से उसने मेरा कधा भिगो दिया। मेरी समझ मे नही आता था कि मैं उसे किन शब्दो मे सात्वना दूँ। उसकी भावुकता का बाँध बडे बुरे समय में टूटा था और मेरी ही मूर्खता के कारण।

मैंने भी पलटे मे उसकी पीठ को थपथपाना आरभ कर दिया। अपने स्वर म यथासाध्य कोमलता भरकर बोला— मनिया शात हो जाओ इस तरह का लडकपन क्यो करती हो ! तुम ऐसा क्या सोचती हो कि मैंने तुम्हारे साथ कोई दया की है ? ऐसा क्या नही सोचती कि मैंने जो कुछ भी किया वह केवल इसलिये कि मैं तुम्हारी दया पाने का अधिकारी बन सकूँ ? तुम स्वय नही जानती हो कि तुम्हारी दया का क्या मूल्य है। जो व्यक्ति आत्मा की अतल गहराई से उबली हुई उस दया की मागलिक छाया के नीचे एक बार भी विश्राम कर चुका है वही जान सकता है कि उसका कितना बडा महत्व है। तुम्हारे ऊपर मेरा तनिक भी अहसान नही है। उलटे तुम्हारी भरपूर दया के स्नेह-भार से मैं दब गया हूँ। मेरे जिस 'त्याग' की बात तुम कहती हो उसके फटे आवरण के भीतर मेरा बनियापन साफ झलक उठता—यदि तुम गौर से देखो तो। उस तुच्छ 'त्याग' के सस्ते दामो पर मैंने कैसा अमूल्य रत्न मोल लिया है यह मैं ही जानता हू '

मनिया ने मेरे कोट पर अपनी आँखें रगडकर उन्हें पोछा और

काफी देर तक उसी अवस्था मे बैठी रही। उस मौन घडी मे ग्रात्मा के अतल म उठनेवाली क्या अतींद्रिय अनुभूति मेरे भीतर स्पदित हो रही थी और क्या भाव तरगें उसके रहस्यमय मानस म लहरा रही थी, इसका अनुमान लगाना सभव नहीं है। जब बाहर के कमरे म ध्यानसिंह न खाना तब मनिया बिजली के वेग से हडबडाकर उठ बैठी।

"खाना क्या बनेगा, हुजूर ?" ध्यान सिंह ने पूछा।

मैंने मनिया की ओर देखा। उसने पलटे मे मुझसे पूछा—"तुम क्या खाओगे ?"

मैंने कहा— मैं तो इस समय भी टोस्ट और कॉफी से काम चला लूगा।"

"तब ठीक है। मेरे लिये भी कुछ टोस्ट और चाय तयार कर लो। अपने लिये तुम जो भी कुछ चाहो बना लेना।"

ध्यानसिंह के चले जाने पर मैंने कहा—"मैंने जो बात तुमसे पूछी थी उसका कोई उत्तर तुमने अभी तक नहीं दिया।"

"कौन-सी बात ?"

"यही कि जाडो म कहाँ जाया जाय ?"

"ओह, ठीक है, पर इसके बारे म मुझसे पूछने की जरूरत क्या है ?"

"तुम्हे कौन जगह पसद है—बबई, या कलकत्ता या मद्रास ?"

मनिया बडे स्निग्ध और मद स्वर म 'खिल्ल !' करके हँस पडी। बोली—"मैंने न तो कभी बबई देखा है न कलकत्ता, न मद्रास। मैं क्या जानू कि कौन शहर भ्रमण की दृष्टि स अच्छा रहेगा। मसूरी, चकराता और देहरादून को छोडकर मैंने अपने जीवन म कभी कोई चौथी जगह देखी नही है।"

"पर तुम कम स कम इतना तो तय कर लो कि तुम्हे जाडो म मसूरी छोडना पसद है या नहीं।"

'सच पूछो तो मुझे मसूरी छोडकर कही भी जाने की इच्छा नहीं है। पर अगर तुम चाहो तो मुझे कोई एतराज भी न होगा।"

उसका उत्तर सुनकर मेरा जी खराब हो गया। सारा उत्साह जाता रहा। एक ही स्थान म बठे बठे मैं ऊबने लगा था। कुछ समय के लिये स्थान-परिवतन करन से मन को कुछ आराम मिल सकेगा ऐसा मैंने सोचा था। पर मनिया की उदासीनता से मुझे बडा धक्का पहुँचा।

मरे मन स मैंने कहा— 'सब ठीक है। मैं भी कहीं नही जाऊँगा।"

'पर तुम्हें जरूर जाना चाहिये। तुम यहाँ की सर्दी बर्दाश्त नहीं कर सकोग।'

"मुझे जरूर जाना चाहिय तुम्हारी जाने की इच्छा नही है, वस तुम्ह मरे साथ चलने मे कोई एतराज भी नही है। इन तीनो बातो म मेल कहा पर है मेरी समझ म नही आता। कभी-कभी तुम बडी विचित्र पहेलियो म बातें करने लगती हो मनिया!' मैंन कुछ खीझकर कहा।

'अरे तो नाराज क्यो होत हो? अभी कोई बात आखिरी तौर पर तय थोडे ही हुई है!' कहकर मनिया फिर पलँग पर लट गयी। मुझे खीझ म भी हँसी आ गई। मैंने कहा— 'आखिरी तौर पर तय होने के लिये क्या बाजे गाजे की जरूरत है? छोटी-सी बात है सीधा सा प्रश्न है—जाडो म मसूरी म रहना है या कही बाहर जाने की योजना बनायी जाय। जब तुम्ह मसूरी छोडना पसद नही है तब बात वही पर समाप्त हो गयी बस!

'पर तुम क्या यहा का जाडा सहन कर सकोग?

कोशिश करूगा, आखिर जो लोग जाडो म यहा रहत हैं वे भी तो मनुष्य हैं!

'पर सहन करने की आवश्यकता क्या है!

'आवश्यकता कुछ भी नहा है इसीलिय तो मने यहाँ से जाने का प्रस्ताव रखा था। पर जब तुम्हारी इच्छा ही नहीं है"

'पर मैंने तो कहा है कि मुझे कोई आपत्ति न होगा!

यह मैं जानता हू पर किसी पर दबाव डालन का स्वभाव मेरा कभी नही रहा!

तुम गलत बात कहत हो!

मैंने आश्चर्य से देखा, उसके मुख पर एक अंधेरी छाया
घिर आयी थी।

मर्माहत होकर मैंने कहा—"मैंने क्या गलत कहा ?"

'यही कि किसी पर दबाव डालने का स्वभाव तुम्हारा नहीं रहा ।' याद करो, जब मैं पहले-पहल तुमसे मिली थी, तब मैं तुम्हारे होटल से लौट जाना चाहती थी। पर तुमने सहसा अत्यंत गंभीर वाणी में आदेश के स्वर में मुझसे कहा— तुम कहीं नहीं जा सकती। तुम आज से यह न सोचना कि तुम अपनी इच्छा से जहाँ चाहो जा सकती हो। तुम्हारा मन इस समय से एकदम मेरे वश में हो चुका है याद आता है तुम्हें कि नहीं ?' और वह फिर उठ बैठी। उसके मुख से ठीक क्या भाव व्यक्त हो रहा था मैं कह नहीं सकता। क्या अभिमान या क्रोध या क्षोभ, इन तीनों में से किसी की छाया वर्तमान थी ? मैं निश्चित रूप से कुछ भी जान न पाया। पर इतना मुझे याद है कि उस समय उसके मुख की अभिव्यक्ति अत्यंत असाधारण हो उठी थी और वह असाधारण अभिव्यक्ति आश्रय की अपेक्षा भय ही अधिक उत्पन्न कर रही थी। पर दूसरे ही क्षण व्यंग्यात्मक हास की एक बहुत ही हल्की रेखा उसके ओठों के कोनों और फूट निकली।

कुछ देर के लिये मैं स्तंभित रह गया और हतप्रभ होकर काठ के पुतले की तरह उसकी ओर ताकता रह गया। जब कुछ सँभला तब कुर्सी पर जमकर बैठ गया और बोला— हाँ, याद आता है।

'तब क्या उसे तुम 'दबाव डालना' नहीं मानते।

'मानता भी हूँ और नहीं भी मानता।'

"—क्या मतलब '

"मतलब यह कि ऊपरी दृष्टि से देखने पर उस समय मैंने तुम पर दबाव अवश्य डाला था। पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो तो वह दबाव नहीं, बल्कि एक सुझाव ही था। तनिक याद करो कि जब तुम होटल छोड़कर जाना चाहती थीं तब उस समय तुम्हारे मन की स्थिति क्या थी। तुम चाहती थीं कि भाग्य ने और समाज ने तुम्हारे विरुद्ध जो षड्यन्त्र रचा है, तुम्हें एकदम असहाय, अनाथ और निराश्रय बनाकर

 वृहत् संसार के बीच में अकेले भटकने के लिए छोड़ दिया है, उसका बदला अपने को और भी अधिक असहाय और भी अधिक करुण परिस्थितियों में घसीटकर चुकाया जाय। 'बाबा, कोई इस गरीब को दो पैसा दे दो !' की रट लगाते हुए दर-दर भीख माँगकर, ठोकरें खाकर अवमानना की चरम सीमा तक अपने को पहुँचा कर तुम समाज के अपेक्षाकृत व्यवस्थित और सुखी व्यक्तियों के भीतर मार्मिक पीड़ा जगा कर एक प्रकार का विकृत प्रतिहिंसात्मक आत्म संताप प्राप्त करना चाहती थी। समाज के विरुद्ध विद्रोह का वह विकृत रूप था। मैं जानता था कि इस प्रकार का नकारात्मक विद्रोह स्वयं तुम्हीं को दुर्गति की चरम सीमा तक पहुँचाकर रहेगा। उससे समाज की व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। इसलिये मैं चाहता था कि तुम्हारा विद्रोह स्वस्थ, सक्रिय और सकारात्मक रूप धारण करे। यह तभी संभव हो सकता था जब तुम्हारी सारी आत्मघाती प्रवृत्ति को दूसरी दिशा की ओर बरबस मोड़ दिया जाय। सब कुछ जानने के बाद यह मेरा निश्चय हो गया था कि मैं किसी भी उपाय से तुम्हें उस पथ की ओर भटकने से रोकूँ, जिसकी ओर तुम्हारा चोट खाया हुआ मन सामने की खाई को बिना देखे ही बड़ी तीव्रता से उन्मुख हो रहा था

३५

मनिया एकांत भाव से, अपलक शून्य दृष्टि से पूरी तन्मयता के साथ मेरी बातें सुन रही थी। मेरा उद्गार समाप्त होने के बाद भी वह कुछ क्षणों तक मौन रही। मेरी ओर अपनी विस्मित और उत्सुक आँखें गड़ाये न जाने क्या सोचती रही उसके बाद सहसा बोली— 'पर क्या तुम्हारा यह निश्चित विश्वास है कि केवल मुझे उस विकृत आत्मघाती पथ से मोड़ने के उद्देश्य से ही तब तुमने मुझे रोका था ? क्या केवल करुणावश ही तुमने मुझे

विवाह के बंधन में बांधने की बात सोची थी ? क्या और कोई दूसरी भावना तुम्हारे उस कार्य के पीछे छिपी नहीं थी ?"

"दूसरी भावना जो थी वह इतनी स्पष्ट थी कि मैंने न तो कभी उसे छिपाने का कोई प्रयत्न किया, न करूँगा', मैंने कुछ पीडित होकर कहा—"तुम्हारी सारी गति विधि म प्रारभ ही से किस कारण दिलचस्पी ले रहा था, यह कम से-कम तुमसे तो छिपा रह ही नही सकता था, यह मैं जानता था, इसलिये मैं स्वय भी पहले ही स तुम्हें जता दना चाहता था, पर तुमने स्पष्टीकरण के लिये मौका दिया ही नही। पहले ही दिन से मैं तुम्ह किस कदर चाहन लगा था, यदि तुम एक एक करके पिछली सब बातें याद करो ता तुम्हारा रहा सहा सदेह भी दूर हो जायगा। तुम्हारे प्रति केवल दया की भावना से मैंने तुम्हारे साथ इतना घनिष्ठ सबध जोडा है, ऐसा सोचना मर साथ कितना बडा अन्याय होगा, यह तनिक गहराई से सोचकर दखो! दया तुमने मेरे मन मे अवश्य उभाडी है, पर वह बाद म। सबस पहले जिस प्रवृत्ति न मुझे तुम्हारी ओर पूरी शक्ति से खीचा था वह था प्रेम—वह प्रेम जो कभी इस बात पर विचार नही करता कि दूसरे व्यक्ति की सामाजिक स्थिति क्या है और जो अपने प्रिय पात्र की स्वतत्र सत्ता का पूरा सम्मान करता है। मैंने तुम्ह बराबर अपने से कई दृष्टियो म ऊचा पाया है। और सच पूछो तो उस ऊँचाई के कारण ही मैं तुम्हारे प्रति आकर्षित हुआ हू"

मनिया पुलकित दृष्टि से मेरी ओर दख रही थी, लगता था जैसे वह मेरे एक एक शब्द को पी जाना चाहती हो। उसके बाद एक लबी सी सास लेती हुई बोली—"मैं जानती हूँ कि तुम मुझे सच्चे मन से चाहते हो। पर जानने पर भी मेरे मन म कभी-कभी जो शका उत्पन्न हो जाती है वह मेरे मन की चचलता का ही परिणाम है। मैं कई बार प्रभु से एकात म यह प्रार्थना कर चुकी हूँ कि मेरे मन म तुम्हारे प्रति अकपट प्रेम, अखड श्रद्धा और अटूट विश्वास का भाव बना रहे। पर उसका भी कोई फल नहीं होता, और बीच बीच म न जाने कहाँ स अकारण, सन्देह की भावना मेरे शान्त मन के ऊपर एक हलकी सी लहर की तरह तरने लगती है और सारी शान्ति को छिन्न भिन्न कर अस्थिर और

 प्रदान कर देती है। अपने मन की इस विकृति को मैं क्या करूँ, मेरी समझ में नहीं आता। अभी कुछ ही देर पहले मेरे मन में तुम्हारे गुणों की याद से ऐसा उच्छ्वास उमड़ आया था कि उसे रोकना मेरे लिये कठिन हो गया था, और उसके बाद ही एक साधारण सी बात से कुछ दूसरी ही प्रतिक्रिया मेरे भीतर हो गयी, मैं कहना चाहती थी कुछ और कह गयी क्या ! मेरे भीतर इस तरह के मूर्खतापूर्ण दौरे चलते रहते हैं। मुझे पूरी आशा है कि तुम अपनी उदारता से मुझे बराबर क्षमा करते रहोगे

फिर उसका भावावेग उमड़ आया था और उसके आँसुओं के रूप में आँखों के कोनों पर चमक रहा था। मैं चुप हो रहा और अनमने भाव से अँगीठी की ओर दोनों हाथ फैलाकर आग तापने लगा।

वह कहती चली गयी— आज जब मैं सोचती हूँ कि तुमने अपने स्नेह और दया से मुझ जैसी अकिंचन को क्या से क्या बना दिया तब कभी तो मेरे प्राणों के भीतर से कृतज्ञता की सौ सौ धाराएँ से फूट पड़ती हैं और कभी अपने पिछले स्वतन्त्र जीवन की मर्यादा के लिये खो चुकने के कारण मैं भीतर ही भीतर बुरी तरह खीझ उठती हूँ। तब मुझे अपने ऊपर भी क्रोध आने लगता है और दूसरों के प्रति भी। मैं सचमुच दया के योग्य हूँ। मेरी तुमसे प्रार्थना है कि मैं कभी पागलपन के क्षण में चाहे कैसी भी अनुचित बात तुमसे कह बैठूँ मुझे अन्तर से क्षमा कर देना ! और उसने पलंग से उठकर मेरे दोनों पाँव पकड़ लिये।

मैंने हड़बड़ाकर अपने दोनों पाँव हटा लिये और उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे उठाया अपनी बगलवाली कुर्सी पर बैठने के लिये उससे आग्रह किया।

वह धीरे से उठ बैठी। उसकी आँखों में सरस स्निग्धता झलक रही थी और आन्तरिक कृतज्ञता छलक रही थी। अपने अन्तर का सारा स्नेह अपनी आँखों द्वारा उँडेलती हुई वह बोली— सचमुच जब मैं अपने उन दिनों की याद करती हूँ जब मैं पहले पहल तुमसे मिली थी, और आज की अपनी स्थिति से उस समय की स्थिति का मिलान करती हूँ तब कभी कभी मैं बड़े भ्रम में पड़ जाती हूँ। मैं यह निर्णय नहीं कर पाती कि मेरा पिछला जीवन एक डरावना सपना था या आज का जीवन

केवल एक सुख-स्वप्न है। कभी-कभी इससे भी भयंकर भ्रम के चक्कर में पड़ जाती हूँ। तब मुझे ऐसा लगता है कि मनिया नाम की जो लड़की तुम्हारे साथ इस बँगले में रहती है, उठती है, बैठती है, बोलती है, कभी प्रसन्न होकर प्रेम भरी बातें करती है और कभी खीझकर तुम्हें उलटी-सीधी बातें सुनाने लगती है, कभी फर्निचर में, कपड़ों में और दूसरी चीजों में सैंकड़ों रुपया बर्बाद करके शौकीन लड़कियों की तरह रहना चाहती है और कभी केवल प्रभु ईसा के चरणों में सब-कुछ सौंपने के लिये उत्सुक होकर सांसारिक सुखों के प्रति विरक्त हो उठती है और अकिंचना का सा जीवन बिताने की इच्छा करने लगती है—वह मुझसे कोई भिन्न लड़की है। तब मैं प्रत्यक्ष मनिया से अपने को अलग देखने लगती हूँ। मैं कुछ नहीं करती, मुझे केवल उसे डाँटने की इच्छा होती है, कभी उसे प्यार करने को जी चाहता है। और मैं यह सोचने लगती हूँ कि यह मनिया मेरी होती कौन है जिसके साथ मेरा जीवन सदा के लिये बँध गया है और अब मैं चाहने पर भी उससे अलग नहीं हो पाती! और ऐसे अवसरों पर इस तरह की बात सोचते सोचते मुझे चक्कर आने लगता है। तब मैं चुपचाप बैठ जाना चाहती हूँ। बताओ तो सही, मेरे भीतर यह सब क्या हो रहा है। कहीं मैं एक दिन पागल न हो जाऊँ!"

वह शून्य दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए भी जैसे मुझे नहीं देख रही थी। उसकी बातों ने और उसकी उस विचित्र और भ्रांत दृष्टि ने मुझे डरा दिया। मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और फिर बायाँ हाथ उसकी पीठ पर फेरता हुआ मैं उसे बच्चों की तरह पुचकारने और पुचकारने लगा।

कुछ देर तक हम दोनों मौन ही रहे। मैं अपने प्राणों में उसके शरीर और मन की अत्यंत निकटता का अनुभव कर रहा था। कुछ देर बाद यह विश्वास करके कि मेरा स्नेह-स्पर्श पाकर उसके मन की भ्रांत अवस्था दूर हो गयी होगी, मैंने धीरे से, अत्यंत कोमल स्वर में कहा—'मनिया!' वह भी बहुत ही धीमे स्वर में बोली—'हाँ!'

"तुम्हें इस तरह नहीं सोचना चाहिये। तुम बहुत ही भली, सरल

 और शांत स्वभाव की लड़की हो, और अपने स्वभाव की उस सरलता और शांति को व्यर्थ की कल्पनाओं के चक्कर में पड़ कर खोना तुम्हारे लिये किसी प्रकार भी उचित नहीं है। अपने पिछले जीवन में तुम्हें जरूर बड़े ही कड़वे और असाधारण अनुभव हुए हैं, पर उस जीवन को तुम दुःस्वप्न की तरह ही एकदम भूल जाओ। यह विश्वास कर लो कि तुम्हारा जो आज का जीवन है वही सत्य और स्वाभाविक है। पिछले जीवन की स्मृतियों के व्यर्थ के भार से अपनी निश्छल आत्मा को ग्रस्त न होने दो। तुम चाहे प्रभु ईसा के चरणों का ध्यान करो चाहे अपने वास्तविक गार्हस्थिक जीवन का, दोनों ही तुम्हारे अस्त व्यस्त मन में संतुलन ला सकते हैं। पर बेकार की कल्पनाओं के भँवर में मत पड़ो। इस प्रकार के चक्कर में पड़ने से न तो तुम इस दुनिया में पाँव जमा पाओगी न दूसरे किसी भिन्न संसार के लिये कदम बढ़ा पाओगी। इसलिये अभी से सावधान हो जाओ। मनिया नाम की जिस लड़की को तुम अपने से अलग पाती हो वह तुमसे भिन्न नहीं है। भिन्नता जो है केवल तुम्हारे द्विधा विभक्त मन में है। इसलिये ऐसी आदत डालो जिससे तुम्हारे अपने अलग व्यक्तित्व में, और मनिया के व्यक्तित्व में तनिक-सी भी दीवार न रहने पावे।'

मनिया ध्यानपूर्वक सुन रही थी। जब मैं अपना वक्तव्य समाप्त कर चुका तब उसने एक लंबी साँस ली, फिर बोली—"मैं बार बार इसके लिये चेष्टा करती हूँ अक्सर सफल भी हो जाती हूँ। पर किसी एकांत क्षण में फिर इस तरह की अनोखी अनुभूति मुझे घेर आती है। कभी-कभी मुझे ऐसा भय भी होने लगता है जैसे मैं 'मैं नहीं रह गयी हूँ और किसी दूसरे व्यक्ति की आत्मा मेरे भीतर प्रवेश पा गयी है। जैसे मेरा शरीर और मेरा नाम—केवल ये ही दो चीजें शेष रह गयी हैं। शेष मेरा कुछ भी नहीं है—उसी आत्मा का है।'

'भूल जाओ! एकदम भूल जाओ! इस तरह की बात क्षण भर लिये भी मत सोचो मनिया! भूलने की आदत पड़ जाने से एक दिन इस तरह की भ्रान्त कल्पनाएँ तुम्हारे मन में जड़ से उखड़ जायेंगी, जैसे उनका कभी कोई अस्तित्व ही न रहा हो।' कहकर मैं उसकी पीठ

पर धीरे से हाथ फेरते हुए उसे फिर बच्चो की तरह चूम
कारना शुरू कर दिया।

जब ध्यानसिंह खाना तयार करके लाया तब तक मनिया की आखो मे उसका स्वाभाविक रूप झलक आया था।

उस दिन मनिया रात मे बहुत देर तक छटपटाती और करवटें बदलती रही। मैं उसे भरसक शात करने का प्रयत्न करता रहा और तरह-तरह की बातो से उसे सात्वना देता रहा। प्राय तीन बजे उसकी आँखें लगी, और तब वह बेखबर सो गयी। मैं उसके बाद भी ईसाई-दर्शन सबधी एक पुस्तक मे मन लगाने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा। वह पुस्तक मनिया कही से ले आयी थी—सभवत सिल्विया से। पुस्तक हाथ मैं लेने के कुछ ही देर बाद मेरी पलकें भारी हो आयी और मैं पुस्तक हाथ मे लिये ही सो गया।

३६

सुबह जब आँखें खुली तो मैंने देखा कि पुस्तक मेरे हाथ मे है और बत्ती वसी ही जल रही है। मनिया पहले ही से जगी हुई थी और लिहाफ ओढे हुए पलँग पर बैठी हुई मेरी ओर अत्यत स्निग्ध-मधुर दृष्टि से देखती हुई मद-मद मुस्करा रही थी। मैं भी हडबडाता हुआ उठ बैठा और पुस्तक बगल वाली छोटी-सी मेज पर रख दी।

मनिया अपनी वाणी मे मधु घोलती हुई सी बोली—"इस पुस्तक का कम से कम एक गुण तो तुमने स्वीकार किया।"

"वह क्या ?"

"तुम्हारे लिये यह 'स्लीपिंग डोज' का काम करेगी यह तुमने जान लिया।"

 मैं "हो हो !" करके अट्टाहास कर उठा। वह भी मद मद मुस्कराने लगी।

कुछ देर बाद बोली—' आज नीद खुलने के पहले मैंने एक अनोखा सपना देखा।"

"वह क्या ?'

'मैंने देखा कि बिजली की तरह चमकते हुए आकाश म माता मरियम एक छोटे से सुदर बच्चे को दोनो हाथो मे लिये हुए आकाश म उडती हुई नीचे उतर रही हैं। वह प्रकाश उनके और बच्चे के सिर के चारो ओर गोल चक्र बनाता हुआ उनके साथ-साथ चल रहा है। मैं भक्ति भाव से गद्गद् उनकी ओर हाथ जोडे हुए अधमुदी आखो से उन्हे देख रही थी। नीचे उतरकर माता मरियम ठीक मेरे आगे खडी हो गयी और उस प्यारे प्यारे बच्चे को मेरी ओर बढाती हुई स्नेह पूर्वक मुस्कराने लगी। ऐसा सुदर और ऐसा प्यारा बच्चा मैंने कभी उन चित्रो म भी नही देखा जो मरियम से सबधित ह। मुझे लगा कि प्रभु ईसा बचपन म निश्चय ही ऐसे ही रहे होगे। मैंने बडी अधीरता के साथ दोनो हाथ बढा कर बच्चे को गोद म ले लिया और गोद मे लेते ही उसका मुह चूम लिया। बच्चा भी प्रसन्न होकर मुझसे खेलने लगा। कभी वह मेरे गालो पर अपनी कोमल-कोमल उगलियाँ फेरता था, कभी चुटकी काटता था और कभी मीठी देता था। उसका प्यारा-प्यारा मुखडा ऐसा चमक रहा था जसे हजारो हीरे एक साथ चमक रह हो। मैं उसे प्यार करते-करते थकती ही न थी। बार बार उसका मुह चूमती, बार बार उसे कलेजे से लगाती, बार बार उसके सिर पर हाथ फेरती। मेरी छाती दूध से भर आयी, सहसा उस दुलारे बच्चे ने मेरे कपडे हटाकर मेरा दूध अपने मुह से लगा लिया और गटागट पीने लगा। कब तक वह पीता रहा, मुझे याद नही है। माता मरियम भी कब तक स्नेह से मुसकाती हुई मेरे पास खडी रही यह भी मुझे ठीक याद नही है। कभी लगता था, दस मिनट, कभी दस दिन और कभी दस महीने। मैं बच्चे को छोडना नही चाहती थी, पर सहसा माता मरियम की आवाज मेरे कानो म आयी—'बहुत देर हो गयी, अब तुम्हें यह बच्चा छोड देना होगा।' और यह कहकर

वह बच्चे को पकड़ने लगी। मैं बहुत गिड़गिड़ायी कि बच्चे को मेरे पास ही रहने दो अभी न छीनो अभी अभी तो मैंने इसका प्यार पाया है! अब यह मुझसे बिछुड़ जायगा तो मैं कैसे जीऊँगी। पर मरियम ने एक न सुनी, कहने लगी—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। ईसा पृथ्वी पर फिर दूसरी बार शूली पर चढ़ने के लिये नहीं उतरा है! तुम्हारे स्नेह ने उसे फिर खींच लिया था, अब वह फिर सीधे मेरे साथ स्वर्ग को चला जायगा।' और यह कहकर वह बरबस बच्चे को मुझसे छीन कर अन्तर्धान हो गयी मैं बिलबिलाने लगी, जब नींद खुली तो देखती हूँ कि सचमुच मेरी आँखें भीगी हुई हैं और छाती से दूध की धारा बह रही है।"

मैं चौंककर हड़बड़ाता हुआ पलंग पर उठ बैठा। अत्यन्त आश्चर्य से मैंने कहा—"यह कैसे सम्भव हो सकता है! तुम्हें ठीक मालूम है वह दूध ही था?'

मनिया मुस्कराने लगी। बोली—"इसमें भ्रम की कोई बात नहीं है। मैं तब से इस इन्तजार में बैठी हूँ कि तुम्हारी आँखें खुलें तो तुम्हें इस विचित्र स्वप्न का हाल सुनाऊँ।

"हाल सुनाकर तुमने उचित ही किया' मैंने चिंतित भाव से कहा—"मेरी तो यह राय है कि तुम किसी योग्य लेडी डाक्टर से अपनी परीक्षा करा लो। मुझे तो ये कुछ दूसरे ही लक्षण जान पड़ते हैं।'

किस तरह के लक्षण?' तनिक गंभीर भाव से मनिया ने पूछा।

"मुझे शक है कि तुम्हारे पेट में बच्चा है।'

"यह शक तो मुझे भी है। मैंने तुमसे आज तक संकोचवश कुछ कहा नहीं।'

"तब जल्दी ही किसी मेटर्निटी डाक्टर को बुलाकर तुम्हें दिखाने की आवश्यकता है। मैं आज ही जाकर किसी को बुला लाता हूँ।"

"डाक्टर क्या करेगी? मैं कुछ बीमार थोड़े ही हूँ।'

"वह देखकर बतायेगी कि पेट में बच्चे को ठीक कै महीने हो चुके हैं, तुम्हें किस तरह हिफाजत और परहेज से रहना होगा, क्या-क्या

 दवाइयाँ खानी पड़ेंगी, ऐसी हालत में यात्रा करने से कोई खराबी तो नहीं होगी, आदि आदि।"

"अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। पर आज नहीं। आज सर्दी बहुत अधिक है। दो एक दिन बाद जब मौसम कुछ ठीक हो जायगा तब जाना।"

पर मैं यह सोचकर चिंतित हो उठा था कि कहीं मनिया अपनी अनुभवहीनता के कारण इस बीच अपने खान पान और रहन-सहन में कोई ऐसी गड़बड़ न कर बैठे जिससे पेट के बच्चे को भी हानि पहुँचे और उसका भी स्वास्थ्य खराब हो उठे।

ध्यानसिंह ने हम लोगों को बिस्तर पर ही चाय पिलायी। चाय पीने के बाद उठकर आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होकर, गरम पानी से बंद कमरे में नहा धोकर जब मैंने गरम कपड़ों से अपने को लाद लिया, तब बाहर की तरफ का किवाड़ खोलकर क्या देखता हूँ कि प्राय डेढ़ फीट ऊँची बर्फ जमी हुई है। जूते से ठोकर मारकर देखा बरफ आज पिछले दिन की तरह रुई-सी कोमल नहीं रह गयी थी, बल्कि पत्थर की तरह सख्त हो गयी थी। बाद में मैंने जाना कि रात में आकाश कुछ समय के लिये साफ हो गया था और बरफ के ऊपर पाला जम गया था जिसके फलस्वरूप बरफ इस कदर सख्त हो गयी थी।

आज सर्दी भी पिछले दिन की अपेक्षा बहुत अधिक थी। हाथ पाँव एकदम ठिठुरे जा रहे थे। मैं ऊपर से काफी मोटा ओवरकोट पहने था। सिर पर मंकीटोप, हाथों में दस्ताने और पाँवों में गरम मोजे। पर उन सब के बावजूद सर्दी जैसे प्रत्येक हड्डी के भीतर के प्रत्येक छिद्र में घुसी जा रही थी। ऐसी हालत में बाहर निकलने का साहस करना मूर्खतापूर्ण दुस्साहस के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। मैं तत्काल भीतर लौट चला और अन्दर से किवाड़ बन्द करके अँगीठी के पास बैठ गया। ध्यानसिंह अँगीठी में आग सुलगा चुका था। मनिया अभी भीतर में स्नानादि से निवृत्त होकर नहीं आयी थी।

जाड़े के उस प्रातःकाल, अकेला अँगीठी के पास बैठा हुआ मैं आकाश पाताल की बातें सोचने लगा। मनिया ने स्वप्न में जो ईसा-

मसीह को शिशु-रूप में प्राप्त किया था, यदि वह उसे केवल कोरा स्वप्न न समझ कर वास्तविकता का पूर्वसूचक समझ बैठे तब इस भावुकतापूर्ण विश्वास की क्या प्रतिक्रिया उसके मन पर होगी? यदि उसने बच्चे को जन्म दिया तो उसे सचमुच का ईसामसीह मानकर वह न जाने उसकी क्या गत कर डालेगी! 'ईसा दूसरी बार सूली पर चढ़ने के लिए पृथ्वी पर नहीं उतरा है, केवल तुम्हारा स्नेह उसे यहाँ खींच लाया है!' वास्तव में बड़ा ही रहस्यमय स्वप्न था वह। मैंने तो उसका अर्थ यही लगाया था कि मनिया के लिए बच्चे का महत्व तभी है जब वह ईसा का प्रतीक—नहीं अवतार—बनकर आये। किसी साधारण बच्चे का साधारण स्त्री नारियों की तरह पालन कर केवल मातृत्व की स्वाभाविक प्रवृत्ति के पालन में संलग्न रहना उसकी असाधारण स्नेह-क्षुधा के लिए पर्याप्त नहीं था। वह ईसा को गर्भ में धारण करने की विचित्र 'फैंटेसी' को अपने भीतर पालकर उसके द्वारा उस समग्र पीड़ित मानव जाति के पुनरुद्धार की कल्पना अपने अन्तस्तल में एक अत्यन्त अस्पष्ट, छायात्मक स्वप्न के अनुसार कर रही थी।

मेरे आगे मनिया के स्वभाव का एक छिपा हुआ पहलू कुछ समय से जैसे स्पष्ट होता चला जा रहा था। वह जैसे अपने निजी जीवन के उलटे-सीधे चक्रों—बाहरी और भीतरी उलझनों—में बुरी तरह उलझी हुई होने पर भी, अपने अनजाने ही में उनसे ऊपर उठकर अपने चारों ओर के—बल्कि अपनी सीमित कल्पना की परिधि के अनुसार समग्र संघर्षरत मानवता के—युग-युग की पीड़ा और निर्यातन के प्रश्न पर अपने ढंग से विचार करने के लिए छटपटा रही थी। यह ठीक है कि उसके व्यक्तित्व के केवल स्वप्न-सम्बन्धी स्तर को ही यह व्यापक प्रश्न अज्ञात और अस्पष्ट रूप से आन्दोलित कर जाता था, पर वह स्वप्न-स्थिति उसके जाग्रत मन को भी बीच-बीच में हिलाये बिना स्वतन्त्र नहीं रह सकती थी। इसी लिए मुझे लगा कि ईसा को गर्भ में धारण करने का स्वप्न केवल उसकी आत्मोद्धार की स्वप्नाकांक्षा का ही परिणाम नहीं है। 'ईसा दूसरी बार सूली पर चढ़ने के लिए पृथ्वी पर नहीं उतरा है' यह स्वप्न-कल्पना बिना व्यापक मानवता की समस्या के समाधान

 की प्रेरणा के नहीं जग सकती थी पर इस सारी व्यापकता का व्यक्तिगत 'फैंटेसी' किस कदर छाये हुए थी इसका अनुमान स्वप्न में आनेवाली मरियम के वाक्य के शेषांश से स्पष्ट लग जाता है—"केवल तुम्हारा स्नेह इसे यहां खींच लाया है !'

३७

दो दिन बाद जब मौसम कुछ साफ हुआ तब मैंने एक लेडी डाक्टर को बुलाया। परीक्षा करने पर मेरा ही अनुमान ठीक निकला। पेट में ढाई महीने का बच्चा था। डाक्टरनी के चले जाने पर जब मनिया मेरे पास आयी तब उसके मुख पर एक अपूर्व स्निग्ध सरस शांत मधुर हास दिप रहा था जो मुझे वास्तव में क्षण भर के लिये एक अलौकिक स्वर्गीय महिमा से मंडित सा लगा। मैं रोमांच का अनुभव करता हुआ, निर्निमेष दृष्टि से विह्वल गद्गद् भावुकता से उसकी ओर देखता रह गया।

"तुम सचमुच आश्चर्यजनक तत्त्वदर्शी हो !" सुकोमल संगीत मधुर झंकार से मेरे स्तब्ध, रोमांचित कानों के पर्दों को गुंजाती हुई वह बोली, और बोलते हुए उसकी आंख, उसका सारा मुख और अधिक दीप्त हो उठा।

उसके उस आकस्मिक वीणा विनिंदक स्वर से चौंकते हुए मैंने कहा—'क्या, तुम्हें आज अचानक ऐसा लगा ?'

'तुमने कैसे जान लिया कि मेरे पेट में—?'

'ओह यह ! इसे जानने के लिये तत्त्वदर्शिता की क्या आवश्यकता है ?'

"केवल मेरे स्वप्न से तुमने ठीक अनुमान लगा लिया, यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है !"

उसके आश्चर्य को मिटाने की कोई आवश्यकता मैंने नहीं समझी,

इसलिये इस सम्बन्ध में मौन रहा। पर इस बात पर गौर किये बिना मैं न रहा कि केवल इस साधारण-सी जानकारी से कि उसके पेट में बच्चा है, उसके सौंदर्य में ऐसा अविश्वसनीय रूप से आश्चर्यजनक निखार आ गया था जैसे अंतर की सारी स्निग्धता, सम्पूर्ण रस विह्वलता, समग्र माधुर्य ने तल प्रदेश से उमड़कर उसकी आत्मा को—सारे मुखमंडल को पूर्ण रूप से परिप्लावित कर दिया हो।

मैं उसी पुलक भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ अपने स्वर में किंचित परिहास का पुट लाते हुए बोला—"मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि तुम्हें किसी कारण से भी हो मेरी तत्वदर्शिता का पता लग गया। पर यह तो हुई गौण बात। मुख्य बात यह है कि अबसे तुम्हें बड़े जतन से रहना होगा। खान पीने के सम्बन्ध में विशेष नियमों का पालन करना होगा। ऐसा कोई काम नहीं करना होगा जिसमें तनिक भी श्रम आवश्यक हो। और सबसे बड़ी समस्या जो इस जानकारी ने खड़ी कर दी है वह यह है कि अब हम लोग मसूरी छोड़कर कहीं जा नहीं सकते।"

"क्या?" अकृत्रिम आश्चर्य से मनिया ने पूछा।

"इसलिये कि नीचे की यात्रा में—मोटर से पहाड़ी रास्ते से नीचे उतराई में जाने से और उसके बाद रेल की यात्रा से भी तुम्हारे शरीर पर जो जोर पड़ेगा वह तुम्हारी इस स्थिति में हानि पहुँचा सकता है।"

"ओह, यह बात है!" उसने कुछ आश्वस्त होते हुए कहा। "मैं समझी कि कुछ नया ही कारण उत्पन्न हो गया। इसके लिए कोई चिंता न करो। मैं लेडी डाक्टर से इसके बारे में पहले ही पूछ चुकी हूँ। उनका कहना है कि अभी मैं बिना किसी आशंका के मोटर और रेल-यात्रा कर सकती हूँ। अभी चार महीने तक कोई भय नहीं है। इसलिये हम लोग इसी हफ्ते के भीतर चल दें तो अच्छा होगा।"

'तुम मसूरी छोड़ने के लिये सहसा इस कदर उत्सुक क्यों हो उठी?'

'मैं कह नहीं सकती। पर जब से तुमने जाड़ों में पहाड़ छोड़ने की चर्चा चलायी, तब से, न मालूम क्यों, मेरे मन में भी वहाँ चलने के

 लिये बेचनी-सी उठने लगी है। लगता है जसे एक ही स्थान म बठे-बठे दम घुट जायगा। इसलिय अब जल्दी तयारी करो।''

मैं उसी दिन से तयारी म जुट गया। मुझे अपने लिय कोई विशेष तयारी नही करनी थी और मैं कम-से-कम सामान—जितना अनिवायत आवश्यक हो—ले जाने के पक्ष मे था, पर मनिया की आवश्यकताओ की पूर्ति हो ही नही पाती थी। चमडे के कई बडे बडे बक्स को अपने और मरे कपडो से ठूस-ठस कर भरने पर भी उसे सतोष नही हो पाता था। सिगरेट और मक्खन के अनकट हुए टिनो स उसने एक पूरा बक्स भर दिया। बिस्कुट के टिनो स दो बक्स भर डाले। प्याला और तश्तरियो के सेटो से एक और काफी बडा बक्स भर दिया गया। मैं लाख उसे यह समझाने का प्रयत्न करता रहा कि ये सब चीजें व्यथ हैं, जहाँ जायँगे वहाँ खरीद ली जायँगी—और सभवत खरीदने की भी जरूरत नही पडेगी, क्योकि सभावना यही अधिक है कि हमे होटलो का आश्रय लेना पडे, क्योकि सुविधा की दृष्टि से वही ठीक पडेंगे पर वह मेरी एक भी बात नही सुनना चाहती थी। या तो उपेक्षा भरी मुसकान से टाल जाती थी या हठ पूवक कहती थी—'तुम्हे गिरस्ती के कामो से कभी वास्ता पडा नही इसलिय इसकी क्या आवश्यकता है! उसकी क्या जरूरत है!' की रट लगाये चले जाते हो। इन सब विषयो पर मुझे मर्दों की राय नही चाहिये। मुझे सब अनुभव है। परदेस म न मालूम कब किस चीज की कमी पड जाय!' मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं था। इसलिय मन मारकर, उसके वच्च हठ के आगे हार मानकर, मौन हो रहा। पर साथ ही मनिया की बात के ढग से मैं मन ही मन अच्छा कौतुक अनुभव कर रहा था। सोच रहा था कि गिरस्ती के अनुभवो के सबध म उसके मन म इतना बडा आत्म विश्वास कहाँ स आ जमा? इतने लम्बे अर्से तक निद्व द्व, उत्तरदायित्वहीन जिप्सी-जीवन बिताने पर भी कुछ ही अर्से के गाहस्थ्य जीवन के अत्यत साधारण अनुभवों का परिणाम तो यह नही हो सकता। तब क्या नारी मात्र के भीतर घर-गिरस्ती की आवश्यकताओ के सबध म यही अनुभवाधिकार सुप्त अवस्था

मे वतमान रहता है, और अनुकूल परिस्थितियाँ पाने पर एक क्षण म पूर्णतया जागरित हो उठता है ?

भीतर सूती और ऊनी दोनो प्रकार के कपडो के ढेर पडे हुए थे। बिस्तर से सबधित उपकरणो की भी कोई कमी नही थी। पर मनिया का जी उतने से नही भरा। उसने अपने मन का सामान जुटाने के लिये फिर एक दिन देहरादून चलने का प्रस्ताव किया। यह सोचकर कि उसकी खामखयाली के आवेग को रूँधना उसके निश्छल उल्लास का स्रोत ही सुखा दन के बराबर होगा, और किसी प्रकार का कोई तर्क इस सबध मे उस पर असर नही करेगा, मैंने उसकी किसी भी बात पर तनिक भी आपत्ति नही जतायी।

देहरादून जाकर उसने पहनने के कपडो और ओढने बिछान की चीजो से लेकर सूखे मवो तक इतना अधिक समान खरीद डाला कि उन्हे मसूरी ले चलने की समस्या पिछली बार से भी अधिक विकट हो उठी।

मैंने कलकत्ते जान का निश्चय किया था। उस शहर से मैं थोडा बहुत परिचित था, इसलिये वही चलने म मुझे अधिक सुविधा मालूम हुई। जिस दिन जान की बात तय हो चुकी थी उसके ठीक एक दिन पहले फादर जेरेमिया, सिल्विया और श्रीमती रालिसन के साथ हमारे यहाँ आ धमके। धकमो का अबार लगा देखकर सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्षण भर के लिये तीनो एक दूसरे का मुह ताकते रह गये। प्रत्येक की आँखो म कौतुक और व्यग का भाव वतमान था, यह बात मेरी दृष्टि से छिपी न रही। पर मनिया का ध्यान उन लोगो की आँखो की उस अभिव्यक्ति की ओर नही गया।

फादर जेरेमिया ने अपने व्यग और कौतुक के भाव को शालीनता से दबाकर उसे सुमधुर कुतूहल मे परिणत करते हुए अपने स्वाभाविक कोमल स्वर म कहा—'जान पडता है, आप लोग बडी लम्बी यात्रा करके बडे लम्बे अर्से के लिये जाने की तयारी कर रहे हैं।'

मैंने कहा—"यात्रा लबी तो जरूर है, पर अर्सा बहुत लबा होगा ऐसा मैं नही सोचता।"

"मैं सोचता हूँ ये सब बक्स आप अपने साथ ही ले चलने का विचार कर रहे हैं। मेरा अनुमान ठीक है न ?'

"जी हाँ, आपके अनुमान में तनिक भी त्रुटि नहीं है !" मैंने यथासाध्य पूरी गम्भीरता कायम रखने का प्रयत्न करते हुए उत्तर दिया।

"पर इतने बक्सों को लेकर आप लोग करेंगे क्या ?" श्रीमती रालिन्सन अपने को न रोक सकने के कारण बरबस बोल उठीं।

उनकी खीझ देखकर मेरे इतनी देर तक बरबस कायम रखे हुए कृत्रिम गांभीर्य का मुखड़ा खिसक पड़ा और मैं फु ! करके हँस पड़ा। और हँसी का रुद्ध स्रोत एक बार खुलते ही अट्टहास के निर्झर में एक-म फूट पड़ा। हँसी में भी इस कदर मुक्त आनंद निहित रहता है इसका अनुभव मुझे जैसे पहली बार हुआ। अट्टहास की उसी उद्दाम लहर के बीच ही में मैं श्रीमती रालिन्सन के प्रश्न का उत्तर देते हुए मनिया की ओर कटाक्षपात करता हुआ बोला—' आप अपनी बहू से पूछकर जान लीजिये कि इन सब बक्सों को ले जाकर वह क्या करेगी। मैं तो बार-बार पूछकर हार गया, आपको शायद समझा सके !"

सम्भवतः इस बात से कि मैंने मनिया को उनकी बहू माना है, और फलतः उन्हें माँ के तुल्य स्नेह सम्मान दिया है, श्रीमती रालिन्सन का चेहरा खिल उठा। वह भी उस सारे चक्कर को अच्छा परिहास मानकर अत्यन्त स्नेहपूर्ण हास्य में मनिया से बोलीं— बेटी, क्या तुम सचमुच इतने सब बक्सों को कलकत्ते तक की लंबी यात्रा में अपने साथ ले जा रही हो ?

फादर जेरेमिया और मिल्डिया भी मनिया की ओर देखकर मंद-मधुर हँस रहे थे। अपने को चारों ओर से हँसी का लक्ष्य पाकर मनिया बेचारी हतप्रभ हो गयी थी। बच्चों की तरह मचलती हुई वह बोली— मेरी समझ में नहीं आता, आप सब लोग इन बक्सों के पीछे क्यों पड़े हुए हैं। अगर मैं अपने आराम के लिये इन्हें साथ ले जाना चाहती हूँ तो इसमें आप लोगों को आपत्ति किस बात की है ? इस संबंध में मैंने जो निश्चय किया है उससे मैं कभी पीछे नहीं हटूँगी यह मैं कह देती हूँ। बाद में कोई बुरा न माने ! और वह मटक के साथ सब की ओर पीठ फेरकर बड़ी तेजी से दूसरे कमरे में चली गयी।

अचानक, अप्रत्याशित रूप में, सारा वातावरण ही बदल गया। जिस विशुद्ध, मुक्त, प्रेमपूर्ण हास्य के आनंद का स्वाद मैंने जीवन में बहुत वर्षों बाद—शायद पहली बार—पाया था उसका परिणाम इस कदर कड़वा निकलेगा, यह मैंने नहीं सोचा था। बेचारी श्रीमती रालिंसन भी खिसिया गयीं। फादर जेरमिया और मिल्त्रिया के चेहरे भी गंभीर हो आये। मनिया के स्वभाव का वह विचित्र रूप देखकर किसी को उस मकान के भीतर जाने का साहस नहीं हुआ—मुझे भी नहीं।

मिल्त्रिया इस मामले में अग्रणी बनी। कुछ देर तक वह सभी लोगों की तरह स्थिर खड़ी रही, उसके बाद तेज कदम रखती हुई उस कमरे में चली गयी जहां मनिया गयी थी। मैं भी सहारा पाकर चुपके से उसके पीछे पीछे हो लिया।

मनिया एक बड़े पलँग के पर्देवाले डंडे के सहारे सिर झुकाये हम लोगों की ओर पीठ किये खड़ी थी।

मिल्त्रिया ने बड़े ही दुलार भरे स्वर में अँगरजी में कहा—"मनिया, तुम क्या सचमुच नाराज हो गयी—एक साधारण से परिहास से?" और उसके कंधे पर अपना चमड़े के दस्ताने से ढका हाथ रखा। मिल्त्रिया मनिया से कभी अँग्रेजी में बोलती थी कभी हिन्दी में। जब कोई गम्भीर या मार्मिक बात कहनी होती थी तो वह अँगरजी का सहारा लेती थी, अन्यथा साधारण विषयों पर वह अपरिस्फुट हिन्दी में ही उससे बोलती थी।

मनिया उसकी ओर मुंह किये बिना ही अँगरेजी में ही बोली—"क्या तब वह मुझे सब समय चिढ़ाते रहते हैं? दूसरों के सामने भी मेरी हँसी उड़ाया करते हैं? मैं हर्गिज नहीं जाऊँगी कलकत्ते।"

"ओह मनिया डार्लिंग ईश्वर के लिये यह सब क्रोध त्याग दो। तनिक सी बात पर इस तरह नाराज न होओ। आओ! चलो! देखो, सब लोग तुमसे स्नेहवश मिलने आये हैं। घर आये हुए मित्रों के साथ भी क्या इस तरह का बर्ताव किया जाता है? चलो तुम बड़ी अच्छी लड़की हो।" कहती हुई मिल्त्रिया उसकी पीठ बहुत ही धीरे से थपथपाती हुई चुमकारने लगी, जैसे मनिया एक नादान बच्ची हो।

 मनिया उसी तरह पीठ किये हुए दोनो हाथो से चुपचाप आसू पोछ रही थी। मैं चुपके से बाहर निकल गया।

३५

थोड़ी देर बाद सिल्विया के साथ मनिया बाहर आयी। इस बार उसकी प्यारी आँखें स्निग्ध, सलज्ज मुसकान से चमक रही थी, यद्यपि आँसू के चिह्न अच्छी तरह पोछे जाने के बाद भी स्पष्ट झलक रहे थे। उसने एक एक करके सब की ओर बारी बारी से अपनी स्निग्ध-सरस, सजल-उज्ज्वल दृष्टि से देखा। स्पष्ट ही वह अपने आकस्मिक रूप से अशोभन व्यवहार से लज्जित जान पडी।

सब से पहले श्रीमती रालिन्सन के प्रति दोनो हाथ जोडते हुए उसने कहा—"मैं आशा करती हूँ मेरे बचकाने व्यवहार को आप क्षमा करेंगी!" ईसाई धर्म ग्रहण करने पर भी उसने दोनो हाथ जोडने की 'नेटिव' आदत नही छोडी थी। भगवान की प्रार्थना और मनुष्य से क्षमा याचना दोनो के लिये वह अब भी एक ही तरीका काम मे लाती थी।

श्रीमती रालिन्सन गद्गद् हो गयी। उनकी आखें स्नेह विह्वलता से प्राय सजल हो आयी। मनिया के एकदम निकट जाकर उन्होने उसे गले से लगा लिया। मनिया ने भी परम विश्वास तथा परिपूर्ण आत्म समर्पण के साथ उनके कंधे पर अपना सिर स्थापित कर दिया। निश्चय ही उसे अपनी उस माता की याद आ रही होगी जिसका प्राणघाती स्नेह उसने पाया था, जो अपने उत्कट प्रेम के दान के साथ ही ऐसा मर्म पीडक माहुर मनिया के लिये छोड गयी थी जिसके प्रभाव से उसका परवर्ती जीवन तिक्त हो उठा था। श्रीमती रालिन्सन बहुत ही धीरे से उसकी पीठ सहलाती हुई स्नेह घुले स्वर मे बोली—"नादान बच्चा कहीं की! क्षमा मांगने की इसमे कौन सी बात है! जरा देखो इसका ढंग!

अपनी मा स भी कभी क्षमा मागी जाती है !" और उमकी ठुड्डी ऊपर का करके उत्कट दुलार से उमका मुह चूमन लगी। मौन आसुओ की धाराएँ उनकी दोना आखा स अविरल बहती हुई मनिया को अभिषिक्त कर रही थी।

वह ऐसा अपूर्व दृश्य था कि हम सब लाग—फादर जेरेमिया, सिल्विया, मैं और मेरा नौकर ध्यानसिंह भी जो किसी काम स दो ही मिनट पूर्व आया था—गद्‌गद् भाव से, प्राय श्रद्धावनत हाकर, वह मधुर दृश्य देखते रह गय।

दोना 'मा-बेटी' का वह आच्छन्न भाव जब कुछ उतर गया तब मनिया न धीरे स सिर ऊपर उठाकर फिर एक बार अपनी सहज-स्वाभाविक स्नहोज्वल दृष्टि से सब की ओर देखा। इस बार उसकी दृष्टि म सकोच या ग्लानि का लेश भी नही था। आस स धुले कमल की तरह उसकी आखें उसका सारा मुख मडल एक निराली ताजगी से निखर रहा था।

सहज हास से (जिसम शायद तनिक परिहास का भी अव्यक्त पुट बन गया था) वह फादर जेरमिया की ओर दखती हुई बोली— आपको निश्चय ही यह सारा दृश्य एक अच्छा स्वाग लगा होगा। आप निश्चय ही यह सोचते होंगे कि यह कस अनोखे स्वभाव की मूर्ख लड़की है। मैं आशा करती हूँ आप भी निश्चय ही मरी इस मूर्खता को क्षमा कर देंगे।

यह लो, फिर इस नटखट लडकी न क्षमा-याचना का पर्व प्रारभ कर दिया।' कहकर श्रीमती रालिन्सन न उसकी पीठ पर हाथ स एक हलका-सा आघात किया। हम सब लाग एक साथ ठठाकर हँस पडे। मनिया भी पुलककर खिलखिला उठी।

इस प्रकार उस दिन अप्रत्याशित रूप स सहसा उमडे हुए घन बादल घिरकर अचानक ही बरस पडे और उसके बाद फिर अचानक ही विलीन भी हो गय और उस सारे अभिषिक्त वातावरण पर निर्मल सूर्य की स्निग्ध किरणें भी चमकने लगी।

दूसरे दिन सारा रालिन्सन परिवार फादर जेरमिया के साथ हम

 लोगों को पहुँचाने देहरादून तक गया। पहले दर्जे के दो टिकट खरीदने के बाद सारा सामान—जिसमें मनिया ने पिछले दिन के परिहासात्मक छींटों के बावजूद तनिक भी कमी नहीं की थी—बुक करा लिया। अपने साथ डिब्बे में केवल एकांत रूप से आवश्यक सामान ही रखा—हालांकि यह 'एकांत आवश्यकता' भी, मनिया की गणना के अनुसार होने से, कुछ सामान्य नहीं थी।

जब गाडी छूटने का समय आया तब मनिया डिब्बे के भीतर ही श्रीमती रालिंसन के गले लगकर खूब रोयी। श्रीमती रालिंसन स्वयं भी रोती हुई उसे धैर्य देती हुई बोली— जल्दी लौटकर आ जाना बेटी, अपनी इस बूढ़ी माँ को भूल न जाना। और दोनों अपने स्वास्थ्य का ध्यान बराबर रखना। बीच-बीच में बिना जरूरत के भी किसी अच्छी लेडी डाक्टर को बुला लेना। यह कहकर उन्होंने उसका मुंह चूम लिया। उसके बाद मनिया सिल्विया से गले मिली। दोनों सहेलियों की आँखों में धूप छाँह का खेल चल रहा था। दोनों की आँखें आँसुओं से चमक रही थीं, पर दोनों साथ-साथ प्रेमपूर्वक मुस्कराती भी जाती थीं। फादर जेरेमिया और मैं खड़े-खड़े मौन मुग्ध भाव से वह अत्यंत मार्मिक रूप से मधुर दृश्य देख रहे थे। जब इंजिन ने सीटी दी तब दोनों ने अधमुंदी आँखों से एक-दूसरे का मुंह चूमना शुरू कर दिया। पूरे एक मिनट तक दोनों गाढालिंगन की अवस्था में खड़ी रहीं। श्रीमती रालिंसन बाहर उतर गयी थीं। खिड़की से भीतर को झाँककर उन्होंने उतरने का आग्रह करते हुए कहा— 'सिल्विया, गाडी छूटने को है। जल्दी नीचे आओ।' तब दोनों की तन्मय अवस्था भंग हुई। जब सिल्विया उतरने लगी तब मनिया डिब्बे में ही उसे एक कोने में ले गयी और उसके कानों में कुछ फुसफुसायी। सिल्विया के प्रसन्न मुख पर हल्की सी लाली छा गयी। जब वह नीचे उतर गयी तब मनिया ने नटखट लड़की की तरह आँखों से इशारा करते हुए कहा— 'देखना इसमें कोई चूक न रहने पाये! जब मैं लौटकर आऊंगी तब अपने मन की बात पूरी हुई न पाऊंगी तो तुमसे बहुत गुस्सा हूंगी।"

सिल्विया के मुख पर यद्यपि स्निग्ध मधुर मुसकान छायी हुई थी, तथापि उसके मुख की लालिमा गाढ़ से गाढ़तर हो चली थी। उसकी उस लालिमा से मुझे यह समझने में देर न लगी उसका इंगित किस ओर है। निश्चय ही फादर जेरेमिया को भी सम में कोई भ्रम नहीं हुआ होगा। फादर जेरेमिया ने जब गुड-बाई कहने लिए मनिया की ओर हाथ बढ़ाया तब मनिया ने अपना भी हाथ बढ़ा अत्यंत दुष्टतापूर्ण कटाक्ष से उनकी ओर देखते हुए कहा—"मैं आशा क हूँ जब मैं लौटकर आऊँगी तब आपको बदले हुए रूप में पाऊँगी।"

बेचारा भला आदमी सकपका कर रह गया। मैं देख रहा था उनका कान तक लाल हो आया था। मुझे मनिया की यह दुष्टता त भी पसंद नहीं आयी। मैंने आँखें तरेरते हुए उसे आगे और कोई दु की बात कहने के लिए मना किया।

अपने को उस लज्जापूर्ण स्थिति से मुक्त करने का प्रयत्न करत फादर जेरेमिया ने कहा—"अच्छा अब चलता हूँ। मैं आशा कर तुम लोगों की यात्रा बहुत सुखद रहेगी।" यह कहकर वह मेरी ओ और मुझसे हाथ मिलाकर नीचे उतर गये।

गाड़ी धीरे से चलने लगी। बाहर तीनों ने "बियरियो!" क हम लोगों की ओर रूमाल हिलाना आरंभ कर दिया। मनिया स उज्ज्वल आँखों से तीनों की ओर हाथ जोड़े रही। मैं मुख पर प्रेम मुसकान झलकाने की चेष्टा करता हुआ केवल उन लोगों की ओर दे रहा। जब गाड़ी प्लेटफार्म छोड़कर आगे निकल गयी तब हम दोनों ही सीट पर बैठकर खिड़की से बाहर क्षण-क्षण बदलने वाली दुनिया दृश्य देखने लगे।

दो दिन और दो रात के चक्कर से बहुत थक जाने के
बाद जब तीसरे दिन हमारी गाडी हवडा स्टेशन पहुँची
तब चारों ओर से कोलाहल सुनकर मनिया के ग्रन
ान जैसे चौंक उठे। उसके चेहरे से पता चलता था कि वह घबरा
मैंने मीठी मीठी बातों से भरसक उसे आश्वस्त करने का प्रयत्न
ब्रेक में सब सामान निकलवाकर ठेले में लदवाकर ठेलेवालों को
पता बतलाकर मैं मनिया का हाथ पकडकर, धीरे से भाड में
से उसे बाहर ले गया जहाँ टक्सियों की कतार लगी थी। अगल-
"बाबू जी, कुली चाहिये ?" "साहब रिक्शा चाहिये ?" "बाबू
ी चाहिये ?" आदि प्रश्नों की झडी लग गयी थी। पास ही बस
अलग शोर मचा रखा था। एक टक्सी बुलाकर मैंने मनिया को
ीतर बिठा दिया और फिर स्वय भी उसकी बगल में बैठ गया।
ब्बे में जो तत्काल आवश्यक सामान रखा था उसे मैंने कुलियों के
ावा लिया था। उसे टक्सी के पीछे रख दिया गया। टक्सीवाले
हा कि सीधे ग्रेट ईस्टर्न होटल ले चले।

टल के दरवाजे पर जब मोटर ठहरी तब हम दोनों उतर गये।
री'-क्लर्क से पूछने पर पता चला कि हम लोगों के सौभाग्य से
क अच्छा सा कमरा खाली है। अपना नाम धाम लिखाकर हम
धारी नौकर के साथ लिफ्ट पर चढकर ऊपर गये। कमरा खुलने
भीतर प्रवेश किया। कमरा वास्तव में साफ-सुथरा और
ुआ था। रोशनी और हवा की कोई कमी वहाँ नहीं थी। कमरा
ी तरफ खुला था और काफी अच्छी हवा आ रही थी। दो स्प्रिंग
ंगों पर मोटे गद्दे बिछे थे। फर्श पर कार्पेट बिछा हुआ था।
ओर एक किनारे पर नीले लहरदार कपडे से मढी हुई दो गद्दे-
राम कुर्सियाँ और एक कोच करीने से रखे थे। उनके अलावा दो
स्विस चेयर तीन कोनों में रखे थे। पश्चिम की ओर एक ड्रेसिंग
र एक बहुत बडा शीशा लगा हुआ था। स्थान-स्थान पर छोटे
-टेबिलों पर जालीदार कपडा बिछा था।

निया स्पष्ट ही बहुत थकी हुई थी। जूते और मोजे उतारकर

और एक बार गाने में अपना मुरझाया हुआ चेहरा देखकर वह कौच पर लेट गयी। मैं भी उसकी बगल में एक सोफा पर उठ गया और एक सिगरेट जलाकर धुआं उडाने लगा। बाहर से मोटरों के भोपुओं की आवाज, बसों की घडघडाहट, गाडियों की खड-खडाहट और कुछ दूर से ट्रामों की गडगडाहट और पाव घंटियों का शब्द निरंतर बिना तनिक भी विराम के कानों में गूंज रहा था। मनिया तो ऐसी पस्त पड गयी थी कि उसने दोनों आंखें मूंद ली थीं। वह कुछ भी बोल सकने की शारीरिक और मानसिक स्थिति में नहीं थी।

मैंने धीमे से कहा— 'क्या कुछ चाय-वाय पियोगी ?"

वह उत्तर में कुछ नहीं बोली। मैं जानता था कि उसे नींद नहीं आयी है, क्योंकि रात में वह काफी सो चुकी थी। पर उसका मौन स्वाभाविक था। सामान भीतर रखवा दिया गया था। एक बार इच्छा हुई कि कपडे बदलकर नहा लिया जाय, जिससे शरीर में कुछ फुर्ती आ जाय। मैं भी दो दिन और दो रात की यात्रा से कुछ कम थका हुआ नहीं था। इसलिये आलस्यवश बैठा ही रहा।

थोडा देर बाद एक बैरा आया। बोला—"साहब के लिये चाय लाऊँ ?"

यह मनचाहा प्रश्न उसने पूछा था। मैंने कहा—"हां, ले आओ, दो आदमियों के लिये।

मनिया ने करवट बदली। मैंने अनुमान लगा लिया कि चाय के नाम से ही उसमें करवट बदलने की फुरती आयी है। मैं मन-ही-मन हंसा, पर बोला कुछ नहीं।

चाय आयी। एकदम चाँदी से चमकते हुए एक चाइ ट्रे पर काम किया हुआ चीनी सेट बडे करीने से रखा हुआ। दो तश्तरियों में टोस्ट भी रखे थे और एक कटोरे में मक्खन अलग। बैरा ने बडी सफाई से उसे एक मेज पर रख दिया और फिर दो कुर्सियाँ भी मेज के सामने लाकर रख दीं।

"चाय के साथ और कुछ लाऊँ सरकार ? आमलेट, फ्रेंच कटलेट या और कोई चीज ?

 मैंने केवल सिर हिलाकर जता दिया कि और कुछ नहीं चाहिये। धनुष टंकार रोग से ग्रस्त व्यक्ति की तरह शरीर झुकाकर उसने सलाम किया और कहा—"जो हुक्म!"

उसके चले जाने पर मैंने जानबूझकर कुछ जोर से प्यालों को खनखनाना शुरू किया और दोनों प्यालों में 'पाट' से चाय उँडेलकर दूध डाल कर चम्मच से चीनी मिलाने लगा। चम्मच भी मैंने कुछ जोर से खनकाया। मनिया ने फिर करवट बदली। मैं फिर भी कुछ नहीं बोला। मुझे बड़ा रस मिल रहा था। मैं जब कुछ नहीं बोला तब उसने पस कर एक अँगड़ाई ली और कृत्रिम जम्हाई लेने की आवाज मुंह से निकाली। मेरे लिये हास्य को अधिक दबाना असंभव हो गया और मैं "हो हो" करके हँस पड़ा।

मनिया उठ बैठी। बोली— 'बड़ी हँसी आ रही है तुम्हें! कलकत्ता तुम्हारा बड़ा प्रिय शहर मालूम होता है क्या? इसीलिये इतने मगन हो रहे हो!' यह कह वह मेरी बगल में कुर्सी पर आकर बैठ गयी।

'सचमुच कलकत्ता मुझे बहुत प्रिय है। यहाँ के जीवन की व्यस्तता, कोलाहल, भीड़ भम्भड़ ठेलमठेला ये सब जीवन के एक दूसरे ही— घोर यथार्थवादी—पहलू से परिचित कराते हैं। आधुनिक युग के यथार्थवादी जीवन के दो सिरे—शोषक और शोषित—के बीच मुठभेड़ के अखाड़े कलकत्ते की ही तरह के बड़े शहर होते हैं। वह भी एक महान दृश्य होता है। आकस्मिक मृत्यु की घटनाओं, अकारण और सकारण हत्याओं, जीवन-संघर्ष के अग्निकुण्ड में निर्द्वद्व कूदने वाले अपराधियों, साहसी अथवा दुस्साहसिक व्यक्तियों, क्रान्तिकारियों, अपने और समाज के विरुद्ध विद्रोह करने वालों का जो ताँता यहाँ प्रतिक्षण लगा रहता है, इस युग के जीवन का चरम विकसित रूप वही है।'

मनिया धीरे से चाय पीती हुई बड़े ध्यान से मेरी बातें सुन रही थी। मैंने सूत्रों में आज पहली बार जिस दुनिया की तस्वीर उसके आगे रखने का प्रयत्न किया था वह उसके लिये एक बिलकुल ही नये और अनाविष्कृत रहस्य का विषय थी। जीवन की इस सामूहिक यथार्थता का असंख्य उन्मत्त लहरों से उच्छ्वसित महासागर उसने मसूरी अथवा उसके आस

पास के पहाड़ी वातावरण के भीतर सबद्ध और सीमित जीवन की क्षीण पहाड़ी धारा से किसी प्रकार का भी मेल नहीं खाता था। पर हवड़ा स्टेशन पर उतरने के समय से ही इस विराट, तूफानी जीवन के अस्पष्ट गर्जन, चीत्कार और क्रदन का सम्मिलित, उत्ताल महारव एक नयी भरवी महामाया का महामन्त्र उसके सुकुमार प्राणो म अनात ही रूप से फूँकने लगा था, ऐसा मुझे लगा। इसलिये उस अज्ञात किंतु अनवरुद्ध जीवन का जो स्फुट परिचय मैंने उसे दो चार विस्फोटात्मक वाक्यो द्वारा देने का प्रयत्न किया उसने उसके मन के उस स्तर पर स्पन्दन उत्पन्न कर दिया जो अभी तक न जाने कितने युगो से जड अवस्था मे अछूता पडा था। स्पष्ट ही वह न तो मेरी बातो को ही कुछ ठीक से समझ पा रही थी, न अपने भीतर के उस स्पन्दन को ही। केवल एक सुगभीर कुतूहल भरी मार्मिक दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी।

मैंने आगे उस विषय की कोई चर्चा फिर नहीं चलायी। वह भी चुप हो रही। घूट घूट करके चाय पीती हुइ और बीच बीच म एक टुकड़ा टोस्ट का मुह म डालती हुई जसे भीतर ही भीतर उस रहस्य को सुलझाने का असभव प्रयत्न कर रही थी जिसने सभवत अपनी गाढ़ घोर हीन वाली काली कुँडलियो मे आज सुबह से ही उसके मन को महत्व छाया-पाशो म लपेट-सा लिया था।

उस अप्रिय और अनचाहे मौन को कुछ देर बाद मैंने ही भग किया। एक टोस्ट पर चाकू से मक्खन लगाते हुए मैंने कहा—"तुम अभी अपने पहाड़ी नीड के स्वप्न ससार से अचानक एक अजान तूफानी समुद्र के किनारे आ खडी हुई हो। इसलिये यह एकदम अपरिचित वातावरण अपनी दूसरी अशान्ति से अभी कुछ समय तक तुम्हारे मन को अव्यवस्थित रखेगा। पर मेरा विश्वास है कि दो ही-चार दिन बाद जब इस समुद्री किनारे से तुम्हारा नाम मात्र का भी परिचय हो जायगा तब तुम भी मेरी ही तरह उसमे रस लेने लग जाओगी। उसकी अपार रहस्यमयता से एकदम अपरिचित रहने पर भी उस रस म कोई कमी नहीं आने पायगी।"

मनिया पूर्ववत मौन ही रही। केवल अपनी कुतूहली आँखो मे जिज्ञासु दृष्टि से मेरी ओर देखती रही।

चाय पी चुकने के बाद मनिया गुसलखाने चली गयी। प्राय बीस मिनट बाद नहा धोकर कपड़े बदल कर जब आयी तब एक आश्चर्यजनक ताजगी उसके मुख पर चमक रही थी। न कहीं क्लान्ति का कोई लेश वर्तमान था न चिंता और न भय की कोई रेखा। सहज स्वाभाविक स्निग्ध मुसकान से उसका चेहरा खिल गया था। बोली—"अब तुम भी जल्दी नहा धो लो। रास्ते की सारी थकान दूर हो जायगी।"

मैं तत्काल उसकी आज्ञा का पालन करने के लिये उठ खड़ा हुआ। कपड़े उतारकर एक लुंगीनुमा बड़ा तौलिया पहन कर गुसलखाने में जाकर घुस गया। नहाने के बाद मैंने सचमुच अपने को तरोताजा पाया। बाहर निकल कर देखा मनिया कमरे में नहीं थी। कपड़े बदल कर बाहर बरामदे में गया। मनिया एक कुर्सी पर बैठी हुई बाहर सड़क का दृश्य दर्शन में तल्लीन थी।

मैंने परिहास के स्वर में कहा—'तुम्हारा जी तो यहां अभी से रमने लगा है!' वह सचमुच अन्यमनस्क हो गयी थी और न जाने किन स्वप्नों अथवा दुःस्वप्नों में मग्न थी। मेरी आवाज सुनकर चौंक-सी उठी, बोली—'सचमुच बड़ा ही विचित्र शहर है तुम्हारा यह कलकत्ता!'

यह आविष्कार तुमने किस बात से किया?

इतनी मोटरें, बसें लारियाँ और गाड़ियाँ उलटी दिशाओं को बहने-वाली दो धाराओं की तरह चली आ रही हैं पर रास्ते में पैदल चलने वाले स्त्री पुरुषों को उनसे कुछ भी भय नहीं मालूम होता। वे उन मोटरों की ओर से इस तरह उदासीन लगते हैं कि एक बार आँख उठाकर भी उनकी ओर देखने की चेष्टा अपनी तरफ से नहीं करते। अपने आप वे उनकी आंखों के सामने आ जायें तो पल भर के लिये अत्यन्त उपेक्षा से उनकी ओर देखकर तत्काल आँखें फेर लेते हैं। उनके एकदम पीछे से और बगल से भोंपुओं की कानों के पर्दे फाड़ डालने वाली, मन को दहला देने वाली आवाज गूंजती रहती है पर वे कभी एक क्षण के लिये भी न तो लौटकर उनकी ओर देखते हैं, न भीत होते हैं। बड़े धैर्य से दाइं और एक आध कदम बेमालूम हटकर चलते ही रहते हैं। और कितने

...गते हैं पैदल चलने वाले ये सब लोग। उन्हें न तो अगल-बगल और अपने सामने का कोई दृश्य देखने की ... है, न किसी से एक सेकेण्ड के लिये भी बात करने की। केवल ... अनाम लक्ष्य की ओर बढ़े चलना ही जैसे उनके जीवन का एकमात्र ... है।"

उसकी बातों के ढंग से मुझे काफी आश्चर्य हुआ पर प्रकट में उसे परिहास के रूप में ग्रहण करता हुआ मैं बोला—"इतनी ही देर में कलकत्ते की एक सड़क के इस साधारण से दृश्य ने इतना बड़ा ...निक बना डाला! अब तो मानोगी कि कलकत्ते का कितना बड़ा ...व है!

"तुम मेरी बात को कभी ही हँसी में क्या न उड़ाओ उससे उसका ...व कभी नष्ट नहीं होता। और वह फिर सड़क की ओर देखने ...।

मैंने कहा—"इस बरामदे से सड़क का दृश्य देखते रहने से कलकत्ते ...विशेषताओं का कणमात्र ज्ञान भी तुम्हें नहीं हो पायेगा। चलो, बाहर ...लें। कुछ घूमने से संभव है थोड़ा-सा अंदाज तुम लगा पाओ।'

'मुझे इस समय कहीं जाने की इच्छा नहीं है। तुम चाहो तो घूम ...ओ, मैं यहीं बैठे-बैठे देखती रहूँगी।'

मैं कुछ खीझ उठा। बोला—'तुम पागल हो। हम लोग क्या कल-... इस तरह बैठे रहने के लिये आये हैं? चलो उठो। जल्दी करो।'

मेरे हठ करने पर वह उठी। सहसा बगल वाले कमरे से एक फैशन-... भारतीय महिला—जिसकी आयु तीस पैंतीस के करीब होगी—बाहर ...कर आयी और बड़े कुतूहल से हम लोगों की ओर देखने लगी। मनिया ...की ओर देखकर वह एक विचित्र ढंग से मुस्कराने लगी। स्पष्ट ही ...की वेशभूषा उन्हें 'अप-टु-डेट' नहीं लग रही थी। संभवतः कलकत्ते ...ग्रेट ईस्टर्न होटल में ठहरने वालों की तरह न तो उसका हाव-भाव ...उन्हें लग रहा था और न शायद बातचीत का ढंग ही। मनिया ने ...कुतूहली दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह भी उस फैशनवाली महिला ...किसी जू में रखे गये एक विचित्र जीव की अपेक्षा अधिक महत्व

२५० नही दे पा रही थी। महिला ने बरामदे मे ही अपने कमरे की ओर एक ईर्ष्या भरी मुसकान से देखा। तत्काल सूट बूट और हैट धारी एक हिदुस्तानी साहब बाहर निकल आये और महिला की व्यग भरी मुसकान का अनुसरण करते हुए उन्होंने हम लोगो की ओर देखा। पतलून की दोनो जेबो म हाथ डाले हुए वह हलके नीले रग के चश्मे से हम लोगो की ओर ऐसी विचित्र दृष्टि से देखने लगे कि जान पडता था जैसे केवल दृष्टि मात्र से जलाकर हम भस्म कर देंगे। मैंने भी पलटे म उनकी ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखा और फिर मनिया से कहा— 'चलो, यहा बठना बेकार है।'

४० भीतर जाकर मैंने फोन द्वारा क्लर्क को आदेश दिया कि हम लोगो के लिये एक टक्सी मँगा दी जाय। प्राय दस मिनट बाद बेरा ने सूचित किया कि टक्सी खडी है। उसके बाद ही एक दूसरे बेरा ने आकर बताया कि ठेलेवाले सामान ले आये हैं। मनिया तयार हो गयी थी। मैं पहले ही से तयार बठा था। नीचे जाकर मैंने क्लर्क को ठेले का सामान ऊपर हमारे कमरे म पहुँचाने का भार सौंप दिया और उसके पास एक सप्ताह के अग्रिम भाडे के अलावा सौ रुपया अलग से जमा कर दिया। कह दिया कि ठेलेवालो को उचित मजदूरी दे दें।

उसके बाद हम दोनो टक्सी पर जा बठे। टक्सीवाला एक पगडी धारी पजाबी था। उसके प्रश्न के उत्तर म मैंने कहा— 'हम लोग सर करने के इरादे से आये हैं, तुम्हारा जिधर जी चाहे ले चलो।

उसने फिर कोई प्रश्न नही किया। उसने चौरगी की ओर टक्सी मोड दी। चौरगी से भवानीपुर होता हुआ वह बालीगज की ओर ले गया। वहाँ झील के पास ले जाकर टक्सी एक जगह खडी कर दी।

आप लोग कुछ देर झील को भर नजरों चाहें तो
ये। हम दोनों उतर गये। मनिया ने इसके पहले
ई झील नहीं देखी थी। देखकर वह मुग्ध हो गयी। बच्चों की
मिन होकर बोली— 'एक बार पैदल चलकर पूरी झील का
ाया जाय।' मैंने कोई आपत्ति नहीं उठायी, यद्यपि मैं पैदल
गान की स्थिति में अपने को नहीं पा रहा था। जब एक जगह
र कल्हार के फूलों को देखकर उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न
ती—"पानी में कमल खिलते हैं यह मैंने सुन भर रखा था,
आज देख रही हूँ।' शहर के कोलाहल से यहाँ का अपेक्षाकृत
नावरण उसे स्वभावतः प्रिय लग रहा था। काव्यमय वातावरण
में जो युवक-युवतियाँ वहाँ भ्रमणार्थ आये हुए थे वे बड़े गौर
ओर देख रहे थे। यद्यपि उसके पोशाक-पहनावे में कोई
न या विजातीयता नहीं थी, तथापि उसकी आकृति और ऊपरी
वका, न जाने क्या, विशेष कौतूहल-वर्धक लग रही थी।
दूर तक चक्कर लगाने के बाद मैंने झील के किनारे एक बेंच
ाम करने का प्रस्ताव किया। मनिया ने मेरी बात मान ली।
लोग बैठ गये तब वह झील की ओर अनमनी आँखों से देखती
— 'क्या यहीं आस-पास में कोई मकान किराये पर नहीं मिल
शहर में, पता नहीं क्यों, मेरा जी घबड़ाने लगता है।'
कहा—"बिना पता लगाये मैं कुछ बता नहीं सकता। पर
जसी स्थिति है उसे देखते हुए ऐसी आशा नहीं होती कि कोई
ाली मिलेगा।'
ोशिश करके देखना चाहिये, हो सकता है, भाग्य से मिल जाय।"
कोशिश में कोई कमी नहीं करूँगा, विश्वास रखो।' मैंने

के एक ही स्थान पर बैठे रहने में कोई विशेष सुख नहीं मिल रहा
छ देर तक मौन बैठे रहने के बाद मैंने चलने का प्रस्ताव किया।
अनिच्छा से, बहुत धीरे से उठी। हम आगे बढ़ना ही चाहते थे
आलीशान रोल्स रोइस कार को रास्ता देने के लिये हमें एक

किनारे खडे हो जाना पडा। 'कार' सहमा ठीक हमारे सामने खडी हो गयी और भीतर से किसी ने आवाज दी—"हलो नृपन्द्र।"

मेर आश्चय का ठिकाना न रहा। कलक्त्ते आकर बालीगज की झील के पास किसी परिचित व्यक्ति से भेंट होन की कल्पना मैं स्वप्न म भी नही कर सकता था। मैं अत्यन्त आतुरता से उस व्यक्ति के उतरन की प्रतीक्षा कर रहा था, जिसका चेहरा भी मैंने अभी ठीक स नही देखा था।

कुछ ही देर बाद मैंने देखा, एक किचित स्थूलकाय गौरवपूर्ण युवक, गरम कुर्ता और धोती बगाली ढग से पहने परम प्रेमपूर्ण मुसकान मुख पर झलकाते हुए मेरे सामने खडा हो गया और आते ही एकदम मेर गले से ही लिपट गया। मैं तो दग था। युवक बोला—"यार, तुम तो बहुत बदल गये हो। पर इतने वर्षों बाद आज अचानक तुमसे भेंट होन पर भी मैंन तुम्हें पहचान लिया। शायद तुमने मुझे पहचाना नहीं? तुम्हारी आखो से ऐसा ही लगता है।" फिर एक बार कनखियो से मनिया की ओर देखकर धीरे से उसने पूछा—"यह क्या तुम्हारी वाइफ है?

मैंन केवल सिर हिलाकर उसके इस प्रश्न का उत्तर दिया। मैं अपनी स्मृति पर यह जानन के लिये दबाव डाल रहा था कि आखिर वह युवक कौन हो सकता है। पहले तो मुझे उसका चेहरा एकदम अपरिचित लगा था, बाद म धीरे धीरे यह अनुभव होने लगा कि ओठो के इद गिद खिलने वाली वह मुसकान और बोलने का यह ढग निश्चय ही पूर्व परिचित है। पर उसका नाम क्या है? कब कहाँ उससे परिचय हुआ था?

वह ऐसा प्रसन्न था कि उसकी आँखो के कोनो पर एक हलकी सजलता भी छा गयी थी। मेरे स्मृति श्रम से वह स्पष्ट ही अच्छे विनोद का अनुभव कर रहा था। बोला—"अभी तक पहचाना नही?

मैंन कहा—"चेहरा पहचाना हुआ तो लगता है, पर

"पर नाम धाम याद नही आता? अरे यार, अब तुम बडे आदमी हो गये हो। आखिर हम गरीबो की स्मृति को कब तक अपने भीतर

सचित किये रहते ! फिर भी दिमाग का—माफ करना मस्तिष्क का—क्योंकि तुम उर्दू शब्दों से चिढ़ते हो—कुछ कष्ट देने की कृपा करो !'

सहसा बिजली के वेग से मेरी कुंडलिनी जैसे जगी। "ओ हो ! अब पहचान गया ' मैं परम प्रसन्न होकर पूरे आवेग के साथ बोल उठा। "पर मित्र तुम यहां कहाँ ! ' कहकर मैंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

'अच्छा पहचान गये हो तो मेरा नाम बताओ !" उसने पुलकित होकर कहा।

"अरे भाई अब अधिक न झेंपाओ ! 'पाँसिंग नो' को भूलकर मैं यों ही काफी बड़ा अपराधी बन चुका हूँ।'

'पाँसिंग ना' के नाम से वह मुक्त हास्य कर उठा। अबकी उसकी दोनों आँखें प्रसन्नतातिरेक से निकल हुए आँसुओं के कारण स्पष्ट चमकने लगीं।

वह था वीरेन्द्रकुमार। दुनिया के लिये वह कुंवर वीरेन्द्रकुमार सिंह था, पर मेरे लिये वह था तो केवल वीरेन्द्र था या 'पाँसिंग ना'—जिस प्रकार मैं उसके लिये केवल नृपेन्द्र था, कुंवर नृपेन्द्ररतन सिंह नहीं। हम दोनों 'राजकुमार कालेज' में साथ ही पढ़ते थे। हम सब में उपद्रवी लड़का यही वीरेन्द्र था। दिन रात वह होस्टल में ऊधम मचाया करता था। उसके ऊधम मचाने के तरीके भी विचित्र रहा करते थे। उसके 'व्यावहारिक परिहासों' के मारे सहपाठियों की नींद हराम हो गयी थी। कभी वह किसी लड़के की अनुपस्थिति में उसके बाज वाले कमरे में दीवार के ऊपर 'स्काइ लाइट' वाली खिड़की या दरवाजा खोलकर वहाँ पर मुंह चौड़ा वाला एक विशेष प्रकार का भोंपू रख देता था और उस पर रबर की नली का कनेक्शन जोड़कर आधी रात में, जब दूसरे कमरे वाला लड़का सोता होता, बगल वाले कमरे में रबर की नली पर जोर से फूंक मारता। उसकी पांचजन्य शंख की-सी आवाज से लड़का चौंककर उठ बैठता। फिर दूसरी बार फूंक मारने पर निरीह लड़का ठीक अपने सिर के ऊपर वह भैरव घोष सुनकर हड़बड़ाता हुआ उठकर जब कमरे की बिजली

 जलाता और वहीं किसी को न पाता तब उसकी घबराहट की कल्पना आसानी से की जा सकती है। कभी उसी रबर की नली का पानी से भरी हुई एक चलती फिरती टकी ('गागर') के मुँह म लगाकर आधी रात म पेंच खोल देता और बगल के कमरे म अकस्मात अप्रत्याशित रूप म जो प्रबल प्रवाह होने लगता उसका प्रभाव भी अनुमानातीत नहीं है। एक बार उसने एक विचित्र पेंचदार कुर्सी तयार करवायी थी। जब कभी किसी छात्र को परिहास-पात्र बनाने की इच्छा उसे होती तब वह बड़े आदर से उसे उस कुर्सी पर बिठाता। उसके बाद पीछे जाकर चुपके से कुर्सी का एक विशेष पेंच ढीला कर देता। तत्काल कुर्सी बठने वाले को जीवित मनुष्य की तरह जकडकर अपनी बाहा म ऐसा कस लेती कि फिर उस प्रेमालिंगन से छुटकारा पाना उसके लिये असभव हो उठता। चारो ओर से ठहाके लग जाते। केवल छात्रो को ही नहीं अध्यापको को भी बेवकूफ बनाने स वह बाज न आता। 'पासिंग शो' नाम उसका इसलिये पडा था कि स्त्रियो के प्रति वह विमुख-सा रहा करता था। जब कभी रास्ते म, पार्क म, सिनेमा म या मेले ठेले म मित्रगण उसका ध्यान किसी सुदर युवती की ओर आकर्षित करते तो वह उपेक्षा का भाव जताते हुए कहता—"अरे क्या हटाओ भी, यह केवल पासिंग शो है!" ऐसे न जाने कितने 'पासिंग शो' प्रतिदिन प्रतिपल गुजरते रहते हैं। इस सबध म सबसे मजे की बात यह थी कि वह 'पासिंग शो' सिगरेट का बडा प्रेमी था। उसके साथी ९९९ नबर की स्टेट एक्सप्रेस या उसी की कोटि का बढ़िया और कीमती सिगरेट पीते थे, पर वह भरसक 'पासिंग शो' के अतिरिक्त दूसरी कोई सिगरेट पीना पसद ही न करता।

मनमौज-पसद वह भले ही हो, पर हृदय की जितनी बडी उदारता उसम भरी हुई थी उतनी अपने कालेज के किसी दूसरे लडके म मैंने नहीं पायी। किसी भी सकटग्रस्त व्यक्ति को—चाहे वह उसी की श्रेणी का हो, चाहे नौकर हो, चाहे भगी हो—मुहमाँगी आर्थिक सहायता देने म उसका हाथ कभी पीछे नहीं हटता था। केवल आर्थिक सहायता ही नहीं, दूसरे के हित के लिये वह कोई भी श्रमसाध्य काय करने से भी नहीं हिचकता था। हमारे मेस के महाराज को होस्टल के अहाते म ही रसोईखाने की बगल

म, दो कमरे रहने के लिये दे दिये गये थे, जिनमें वह अपने परिवार के साथ रहता था। एक दिन उसकी बारह साल
की एक लडकी किसी एक विचित्र रोग से दो ही दिन के भीतर मर गयी। डाक्टर ने कहा कि प्लेग से मरी है, हालाकि मुझे पूरा विश्वास है कि वह प्लेग नही था—मेनिनजाइटिस या इसी तरह की कोई दूसरी बीमारी रही होगी। कोई आदमी उस लडकी को घाट पहुँचाने को तयार नहीं हुआ। वीरेन्द्र ने जब सुना तो उसने अपने नौकर को अच्छा सा आर्थिक प्रलोभन देकर राजी किया और उसको साथ लेकर स्वय महाराज के यहा जा पहुँचा। वह अपनी कार पर लडकी को घाट पहुँचाकर उसकी दाह क्रिया कर आना चाहता था। पर महाराज का सस्कारग्रस्त मन इस प्रस्ताव के लिये राजी नही हो पाता था। फलत वीरेन्द्र ने सामान मँगाकर अर्थी तयार करवायी। उसके बाद महाराज से और अपने नौकर से कहा कि वे आगे की तरफ अर्थी को कधे पर सँभाले रहे और स्वय अकेले उसने पीछे का भार अपने कधे पर सँभाल लिया। उसके बाद राम-नाम की महिमा का नारा लगाते हुए श्मशान मे लडकी की दाह क्रिया शास्त्रीय विधि से करके होस्टल वापस आया। उसकी दानशीलता, उदारता और साहस की और भी बहुत सी घटनाओ से मैं परिचित था।

कालेज मे जब वह पढता था तब वह तगडा जरूर था, पर इस कदर मोटा नही था। मैंने कहा—"यह तो बताओ मित्र, कि तुम किस खुशी मे इस कदर फूल उठे हो? इतने मोटे तो तुम पहले नही थे!"

फिर एक बार वह मुक्त भाव से ठहाका मारकर हँस पडा। फिर धीरे से बोला—"पर यार, बात तुमने पते की कही है। सचमुच मेरा शरीर खुशी से ही फूला है। तुम्हें पता नही है, कालेज छोडने के बाद बीच मे मैं बहुत दुबला हो गया था। डाक्टरो ने मुझे 'थाइसिस' तक बता दिया था, हालाकि ऐसी कोई बात नही थी। बाद मे जब मेरी शादी हुई तब दिन पर दिन मैं मोटा होता चला गया। वास्तव में इट वाज ए वेरी हैपी मैरिज! इस शादी के पीछे भी एक किस्सा है, तुम्हें पीछे बताऊगा। पहले चलो तुम्हारी बहू से तुम्हारा परिचय करा दूँ। वह

 मोटर में बठी आश्चय म पडी होगी कि रास्ते मे मोटर रोक कर किस आवारागर्दी के चक्कर में मैं पड गया।"

मैंन कहा—"परिचय अवश्य कराओ, पर देखो, मरे साथ चालाकी करन से तुम फिर बाज नही आ रह हो! वह मेरी बहू कस हो गयी? भाभी क्यो नही हुई?

इस बार वह इतने जोर से "हो हो!" करके हँसा कि अगल बगल स होकर गुजरनेवाल भ्रमणार्थी स्त्री-पुरुष बडे गौर से हम लागो की ओर दखन लगे।

अट्टहास का 'फिट' हलका पडन पर वीरेन्द्र बोला—"पर यार, तुम हो बडे धूत। मेरी कोई भी चालाकी तुम से कभी छिपी न रही। अच्छा भाभी ही सही अब चलो।'

मैं उसके साथ मोटर तक गया। मोटर में भीतर जो महिला बठी थी उनकी ओर मैंने जब एक बार पूर्ण दृष्टि स देखा तब अप्रत्याशित आश्चय से मैं चकित रह गया। घुप अंधेरे मे चलते हुए जब किसी सच लाइट की रोशनी ठीक आखो पर आ टकराती है तब सहसा आखो म चकाचौध लगन के साथ ही एक हलका सा धक्का भी लगता है। ठीक वही हाल उस महिला को निकट से दखत ही मेरा हुआ।

वीरेन्द्र न मोटर के भीतर का ओर मुह करते हुए कहा—'शोभना, यह दखो तुम्हार लिये रास्ते म पडा हुआ एक देवर खोज लाया हू। इसका नाम है कुवर नृपेन्द्ररजन, मेरा कालेज का घनिष्ठतम साथी। रजन यह है शोभना मेरी धमपत्नी और तुम्हारी भाभी।

मैंन महिला की ओर हाथ जोडे और उन्होंने भी प्रत्याभिवादन किया। अत्यन्त शालीनता स, सुसयत मुसकान मुख पर झलकाती हुई बोली—"बडी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर।"

"अरे भाई, बहू को भी तो ले आओ। उनसे हम लोगो का परिचय कराओ। मैं तो उन्हे भाभी ही बनाना चाहता था, पर जीन तुम्हारी ही हो गयी!" कहकर फिर एक ठहाका उसन लगाया। फिर बोला—"अच्छा जाओ उन्हें ले आओ!'

वीरेन्द्र के छुतहा ठहाको के चक्कर म पडकर मैं मनिया को जरो

भूल ही गया था। जाकर उसे लिवा लाया। जेठानी दव रानी आपस म बड़े ही प्रेम से मिली। वीरेन्द्र से भी मैंने मनिया का परिचय करा दिया। वीरेन्द्र म अब तक मेरी जो बातें हुई थीं उनसे मनिया निश्चय ही यह समझ गयी होगी कि वह मेरा घनिष्ठतम सुहृद है। इसलिये उसके प्रति भी उसने आन्तरिक सहृदयतापूर्वक हाथ जोड़े।

पारस्परिक अभिवादन का पर्व जब समाप्त हो गया तब वीरेन्द्र ने गभीरतापूर्वक प्रश्न किया—"अच्छा, यह तो बताओ तुम कलकत्ते मे कब से हो और कहाँ ठहरे हो ?"

मैंने उसके प्रश्न का उत्तर देने के अतिरिक्त यह भी बता दिया कि बालीगंज की ओर जाने का हम लोगों का कोई विचार नहीं था और टैक्सी वाले को इस बात की पूरी छूट दे दी गयी थी कि वह जिधर चाहे उधर ले चले। यह काकतालीय ही थी कि वह बालीगंज की झील दिखाने हम ले आया और यहाँ सौभाग्य से वीरेन्द्र से भी भेंट हो गयी।

सब-कुछ सुन चुकने के बाद वीरेन्द्र की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। उसने कहा— 'यह सब अच्छे ही के लिए हुआ है। अब तुम दोनों मेरे घर चलो, पास ही है मेरा मकान—यहीं बालीगंज ही में। उसके बाद, दोपहर में, होटल से तुम्हारा सामान यहीं उठा लायेंगे।'

मैं एक बार मनिया की ओर देखकर हँसा। वह भी मेरी हँसी का अर्थ समझ कर सलज्ज मृदु-मंद मुसकराने लगी।

"तुम लोग क्या हँस रहे हो !" झटपट वीरेन्द्र ने पूछा।

मैंने कहा—"यों ही। पर सच बात बताऊँ ? देखो भाई, अँगरेजी में जो यह कहावत है कि 'ट्रुथ इज स्ट्रेंजर दैन फिक्शन' वह आज प्रत्यक्ष घटने जा रही है। अभी अभी मनिया ने मुझसे कहा कि अगर इसी झील के आस-पास कोई मकान किराये पर मिल जाता तो बड़ा अच्छा होता। उसे यहाँ का अपेक्षाकृत शांत वातावरण बहुत पसंद आया। शहर के कोलाहल से यह बहुत घबरायी हुई है। मैंने उत्तर में कहा कि आजकल जैसी स्थिति है उसमें कोई मकान खाली मिल सकेगा इसकी आशा मुझे नहीं है। इसने कहा कि कोशिश करने लेकिन में कोई हर्ज नहीं है। इस

बातचीत के कुछ ही मिनटों बाद तुम आ गये। और मज़े की बात यह कि तुम्हारा मकान इसी 'एरिया' में है। अब बताओ, इसे 'कोइंसिडेंस' कहा जाय या सौभाग्य-चक्र?"

वीरेन्द्र की आँखों में परिपूर्ण पुलक छलक उठा। बोला—"तब तो अब तुम लोगों से इस संबंध में अधिक आग्रह करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रही, क्योंकि यहाँ अत्यधिक आग्रह करने से तुम अपनी इच्छा के विपरीत कोई बहानेबाजी न करने लगो! चलो, भीतर बैठो। भाभी—माफ करना—बहू, भीतर अपनी जेठानी की बगल में बैठ जाओ।'

मनिया मेरी ओर देखने लगी।

वीरेन्द्र तत्काल बोल उठा—"अरे अब उसकी ओर क्या देखती हो? बड़े भाई का कहना मानोगी या छोटे भाई का? उसकी अनुमति की अब कोई आवश्यकता न रही।" सब लोगों को हँसी आ गयी। मुझे लगा कि इनके बन्धु-प्रेमाधिकार की अवज्ञा करने की शक्ति स्वयं ब्रह्मा में भी नहीं हो सकती। आँखों के इशारे से मैंने भी मनिया से बैठ जाने के लिये कह दिया। वह भीतर जाकर शामला भाभी की बगल में बैठ गयी। वीरेन्द्र ने मुझे भी पीछे बैठने का आदेश दिया। मैंने कहा कि मैं आगे बैठ जाऊँगा, पर वह ज़िद्दी आदमी, भला मेरी क्या सुनता? बलपूर्वक मेरा हाथ पकड़ उसने धीरे से भीतर ढकेल दिया, और स्वयं आगे बैठ गया।

४९

टैक्सी वाले के पास पहुँचकर मैंने उसे उचित भाड़ा देकर बिदा कर दिया। वीरेन्द्र का मकान सचमुच बहुत ही निकट था। मकान काफी बड़ा था। अहाता भी सजीला-सा था और चारों ओर रेलिंग से घिरा हुआ था। सीढ़ी का बरामदा काफी चौड़ा था। उसके चारों ओर बड़े करीने से तरह-तरह के विलायती फूलों के गमले रखे हुए थे। कुर्सियाँ भी बड़े ढंग से रखी हुई

थी। जब हम लोग मोटर से उतरे तब मैं वीरेन्द्र और शोभना
भाभी का अनुसरण करता हुआ बरामदे की ओर बढ़ने लगा।

इतने मे पीछे से किसी ने मेरा कोट पकड़कर हलका-सा झटका दिया। मैंने लौटकर देखा तो मनिया ने आँखों के इशारे से मुझे बुलाया। वह कुछ दूर हटकर एकांत में जाकर खड़ी हो गयी। मैंने धीमे से पूछा—"क्या बात है?"

उसने उससे भी धीमे स्वर में उत्तर दिया—"तुमने इन लोगों के यहाँ ठहरने का निश्चय तो कर लिया है, पर इन लोगों को अभी तक यह सूचित भी किया है या नहीं कि हम लोग ईसाई हैं? इन लोगों के बीच तुम भले ही रह लो, मेरे लिये तो असम्भव होगा!"

उसकी यह शंका स्वाभाविक थी। मसूरी में एक हिंदू लड़की के घर निमंत्रित होकर वह अपने प्रति लड़की के परिवार वालों का घृणा-सूचक व्यवहार और उसके साथ बैठकर चाय तक न पीने की बात अभी तक नहीं भूली थी, और वह भूलने की बात भी नहीं थी। इसी कारण उसकी यह सावधानी थी। मैं अगर अकेला होता तो मेरे मन में कभी यह कल्पना ही न उठती। मैं वीरेन्द्र को जानता था और उसके सम्बन्ध में इस तरह की कोई शंका नहीं कर सकता था, इसलिये मैं मुस्कराने लगा। पर तत्काल मेरे ध्यान में यह बात आयी कि वीरेन्द्र के सम्बन्ध में मैं भले ही निश्चित होऊँ, शोभना भाभी के सम्बन्ध में मुझे क्या जानकारी है? इस बात की पूरी सम्भावना है कि हमारी ईसाइयत की सूचना मिलने पर हम अनिश्चित-रूप में अपने यहाँ रखने में उन्हें आपत्ति हो सकती है। इसलिये मैंने मन ही मन मनिया की सावधानी के लिये उसे धन्यवाद दिया। बोला—"अभी हमारे यहाँ रहने की बात पक्की नहीं हुई है। अभी तो मैं केवल शिष्टाचारवश वीरेन्द्र के साथ चला आया हूँ, इसलिये तुम निश्चिन्त रहो।"

"अरे, तुम लोग वहाँ खड़े-खड़े एकांत में क्या परामर्श कर रहे हो? एक क्षण का और एक बालिश्त दूरी का भी बिछुड़ना तुम्हें स्वीकार नहीं?"

वीरेन्द्र के इस परिहास से मनिया सकुचित हो उठी और एक बार गलज्ज मुसकान से उसकी ओर देखकर उसने आँखें नीची कर लीं। मैं प्रेमपूर्वक मुस्कराने लगा।

 "चलो नृपेंद्र, चलो वहू, बरामदे में आकर बैठो, चाय आ रही है।"

मैं मुड़ा और वीरेंद्र के साथ चुपचाप बरामदे में जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया। मनिया भी सशंकित पगों से हम लोगों का अनुसरण करती हुई चली आयी, मुझसे एकदम अलग हटकर एक कोनेवाली कुर्सी पर बैठ गयी। शोभना भाभी भीतर गयी हुई थी। कुछ ही देर बाद वह कपड़े बदलकर, एक चिट्टी-सी जरीदार साड़ी पहने हुए अत्यन्त स्निग्ध मुसकान मुख पर झलकाती हुई, अपने चारों ओर एक अवर्णनीय माधुर्य बिखेरती हुई हम लोगों के बीच में चली आयी, और धीरे से मनिया के पास जाकर बैठ गयी। मनिया संकोच से जैसे अधिक सिमिट गयी थी। फिर भी उसने सलज्ज मुसकान से उनका स्वागत किया।

मनिया का स्वाभाविक संकोच जिस कारण से कई गुना अधिक बढ़ गया उससे परिचित होने पर भी वीरेंद्र के आगे स्थिति को स्पष्ट करने में मैं अपने भीतर उत्साह का अभाव पा रहा था।

चाय आयी। मनिया ने व्याकुल दृष्टि से मेरी ओर देखा। मुझसे रहा न गया। यथासंभव अपनी बात को परिहास का रूप देने का प्रयत्न करते हुए मैंने वीरेंद्र को लक्ष्य करके कहा—'मनिया मुझसे पूछ रही थी कि मैंने अपने ईसाई होने की सूचना तुम्हें दी है या नहीं।'

मैंने भय से मनिया की ओर देखा। निश्चय ही मेरा सूचना देने का ढङ्ग अस्वाभाविक था। वह आँखें तरेरकर मेरी ओर देखने लगी।

वीरेंद्र ने वास्तव में आश्चर्य भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए कहा—"सच? तुम ईसाई कब से हुए?" और, जैसे अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिये वह मनिया की ओर देखने लगा।

एक बार बात के मुँह से निकल जाने पर मेरा संकोच दूर हो गया था। मैंने स्वाभाविक स्वर में उत्तर दिया—"अपने विवाह के सिलसिले में।"

"ओह, यह बात है! मैं समझा! मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि बहू का रौब तुम पर विवाह के पहले ही से गालिब रहा है!" और वह परम प्रेमपूर्वक खुलकर हँसने लगा।

वीरेन्द्र की तरफ से तो मैं पहले ही से निश्चित था। मैं गौर कर रहा था नामना भाभी की ओर। पर जब मैंने देखा कि वह वीरेन्द्र के परिहास से अत्यन्त प्रसन्न होकर कछुए की तरह दुबकी हुई मनिया की ओर पहले से भी अधिक स्निग्ध—बल्कि पुलकित—दृष्टि से देख रही हैं तब मेरी सारी व्यर्थ की दुश्चिंता जाती रही।

साहस पाकर मैंने भाभी जी की ओर देखकर कहा—"मनिया को यह शंका हो रही थी कि कहीं आप लोगों की चाय उसके छू जाने से भ्रष्ट न हो जाय।"

वीरेन्द्र "हा हा हा!" करके सारे मकान को कँपाता हुआ अट्टहास कर उठा। मनिया ने एक बार क्रुद्ध दृष्टि से मेरी ओर देखा और फिर सिर नीचा करके कुर्सी पर नाखून से कुछ लिखने लगी।

भाभी जी का मौन पहली बार भंग हुआ। संकोचहीन, स्वाभाविक शालीनता भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए उन्होंने कहा—'इस जमाने में तो कट्टर से कट्टर परिवारों में भी इस तरह की आपत्ति नहीं उठायी जाती, फिर हम लोग तो अपने विधर्मी आचार-व्यवहार के लिये यों ही बदनाम हैं।'

किसी सधे हुए वादक द्वारा अप्रत्याशित रूप से वीणा के तार जैसे सहसा झंकार उठे हों—ऐसा लगा उनका सहज कंठस्वर। किसी प्रकार की जड़ता और झिझक का लेश भी उसमें नहीं था। मैं विस्मय विमुग्ध होकर कुतूहल भरी दृष्टि से उनकी ओर देखता रह गया। मनिया भी इस बार सिर उठाकर प्रश्न भरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। उसके मुख के भाव से मुझे विश्वास हो गया कि वह उस नये और अपरिचित वातावरण में पूर्णतः आश्वस्त हो चुकी है।

भाभी जी की बात में पहली का जो थोड़ा-बहुत आभास था उसे स्पष्ट करता हुआ वीरेन्द्र बोला—"तुम्हें मैंने अभी यह नहीं बताया कि नामना ब्राह्म परिवार की लड़की है।"

मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—"ब्राह्म तो अधिकतर बंगाली ही हुआ करते हैं।'

"तो क्या तुम अभी तक नामना को मद्रासी लड़की समझे हुए थे?"

 यहकर वीरेंद्र ने फिर ठहाका लगाया। "वह बगाली ही तो है।"

"सच ?" मैंने अकृत्रिम आश्चर्य से पूछा—' पर यह तो हिंदी मनिया से भी अच्छी बोल लेती हैं।'

"भागलपुर म इसका जन्म हुआ था, और विवाह के पहले का जीवन इसका एक प्रकार स वहीं बीता।"

"तभी ! ' और मैंने फिर एक बार गौर स शोभना भाभी की ओर देखा। वास्तव मे आश्चर्यजनक था उनका वह सौन्दर्य—सूर्यास्त के समय सुदूर पश्चिम दिशा मे जलते हुए मेघखड की तरह ! जितनी बार भी मैं उनकी ओर देखता था उतनी ही बार उनकी उस अनिर्वचनीय रूप-छटा की ज्वलित आभा एकदम नयी और अपूर्व लगती थी। कुछ देर देखकर मैंने आँखें फेर ली और मनिया की ओर देखने लगा। स्पष्ट ही वह नहीं समझ पायी थी कि ब्राह्म लोग किस जाति के मनुष्य होते हैं, और बड़े चक्कर म पड़ी हुई थी।

मैंने उसके कौतूहल निवारण के उद्देश्य स उसे बताया कि ब्राह्मो को कट्टर हिंदू लोग ईसाइयो की तरह ही विधर्मी समझते हैं। ब्राह्म लोग हिंदुओं के देवी देवताओ को नहीं मानते। वे एकमात्र ब्रह्म को ही अनत, अनादि और शाश्वत सत्ता स्वीकार करते हैं और केवल उसी की उपासना करते हैं। मनिया ने प्रश्न किया कि 'ब्रह्म क्या चीज है। मैंने सक्षेप म उसे समझाने का प्रयत्न किया। मैं कह नहीं सकता कि वह अपनी बुद्धि और संस्कार के अनुसार कितना समझ पायी और कितना नहीं, पर इतना मैं अवश्य जान गया कि इस जानकारी स वह और अधिक आश्वस्त हो गयी कि शोभना भाभी हिंदू नहीं हैं।

वीरेंद्र ने चाय क प्याले का पहला घूट गटकने के बाद एक बार मेरी ओर और फिर एक बार मनिया की ओर देखते हुए कहा— 'यदि यह मुझे बहुत कुतूहली न समझे तो मैं एक बात जानने क लिय उत्सुक हूँ।'

वह की तरफ से मैंने ही उत्तर दिया—' वह तो समझ चुकी है कि तुम मेरे बड़े भाई हो, इसलिये तुम्हारे किसी भी प्रश्न का कोई अन्यथा अर्थ वह नहीं लगायेगी, इसका विश्वास मैं तुम्हें दिलाता हूँ।

मनिया चाय का प्याला हाथ में लिये वीरेन्द्र की ओर लाज के एकदम मौन पर्दे में छाई हुई मंद मंद मुस्कराने लगी। उसका सद्भाव का आवरण कुछ कुछ हट चुका है यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

वीरेन्द्र बोला—"मैं यह जानना चाहता था कि तुम्हें ईसाई होने की क्या जरूरत आ पड़ी? वह ईसाई परिवार में पैदा हुई, तुम दोनों का एक-दूसरे से परिचय हुआ, दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे, और अंत में विवाह के बंधन में बँधने की स्वाभाविक इच्छा तुम दोनों के मन में उत्पन्न हुई यह सब ठीक है, इतना मैं बड़ी आसानी से समझ सकता हूँ। पर इसके लिये तुम्हारे ईसाई बनने की आवश्यकता कहाँ आ पड़ी? क्या तुम वास्तव में ईसाई धर्म में इस हद तक विश्वास करने लगे हो कि बिना ईसाई बने तुम्हारी आत्मा को तृप्ति न मिलती?"

मैंने देखा कि वीरेन्द्र के मुँह का भाव अत्यंत गंभीर हो आया है और सहज स्वाभाविक परिहास की मुद्रा एकदम लुप्त हो गयी है।

मैंने कहा—"सच बताऊँ?" और यह कहकर एक बार मनिया की ओर देखा। उसके चेहरे पर घबराहट का कोई चिह्न न दिखायी दिया, बल्कि एक निश्चिन्त दृढ़ता उसकी आँखों में उसकी नम्र मुख-मुद्रा में आ गयी थी। मैंने अनुमान लगाया कि ईसाई धर्म की चर्चा मात्र से जिस उसने अपने भीतर को इतनी देर तक खोया हुआ था फिर प्राप्त कर लिया है।

यह जानते हुए भी कि मनिया को मेरी स्पष्टोक्ति प्रिय नहीं लगी, मेरे लिए यह असम्भव था कि मैं स्पष्टवादी और अकपट-हृदय वीरेन्द्र के आगे कोई झूठी बात बनाकर कहता।

मैंने वीरेन्द्र की ओर देखकर कहा—"असलियत यह है कि किसी भी धर्म पर मेरा कोई विश्वास नहीं है। मेरे लिये जैसा हिंदू धर्म है वैसा ही ईसाई धर्म जैसा इस्लाम वैसा ही बौद्ध। मैं ईसाई होने पर भी ईसाई नहीं हूँ (और न हिन्दू ही) इस बात का विश्वास तुम्हें दिलाने में देर न लगेगी, क्योंकि तुम मेरे छात्र-जीवन में मेरे स्वभाव से परिचित रहे हो (मेरे उस समय के स्वभाव से आज के स्वभाव में कोई

भी विशेष अन्तर नहीं आया है), दूसरा कारण यह है कि तुम पुरुष हो और भावुकता तुम में बहुत अधिक नहीं है। पर यह सब होने पर भी मैंने ईसाई धर्म का पट्टा अपने सिर पर क्या लिखा लिया इसके पीछे एक लंबा इतिहास है और कुछ रहस्य भी। वह इतिहास क्या है और वह रहस्य कैसा है यह तुम्हें एक दिन तुम्हारी बहू स्वयं ही समझायगी (यह कहते हुए मैंने एक बार फिर तिरछी दृष्टि से मनिया की ओर देखा—वह अविचलित भाव से ध्यानपूर्वक मेरी बातें सुन रही थी। उसकी आँखों में जैसे एक चुनौती का भाव भरा हुआ था।) मैं इस समय तुम्हें केवल इतना ही संकेत दे सकता हूँ कि बिना ईसाई धर्म को अपनाये मेरा विवाह नहीं हो सकता था।

'सिविल मैरिज में आप लोगों को क्या आपत्ति थी?' सुनना भाभी स्पष्ट ही अपना कौतूहल दमन न कर सकीं। वे अचानक मुस्करा उठीं और मनिया की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगीं।

मैंने कहा—'सिविल मैरिज तब संभव होती जब हम दोनों यह स्वीकार करने को तैयार होते कि हम किसी भी धर्म को नहीं मानते।'

'ओह, तब यह कहिए कि बहू कट्टर धार्मिक है!' सुनना भाभी ने स्नेह भरी दृष्टि से मनिया की ओर देखते हुए कहा।

मनिया का मुँह सहसा प्रगाढ़ रूप से गंभीर हो आया था। उसका इतनी देर तक बरबस दबाया हुआ आवेग सहसा फूट पड़ा। किंचित् तीक्ष्ण स्वर में वह बोली—'किसी धर्म को स्वीकार करके उस पर आस्था न रखने और उसके सिद्धांतों का पालन कट्टरता से न करने की बात मेरी समझ में नहीं आती। भीतरी विश्वास न होने पर भी जो व्यक्ति अपना धर्म परिवर्तन करने को तैयार हो जाता है वह केवल अपने ही प्रति विश्वासघात नहीं करता, बल्कि दूसरों की भी धार्मिक भावना के अपमान का अपराधी होता है।' और उसने प्रायः काँपते हुए चाय का प्याला उठा लिया जिसे सुनना भाभी ने अब फिर से भर दिया था।

उसका आज का रूप मेरे लिये भी एकदम नया था। मुझे पहले ही से आशंका थी कि मेरी या कि आज की स्वीकारोक्ति की जो प्रतिक्रिया मनिया के मन पर होगी वह निश्चय ही प्रिय नहीं होगी। पर वह अप्रियता

सहसा यह रूप धारण कर सकती है इसकी कल्पना मैंने नहीं की थी।

कुछ क्षणों के लिये सारे वातावरण में अत्यंत अशोभन सन्नाटा छाया रहा। भीतर-ही भीतर अत्यंत भीत होने पर भी मैं बाहर से अपनी शान्त धीरता को कायम रखे रहा। अत्यंत संयत स्वर में अविचलित भाव से मामी को लक्ष्य करके बोला—"आप लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि हम दोनों ने साथ-साथ ईसाई धर्म स्वीकार किया।"

मामा जी और वीरेन्द्र अनिमिष आश्चर्य से मेरी ओर देखते रह गये।

"यह तुमने बड़ी विचित्र बात सुनायी!" वीरेन्द्र बोला।

"इसमें कोई विशेष विचित्रता भी नहीं है," मैंने कहा। "मनिया को एक ऐसा वातावरण मिल गया था, जो उसकी भावुक और साथ ही जन्मजात धार्मिक प्रवृत्ति के विकास के लिये सर्वथा अनुकूल था। ईसा के निःस्वार्थ त्यागमय जीवन, दीन-दरिद्रों, पतितों और लांछितों के प्रति अकपट प्रेम, और सबसे अधिक उनके जीवन के कारुणिक अन्त से संबंधित परिस्थितियों और घटनाओं ने इसके भीतर ऐसा गहरा प्रभाव डाल दिया कि अपने (और मेरे भी) जीवन के उच्चतम विकास की पहली सीढ़ी के रूप में उसे ईसाई मत का स्वीकरण अनिवार्य रूप से आवश्यक लगा। मैंने इसका विरोध भी किया था, और उसकी कोई आवश्यकता नहीं मानी थी। पर उसने अपना मत किसी भी हालत में नहीं बदला और बार-बार मुझे यह समझाती रही कि ईसाई मत को अपनाने में ही दोनों का कल्याण निहित है। स्थिति की अनिवार्यता देखकर मुझे ईसाई बनने के सिवाय दूसरा कोई चारा ही नहीं दिखायी दिया। पर मुझे इस बात की तनिक भी ग्लानि नहीं है कि मैंने अपना जन्मजात धर्म त्यागकर एक दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया। मेरे लिये दोनों ही समान हैं।"

मनिया इस बार कुछ नहीं बोली। उसका वह दारुण भावावेग अपने आप विलीन हो गया था। "भाई, अपनी अपनी परिस्थितियाँ हैं

हम किसी भी धम पर विश्वास नही करते। न सिविल मरिज म
ई रुकावट पडी न हमारे मन में।

२

"तो क्या आप सचमुच किसी धम पर विश्वास नहीं करती भाभी ?" मैंने पूछा। "वीरेन्द्र के बारे म तो मैं जानता हू, वह जन्म का नास्तिक है। एक बार
नेज म इस विषय पर डिबेट हुआ था कि 'क्या ईश्वर की कोई आव
रता है ?' तब वीरेन्द्र ने अपने भाषण म कहा था—ईश्वर की कोई
श्यकता नही है। यदि है तो केवल उतनी ही जितनी गगा नहाने
ों का घाट के पडे की, जिसके पास नहाने के पूव अपने कपडे सुरक्षित
जा सकें, नहाने के बाद कुछ देर आराम किया जा सके और चदन
गृङ्गार से तृप्त होने के बाद जिसे कृतज्ञतास्वरूप कुछ दक्षिणा भेंट
जा सके। इसके अतिरिक्त उसकी और कोई आवश्यकता नहीं है।
बहुत पुरानी बात की याद दिलाये जाने पर वीरेन्द्र अट्टहास कर
। भाभी भी खूब हसी और मनिया भी खुलकर हँसने लगी।
मैंने भाभी जी को लक्ष करके कहा—"इसके घाटवाले दृष्टान्त का
आशय क्या था यह तो मैं न तब समझ पाया न अब समझता हूँ,
था वह बडा मजेदार इसम शक नहीं। पर जितना नास्तिक यह
न का बताता था उतना नास्तिक सचमुच म था नहीं। एक दिन मैंने
स्मात् इसके कमरे की खिडकी से भीतर की ओर झाँककर उस एकान्त
यान करते हुए पकड लिया। अपनी चोरी पकडे जाने से यह इस
: लाज और सकोच से गडने लगा था कि मुझे अपनी जासूसी पर
होने लगा। फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि किसी धम विशेष

के नियमाचार के बंधन को इसने कभी स्वीकार नहीं किया—न भीतर से न बाहर से। पर मैं पूछ रहा था आपसे। मुझे यह जानने की उत्सुकता है कि आप भी क्या सचमुच किसी धर्म पर विश्वास नहीं करतीं? और न ईश्वर पर?'

'मेरा तो यही विश्वास है कि किसी धर्म पर विश्वास न करने की बात स्वीकार करके मैंने कोई झूठ बात नहीं कही थी" भाभी जी ने सहज भाव से मेरी ओर देखते हुए कहा, "ब्राह्म परिवार में मेरा जन्म हुआ है, जहां धार्मिक आडंबर बहुत अधिक नहीं रहता। ब्राह्म लोग एकमात्र ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करते हैं, पर उस अद्वितीय ब्रह्म की उपासना वे लोग सामाजिक रूप से करना अधिक पसंद करते हैं और वह भी बड़े आडंबर के साथ। उपासना के इस सामाजिक और सामूहिक रूप से मुझे सदा चिढ़ रही है। पर एकांत में भी कभी मेरे अंतर में उस एक-मेवाद्वितीयम ब्रह्म के प्रति पूर्ण विश्वास के साथ भक्तिभाव उमड़ा हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। यह ठीक है कि जब कभी घोर संकट सर पर आ खड़ा हो जाता है या मेरा मन किन्हीं कारणों से असहनीय पीड़ा का अनुभव करने लगता है तब किसी अज्ञात शक्ति से प्रार्थना करने का जी अवश्य चाहता है। पर उस अज्ञात शक्ति की न तो कुछ भी स्पष्ट या अस्पष्ट धारणा मैं कभी कर पाती हूँ, न कभी उसके संबंध में एकांत में चिंता करने की कोई प्रवृत्ति ही मेरे भीतर जगती है।"

ललना भाभी की इस सरल, निश्छल स्वीकारोक्ति से मैं मन ही-मन मुग्ध हो उठा पर मलिया इसे जैसे कुछ समझ ही नहीं पा रही थी। वह अचरजभरी आँखों से उनकी ओर देखती रह गयी, जैसे अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करने की प्रार्थना कर रही हो।

ललना भाभी ने स्निग्ध-मधुर मुसकान मुख पर बिखराते हुए बड़े ही मीठे स्वर में मनिया से कहा—'मुझे पूरा विश्वास है कि आपके भीतर का विश्वास ही सचमुच का भक्ति भाव जगाता होगा। अनुभूति की वह विह्वलता निश्चय ही बड़ी मार्मिक होती होगी, जैसा कि सन्तों के चरितों से पता चलता है, पर मैं चाहने पर भी उसका अनुभव नहीं कर पाती।'

"आप एक बार प्रभु ईसा का चरित्र मन लगाकर पढिये,' मनिया बोली, "वह स्वर्गीय आत्मा आपके भीतर निश्चय ही भक्ति, श्रद्धा और विश्वास जगा देगी।"

"मैं पढ चुकी हूँ," अत्यत शात और सयत स्वर मे भाभी जी ने कहा। "मन लगाकर ही मैंने पढा है। एक बार नही कई बार। पढकर उस महापुरुष के महान प्रेम, महान् त्याग और अपार साहस का परिचय पाकर मेरे मन म उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव अवश्य उत्पन्न हुआ है, पर इससे अधिक और कुछ नही।

मनिया के मुख पर सहसा एक काली छाया घिर आयी, जिस पर प्रगाढ क्षोभ और निराशा के चिन्ह स्पष्ट अकित थे। बोली—"आप क्या प्रभु को केवल एक महापुरुष ही मानती हैं, इसके आगे और कुछ नही ?" यदि वह केवल पुरुष ही थे तब तो वह 'महा' भी नही थे, साधारण मनुष्यों के और उनके व्यवहार म कोई अतर नही था बल्कि प्रत्यक्ष म कई मामलो म वह साधारण मनुष्य से भी अशक्त और दयनीय थ। पराक्रम का लेश भी उनमे नही था। न तो अपने साथ कोई जनबल ही वह एकत्रित कर पाये, न नीचो, दुष्टो और अत्याचारियो स अपनी रक्षा करने मे समथ हुए। उनके सिर पर थूका गया, जानवरो की तरह उन्हें पीटा गया काँटो का ताज पहनाकर उनके साथ निमम परिहास किया गया और निमम बबरता के साथ शूली पर चढाया गया। मानवता के द्वारा किये गये इस चरम अपमान का न तो वह कोई प्रतिरोध कर सके न कोई उत्तर दे सके। एक अत्यत साधारण, दुबल असमथ और असहाय व्यक्ति की तरह उनकी जीवन-लीला समाप्त हुई '

उसके मुख से सहसा इस तरह की अविश्वसनीय बात और अनुमानातीत तक सुनकर मैं स्त ध था और भ्रा त दृष्टि स उसकी ओर ताक रहा था। वीरेन्द्र और शोभना भाभी उसके आशय को कुछ ठीक से समझ न पा सकने के कारण प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रह थे।

मनिया की मुद्रा अत्यत गभीर हो आयी थी। आँखो से जस चिनगारियाँ निकल रही थी जो आँसुओं के रूप म पिघलने ही को थी। उसकी वह प्रालेय मूर्ति सचमुच मेरे लिये भी एकदम नयी और अपरिचित

स्पष्ट ही वह वीरेन्द्र या शोभना भाभी से किसी प्रश्न
त्याशा कर रही थीं। पर दोनो मौन थे और जिज्ञासु
से उसकी ओर देख रहे थे। मुझे स्थिति की गंभीरता महसूस हुई।
यह जानने मे देर न लगी कि यदि मनिया के उस भावावेग को कोई
ास न मिला तो भीतर-ही भीतर उसके विस्फोट का अच्छा परिणाम
ीं होगा। जो चर्चा चली थी उसके तार का एक क्षण के लिये भी
ा खतरे मे खाली नही था।

अतएव उन लोगो की ओर से मैंने उत्तर दिया—"ईसा ने जो घोर
ादर, अपमान और अत्याचार बिना किसी भी प्रतिरोध के शात भाव
सहन किया और बिना किसी शिकायत के सूली पर चढ गये, वही
उनका महापुरुषत्व था। 'जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड मारे
की ओर अपना दूसरा गाल भी कर दो' इस उपदेश को चरम
ट की परिस्थिति मे कार्यान्वित करके उन्होने एक महान् आदर्श
ार के आगे रखा है।"

'मनुष्य चाहे जितना ही लघु हो या महान् वह कभी मानवता को
राने वाले इतने बडे अपमान को सहन नहीं कर सकता," मनिया ने
हा, "उसके विरोध की आवाज वह किसी न किसी रूप मे अवश्य
ठावेगा" उसका एक एक शब्द मशीनगन की गोली से भी अधिक
ठिन, लचीला और दृढ था।

मैं हैरान था।

"तुम्हारा आशय यह तो किसी भी हालत मे नही हो सकता,' मैंने
हा, "कि महात्मा ईसा साधारण मनुष्य से भी गिरे हुए थे?"

"नही, इस तरह की कल्पना मैं कभी मन मे ला ही नही सकती।
तो एक सीधी-सी स्पष्ट बात कहने जा रही थी। वह यह कि प्रभु
ा मनुष्य नहीं थे। वह साक्षात् ईश्वर के अवतार थे—उसी अर्थ मे
िस तुम्हारे कृष्ण अवतार माने जाते हैं। यही कारण था कि वह
ानवता को कलंकित करने वाले उस क्रूर अपमान को, उस
मानुषिक विष को चुपचाप पी गये, और उस बर्बर हत्या को अत्यत
ात भाव से उन्होने स्वीकार कर लिया। अपनी उस कारुणिक मृत्यु

 का नाटक उन्होंने स्वयं रचा था। यदि वह न चाहते तो मृत्यु-लोक में एक भी प्राणी ऐसा वर्तमान नहीं था जो उनका बाल भी बाँका कर सकता। गंध मस्कारा से घिरी हुई, पापमग्न मानवता में अपने कठोर पीड़न, निर्यातन और मरण द्वारा वह प्रायश्चित का बीज बो जाना चाहते थे, जिसकी धीमी—किंतु कभी न बुझने वाली—आँच में वह परवर्ती कई पीढ़ियों तक दग्ध होता रहे। इसी एकमात्र अचूक उपाय से मनुष्य जाति के भीतर के अमानुषिक विकार गल पिघल कर साफ हो सकते थे और उसके भीतर का खरा सोना निखर सकता था।'

मैं इस बात पर गौर कर रहा था कि उसके मुख की प्रगाढ़ गंभीर मुद्रा धीरे धीरे एक अलौकिक रोमांच के अज्ञात स्पर्श से एक अपूर्व तेजोमय प्रकाश में बदलकर दिप दिप करने लगी थी। शोभना भाभी और हीरेन्द्र विमूढ़ भाव से विस्मित दृष्टि से उसकी ओर एकटक देख रहे थे। स्पष्ट ही उन दोनों के भीतर मेरी ही तरह यह धारणा जम गयी थी कि अन्तर के जिस गहन और अगम्यनीय विश्वास से प्रेरित होकर मनिया ने अपना मत प्रकट किया है उसके सम्बन्ध में किसी तरह की बहस करके उसके मत को बदलने का प्रयत्न अशोभन के अतिरिक्त एकदम निरर्थक भी सिद्ध होगा।

कुछ देर तक सारे वातावरण में एक गम्भीर सन्नाटा छाया रहा। मनिया ने जिस मार्मिकता से अपने धार्मिक विश्वास को उघाड़कर रख दिया था उसके बाद फिर न तो किसी दूसरे विषय की चर्चा जम सकती थी, न उसी विषय को आगे बढ़ाने का साहस किसी में रह गया था।

प्रायः ढाई मिनट के अशोभन मौन के बाद सहसा शोभना भाभी ने मनिया का हाथ पकड़ते हुए कहा—"चलो बहन भीतर चलें। तुमने तो अभी हमारा मकान भीतर से देखा ही नहीं। हम बंगालियों के यहाँ जब नयी बहू घर में आती है तब उसे घर की लक्ष्मी मानकर मकान की सब चीजें दिखायी जाती हैं और भंडार की कुंजी उसे सौंप दी जाती है।" कहकर भाभी जी ने स्नेह सिक्त कटाक्ष से मेरी ओर देखा। वास्तव में उनके कटाक्ष में भी एक ऐसी मोहक शालीनता थी जो किसी भी हालत में उपेक्षणीय नहीं हो सकती।

एक क्षण में मनिया का सहज रूप लौट आया। वह
वास्तव में नववधू की तरह सकुचाती हुई लाज मधुर मुसकान से सारे मुख को रंगती हुई भाभी जी के साथ धीरे से उठ खड़ी हुई।

83 जब दोनों भीतर चली गयीं तब वीरेन्द्र की जबान खुली। तब तक वह स्तब्ध बैठा हुआ था। धीरे से बोला—"यार, तुम्हारी बहू सचमुच एक असाधारण नारी है। जितनी ही भावुक है उतनी ही दृढ़ भी। और उसकी बुद्धि भी कुछ कम साधारण नहीं लगती। ऐसा विचित्र, पर साथ ही प्रभावोत्पादक तर्क मैंने पहले कभी नहीं सुना। किसी धर्म प्रवर्तक के दर्शन पर ऐसा आंतरिक और अकपट विश्वास मैंने किसी भी धर्म के कट्टर से कट्टर अनुयायी में भी कभी नहीं पाया। यह ठीक है कि यह विश्वास जीवन की अस्वाभाविक परिस्थितियों और शिक्षा की एकांगीपता के कारण ही उत्पन्न होता है, पर है यह बड़ा ही मर्मस्पर्शी और यार अविश्वासी और अधार्मिक के भी प्राणों को छूनेवाला।"

मैंने प्रसन्न होकर कहा—"अब तुम समझ गये मित्र, कि मैं क्यों ईसाई बना?"

"निस्सन्देह मैं मानता हूँ कि इस विभूति को किसी भी मूल्य पर प्राप्त करना, चाहे धर्म बदलकर हो या प्राणों की बाजी लगाकर, यह सौदा कभी घाटे का नहीं हो सकता।", भावुकता के आवेश में बड़ी गंभीरता के साथ वीरेन्द्र ने कहा।

मैंने बहुत धीमी आवाज में मनिया के जीवन का सारा इतिहास कह सुनाया। वीरेन्द्र एकाग्र चित्त में सुनता रहा। उसके मुख पर विस्मय, करुणा और श्रद्धा के भाव एक साथ झलक उठे थे। जब मैं पूरा किस्सा सुना चुका तब वह बोला— इतने धर्म मर्मों के भीतर

जीवन के इतने अधिक उलट फेर आश्चर्यजनक ता हैं ही, पर सबसे अधिक आश्चर्यजनक है उसकी बुद्धि और मनाभावो का ऐसा द्रुत विकास। तुम्हारी बातो से ऐसा लगता है कि जस एक ही दिन म उसने विकट दु स्वप्नो से भरे हुए अपने पिछले जीवन की सारी केंचुली उतारकर फेंक दी हा। यह बात केवल परिस्थितियो क बदलने के कारण सभव नहीं हो सकती। इसके लिये मन के बहुत भीतर छिपे हुए किन्ही विशेष मूलगत सस्कारा का हाना आवश्यक है।'

वीरेन्द्र का वह प्रशसात्मक श्रद्धामूलक मनोभाव ऐसा गभीर था कि उसके बाद फिर उस पर किसी तरह के विनोद या परिहासपूर्ण मतव्य की गुजाइश नही रह गयी थी। इसलिये मैंने भी गभीर मुद्रा बना ली।

हम दोनो मौन बठ थे। वीरेन्द्र न मालूम जीवन के किस रहस्य के सम्बध म गम्भीर चिंतन म डूब गया था और मैं भी न जान अपने भीतर की किस अस्पष्ट उलझन को सुलझान म मग्न था। सहसा बाहर सडक पर कुछ सम्मिलित कठो का चीत्कार सुनकर हम दोनो का अन्तर ध्यान भग हो गया और बाहरी इन्द्रियाँ सजग हो उठी। चीत्कार निकट से निकटतर होता जाता था और स्पष्ट से स्पष्टतर। कुछ ही क्षणो बाद हम लोगो ने देखा, सामन स होकर एक जलूस चला जा रहा था। जलूस के आग आगे कुछ लोग लाल झडियाँ लिये हुए थे। जनता अत्यत उत्तेजित जान पडती थी और सब लोग मिलकर पूरी ताकत स, कायरो को दहला देनेवाले सम्मिलित स्वर में नारे लगा रह थ। उन नारो म स केवल दो ही बातें सुनायी देती थी—'नाश हो' और "जिन्दाबाद!" लगता था जैसे एक प्रचड आवेग की बिजली— हजारो वाल्ट वाली—सारे जनसमूह की नसा म एसी तेजी से दौड रही है कि उनम से किसी एक का भी छूते ही छूनेवाला तत्काल मृत अवस्था म गिर पडेगा। सबके मुह झडिया की तरह ही लाल हो आये थे, जसे एक चलती फिरती आग की लाल-लाल लपटें सहसा लपलपाती हुई जीभो को बाहर निकालकर सारे युग को ग्रस कर चाट जाने क लिये अधीर हो उठी हा।

जलूस हमारे सामने से हाकर निकल गया। पर "नाश हो!"

'जिंदाबाद !'' के नारे जलूस के आँखों से ओझल हो जाने के बाद भी कुछ देर तक हमारे कानों से आकर टकराते रहे और आवाज विलीन हो जाने के बाद भी वे शब्द काफी देर तक मेरे बाहरी और भीतरी कानों में गूंजते रहे।

वीरेन्द्र बोला—''आने वाले युग की झलकी देखी तुमने ? इधर कुछ समय से कलकत्ते का वातावरण बहुत ही गरम हो उठा है। एक भी दिन ऐसा नहीं बीतता जब कहीं-न-कहीं उपद्रव खड़ा न होता हो। दस पाँच व्यक्ति प्रायः प्रति दिन घायल होते रहते हैं और दो-चार आदमी मर भी जाते हैं। चारों ओर अशान्ति और असन्तोष की लहर फैली हुई है जो किसी भी हालत में जल्दी दब सकेगी ऐसी आशा मैं नहीं करता। केवल कलकत्ता ही तक यह लहर सीमित नहीं है, चारों ओर यह बड़ी तेजी से फैल रही है। निकट भविष्य में आनेवाली प्रबल बाढ़ को रोक सकने की शक्ति किसी व्यक्ति या समूह में है, ऐसा विश्वास मैं नहीं करता। कहीं बाढ़ और कहीं दावाग्नि—इन्हीं दो दुर्दमनीय प्राकृतिक उपद्रवों के ताण्डव से पिछले युगों की न जाने कितनी इमारतें ढहकर बह जायेंगी, न जाने शताब्दियों से जमे हुए कितने प्रतिष्ठान राख हो जायेंगे। यह अच्छा होगा या बुरा यह प्रश्न बिलकुल दूसरा है। जो लोग इस प्रलय-परिवर्तन के लिये तैयार नहीं रहेंगे उनकी समाप्ति बड़े शोचनीय रूप से होगी यह निश्चित है।''

''तुम क्या उस परिवर्तन के लिये तैयार हो ?'' सहसा मेरे मुंह से निकल पड़ा।

''देखो रतन, एक बात तुम्हें बता दूं। सामन्त-वंश में मेरा जन्म हुआ है, यह ठीक है, पर मेरे भीतर के संस्कार जन्म से ही प्रोलेतेरियन रहे हैं। चूंकि तुम मेरे स्वभाव से भली भाँति परिचित हो, इसलिये तुम्हें मेरी इस बात पर विश्वास करने में देर न लगेगी। ऐश्वर्य के बीच में पलने पर भी मैंने कभी ऐश्वर्य का उपयोग विलासिता की दृष्टि से नहीं किया। अपनी सामाजिक स्थिति का और न मातृकुल सत्ता का ही कभी मैंने जनसाधारण की सत्ता से अलग महसूस किया। यह ठीक है कि मेरे पास ऐश्वर्य-भोग के सारे उपकरण

वतमान हैं और वाहरी रूप से मैं उनका उपभोग भी किसी हद तक करता ही हूँ, पर वह उपभोग मेरे भीतरी व्यक्तित्व को कभी छू तक नही पाता। किसी भी क्षण मैं अपने उस बाहरी मुखडे का उतारकर फेंक सकता हूँ—बिना लेशमात्र भी खेद या ग्लानि के।'

मैंने गौर से उसकी ओर देखा और मेरे मन मे सचमुच इस सबध म तनिक भी सन्देह न रहा कि वह अपने आपको नही ठग रहा है, और एक भी बात बनाकर नही कह रहा है।

तब तो तुम किसी दिन सक्रिय रूप से जन आदोलन म भाग लेने को भी तयार हो सकते हो। मैंने कहा।

"मैं बहुत दिनो स इस तरह की बात सोच रहा हू। पर सच बात यह है कि मेरे भीतर के प्रोलेतेरियन सस्कार कसे ही प्रबल क्या न हो, आखिर बूर्जुआ सस्कार किसी-न किसी रूप म वतमान तो रहेंगे ही। जात की बढिया औकात का घोडा, बहुत नही तो थोडा थोडा।" कह कर वह हँसा, पर फिर तत्काल गभीर होकर कहने लगा—"इस लोकोक्ति म तनिक भी अत्युक्ति नही है। न चाहने पर भी मैं बहुत-सी एसी बाहरी सामाजिकता म फँसा हुआ हू जो मुझे मुक्तभाव से मदान मे कूद पडने के लिय रोकती रहती है। उन सुदृढ सामाजिक बधनो के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए मेरे अतर्प्राण सब समय छटपटाते रहते हैं। इस द्वद्व से जो आग उत्पन्न होती है वह मुझे प्रतिक्षण दग्ध करती रहती है। ऊपर से मैं बडा ही निद्वद्व हास्यप्रिय और छिछली प्रकृति का आदमी लगता हूँ पर मेरे भीतर क्या तूफान मच रहा है इसे मैं नही समझा पाऊँगा।

मैं चुपचाप चकित भाव से उसकी ओर देख रहा था। जिस मार्मिक गभीरता स आज उसने अपने भीतर की अशाति का परिचय मुझे दिया था, उसके बाद कोई भी साधारण प्रश्न व्यथ और बेमल सिद्ध होगा, यह मैं जानता था। फिर भी कुतूहल न दबा सका।

तुम किस तरह के सामाजिक बधनो की बात कर रहे हो क्या मैं जान सकता हू?' मैंने पूछा।

'बताता हू। चलो जरा लान म टहला जाय।" कहकर उसने मेरा

हाथ पकड़ा। हम दोनों उठकर बाहर विस्तृत लान में टहलने लगे। उत्तर की ओर एक एकांत कोन में स्थित एक बेंच पर मुझे बिठाकर वह स्वयं भी बैठ गया, उसके बाद उसने अन्तिम प्रश्न के सूत्र को पकड़ते हुए धीरे से कहा—

"उदाहरण के लिए मेरे वैवाहिक बंधन को ही ले लो। मेरा विवाह किन परिस्थितियों में हुआ, पहले इसका संक्षिप्त इतिहास मैं सुनाता हूँ। शोभना एक बहुत बड़े घर की लड़की है। इसके पिता पटने के एक नामी बैरिस्टर थे और बंगला के एक प्रसिद्ध साहित्यकार भी। शोभना की शिक्षा-दीक्षा में किसी भी सांस्कृतिक पहलू में कोई कमी न रहने पाये, इसके लिये वह बराबर प्रयत्नशील रहे। दुर्भाग्य से जब वह बी० ए० में पढ़ रही थी तब अचानक एक दिन हार्ट फेल हो जाने से उनकी मृत्यु हो गयी। शोभना से मेरी घनिष्ठता उनके जीवन-काल में ही हो चुकी थी। मैं उनके यहाँ आया-जाया करता था। शोभना के पिता—अभयकुमार सरकार—से साहित्य-कला पर वाद विवाद किया करता था। शोभना भी कभी-कभी विवाद में भाग लेती थी। पर वह बड़े अन्यमनस्क स्वभाव के आदमी थे। मुझे पूरा विश्वास है कि इस बात पर उनका ध्यान ही कभी नहीं गया कि शोभना के और मेरे बीच घनिष्ठता दिन-पर दिन बढ़ती चली जा रही है। पहली शादी से उनका एक लड़का था जिसका नाम था शैलेन्द्रकुमार। शोभना की माँ उनकी द्वितीय पत्नी थी। शोभना का जन्म होने के कुछ ही महीने बाद उसकी माँ भी चल बसी थी, फिर कोई विवाह अभय बाबू ने नहीं किया। हम दोनों की घनिष्ठता से शैलेन्द्रकुमार (जो स्वयं एक वकील थे) तनिक भी प्रसन्न नहीं थे। पर बाहर से मेरे साथ उनका प्रेम-व्यवहार बराबर बना रहा। शैलेन्द्र बाबू का रुख देखकर मैं कायरों की तरह सरकार-परिवार से कतराकर अलग हो जाना चाहता था, पर शोभना सब-कुछ जानते हुए भी बड़ी ढिठाई से जबरदस्त मेरा हाथ पकड़कर अपने परिवार से मुझे बाँधे रही। मैंने बीच में कुछ दिनों के लिये उन लोगों के यहाँ जाना बंद कर दिया था। शोभना एक दिन मेरे यहाँ आ धमकी और भरायी हुई आवाज में बोली—'बाबूजी आपके साहचर्य के आगे इस हद तक हो

चुके हैं कि एक दिन के लिये भी अगर आपसे साहित्यिक चर्चा बद हो जाती है तो उन्हें खाने की ही रुचि नही रह जाती। पर आप तो अचानक और अकारण हम लोगो से ऐसे नाराज हो उठे हैं कि आज चार दिन से एक बार भी आपने हम लोगो के यहाँ पधारने की कृपा नही की। हम लोगो से आप नाराज रहें, इसकी कोई शिकायत मैं कभी नही करूँगी, पर बाबूजी ने आपका क्या बिगाड़ा है? और उसका अभिमान भरा स्वर सहसा आसुओं के रूप में फूट पडा। तुम समझ सकते हो रजत उन आसुओं की उपेक्षा सहज म सभव नही थी। तब तक मैंने उसके बाबूजी के साथ अपने हलमेल को साधारण मैत्री के रूप मे लिया था, जो मुझे प्रिय थी। पर उन आसुओं ने उस मैत्री का जो मार्मिक रूप मेरे सामने रखा वह मेरे लिये एकदम नया था। मैंने फिर सरकार महाशय के यहाँ आना-जाना आरभ कर दिया। उसके बाद एक दिन जब सध्या के समय हम सब लोग साथ बैठकर चाय पी रहे थे तब सहसा सरकार महाशय के शरीर मे एक विचित्र प्रकार की ऐंठन-सी शुरू हुई और कुछ ही देर बाद वह मृत अवस्था में नीचे गिर पडे। भावना ने सिर पीट पीटकर सारा मकान सर पर उठा लिया। मैं डाक्टर लाने दौडा—यह जानते हुए भी कि सब व्यर्थ है। डाक्टर ने आकर क्षण भर के लिये देखा और दुख प्रकट करता हुआ बिना फीस लिये वापस चला गया।

'तब से उस मकान की सारी स्थिति ही मूलत बदल गयी। वहाँ पाँव रखते ही एक निराला—श्मशान का सा—सन्नाटा छाया हुआ मालूम होता। घर की सारी श्री ही जैसे नष्ट हो गयी थी। इतने दिनो तक केवल एक ही व्यक्ति के तेज से सारा मकान जगमगा रहा था। भावना तो सूखकर एकदम काटा हो गयी थी। मेरे दिलासा देने से कोई लाभ उसे नही हो रहा था। और सच बात यह थी कि शैलेन्द्र बाबू का रुख देखते हुए मैं उसे सच्चे हृदय से दिलासा भी नहीं दे पाता था।

इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया। एक दिन मुझे जाडा लगकर बडे जोरो से ज्वर आ गया। टेम्परेचर १०६ डिग्री तक चढ गया। रात भर मुझे होश नही रहा। सुबह आँख खुलने पर जब मैंने अपने को होश म पाया तब देखा कि भावना मेरे सिरहाने बैठी हुई मेरे माथे

पर अपना हाथ रखे हुए था। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। मैंने पूछा— 'तुम किस समय आयी ? तुम्हें कैसे खबर लग गयी ?' ज्वर के खुमार में मैं उसे 'तुम' कहकर सम्बोधित कर बैठा था। वह मंद-मंद मुस्करायी। धीरे-से बोली— 'चुपचाप आराम करो, आपको इतनी सब बातें जानने की जरूरत क्या है ? डाक्टर ने ज्यादा बोलने से मना किया है।' और वह तत्काल उठकर थर्मामीटर ले आयी। उसे धोकर, पोंछकर, झटकाकर मेरे हाथ में देती हुई बोली—'लो, जरा मुँह खोलो तो।' मैंने मुँह खोला और उसने एक हाथ से मेरी ठुड्डी धीरे-से पकड़कर दूसरे हाथ से मेरे मुँह के भीतर थर्मामीटर का निचला भाग 'फिट' कर दिया। उसके बाद अपने बाएँ हाथ में घड़ी देखती रही। जब तक वह घड़ी देख रही थी तब तक मैं पूरी तन्मयता से उसकी ओर एकटक देखता रहा। एक अपूर्व स्निग्धता मेरे भीतर छा रही थी। अकलुष कृतज्ञता का एक मोह-मधुर भाव मेरे हृदय में उमड़ उठा। तुम तो जानते ही हो मेरी माँ मेरे बचपन में ही चल बसी थीं और किसी बहन के स्नेह का भी सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं रहा। पिताजी बहुत अधिक स्नेह करते थे, पर अपने स्वभाव के अनुरूप गुरु-गम्भीर ढंग से। जो भी हो, उस दिन ज्वर के कारण अपनी परास्त अवस्था में शोभना को देखकर मुझे ऐसा लग रहा था जैसे लाखों युगों के दीर्घ व्यवधान के बाद मेरे पिछले जन्मों के समस्त स्नेह-सम्बन्धियों की आत्माएँ शोभना के रूप में संयुक्त होकर मुझे नव-जीवन प्रदान करने के लिये मेरे सिरहाने आ विराजी हैं। मेरी आँखें भर आयीं। जब शोभना थर्मामीटर निकालने के लिए नीचे झुकी तब मेरा सजल आँखें देखकर अत्यन्त करुण भाव से बोली— आपको क्या बहुत दर्द मालूम हो रहा है ?' मैंने केवल सिर हिला दिया—बोलने से मेरे रुँधे हुए गले से निकली हुई आवाज मेरी भीतरी कमजोरी को कहीं और स्पष्ट न कर दे इस भय से।

"वह और अधिक कातर-सी हो उठी। बोली— दर्द कहाँ हो रहा है, सिर में ?' मैंने फिर सिर हिलाकर बताया कि सिर ही में दर्द हो रहा है। उसने एक क्षण में थर्मामीटर देखकर उसे धोकर खोल में बंद कर दिया और फिर मेरे सिरहाने बैठकर धीरे धीरे अपनी स्निग्ध कोमल

चुके हैं कि एक दिन के लिये भी अगर आपसे साहित्यिक चर्चा बंद हो जाती है,तो उन्हे खाने की ही रुचि नही रह जाती। पर आप तो अचानक और अकारण हम लोगों से ऐसा नाराज हो उठे हैं कि आज चार दिन से एक बार भी आपने हम लोगों के यहाँ पधारने की कृपा नही की। हम लोगो से आप नाराज रहें, इसकी कोई शिकायत मैं कभी नही करूँगी, पर बाबूजी ने आपका क्या बिगड़ा है?' और उसका अभिमान भरा स्वर सहसा आँसुओ के रूप में फूट पड़ा। तुम समझ सकते हो रजन, उन आँसुओ की उपेक्षा सहज में सभव नही थी। तब तक मैंने उसके बाबूजी के साथ अपने हलमल को साधारण मैत्री के रूप मे लिया था जो मुझे प्रिय थी। पर उन आँसुओ ने उस मैत्री का जो मार्मिक रूप मेरे सामने रखा वह मेरे लिये एकदम नया था। मैंने फिर सरकार महाशय के यहाँ आना जाना आरभ कर दिया। उसके बाद एक दिन जब सध्या के समय हम सब लोग साथ बैठकर चाय पी रहे थे तब सहसा सरकार महाशय के शरीर में एक विचित्र प्रकार की ऐंठन-सी हुई और कुछ ही देर बाद वह मृत अवस्था में नीचे गिर पड़े। शोभना ने सिर पीट पीटकर सारा मकान सर पर उठा लिया। मैं डाक्टर लाने दौड़ा— यह जानते हुए भी कि सब व्यर्थ है। डाक्टर ने आकर क्षण भर के लिये देखा और दुख प्रकट करता हुआ बिना फीस लिये वापस चला गया।

"तब से उस मकान की सारी स्थिति ही मूलत बदल गयी। वहाँ पाँव रखते ही एक निराला—श्मशान का सा—सन्नाटा छाया हुआ मालूम होता। घर की सारी श्री ही जैसे नष्ट हो गयी थी। इतने दिनो तक केवल एक ही व्यक्ति के तेज से सारा मकान जगमगा रहा था। शोभना ता सूखकर एकदम काँटा हो गयी थी। मेरे दिलासा देने में कोई लाभ उसे नही हो रहा था। और सच बात यह थी कि सलेन्द्र बाबू का रख देखते हुए मैं उसे सच्चे हृदय से दिलासा भी नहीं दे पाता था।

'इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया। एक दिन मुझे जाडा लग क बड़े जोरों से ज्वर आ गया। टेम्परेचर १०६ डिग्री तक चढ गया रात भर मुझे होश नही रहा। सुबह आँख खुलने पर जब मैंने अपने होश में पाया तब देखा कि शोभना मेरे सिरहाने बैठी हुई मेरे म

पर अपना हाथ रखे हुए थी। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। मैंने पूछा—'तुम किस समय आयी? तुम्हें कैसे खबर लग गयी?' ज्वर के खुमार में मैं उसे 'तुम' कहकर संबोधित कर बैठा था। वह मंद-मंद मुस्करायी। धीरे-से बोली—'चुपचाप आराम करो, आपको इतनी सब बातें जानने की जरूरत क्या है? डाक्टर ने ज्यादा बोलने से मना किया है।' और वह तत्काल उठकर थर्मामीटर ले आयी। उसे धोकर, पोंछकर, झटकाकर मेरे हाथ में देती हुई बोली—'लो, जरा मुँह खोलो तो।' मैंने मुँह खोला और उसने एक हाथ से मेरी ठुड्डी धीरे-से पकड़कर दूसरे हाथ से मेरे मुँह के भीतर थर्मामीटर का निचला भाग 'फिट' कर दिया। उसके बाद अपने बाएँ हाथ में घड़ी देखती रहा। जब तक वह घड़ी देख रही थी तब तक मैं पूरी तन्मयता से उसकी ओर एकटक देखता रहा। एक अपूर्व स्निग्धता मेरे भीतर छा रही थी। अन-लुप्त कृतज्ञता का एक मार्म-मधुर भाव मेरे हृदय में उभर उठा। तुम तो जानते ही हो, मेरी माँ मेरे छुटपन में ही चल बसी थी और किसी बहन के स्नेह का भी सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं रहा। पिताजी बहुत अधिक स्नेह करते थे, पर अपने स्वभाव के अनुरूप गुरु-गंभीर ढंग से। जो भी हो, उस दिन ज्वर के कारण अपनी परास्त अवस्था में शोभना को देखकर मुझे ऐसा लग रहा था जैसे लाखों युगों के दीर्घ व्यवधान के बाद मेरे पिछले जन्मों के समस्त स्नेह-संबंधियों की धारणाएँ शोभना के रूप में संयुक्त होकर मुझे नव-जीवन प्रदान करने के लिए मेरे सिरहाने आ विराजी हैं। मेरी आँखें भर आयीं। जब शोभना थर्मामीटर निकालने के लिए नीचे झुकी तब मेरी सजल आँखें देखकर अत्यन्त करुण भाव से बोली—'आपको क्या कहीं दर्द मालूम हो रहा है?' मैंने केवल सिर हिला दिया—बोलने से भर रुँधे हुए गले से निकली हुई आवाज मेरी भीतरी कमजोरी को कहीं और स्पष्ट न कर दे इस भय से।

"वह और अधिक व्याकुलित हो उठी। बोली—'दर्द कहाँ हो रहा है सिर में?' मैंने फिर सिर हिलाकर बताया कि सिर ही में दर्द हो रहा है। उसने एक क्षण में थर्मामीटर देखकर उसे धोकर खोल में बंद कर दिया और फिर मेरे सिरहाने बैठकर धीरे धीरे अपनी स्निग्ध कोमल

हथेलियों से मेरे कपाल पर हाथ फेरने लगी। वैसा सुख, वैसी शान्ति जीवन में मैंने और कभी पायी है, मुझे स्मरण हीं आता। कुछ देर बाद वह बोली—'अब कुछ अच्छा हुआ दर्द?' ने फिर सिर हिलाकर जताया कि हाँ अच्छा हो रहा है। उसके बाद रि—बहुत धीरे—से उसने मेरा सिर उठाकर अपनी गोद में रख या। बोली—"तुम्हारा तकिया भी तो ठीक से नहीं लगा हुआ है। र दर्द का यह भी एक कारण हो सकता है। टम्परेचर तो इस समय लकुल नहीं है। और फिर धीरे धीरे सिर पर, कपाल में और गालों में रे धीरे अपना स्नेह सुकोमल हाथ फेरती रहीं। जब मेरा विश्वस्त र पुराना नौकर लखन आया तब भी उसने अपनी गोद पर से मेरा र नहीं हटाया। पूरे अधिकार के साथ बोली— लखन तुलसी और ली मिर्च डालकर बढ़िया-सी चाय बनाओ बाबू के लिये। दूध ज्यादा लना। दूध की ओर से मुझे एकदम अरुचि हो गयी थी। मेरी जबान हुत देर बाद खुली। मैंने कहा— नहीं नहीं दूध बिलकुल न डालना। दी चाय।' वह बोली— तुम चुपचाप लेटे रहो तुम्हें बोलना मना है। ओ लखन, दूध काफी रहे।' जो हुकुम सरकार। कहकर लखन ला गया। मैं चुपचाप जिल्ली की तरह दुबका हुआ लेटा रहा। कुछ बाद जब चाय आयी तब शोभना ने धीरे से अपने घुटनों का सहारा ो हुए मुझे उठाया। मैं स्वयं उठ सकता था पर उसके सहारे उठने में के अधिक सुविधा मालूम हो रही थी। शीशे के ग्लास में एकदम सफेद ाय जब मैंने देखी तो मेरा जी मितला उठा। मुंह बिचकाते हुए मैंने हा— इसे मैं नहीं पी सकूंगा। 'वाह यही तो आज तुम्हें पीना है, यह से हो सकता है! तुम अपने आप नहीं पीयोगे तो तुम्हारे मुंह के भीतर म्मच ठूसकर जबर्दस्ती पिलाना होगा। बोलो चम्मच ठूसना पसन्द है सीधे सीधे पियोगे? सीधे-सीधे पीने के सिवा मेरे लिये दूसरा चारा ही था। जब मैं चाय पीकर लेट गया तब वह बोली— तुम अब चुप प आराम करो, मैं अभी आती हूं।' उसके जाने के बाद लखन कमरा फ करने के लिये आया। मैंने धीरे से पूछा—"शोभना क्या चली ी? वह बोला—'नहीं गुसलखाने गयी हैं।' मैंने फिर पूछा— वह

कब आयी थी? वह सिर खुजलाने लगा। मैंने कहा—'बताता क्यों नहीं!' वह उसी तरह सिर खुजलाता हुआ बोला—'भैया, बिटिया रानी ने बताने से मना किया है।' 'बिटिया रानी को कुछ पता न चलेगा, तू चुपचाप बता दे।' दाँत निपोरते हुए वह बोला—'भैया, कल शाम को जब तुम्हारी तबीयत बहुत खराब हो गयी और बुखार इतना चढ़ गया कि तुम एकदम बेहोश हो गये तब मैं घबरा उठा। इसी घबराहट में मैं और कोई उपाय न देखकर सीधे बिटिया रानी के पास चला गया। बिटिया रानी ने कहा—मैं अभी तुम्हारे साथ चलती हूँ। और अपने नौकर को बताकर कि वह रात में शायद घर न लौट पावें, मेरे साथ चली आयीं।' मैंने पूछा—'बाबू क्या घर पर नहीं थे?' वह बोला—'थे, पर बिटिया रानी ने उनसे कुछ न कहा और नौकर को बता दिया कि वह कहाँ जा रही हैं।' मैंने कहा—'तुम निरे गँवार हो, उन्हें जरा-सी बात के लिए तकलीफ देने की जरूरत क्या थी!' मेरी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि सहसा शोभना भीतर प्रवेश करती हुई बोली—'क्या चर्चा हो रही है लखन के साथ? मैंने आराम करने के लिए कहा था, पर तुम आदत से लाचार मालूम होते हो।' तो लखन बाहर चला गया। मैं चुपचाप चादर के भीतर दुबक कर लेट गया।

"दिन में डाक्टर आया। बड़ी तीखी दवा दे गया। शोभना के डर से मुझे उसे बरबस गटकना पड़ा। उस दिन शाम को फिर ज्वर आ गया—उसी तेजी के साथ। तीसरे दिन ज्वर एकदम उतर गया। शोभना दिन रात भर पास बैठी रही। उसके घर से दो-तीन बार नौकर बुलाने के लिए आया, पर उसने साफ शब्दों में कहला दिया कि 'शरत् बाबू की तबीयत खराब है, जब तक एकदम अच्छे नहीं हो जाते तब तक मैं न आ सकूँगी, भैया से कह देना।' मैं जानता था कि शरत् बाबू पर इन सब बातों का क्या प्रभाव पड़ेगा। मैंने एक आध बार उससे घर जाने के लिए अनुरोध भी किया पर उसने मीठी डाँट बताते हुए मुझसे साफ कह दिया—'आपको हम लोगों के बीच में बोलने का कोई अधिकार नहीं है।' पिछले दो दिनों से बड़े सहज भाव में मुझे 'तुम' कहने लगी थी और व्यंग्य या नाराजगी में 'आप'।

"शैलेन्द्र बाबू एक दिन के लिये भी मेरी तबीयत का हाल जानने के लिये नहीं आये। जब मैं स्वस्थ होकर उठने-बैठने ा तब शोभना अपने यहाँ चली गयी। पर उसी शाम को फिर मेरे ाँ चली आयी। उसका चेहरा इस कदर मुरझाया हुआ था कि लगता जैसे किसी ने स्याही पोत दी हो। अपने आँचल से उसने निश्चय ही स्याही का पोछन का बहुत प्रयत्न किया होगा, पर फिर भी उसके ह स्पष्ट वर्तमान थे। आते ही चुपचाप मेरे कमरे में एक सोफा पर गयी—निश्चल पाषाण मूर्ति की तरह। मैं जैसे पहले ही से उस यति के लिए तैयार बैठा था। उसके एकदम निकट बैठकर मैंने कहा—ोभना, तुम्हें क्या हो गया है? भैया ने कुछ कहा था?' उसने केवल र हिलाया और चुपचाप आँसू गिराने लगी। मैंने कहा—'देखो, आँसू राना बेकार है। तुम अब काफी सयानी और बालिग लड़की हो। पने जीवन के निर्माण के सम्बन्ध में तुम जो कुछ भी कदम उठाना चित समझती हो, उसके लिये तुम्हारे आगे खुला मार्ग है। तुम्हारी इस तन्त्रता में रुकावट डाल सकने का न किसी को अधिकार है, न सम ता।' वह सहसा सीधे बैठ गयी और कहने लगी—'पर कोई भाई सी बहन के लिये इस तरह के हीनता भरे शब्द कैसे काम में ला सकता मैं यहाँ मान रही हूँ, वीरेन्द्र बाबू। जब से पिता जी की मृत्यु हुई तब मेरे प्रति उनका घोर उपेक्षा का व्यवहार चलता आ रहा था, पर ससे मैं कभी दुःखित नहीं हुई। उनके स्वभाव की इस विशेषता से मैं हले ही से परिचित थी, और उसे सहन के लिये तैयार बैठी थी। पर आज उन्होंने जिस प्रकार की बाजारू भाषा में गंदी से गंदी, कटु से कटु और कठोर से कठोर बातें मेरे खिलाफ कहीं और अत्यन्त घृणित लाछन मुझ पर लगाये उन्हें सहन कर सकने की समर्थता मुझ में नहीं है। मैंने नेश्चय कर लिया है कि चाहे मुझे अनाथालय में जीवन बिताना पड़े, चाहे उससे भी गंदी जगह में, अपने भाई के यहाँ मैं अब किसी भी हालत में एक क्षण के लिये भी नहीं रह सकती।' नारीत्व के चरम अपमान से क्षुब्ध उसकी बड़ी बड़ी आँखों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें निरन्तर मोती ढुलकाती चली जाती थीं। तब तक मेरे कायर मन ने कुछ भी निश्चय

नहीं किया था। उसकी उस अन्तिम मर्मोक्ति से मेरी सारी कायरता और अनिश्चतता पल में छूमतर हो गयी और मैंने पूर अधिकार भरे स्वर में कहा—'तुम आज से इसी घर की मालकिन होकर रहोगी, शोभना। तुम्हें कहीं जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह आंचल से चुपचाप आँसू पोछने लगी—बोली कुछ भी नहीं। पर उसके उस कुछ न बोलने से मुझे बहुत बड़ा बल मिल गया। दूसरे ही महीने हम दोनों का विवाह हो गया। यही संक्षेप में मेरे विवाह का इतिहास है। और वीरेन्द्र ने एक लंबी सांस ली।

44

मैं स्तब्ध भाव से, पूरी तन्मयता से उसका वह भावुकता के रस में सराबोर विवरण सुन रहा था। उसके और शोभना भाभी के जीवन के कुछ नये ही पृष्ठ मुझ से परिचित होने के कारण मैं एक नयी ही दृष्टि से उसे देखने लगा था। मेरी चितना का तार तोड़ते हुए वह बोला— 'किस बात से किस बात की चर्चा आ पड़ी भावुकता के बहाव में मैं न जाने क्या-क्या कह गया, मुझे याद नहीं है। पर चर्चा चल रही थी वचना का लेकर। अब तुम्हीं सोचो, जिस निधि को मैंने इतने यत्नों से एसी भीषण परिस्थितियों में प्राप्त किया है उसे भरपूर खतरे में डालकर केवल मात्र अपने दो अत्यन्त सुकुमार परों के बल पर खड़े होने के लिए, अचिन्तनीय संघर्षों और जटिल उलझनों के बीच दुर्गम पथ पर उसे अकेले छोड़कर मैं इस युग की उलटी-सीधी राजनीति की चलती चक्की के बीच में कूद पड़ूँ!

मैंने कहा— 'तुम तो जन आन्दोलन में भाग लेने की बात कह रहे थे। यह उलटी-सीधी राजनीति की चलती चक्की कहाँ से आ गया?"

मुझे एसा लग रहा था कि जन आन्दोलन में भाग लेने की इच्छा

जताकर वह आज के युग की उसी फ्रस्ट्रेशन मनोवृत्ति का परिचय दे रहा है जो आजकल के नवयुवकों में आमतौर से पायी जाती है। इसीलिये मैं कुछ खीझकर उससे उसके मन का भाव स्पष्ट स्वीकार करा लेना चाहता था। तब मुझे पता नहीं था कि वही कोई एक वास्तविक पीड़ा उसके प्राणों को झकझोर रही है और अपने तत्कालीन बद्ध, सीमित जीवन के प्रतिदिन के वचियहीन घिसे पिटाये कार्यक्रम से वह ऊब उठा है। तब तक मैं यह ताड़ नहीं पाया था कि सेवा और त्याग की जो प्रवृत्तियां उसमें छुटपन से परिस्फुट होने लगी थी वे अब विकास के लिये चारों ओर का रास्ता बन्द पाकर किसी विद्रोहात्मक विस्फोट के लिए बेचैन हो उठी हैं। यह जानना अभी मेरे लिए शेष था कि उसका वह सारा सेवा मूलक मनोभाव पिछले कुछ वर्षों से केवल एक ही व्यक्ति की सेवा और संरक्षण में केन्द्रीभूत और सीमाबद्ध हो उठा है। वह सीमाबद्धता प्रारम्भ में भले ही उसके परिपूर्ण आत्म-सौख्य का कारण बनी हो, अब वह प्रतिपल जैसे उसे खा रही थी, पर उसकी अंतर्गति की वह अड़चन अत्यन्त संकीर्ण और सीमित होने पर भी हिमालय की भी अपेक्षा अधिक दुरध्य सिद्ध हो रही थी, यह अन्तर रहस्य तब मेरी समझ में नहीं आया था—उन पर मेरा ध्यान ही नहीं गया था।

मेरा प्रश्न सुनकर वह भी जैसे कुछ तिलमिला उठा। एक स्वर में बोला जैसे अपनी उत्तेजना को भरसक दबाने का प्रयत्न कर रहा हो—'जन आन्दोलन में भाग लेना ही तो उलटी सीधी राजनीति की चलती चक्की के बीच कूद पड़ना है। इतनी सीधी सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आ रही है, आश्चर्य है! इसका कारण शायद यह है कि तुम प्रत्यक्ष में इस युग में जीवन बिताने पर भी वास्तव में उन्नीसवीं सदी के स्वप्नों में डूबे रहते हो। अरे भाई जन आन्दोलन आज के युग में कोई सीधा सा तथ्य नहीं है। पहली बात तो यह है कि जन आन्दोलन के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में हमारे देश में एकमत नहीं है। कांग्रेस वाले कहते हैं कि चूंकि हम गांधी जी के बताये मार्ग पर चल रहे हैं और किसानों और मजदूरों के वास्तविक हित का चिंतन हमारे प्रमुख ध्येयों में से एक

है, इसलिये हमारा पिछला आदोलन ही जन आदोलन था,
और आज हम उसी आदोलन के पूरक रूप को अप-
नाये हुए हैं—अर्थात् राष्ट्र-संगठन को। समाजवादी काग्रेसियों की इस उक्ति को ढोग से भरी और स्वयंभू देशनताओ की चालबाजी बताते हैं। कहते हैं कि यह उनकी आत्मरक्षा का एक हथकडा मात्र है। उनका यह विश्वास है कि देश की जनता का वास्तविक उद्धार यदि सच्चे अर्थों में किसी उपाय द्वारा हो सकता है तो वह केवल समाजवादी शासनक्रम द्वारा। कम्युनिस्ट समाजवादियो को काग्रेस की अपेक्षा भी अपना कट्टर शत्रु समझते हैं। दोनो अपने उद्देश्यों म जरा दृष्टि म बहुत निकट दिखाई देन पर भी एक-दूसरे स कोसों दूर हैं। कम्यूनिस्टो का यह विश्वास है कि काग्रेसी और समाजवादी दोनो जनद्रोही हैं और व दोनो जनता को केवल अपने नेतृत्व की नीव की ईट बनाने के फेर म हैं और बदली हुई दुनिया के नक्शे को जनता की आखो स न देखकर अपनी ही महत्वा-कांक्षा की आंखो से देख रहे हैं।

"तुम्हारा अपना क्या विश्वास है मैं यह जानना चाहता हू , मैंने कहा। तुम जिस जन आदोलन के बीच म कूदने की बात सोचा करते हो उसका क्या आदर्श तुम्हारे सामने है ? तुम्हारे उस आदर्श आदोलन का अस्तित्व कहा है भी या नहीं ?

वह मुस्कराया। बडी ही गम्भीर किंतु स्निग्ध और करुण मुस्कान स वह बोला—"पहले मेरी बातें पूरी तो सुन लो। जहाँ तक कम्यूनिस्टो का प्रश्न है, व एक विश्वव्यापी समस्या हैं। यह ठीक है कि उनके भीतर व्यक्ति गत नेतृत्व या व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा की भावना उस हद तक वर्तमान नहीं है जिस हद तक दूसरे दलो म। उनम त्याग की भावना दूसरे दलवालो की अपेक्षा अधिक है। यह उनका सबसे बडा अस्त्र है। अपने उद्देश्य की उप-लब्धि के लिये व कोई भी उपाय काम मे लाने को तैयार हैं—अपने प्राणों का बलिदान करने स लेकर दूसरो के प्राणो की बलि देने तक। पर राष्ट्रीयता स उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने अपने उद्देश्य को तनिक भी छिपाया नहीं है। अतरराष्ट्रीय प्रोलतरियन राज्य की स्थापना म सहयोग देना ही उनका—हमारे भारतीय

कम्यूनिस्ट भाइयो का—प्रायमिक ध्येय है। दूसरे देशो के
४ कम्यूनिस्टो के ध्येय म और उनके ध्येय मे धीरे धीरे स्पष्ट
आता चला जा रहा है, और उनके ध्येय म भी एक न एक दिन
आयगा, यह निश्चित है। दूसरे देशो के कम्यूनिस्ट आर्थिक व्यवस्था
ध मे मार्क्सीय सिद्धातो के अनुयायी होने हुए भी अतर राष्ट्रीय
स्ट सघ के प्रति अपने को उस हद तक उत्तरदायी नही मानते
हद तक अपने राष्ट के प्रति। चीन इसका सुस्पष्ट उदाहरण है।
कम्यूनिस्टो ने मोटी बातो म मार्क्सीय सिद्धातों को अपनाया है, पर
विषयो मे राष्ट्रीय उन्नति का दृष्टिकोण ही उनके सामने प्रमुख
। उनका यह राष्ट्रीय दृष्टिकोण उन्नीसवा सदी की सकीर्ण बूर्जुआ
यता से एकदम भिन है। व्यापक रूप से वह अतर राष्ट्रीय जन-
त पर ही आधारित है—पर अपनी मिट्टी की विशिष्ट सत्ता को
कायम रखते हुए। जो सास्कृतिक तत्व किसी वग विशेष से सब-
ही हैं और मानव की विश्वव्यापी अतर और वाह्य प्रगति के मूल
त स्वरूप हैं उन्हें अपनाकर उन्हें एक एसा नया प्रगतिशील रूप
लिये चीनी कम्यूनिस्ट नेता उत्सुक जान पडते हैं जो मानव जाति
निश्चित और वास्तविक उन्नति के अग्र स्तर पर लाकर खडा
क। उनका उद्देश्य जनता को उच्चतम आर्थिक और सास्कृतिक
क ऊपर उठाना है न कि उच्चतम आर्थिक और सास्कृतिक स्तरो
नता क स्तर तक नीचे घसीटना"
यह देखकर चकित था कि राष्ट्रीय और अतर राष्ट्रीय राजनीतिक,
और सास्कृतिक समस्याओ के सबध म कैसे आत्म विश्वास के
वह बातें करने लगा था।
ने कहा—"उच्चतम आर्थिक स्तर से तुम्हारा आशय क्या है?
क्या आदर्श तुम्हारे सामने है? क्या तुम चाहते हो कि समाज का
व्यक्ति पूजीपति बन जाय?"
ह फिर हँसा, बोला—"तुम्हारा यह प्रश्न बिलकुल बच्चो जसा
जी का सचय कही किसी भी रूप म हो वह समाज की सहज
विक सरल डोर के बीच म उलझी हुई गाँठें उत्पन्न कर देता है।

और, फिर, प्रत्येक व्यक्ति पूंजीपति हो ही नही सकता।
एक पूंजीपति का भाडार भरने के लिये हजारो—लाखो—
पूंजी रहित व्यक्तियो की आवश्यकता है। मेरा आदर्श यह है कि राष्ट्र की—बल्कि विश्व की—उत्पादक शक्तिया का विकास अधिक से अधिक सभावना तक पहुँच जाय और उस परिपूर्ण उत्पादन का उपयोग समग्र जनता सम भाव से करे। राष्ट्र की सामूहिक पूँजी का नियत्रण और सम विभाजन राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधियो की एक विश्वसनीय सस्था करे। जिस दिन ससार के सभी राष्ट्रो की जनता इस आदर्श के महत्त्व से परिचित हो जायगी, उसकी एकात आवश्यकता का अनुभव करने लगेगी, उसकी प्राप्ति की ओर सच्ची लगन से प्रयत्नशील हो उठेगी, उस दिन उसकी उपलब्धि के लिये उपयुक्त, सहज और सीधे उपाय भी अपने आप उसके आगे प्रकट हो जायेंगे, और फिर कोई भी प्रतिरोध उसके उस सामूहिक कल्याणकारी माग मे ठहर नही सकेगा

वीरेन्द्र ने बरबस मुझे राजनीतिक और आर्थिक समस्याओ से सबधित विवाद म जैसे घसीट लिया था। मैं उसकी बातो म, उसके तर्कों म पूरी दिलचस्पी लेने लगा था।

मैंने कहा—"जिन देशो म इस आदर्श की उपलब्धि हो चुकी है वहाँ क्या, तुम्हारे दृष्टिकोण से, जनता की समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति हो गयी है?'

'अभी तक किसी भी देश म इस आदर्श की उपलब्धि नहीं हुई है,' वीरेन्द्र ने दृढ, गभीर स्वर म कहा, "जिन देशो म ऊपरी तौर से इसकी उपलब्धि हुई मालूम होती है वहाँ कई एसी भीतरी उलझनें उत्पन्न हो गई हैं जो समग्र समाज को सम-सूत्र मे बाँध नही पा रही हैं। समानाधिकार और सम आर्थिक व्यवस्था के स्वप्न का सत्य होना तो दूर रहा, सम भाजन-व्यवस्था की समस्या तक अभी तक कोई देश—सिवा इस्तथा रूस को छोडकर—सुलझा नही पाया है। यह विषमता अन्तर राष्ट्रीय सघर्ष का परिणाम है सन्देह नही, पर किसी भी कारण से हो, वह है। इस विकट समस्या का—सम आर्थिक विभाजन का समाधान तभी हो सकता है जब सारे विश्व की जनता सम-व्यवस्था के यथार्थ महत्त्व का

समभकर न्यायोचित, व्यावहारिक और सात्त्विक उपायों से उसकी उपलब्धि की ओर संलग्न हो। विश्व की वर्तमान अशान्ति के मूल में अन्तर राष्ट्रीय राजनीतिक और आर्थिक अव्यवस्था और विषमता ही है, इस ज्वलंत तथ्य को स्वयं पूंजीपति भी किसी हद तक स्वीकार करते हैं। इसलिये इस विषमता का निराकरण भावी विश्व शांति और विश्व मानवता के सामूहिक कल्याण का मूल आधार सिद्ध होगा। पर प्रश्न यह है कि किन उपायों से और किस नयी सामाजिक व्यवस्था के रूप में यह उद्देश्य सम्भव हो सकता है

मैंने कहा— अगर इसी उपाय से मानवता का सामूहिक हित होने की सम्भावना है तो रूस में इस समस्या का समाधान हो चुका है। जो सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था वहाँ कायम हो चुकी है और परखी जा चुकी है, वही सभी राष्ट्रों के लिये अनुकरणीय होनी चाहिये।

'मैं मानता हूं कि यह बात बहुत-कुछ अंशों तक सही है। पर यदि यह पूर्णतया सही होती तो फिर परेशानी का कोई कारण न रह जाता। जनता का पक्ष लेने वाले उत्पादन के नये विभाजन का अपना आदर्श माननेवाले दलों के बीच उस पारस्परिक वैमनस्य और मतभेद का लेश न रह जाता जो आज बड़े करारे रूप में पाया जाता है। वास्तविकता यह है कि रूस में जिस दिन गणतन्त्र की स्थापना हुई है तब से लेकर आज तक वहां सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था-सम्बंधी इतने विभिन्न प्रयोग किये जा चुके हैं कि उनमें कौन मार्ग समग्र विश्व की दलित, पीड़ित और शोषित मानवता के उद्धार के लिये यथार्थ में उपयुक्त है इसका निर्णय अभी तक कोई नहीं कर पाया है। रूस में गणतंत्र की स्थापना हुए तीस वर्ष से अधिक हो चुके। इन तीस वर्षों के भीतर विभिन्न प्रयोगों के बाद आज रूस की वास्तविक स्थिति क्या है? आज भी वह बहुत सी ऐसी भीतरी और बाहरी उलझनों में उलझा हुआ है जो उसके पृथ्वी पर स्वर्गीय राज्य की स्थापना के आदर्श को पूर्णतया सफल नहीं होने दे रही हैं। इन उलझनों के लिये रूसी जन-सरकार और जन-नेता दोषी हैं ऐसा मैं नहीं मानता। इसके लिये भी विश्वव्यापी सामाजिक और आर्थिक विषमता ही उत्तरदायी है, जो उसे प्रगति के पथ पर योजना-

नुसार बढे चलन से रोक रही है। पर कारण चाहे जो भी हो, ऐसी व्यवस्था भी अभी सामूहिक मानवीय उन्नति के अंतिम सत्य तक नही पहुँच पायी है, मुझे ऐसा लगता है हालांकि उसका भविष्य बहुत उज्वल है।"

वीरेन्द्र आवेग के साथ बोल रहा था जिसमे उसका सारा शरीर हिल रहा था। वह बेंच पर बठा-बठा नीचे की ओर खिसक गया था। वह सीट पर से कुछ उठकर बेंच की पीठ पर अपनी पीठ ठीक से अडाकर सभलकर बैठ गया। मैं इस सारी नीरस चर्चा से ऊब गया था और उत्सुकता से सामने बरामदे की ओर देखता हुआ मनिया और शामला भाभी के नीचे आने की प्रतीक्षा कर रहा था। काफी देर हो चुकी थी पर दोनो अभी तक भीतर ही जमी हुई थी। यद्यपि यह सोचकर मुझे प्रसन्नता हो रही थी कि दोनो देवरानी-जेठानी में पहले ही दिन अच्छी घुटन लगी है, फिर भी मेरी अधीरता बढती जाती थी। वीरेन्द्र की वाग्धारा जब कुछ रुकी तब मैंने कहा— 'अभी तक मनिया और भाभी नीचे नहीं आयीं!'

वीरेन्द्र ने मेरा प्रश्न अत्यन्त अन्यमनस्क भाव से सुना। बोला— 'अभी आती ही होगी। लेकिन यह देखकर आश्चर्य होता है कि जिन देशों में जननाति द्वारा प्रतिक्रियात्मक शक्तियाँ परास्त हो चुकी है और जन शासन का आरंभ हो चुका है वे गणतंत्रीय सिद्धान्तों को अपनाते हुए भी अपनी राष्ट्रीय मिट्टी की विशिष्टता की नींव पर ही अपनी नयी-शासन व्यवस्था को आधारित कर रहे हैं। चीन इसका सबसे ताजा उदाहरण है। पर मुझे इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं लगता।

मैं इस हद तक ऊब चुका था कि सारी चर्चा को परिहास में टालने की इच्छा हो रही थी। इसके अतिरिक्त वीरेन्द्र किस प्रकार अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक प्रश्नों की उलझन में उलझता चला जा रहा है यह देखकर मुझे सचमुच हँसी आ रही थी। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए मैंने कहा— 'तुम किन चक्करों में व्यर्थ के लिए उलझते चले जा रहे हो मित्र कुछ समझ में नहीं आता। सारा जीवन भी अगर इन जटिल गुत्थियों को सुलझाने के प्रयत्न में बिता दोगे तो भी अपने को वहीं पाओगे जहाँ से

 आगे बढे थे। इस भूलभुलैया के फेर मे पडकर क्या फिज़ूल मे परेशान होते हो ? यह तुम्हारा क्षेत्र नही है, चला भोज खायें।" कहकर मैं उठने लगा।

वीरेन्द्र ने मेरा हाथ पकडकर एक हलके झटके से मुझे फिर बिठा दिया। मेरी स्पष्टोक्ति से वह निश्चय ही प्रसन्न नही हुआ था। वह भरे स्वर म बोला—"तुम तो हो बस्कल नवर के बो। बठो जरा इतने वर्षों बाद तुमसे भेंट हो पायी है। मन के भीतर प्रतिदिन न जाने कितने तरह तरह के विचित्र प्रश्न अनोखी समस्याएँ उठती रहती हैं। किसी के आग उन्हें प्रकट करने का सुयोग ही नही मिलता। ना के आग इन विषयो की चर्चा नही जम सकती, यह तुम मान ही लो। मेरा मित्र मडली बहुत सीमित है। जिन लोगो से मिलना जुलना है उनके आग अपने मन के भीतर द्वन्द्व मचाने वाली बातो का व्यक्त नही किया जा सकता। न उनम इन सब विषयो का समझने की बुद्धि ही है, न रुचि। और न मेरे प्रति वे इतने महानुभूतिशील जी खोलकर उनके आगे अपने विचार प्रकट कर सकूँ। इसलिए तुम्हें पाकर इतने दिनो से मन के भीतर जमी हुई बातो का बाँध खोल देने की इच्छा होती है। आजकल मुझे न जाने क्या हो गया उठते-बठते जागते-जागते विश्व व्यवस्था स सबधित इन्ही सब विषयों को सोचता रहता हू। एक प्रबल विचार भूत की तरह मेरे सिरे पर सवार हो गया है। वह विचार अभी स्वय मेरे ही आग स्पष्ट नही हो पाया है पर इतना निश्चित है कि मेरी वतमान सामाजिक और आर्थिक स्थिति एक विचित्र ग्लानि की कच्ची भावना के बिच्छुओं की तरह प्रतिपल डक मारती है। लगता है जैसे मैं घोर अपराधी हूँ, घोर अन्यायी हूँ, समाजघाती हूँ, और सकडो मरभुखा के मुहँ का कौर छीनकर मोटा बना हुआ हू। तक से इस तरह की बात कोई भी समझदार व्यक्ति सिद्ध किये सोच सकता है। पर यहाँ पर मेरे लिये तक या सिद्धान्त का प्रश्न नही है। यह तो जसे किसी अज्ञात और अदृश्य शक्ति का है जो अपने रहस्यमय शिकजे म केवल मेरे मन या ही मस्तिष्क को, मेरे शरीर की नसो को भी जकडता चला जा

यह अदृश्य पीडन कैसा निष्ठुर और कैसा मर्मघाती है, यह मैं तुम्हे कैसे समझाऊँ। जीवन मे इसके पहले इस तरह की आतकजनक ग्लानि का अनुभव मुझे कभी नही हुआ। तर्क और विवेक मुझे इस अनुभूति से छुटकारा देने के बजाय उसे और अधिक तीखा बनाते जाते हैं, जैसे वे भी उस अनुभूति के ही अविच्छिन्न अग बन गये हो। मेरी उलझन को सुलझाने मे मेरा विवेक तनिक भी मेरी सहायता नही करता। मैं तुम्हारे उस मतव्य की ताईद करता हूँ जो तुमने कभी दिया था। मुझे भी लगता है कि अगर मैं अपना सारा जीवन भी इन जटिल गुत्थियो को सुलझाने के प्रयत्न मे बिता दूँ तो और अधिक उलझता ही चला जाऊगा, सुलझा कुछ भी नही पाऊँगा। पर चाहने पर भी अपनी इस वर्तमान मानसिक उलझन से छुटकारा पाना मेरे लिये असभव है यह मैं जान गया हूँ। इसकी परिणति कब, कहाँ किस रूप मे होगी, यह मैं नही जान सकता। पर रह रहकर एक आशका मेरे मन मे भूत की तरह सवार हो गयी है। वह यह कि मैं—चाहे पूरे पागलपन की स्थिति से अपने को बचाने के लिये, चाहे और किसी कारण से—एक-न एक दिन निश्चय ही आग मे कूद पडूगा—ठढे मस्तिष्क से, शात विवशता से नही, बल्कि किसी अनजाने भावावेग के धक्के से। पर यह न मैं जानता हू न कोई दूसरा व्यक्ति ही अनुमान लगा सकता है कि कौन ज्वाला अपनी किन लपटो के आलिंगन मे मुझे खीच लेगी।"

४५ उसकी दोनो आँखे जैसे दहक रही थी। मुझे तत्काल बिजली के से प्रकाश से ऐसा लगा कि आग के जिस कुड की, जिस अज्ञात ज्वाला की बात उसने अभी कही है वह बाहर कही नही, स्वय उसके भीतर वर्तमान है। कस्तूरी मृग जिस

 प्रकार भ्रमवश बाहर सुगंधि की खोज में भटकने लगता है उसी प्रकार वीरेन्द्र भी सम्भवतः अपने भीतर की आग की खोज के लिये बाहर भटने के लिए उतावला हो उठा है। कुछ भी हो उसका उस समय का धधकता हुआ रूप देखकर मैं दहल उठा। सुबह बालीगंज की झील के किनारे जिस विनोदप्रिय वीरेन्द्र के अट्टहास से मेरे अपेक्षाकृत उदास मन की अंधेरी कदाराएँ एक निराले आनन्द की अनुभूति के साथ गूंज उठी थीं उस वीरेन्द्र में और इस वीरेन्द्र में कितना अन्तर था! जिस चर्चा से मैं ऊब उठा था और जिसे परिहास में टालने का प्रयत्न करते हुए मनिया और शोभना भाभी के बाहर निकलने की प्रतीक्षा में अधीर हो उठा था वह वीरेन्द्र के गहन गभीर रूप से मार्मिक और आन्तरिक भावोद्गार से दूसरे ही रूप में मेरे सामने आयी। यह जानकर कि उसके भीतर इधर भावों का जो नया तूफान उठा है अपनी यथार्थ सामाजिक स्थिति और अपने भाव जगत के भीतर उत्पन्न नये चेतना प्राप्त युगादर्श के बीच जिस प्रचंड संघर्ष के घात प्रतिघात उसके अंतर में चल रहे हैं वे उसके लिये जीवन मरण की समस्या का रूप धारण किये बैठे हैं। उसका वह अन्तसंघर्ष न तो ड्राइंग रूम के वाद-विवाद से संबंधित है न राजनीतिक मंचों से दिये जानेवाले, परस्पर छिद्रान्वेषी महत्त्वाकांक्षी नेताओं के भाषणों से। वह एक दूसरा ही पागलपन है जिसका संबंध युग चेतना से होने के साथ ही किसी गहरे अंतःस्फोट से भी है।

मैं सन्नाटा खींचे हुए उसके मुख की अभिव्यक्ति पर गौर करने लगा। कुछ देर अनमने भाव से मौन रहने के बाद वीरेन्द्र बोला—तुमने भी तो इन युग-समस्याओं पर कुछ सोचा होगा। आखिर तुम्हारी अपनी यथार्थ धारणा या विश्वास इस संबंध में क्या है? कुछ बताओ, शायद कोई रास्ता मेरे मन की गुत्थियों को सुलझाने का निकल आये?

उसकी दृष्टि में ऐसी आतरिकता और ऐसी व्याकुलता भरी हुई

थी कि मैं बड़ी भ्राति के चक्कर म पड गया । पर अबकी वार उसके प्रश्न को किसी तरह टाला नहीं जा सकता था ।

मैंने कहा—"मैंने जन्म से ही घोर बुर्जुवा परम्परा के बीच म पला हूँ—तुम्हारी ही तरह । तुम्हारे अनुभूतिशील मन मे युग चेतना का गहरा प्रभाव पड़ा है और उन जन्मजात सस्कारों के विरुद्ध विद्रोह जगा है, पर मैं इतना अनुभूतिशील नहीं हू । युग भावना के सम्बन्ध में मैं कभी विचार ही न करता होऊँ और युग चेतना के प्रति एकदम उदासीन होऊँ, ऐसा सभव नहीं है । पर उसने तुम्हारी तरह मेरे मन को झकझोर कर द्विधा विमुक्त नहीं किया है । म जब केवल तर्क की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करता हू तब मैं भी तुम्हारी ही तरह अपने को एसी उलझन म फँसा हुआ पाता हू कि तग आकर उस विषय की चिंता को ही त्याग देता हूँ । तब स मैं मानता हूँ कि सपत्ति का सम विभाजन होना चाहिये और कुछ विशिष्ट सुविधा प्राप्त व्यक्तियो का जीवन की साधारण मानवयन्त्रणाओ की पूर्ति क अतिरिक्त अर्थ-सचय का कोई अधिकार नहीं होना चाहिये जबकि लाखों करोड़ों व्यक्ति उन विशिष्ट व्यक्तियो का भण्डार भरते चले जाने के उद्देश्य म निरतर खटते रहने पर भी दो जून पेट भर भोजन मकान जुटाने की सुविधा भी न पा सकते हो । युग के साधारण से साधारण धनि और लेखक साधारण से साधारण राजनीतिज्ञ, साधारण म साधारण छात्र और साधारण से साधारण किसान मजूर तक इस सीधी-सी सचाई का महसूस करने लगे हैं । पर उलझन तब पैदा होती है जब इस सर्वस्वीकृत महत्त्व को कार्यरूप म परिणत करने के उपायो क सम्बन्ध म तरह-तरह के व्यक्ति और समूह तरह-तरह के मार्ग सुझाने लगते हैं और प्रत्येक दल या वर्ग अपने निर्धारित उपाय का अनुसरण अनिवार्य रूप मे आवश्यक मानकर दूसरे उपायावलबी व्यक्तियो या दलो को अपना और समाज का घोर शत्रु मानने लगता है । फल यह देखने म आता है कि सघर्ष या विषम भावित स्तरों के बीच उतना नहीं होता जितना दो विभिन्न उपायावलम्बी समाजवादियो के बीच । कम्यूनिस्टो और समाजवादियो के बीच विरोध की जितनी बड़ी दीवार खड़ी है उतनी मजदूरो और मिल मालिकों के

२६२ बीच भी नहीं पायी जाती, यह बात तुम भी मान चुके हो।

सर्वोदयवादी भी अपने को मानवों के समान अधिकार और संपत्ति के सम विभाजन के पक्षपाती बताते हैं। पर इस आदर्श की उपलब्धि के लिये जो मार्ग वे सुझाते हैं उनसे कम्यूनिस्ट और समाजवादी दोनों का मूलगत विरोध है। इन सब दलों की सारी शक्तियाँ एक-दूसरे का अस्तित्व मिटाने के प्रयत्नों में खर्च हो रही हैं। यह पारस्परिक संघर्ष ही जैसे सभी दलों का मुख्य ध्येय बन गया है और जो मूल लक्ष्य था—अर्थ और संपत्ति का सम विभाजन—वह गौण हो उठा है। और प्रत्येक दल अपनी महत्ता प्रमाणित करने के उद्देश्य से जो प्रयत्न और प्रयोग करता है उसमें बलि होते हैं मग्न और भावुक जन साधारण—चाहे वे निम्न मध्यवर्ग से संबंधित हों चाहे प्रोलेतेरियत वर्ग से। यही कारण है कि आज सारे राष्ट्रीय (और अंतर राष्ट्रीय) वातावरण में अंतर्विरोध, अंतर वैषम्य, अव्यवस्था, अशांति, असंतोष और उलझनों का तूमार बँधा हुआ है। मानवीय समानाधिकार, आर्थिक सम विभाजन, विश्व शांति और विश्व व्यवस्था की बड़ी-बड़ी, भारी भरकम बातें सर्वत्र सुनने में आती हैं, पर साथ ही सर्वत्र मानव की दानवीय शक्तियों को जगाने के उद्देश्य से भेरियाँ बजायी जा रही हैं, और नये खून के संचार से उन्मत्त और उद्भ्रांत व नवोत्थित दानवीय शक्तियाँ बिना किसी स्पष्ट उद्देश्य के आत्मघाती और विश्व विनाशी संघर्ष में कूदने फाँदने के लिये पागल प्रवेग से छटपटा रही हैं। इस छोटी-सी दुनिया में निवास करनेवाली, महाविश्व की तुलना में अति अल्प-अस्यक नगण्य मानवता अपने अत्यल्प ज्ञान, अति तुच्छ विज्ञान और अति विराट अभिमान के दंभ से मतवाली होकर आपस में ही छिन्न भिन्न होने के लिये उतावली हो उठी है। विभिन्न दलों की बिखरी हुई शक्तियों के संगठन और सहयोग से एक समान-कल्याणकारी लक्ष्य को सामने रखकर संगठित और सामंजस्यपूर्ण उपायों के समप्रयोग पथ को अपनाने की प्रेरणा देनेवाले महापुरुषों और महानेताओं का एकदम अभाव है। पूँजीवादी वर्ग अपनी अत्यल्प संख्या के स्वार्थ को सर्वोपरि महत्त्व देता हुआ अपनी जमीन के नीचे एकत्रित होने वाली विस्फोटक भूरपी शक्तियों के प्रति

कदम आँखें बंद किये बैठा है और अभी तक विश्व की गति का अथ और इति केवल पूंजी की अधिकाधिक वृद्धि ही मानता है। पूंजी विरोधी वर्ग प्रतिहिंसात्मक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर 'ध्वंस केवल ध्वंस के लिये' इस नीति का अनुसरण करते हुए चल रहे हैं, और ध्वंस के साधनों और रूपों के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण आपस ही में लड़ झगड़ रहे हैं। सांस्कृतिक वर्ग इतने दुर्बल और क्षीण पड़ गये हैं कि विभिन्न राजनीतिक गुटों के नक्कारखाने के ऊपर अपनी आवाज उठाने में एकदम असमर्थ हैं और किसी-न-किसी राजनीतिक या आर्थिक गुट के साथ अपने को सबद्ध किये रहते हैं। राष्ट्रवादी वर्गों का यह हाल है कि अपने अपने राष्ट्र की संकीर्ण चहारदीवारी के सीमित कूप के बाहर देख सकने योग्य न तो उनकी दृष्टि है न सामर्थ्य और न सुविधा। इस प्रकार संसार की समस्त राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ त्रस्त-व्यस्त हैं और शक्तियाँ छिन्न भिन्न। ऐसी हालत में कौन किसका क्या पथ सुझा सकता है? अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः!"

वीरेन्द्र अत्यन्त मनोयोग पूर्वक मेरी बातें सुन रहा था। जब मैंने अपने व्याख्यान का तार स्वयं तोड़ दिया तब उसने एक लम्बी साँस ली। उसके बाद उसका भावावेग सहसा फिर एक बार उमड़ आया। बोला—'तब क्या तुम्हारी राय में भूख से सतायी हुई, त्रिविध ताप से पीड़ित, अन्याय-दलित और निर्यातित मानवता के उद्धार के सभी प्रयोग निरर्थक हैं? जड़ता की जिस स्थिति में वह पड़ी हुई है उसी में उसे डूब रहने दिया जाय? जो कर्मवीर अपना सर्वस्व त्याग कर अपने प्राणों को हथेली पर रखकर सदियों के शोषण से निःसत्व, रुग्ण और मुमूर्षु जनता में जीवनी-शक्ति का संचार करने के प्रयत्नों में जुटे हुए हैं उनकी असहाय और अबोध अवस्था से लाभ उठाने वालों के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़काकर नयी चेतना जगा रहे हैं, उनकी साधना का क्या कोई मूल्य नहीं? संसार भर के जन आन्दोलन जिस नयी शक्ति से पुष्ट, नयी संस्कृति के अभिषेक से निखरे हुए सार्वकालिक, सार्वभौमिक समाज की स्थापना का कठोर व्रत लिये हुए हैं और अपने व्यक्तिगत सुख-दुखों को तिलाञ्जलि देकर, शोषित-

महासागर के उस पार—इसी पृथ्वी पर—स्वर्ग की स्वप्नभूमि को सत्य बनाने का बीड़ा उठाए हुए हैं वे सब क्या माया मरीचिका में भटके हुए मूर्ख सेनानायक हैं और अपने अनुयायियों को भेड़ों की तरह महाविनाश के अतल गह्वर की ओर ढकेलने लिये जा रहे हैं? वे लोग सब क्या अंध मोह से ग्रस्त हैं और यदि निर्मल अकलंकित दिव्य-दृष्टि रह गयी है तो वह केवल तुम्हारे और हमारे जैसे निकम्मे आलसी, आत्ममग्न, आत्माराम और आराम कुर्सी पर जमे हुए बूर्जुवा विचारकों के पास?'

वीरेन्द्र की आँखें जैसे जल रही थीं। उस समय जैसे उसके सामने उसका मित्र नरेन्द्ररंजन नहीं बैठा हुआ था। बैठा था मूर्तिमान शोषक समाज—अपने विचारों की समग्र संकीर्ण स्वार्थपरायणता, गंदगी और सड़न लिए हुए। और वह स्वयं जैसे वीरेन्द्र नहीं था। वह था सदियों से सताये और लौहचक्र में पिसे हुए दलित वर्गों की युग युग संचित प्रतिहिंसा का पुंजीभूत प्रतीक!

मैं स्तब्ध था।

वीरेन्द्र कहता चला गया— जैसा कि तुमने अभी स्वयं स्वीकार किया है, बूर्जुवा संस्कारों से तुम बुरी तरह घिरे हुए हो और उनसे छुटकारा पाना तुम्हारे लिये प्राय असंभव सिद्ध हो रहा है। इसलिये तुम्हारे जैसे बुद्धि विलासी के तर्कों का कोई मूल्य नहीं हो सकता। अगर तुम्हें सचमुच कोई नया कल्याणकारी पथ सुझाना है तो पहले अपनी सारी संपत्ति, झूठी मध्यवर्गीय और व्यक्तिगत सामाजिकता और व्यक्तिगत संबंधों का मोह त्याग कर समस्त बंधन काटकर मैदान में कूद पड़ो। जन-संपर्क में आकर, जनता के साथ एकप्राण होने का प्रयत्न करो। तब तुम जो भी सुझाव रखोगे उसका मूल्य होगा। याद रखो, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों—एक-न-एक दिन तुम्हें जनता से संपर्क स्थापित करना ही होगा। यदि अपने हठीले संस्कारों के कारण अपने वर्तमान भाव-जगत से मुक्त होने में असमर्थ रहोगे तो तुम्हारी सारी सत्ता घोर अपमान और अवमानना के बाद बुरी तरह मिटा दी जायगी।'

"अरे ये दोनों तो लड़ने लगे!" चौंककर मैंने देखा पीछे नामना

भाभी और मनिया खड़ी थी। सचमुच मैं वीरेंद्र का वह ज्वालामय, विस्फोटक रूप देखकर इस कदर आत्म विस्मृत हो गया था कि उन दोनों के आने की कोई चेतना ही मुझे नहीं थी। और वीरेन्द्र तो परिपूर्ण रूप से आवेशमग्न हो ही रहा था। भाभी जी के उक्त विनोदपूर्ण छींटे ने जैसे वीरेन्द्र के गहन गंभीर, मर्मस्पर्शी उद्गारों का जादू पल में भंग कर दिया। मैं मुक्त भाव से हँस पड़ा। वीरेन्द्र भी अपनी सहज स्वाभाविक स्थिति में लौट आया और भावावेश में बहकर मुझे लक्ष्य करके वह जो बड़ी बातें कह गया था उसके कारण वह कुछ सकुचित-सा लगने लगा।

मैंने इसे भारी सहारा पा लिया। वीरेन्द्र आज जिस मन स्थिति में था उसके विस्फोट के धुएँ से मैं एक घुटन का सा अनुभव करने लगा था। इसीलिये बहुत देर से मैं भाभी जी और मनिया की बाट जोह रहा था। मैंने प्रसन्न होकर कहा—'आइये भाभी, बैठिये। आओ मनिया तुम भी बैठ जाओ। जो लड़ाई हम दोनों के बीच चल रही है उसमें आप दोनों भी शरीक हो जायें, तभी उसमें गड़बड़ आयगी।'

'पर बात क्या है? किस बात को लेकर झगड़ा चल रहा है?' बगल में बैठते हुए भाभी जी ने पूछा। मनिया भी और कहीं स्थान न पाकर चुपचाप वीरेन्द्र की बगल में बैठ गयी। इस समय वह बहुत प्रसन्न दिखायी देती थी। मैंने मन-ही मन अनुमान लगाया कि भाभी जी ने इसका अच्छा स्वागत किया होगा।

मैंने भाभी जी की ओर मुड़कर कहा—"बात यह है भाभी जी कि वीरेन्द्र आजकल अपने जीवन की बुर्जुवा परिस्थितियों से बुरी तरह खिन्न हुआ है। उसके मन में यह विचार बड़ी गहराई से घर कर चुका है कि किसी भी व्यक्ति को इस बात का कोई अधिकार नहीं है कि वह श्रमिक वर्ग की अपेक्षा अधिक सुख और सुविधापूर्ण जीवन बिताये। कठोर वास्तविक जीवन की यह जटिल समस्या उसे परेशान किये हुए है कि संसार की अधिक-संख्यक जनता जब भरपूर खटने पर भी भोजन और वस्त्र के अभाव से हाहाकारमय जीवन बिताने को बाध्य है तब मुट्ठी भर लोग अपनी आवश्यकता से बहुत अधिक धन और संपत्ति

 बटोरकर मूछों पर ताव देते फिरें—इस उलटी गति को, इस सामाजिक अन्याय को उसका पीडित मन सहन नहीं कर पा रहा है। इसलिये वह जन आन्दोलन के बीच मे कूदना चाहता है, अपनी सारी सपत्ति को जनता के हितार्थ बाँट देना चाहता है और मुझे भी यही सलाह दे रहा है। चूंकि आप दोनो की राय के बिना ऐसा करना बहुत उचित नहीं होगा, इसलिये आप दोनो की राय इस मामले मे परम आवश्यक है।'

मेरा परिहासात्मक स्वर और ढग निश्चय ही वीरेन्द्र को अच्छा नहीं लग रहा होगा। उसके गभीर मुख की निश्चल मुद्रा के ऊपर एक अपरिस्फुट-सी तीखी मुसकान झलक रही थी। पर वह बोला कुछ नहीं।

शायद भाभी जी की ठीक समझ मे नहीं आ रहा था कि मेरी बात मे वास्तविकता कितनी है और परिहास का पुट कितना। इसलिये वह क्षण भर के लिये प्रश्न भरी दृष्टि से मेरी ओर देखती रही। उनके मुख का भाव भी धीरे धीरे गभीरतर होता चला जाता था।

अत्यत शात और सयत भाव से वे बोली— इनके इस विचार से मैं बहुत दिनो से परिचित हू। यह कोई नयी बात आज मैंने नहीं सुनी। मैं न सपत्ति के जनता मे बँट जाने के विरुद्ध हू, न जन आदोलन के बीच मे कूद पडने के। मैं स्वय भी इनके साथ जन आदोलन मे सहयोग देने के लिये तयार हूँ। मैं केवल एक बात के सबध मे आश्वस्त हो जाना चाहती हू। सपत्ति ऐसी सस्थाओ मे बँटे जिनके विषय मे यह निश्चित पता लग जाय कि उनके द्वारा जनता का सच्चा कल्याण होगा और जन आदोलन के उस रूप को पकडा जाय जिसके सबध मे इस बात का निश्चित प्रमाण मिल जाय कि जनता के सच्चे और स्थायी उद्धार का वही सर्वोत्तम पथ है। पर जन आदोलन के नाम पर विभिन्न दलो द्वारा जसा घोटाला आज मचा हुआ है वह किसी से छिपा नहीं है। इस कलकत्ते मे और उसके आस पास घटने वाली प्रतिदिन की घटनाओ से इस गोरखधधे के दृष्टान्त मिल सकते हैं। कम्यूनिस्टो के छिटफुट प्रयोग अलग चल रहे हैं, समाजवादी अलग अपनी खिचडी पका रहे हैं तथाकथित क्रातिकारी समाजवादी दल अपने कूटचक्रो का जाल अलग

बिछा रहा है और कांग्रेस का चक्र अलग चल रहा है। कोई
भी दल अपने निश्चित सिद्धांतो के संबंध मे कोई भी निश्चित धारणा जनता के मन म जमाने म असमर्थ है। प्रत्येक दल की अपनी-अपनी महत्वाकाक्षाएँ हैं। फल यह हुआ है कि सभी दलो के अनिश्चित असतोष और छिटफुट प्रयोगो की प्रतिक्रिया से जन आदोलन का एक नया ही रूप सामने आया है, और वह है आतकवाद। इस आतकवाद को अपनाये हुए हैं कुछ अनुभवहीन और उत्तरदायित्वशून्य नवयुवक। पटाखो और तेजाब भरे बल्बो की सहायता से वे वर्तमान शासन-सत्ता को भयभीत करके जनसत्ता स्थापित करने का स्वप्न देख रहे हैं। फल हो रहा है उलटा। इन पटाखो और तेजाबी बल्बो से शासन-सत्ता नही, बल्कि स्वय जनता आतकित हो रही है, जो इन तथाकथित जन आदोलको से विमुख होती चली जा रही है। जिस आदोलन की परिणति भेदाभेद ज्ञान से रहित नवयुवको की पटाखेबाजी और तेजाबी करामातो म हो वह स्वय अपने ही ध्येय को पराजित करने के सिवा और क्या प्रगति कर सकेगी मेरी समझ म नही आता। ऐसी हालत म, जबकि जन-आदोलन का कोई भी निश्चित रूप देश के सामने नही है, और जन-आदोलक स्वय आपस ही म एक दूसरे के कट्टर विरोधी बने हुए हैं, उसम कूद पडने का अर्थ मेरी दृष्टि म केवल इतना ही है कि पटाखेबाजो और तेजाब पथियो की सख्या बढाना।"

४६

मैंने देखा कि वीरेन्द्र के समग्र म आकर शोभना भाभी राजनीतिक विषयो में काफी गहरी दिलचस्पी लेने लगी हैं और सामयिक राजनीतिक घटनाओ का विश्लेषण करने में भी यथेष्ट पटुता प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनका बिलकुल नया ही रूप मेरे सामने आया, जिसकी कोई कल्पना उनके प्रथम दर्शन से मैंने नही की थी।

पर वीरेन्द्र भाभी जी के इस विश्लेषण से तनिक नहीं हुआ। बोला— "कुछ नगण्य अराजकतावादियों सारे आंदोलन को दूषित ठहराना बहुत बड़ा अन्याय है। प्रत्ये में इस तरह की खामियाँ आ ही जाती हैं। संपूर्ण स्थिति पर सकना किसी भी आंदोलन के मूल नेताओं के वश का नहीं गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन को कलंकित करने वा वाले हिंसकों की कमी नहीं रही जिसके कारण गांधी जी को प्रायश्चित्त करना पड़ा था।"

मैंने कहा— हिंसावादी कम्यूनिस्ट आंदोलन से गांधी जी त्मक आंदोलन की तुलना करना दाता के प्रति अन्याय है।'

'मैं तुलना नहीं कर रहा हूं,' वीरेन्द्र ने कहा "मैं म कम्यूनिस्टों की नीति हिंसात्मक है। पर पटाखों और तेजा के निर्विचार प्रयोग में कम्यूनिस्टों की हिंसात्मक नीति उतनी होती है जितना चौरीचौरा-कांड या दूसरी हिंसक घटनाओं था अहिंसात्मक आंदोलन हुआ था। कोई भी समझदार इस तरह के कायरतापूर्ण और निरर्थक आतंकवाद का अप में राय नहीं दे सकता।"

'राय न दे, पर आज का यह आतंकवाद हमारे कम दल के विचार से रहित असद्धांतिक कारवाइयों का ही तो तुम्हें मानना ही होगा। शोभना भाभी ने कहा।

वीरेन्द्र जैसे कट गया। प्रकट में शांत किंतु वास्तव खीझ भरे स्वर में बोला— 'तुम्हारे मुंह से इस तरह की नहीं थी भाभी जब कि तुम्हारी ही तरह की बहुत सी आन्दोलन में सच्ची लगन से भाग लेती हुई गोलियों की शिक क्या तुम्हें उनके प्रति तनिक भी हमदर्दी नहीं है?

यह व्यंग्यात्मक मंतव्य बड़ा ही चुटीला और मार्मिक थ भाभी का चेहरा एकदम लाल हो आया। उन्होंने कहा—' मेरी सहानुभूति नहीं है, मुझ पर यह आरोप लगाकर तुम मेरे भारी अन्याय कर रहे हो। यह मैंने न कभी कहा न सोच

सच्ची लगन नहीं है। यदि उनमें सच्ची लगन न होती तो वे कभी जानबूझकर अपने प्राणों की बलि देने के लिये निर्भीकता से मौत के मुह में न कूदती। उन पर गोली चलाने वालों की प्रशंसा उनके विरोधियों ने भी नहीं की है। पर प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न तो यह है कि जिस आंदोलन के सूत्रधार भारतीय परिस्थितियों की वास्तविकता पर गहरा विचार किये बिना ही भारतीय जन आंदोलन की एक निश्चित और समन्वित रूप रेखा और एक समन्वित ध्येय सामने रखे बिना ही केवल 'आंदोलन आंदोलन के लिये क्रांति क्रांति के लिये हिंसा हिंसा के लिये' इस नीति को अपनाते हुए उन भोले भाले नवयुवकों और सरल विश्वास-परायण युवतियों का निरर्थक बलिदान के लिये आगे बढ़ा रहे हैं व क्या सचमुच जनता के कल्याण का पथ प्रशस्त कर रहे हैं और जन आंदोलन के महत् ध्येय की ओर बढ़ रहे हैं ?'

'निश्चित रूप से आगे बढ़ रहे हैं" वीरेन्द्र ने दृढ़ता के साथ कहा। 'मैं मानता हूँ कि हमारा जन आंदोलन आज बिखरा हुआ है, और जन-सत्तावादी विभिन्न दलों के पारस्परिक संघर्ष का शिकार बना हुआ है। यह भी मैं मानता हूँ कि और भी कई भूलों और भ्रांतियों को अपनाता हुआ यह बीच-बीच में पथभ्रष्ट भी हो रहा है। पर प्रगति का मार्ग बड़ा ऊबड़-खाबड़ होता है, यह बात हम सबको ध्यान में रखनी चाहिये। इन्हीं भूलों और भ्रांतियों से होकर हमारा जन आंदोलन निरंतर आगे बढ़ता चला जायगा, और एक दिन निश्चय ही ऐसा आयगा जब सभी परस्पर विरोधी जनसत्तावादी दल एक महान सम-लक्ष्य, एक ही विराट सम ध्येय, को अपनाते हुए समान साधनों के प्रयोग द्वारा समान पथ से आगे बढ़ेंगे। और तब अपने संगठित और समन्वित प्रयत्नों से एक ऐसे स्वर्ग की स्थापना करने में वे समर्थ होंगे जहाँ मानव के इतने युगों के सारे उद्यम समाप्ति को प्राप्त हो जायँगे जहाँ मानव मानव में भेद नहीं रह जायगा, सब को सुख उपभोग की समान सुविधाएं प्राप्त होंगी। वहाँ सारा मानव समाज विभिन्न वर्गों दलों या गुटों में विभक्त न होकर एक अविच्छिन्न इकाई बन जायगा। प्रत्येक व्यक्ति के निजी सुख-दुःख समस्त

मानव-समाज के सामूहिक सुख दुखो से एक रूप मिल जायेंगे। बल्कि भौतिक दुख तो तब रहेगा ही नही सुख—केवल सुख—की अनुभूति समग्र मानवता के ऊपर समान रूप से छा जायगी। क्योकि तब सब के सम प्रयत्नो द्वारा भौतिक साधनो का विकास चरम सीमा तक पहुँच जायगा, जिसके फलस्वरूप रोग, शोक, दुख-दारिद्रय का कही लेश भी नही रह जायगा। मैं मानवता के इतिहास की उसी चरम परिणति की प्रतीक्षा मे, उसी पुण्य दिन की ओर टकटकी लगाये हुए हूँ। मेरा यह महान् स्वप्न एक न एक दिन सफल होकर ही रहेगा, इस ध्रुव विश्वास के बल पर मैं जीता हू।' और वीरेन्द्र ने भाव-मग्न होकर अपनी आँखें क्षण भर के लिये बद कर ली।

इस भावावेग के बाद फिर कोई तक चल नही सकता था। शोभना भाभी, मनिया और मैं तीनो कुछ क्षणो तक स्तब्ध, मौन दृष्टि से उसकी ओर देखते रह। यह स्पष्ट था कि वीरेन्द्र के भीतर पीडित दलित और शोषित जनता के उद्धार की लगन भावगत हो चुकी थी पर उसकी न तो कोई सुस्पष्ट और निश्चित रूप रेखा उसके सामने थी और न उस सम्बन्ध म किसी बौद्धिक तक और विवेकपूर्ण विश्लेषण की कोई आवश्यकता ही वह महसूस कर रहा था। बल्कि इस तरह के तार्किक विश्लेषण से वह साफ कतराकर निकल जाना चाहता था—अपन उसी स्थिर भाव जनित अडिग विश्वास मे मग्न हो जाने के लिये।

शोभना भाभी के मुख पर एक विचित्र भय एव अनोखी भ्रांति की-सी छाया घिर आयी थी। जस उन्होने उस समय वीरेन्द्र का एक बिल कुल नया ही रूप देखा हो। साथ ही मुझे यह भी लगा कि वीरेन्द्र ने उनका जो परिचय मुझे दिया था वह पूरा नहीं था। उसने मुझसे यह बात छिपायी थी कि उन दोनों के बीच कुछ समय से एक विशेष द्वन्द्व चल रहा है—इसी जन आदोलन के विषय को लेकर दोनो की बातचीत से मुझे इस बात का आभास मिल रहा था कि दाल म कहा कुछ काला पड गया है।

सबस अधिक भ्रात हो रही थी मनिया। उसके मुख के भाव से मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा था कि वह अपने को एक बिलकुल ही विजातीय

वातावरण मे पाने लगी थी। सामयिक राजनीति सबधी
किसी विषय को कोई मनुष्य ऐसे गहन-गभीर रूप म ग्रहण कर सकता है और उसमे अपनी सारी आत्मा को, सपूर्ण व्यक्तित्व को ऐसे परिपूर्ण रूप से निमज्जित कर सकता है यह अनुभव उसके लिय एकदम नया था। वह निश्चय ही यह अनुभव भी कर रही होगी कि जिस विषय को लेकर पति-पत्नी एक-दूसरे से एसी सरगर्मी स बातें कर सकते हैं, और एक-दूसरे की भ्राति प्रमाणित करते हुए कडा-से-कडा रुख अख्तियार कर सकते हैं, वह कोई साधारण विषय नही हो सकता। वह अत्यत एकाग्रता से वीरेन्द्र और भाभी की बातें सुन रही थी, पर स्पष्ट ही ठीक से कुछ समझ न पाने के कारण भ्रात दृष्टि स कभी वीरेन्द्र की ओर दख रही थी, कभी भाभी की ओर और कभी मरी ओर।

हमन्त काल की धूप कुछ समय पहले तक बडी मीठी लग रही थी, पर भाभी और वीरेन्द्र के बीच की गरम बहस के बाद वह अब, कम-से-कम मुझे, असह्य मालूम होने लगी थी। इसलिय मैंन प्रस्ताव किया कि भीतर बठा जाय। सब लाग उठ खडे हुए।

चलते हुए मैंने वीरेन्द्र से कहा—"तुमने भाभी को राजनीति विद्या मे इतना कुशल बना दिया है, यह बात मुझसे इतनी देर तक क्या छिपायी मैं समझ नही पाया।"

वीरेन्द्र 'हा हा' करके हँस उठा। उसके इस परिचित अट्टहास से मैं आश्वस्त हो उठा, नही तो उसका जो अत्यन्त गुरु-गभीर मनाभाव कुछ देर स चल रहा था, वह यदि और कुछ दर तक उसी रूप म कायम रहता तो मुझे शायद अपन को घुटन से बचाने के लिय भागना पडता।

वह उसी हँसी की तरग म बोला—"मैंन तुम्हारी भाभी को इस विद्या में कुशल नही बनाया है। मुझे लगता है कि वह अपनी माँ की कोख से ही राजनीति सीखकर आयी थी। इसमें छिपाने की कोई बात नही है। तुम कुछ दिन इसके सपर्क म रहो तो तुम्हें पता लग जायगा कि इसके हर बोल म, हर चाल म, हर ढाल म, हर साँस म राजनीति भरी रहती है। यह ठीक है कि वह राजनीति को राजनीति के लिये नही अपनाती,

 पाई-न-पाई गूढ उद्देश्य उसके पीछे रहता है। पर वह उद्देश्य क्या होता है, यह वही समझती है, दूसरा कोई नहीं समझ सकता।'

मैंने भाभी की ओर देखा। उनका मुंह अस्वाभाविक रूप से लाल हो आया था।

मेरी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि अपने विवाह का जो संक्षिप्त इतिहास उसने सुनाया था उसमें भाभी जी का परिचय जिस रूप में दिया था उससे और उसकी इस समय की बातों से क्या सम्बन्ध हो सकता है। मुझे लगा कि उसके विवाह होने के बाद से लेकर वर्तमान समय तक वीरेन्द्र के अपने भीतर की और बाहर की दुनिया में बहुत सी घटनाएं घट चुकी हैं। मुझे याद आया कि उसने जेल या आन्दोलन के बीच में कूद पड़ने में जिन विघ्नों और बाधाओं का उल्लेख किया था उनमें एक वैवाहिक बंधन भी बताया था। मेरे अनुमान से वही उसके लिए एक प्रमुख बंधन सिद्ध हो रहा था। सम्भवतः यही कारण था कि उसके मन की सूक्ष्म धारिणी के प्रति उसके मन के एक गलभिन भाग में भयंकर विरोध और विद्रोह की भावना उत्पन्न होकर निरंतर बढ़ती चली जा रही थी। मुझे यह भी याद आया कि अपने विवाह का किस्सा सुनाते हुए उसने अपने अन्तर के रस का सारा माधुर्य घोलकर भाभी जी के स्नेह-सरस और सेवा-परायण स्वभाव का वर्णन किया था। उस समय उसके स्वभाव में छिपी हुई राजनीति की कोई बात ही उसे याद नहीं आयी थी। शायद तब वह उस मधुर स्मृति को एक बार जगाने के लिये अत्यंत उत्सुक हो रहा था जिसमें आज के द्वन्द्व का लेश भी नहीं था— जो स्पष्ट ही दोनों के बीच कुछ समय से गहराता आ रहा था। विवाह के पूर्व की उस अकलुष स्नेह-स्मृति के जगने से वह अत्यंत भाव विभोर हो उठा था। विवाह के बाद समय की गति से जो अनिवार्य परिवर्तन मास प्रति-मास, वर्ष प्रति वर्ष दोनों की भावनाओं में आते चले गए होंगे उनके न्याय यथार्थवादी दृष्टिकोण से अपने जीवन का सामंजस्य स्थापित कर सकने में वह स्पष्ट ही अपने को असमर्थ पा रहा था। उसके तत्कालीन अन्तर्द्वन्द्व का एक पहलू यह भी था। मैंने यह भी अनुमान लगाया कि जन आन्दोलन को लेकर भाभी जी के और उसके बीच जो

क्षणिक किंतु तीखा विवाद आज चला था वह इसके पहले भी कई बार कई रूपों में चल चुका होगा। और उस विवाद के वे रूप चाहे कैसे ही क्यों न रहे हों, मीठे और प्रिय अवश्य ही नहीं रहे होंगे।

४७

जब हम लोग नीचेवाले बरामदे के पास पहुँचे तब सहसा जैसे वीरेन्द्र को भूली हुई बात याद आ गयी। बोला— 'चलो, यहाँ बैठने के पहले तुम्हारा सामान होटल से लेते आवें। तब तक देवरानी-जेठानी को कुछ देर के लिए और धनिष्ठता बढ़ाने का मौका दो। दोनों अपने अपने पति के विरुद्ध अपनी-अपनी शिकायतें एक दूसरे से एकांत में कहकर अपना जी हल्का कर लें।' और वह अपने परिहास पर स्वयं ठठाकर हँस पड़ा।

मैं यह देखकर चकित था कि वह कितनी जल्दी एक मानसिक स्थिति से दूसरी—एकदम विपरीत—मन स्थिति को अपना लेता था। कुछ ही समय पहले तक जो भयावह रूप से गंभीर भावुकतापूर्ण रुख वह अख्तियार किये हुए था—जन आंदोलन की तूफानी लहरों के बीच कूद पड़ने की अपनी जिस मार्मिक व्याकुलता का परिचय दे रहा था और अपने स्वप्न-कल्पित भावी जन राज्य के जिस अपूर्व आदर्श का वर्णन करते हुए भाव-गद्गद् हो रहा था—उस गुरु-गहन मनोभाव से इस अट्टहास का—देवरानी-जेठानी से सम्बन्धित मीठी चुटकी का—साम्य कहाँ पर हो सकता है, यह मेरी समझ में किसी भी रूप में नहीं आ पाता था।

मनिया ने उसके उस परिहास को बड़े ही मीठे रूप में लिया, यह मैं उसके सलज्ज हास्योज्ज्वल मुख का भाव देखते ही समझ गया। उसने एक बार तिरछी—किंतु अत्यंत स्निग्ध—दृष्टि से वीरेन्द्र की ओर देखा

और फिर साकेतिक मुसकान भरी दृष्टि से भाभी जी की ओर। पर भाभी जी को वह परिहास कतई पसद नहीं आया, यह जानने म भी मुझे देर न लगी। उन्होने एक बार आँख तरेरते हुए वीरेन्द्र की ओर देखा और फिर मुह फेर लिया।

जब मोटर पर सवार होकर हम दोनो रवाना हुए तब काफी दूर तक दोनो मौन बैठे रहे। भवानीपुर के मोड पर जब 'कार' घूमी तब वीरेन्द्र बोला— तुम्हारी भाभी इधर कुछ दिनो से सचमुच मुझसे नाराज रहती है। मेरे भीतर जो पागलपन भूत की तरह सवार हो गया है उसे झाडने की बहुत कोशिश करने पर भी वह सफल नही हो पाती उसकी खीझ का प्रधान कारण मुझे यही लगता है। और भी कारण हो सकते हैं जिन्हें मैं नही जानता पर मुख्य यही है। उसे अप्रसन्न देखकर मुझे हार्दिक दु ख होता है। तुम्हे विश्वास हो या न हो, कभी कभी मैं एकात मे यह सोचकर रो उठता हूँ कि शोभना दिन-पर दिन अकेली पडती चली जा रही है। इतने निकट रहने पर भी हम दोनो एक दूसरे से इतनी दूर पड गये हैं और दिन पर दिन और अधिक दूर होते चले जा रहे हैं। इसमे न उसका दोष है न मेरा। मैं न चाहने पर भी उसका साथ नही दे पा रहा हू। उसके अतर के स्नेह प्रेम-मय जगत् के स्निग्ध, सरस, मधुर भाव मे सारा वातावरण मेरे नये उभरे हुए व्यक्तित्व के विकास के लिये जैसे विषमय और मारक सिद्ध हो रहा है। पर मेरा दूसरा व्यक्तित्व उसके अन्तर के साथ इस असहयोग के लिये अत्यत व्याकुल होकर गुहार मारकर रोना चाहता है। इस खीचतान से मेरा मन छिन्न भिन्न हुआ जा रहा है कि शोभना जैसे दिन पर दिन अपने अतर के सूनेपन म अपने को भुलाती चली जा रही है। और वह सूनापन भी निकट भविष्य म कैसा भयकर रूप धारण करेगा इसका मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ। शून्य की निस्पद जडता उसके भीतर इस तरह छा जायगी कि वह मृत्यु से भी अधिक स्तब्ध, निश्चल और निष्प्राण लगेगी। वहाँ सायँ-सायँ का भी शब्द नही होगा और भूत प्रेत भी नही नाचेंगे-कूदेंगे "

उसकी आँखो के भाव से ऐसा लग रहा था जैसे अपनी उस कल्पना

से वह स्वयं आतंकित हो उठा हो। अपने उस दुःस्वप्न में वह जैसे पूर्णतया निमग्न हो गया था।

मैंने उसे फिर से चेतना-लोक में लाने के इरादे से धक्का देना चाहा। कुछ तीखे स्वर में मैंने कहा—"वीरेन्द्र, तुम यह क्या व्यर्थ की कल्पना करके अपना जी खराब कर रहे हो। तुम्हारे जैसे यथार्थवादी व्यक्ति को इस तरह की बेकार की भावुकता भरी बातें नहीं सुहातीं। मार्क्स के अनुयायी घोर भौतिकवादी होते हैं। तुम चाहे मार्क्स के कट्टर अनुयायी न भी होओ पर इतना तो निश्चित ही है कि तुम्हारा झुकाव उसी ओर है। तब तुम क्या भाव जगत् की फैंटेसियों को इस तरह अपनाये हुए हो? स्थिति को यथारूप स्वीकार करो। न मार्क्स ने और न उनके अनुयायियों ने कभी किसी को यह उपदेश दिया कि जन-आंदोलन में अपने घर के स्नेह-बंधनों को एकदम काटकर अपनी पत्नी से या दूसरे सगे स्नेह-संबंधियों से अलग होकर ही कूदा जा सकता है। यदि ऐसा होता तो उन लोगों में और मार्क्सवादियों में कोई अंतर ही न रह जाता जो 'नारि मुई घर संपति नासी मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी', या जो जान बूझकर पत्नी और पुत्रों को त्यागकर, संपत्ति को तिलांजलि देकर वैराग्य साधन के लिये बाहर निकल जाते हैं। यदि तुम्हें अपनी लगन पर सच्चा विश्वास है तो भाभी जी को भी अपने साथ घसीटने का पूरा प्रयत्न करो, प्रारंभिक असफलता से घबराओ नहीं। और यदि प्रयत्न करने पर भी तुम्हें इसमें सफलता नहीं मिलती तो भावुकता को अपने मन में तनिक भी स्थान दिये बिना ही अपने कर्तव्य-पथ पर चले चलो। मार्क्सवादी निर्दयता, इस मनोवैज्ञानिक सत्य को कभी मत भूलना।"

मेरे भाषण से वीरेन्द्र जैसे सचमुच कुछ जगा और सँभलकर बैठ गया। कुछ देर तक मेरी ओर बड़े गौर से देखता रहा, उसके बाद बोला—"तुम ठीक कहते हो। संशय और द्विविधा में डूबे हुए मनुष्य का विनाश निश्चित है, और इस तरह की जो भावुकता मुझे बीच-बीच में घेर दबाती है वह भी निश्चय ही घातक है। पर इससे मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं हूँ कि भावुकता-मात्र हानिकारक होती है।

 मार्क्स यदि कवि और भावुक न होता तो वह कभी मानव-समाज के पिछले सभी युगों के आदर्शों और ध्येयों के ध्वंसावशेष पर मूलत नयी व्यवस्था और नये आदर्श की स्थापना का स्वप्न न देख पाता। पौराणिक विश्वामित्र की तरह उसने एक बिलकुल ही नयी सामाजिक सृष्टि की रचना की थी जो यथार्थवादी तर्कों पर आधारित होने पर भी पूर्णत का यात्मक है। एक मूलत बदली हुई स्थापना के उद्देश्य से उसने नये धर्म की स्थापना की और नये ही देवताओं की मूर्तियां गढ़ीं ''

धर्म और देवता! मार्क्स के नाम के साथ इन दो शब्दों को जोड़कर तुम क्या उसके प्रति अन्याय नहीं कर रहे हो?' मैंने बीच ही में उसकी बात काटते हुए कहा।

'तुम्हारा चौंकना स्वाभाविक है' अपेक्षाकृत शांत भाव से वीरेन्द्र बोला, यह ठीक है कि मार्क्सीय दर्शन में पौराणिक धर्म पौराणिक ईश्वर और पौराणिक देवताओं के लिये कोई स्थान नहीं है। यह केवल इसलिये कि वे देवता मार्क्सीय दृष्टि में अपना काम पूरा कर चुके। अब नये युग की नयी परिस्थितियों में उन मृत देवताओं को जिलाने से कोई काम नहीं चलेगा। कोई क्रांति कोई भी विश्व विस्फोटक प्रगति बिना किसी एक धर्म को लिये नहीं चल सकती—फिर चाहे वह धर्म अनीश्वरवादी ही क्यों न हो। और जहाँ धर्म रहेगा वहाँ ईश्वर और देवता अपने आप प्राकृतिक नियम से आ खड़े होंगे। मार्क्सवादियों का एक निश्चित दर्शन है एक निश्चित आदर्श और जीवन और जगत् के संबंध में कुछ निश्चित विश्वास हैं, वे सब मिलकर एक निश्चित धर्म का ही रूप धारण करते हैं। और जब धर्म होगा तब उसका कोई ईश्वर भी होगा देवता भी अपने आप आ कूदेंगे, यज्ञ भी होगा और पुरोहित भी होंगे। यज्ञ और बलिदान के कुछ निश्चित नियम और विधियाँ भी होंगी। मानवीय इतिहास की आलोचना करते हुए मार्क्स ने स्वयं कहा था कि जब-जब मानवता ने किसी मूलगत प्रगति के उद्देश्य से विश्व क्रांति का पथ अपनाया है तब-तब उसके जीवित नायकों के बीच में मृत देवता आ खड़े हुए हैं और जीवित नायकों ने उन मृतकों के मुखड़े

पहन कर तव आगे वढना चाहा है । उसकी असफलता का यही कारण रहा है । इसीलिये मार्क्स ने जीवित नायकों के बीच में जीवित ईश्वर और जीवित ही देवताओं को खडा करने का बीडा उठाया था । चिर-पुराण और चिर भूत को त्यागकर उसने चिर-नवीन और चिर वर्तमान अथवा चिर भविष्य को अपने नये वास्तविकतावादी धर्म का आधार बनाया । उस पर ऐसे ऐसे देवताओं की स्थापना की जो पुराण विद्वेषी और नास्तिक थे । वह नास्तिक ईश्वर स्वयं मार्क्स ही था, जिसने एक मूलत नयी सामाजिक व्यवस्था की सृष्टि की और उसके बाद उस धर्म से सम्बन्धित नये-नये देवता और नये नये अवतार अवतरित होते चले गये हैं । आज उसके जो अनुयायी अपने विश्वासों के लिये मर मिटने को तैयार हैं, निर्भीक होकर अपने प्राणों की बलि दे रहे हैं उसके मूल में उसी धार्मिक भावना का बदला हुआ रूप है जो ईसाई धर्म के प्रारम्भिक प्रचारकों में वर्तमान थी जिन्होंने अपने विश्वास के आगे अपने प्राणों का कोई मूल्य कभी स्वीकार नहीं किया । बात चल रही थी भावुकता को लेकर । यदि मार्क्सीय आन्दोलन के पीछे एक निश्चित धार्मिक विश्वास द्वारा प्रेरित भावुकता न होती तो कभी उसे इतना बडा प्राण-बल और रक्त-बल प्राप्त न होता जैसा कि आज संसार में सर्वत्र—कहीं छिटपुट और कहीं संगठित रूप में—पाया जाता है । कोई भी बडी क्रांति केवल ठंडे मस्तिष्क से गणित की कोरी गणना द्वारा ही सफल नहीं हो सकती । उसके पीछे हृदय में प्रवाहित भावुकता उसे बल देती है, और भावुकता किसी निश्चित धार्मिक विश्वास द्वारा ही उभाडी जा सकती है—फिर चाहे वह धर्म नास्तिकवादी ही क्यों न ”

"तब क्या तुम्हारे भी कुछ निश्चित धार्मिक विश्वास हैं ?' मैंने पूछा ।

"निश्चय ही । नहीं तो आत्म बलिदान के लिये इतनी बडी प्रेरणा ही मुझे कैसे मिलती जो कुछ समय से मेरे मन और मस्तिष्क को इस प्रकार से छाये है कि उसके ऊपर मैं कुछ सोच ही नहीं पाता हूँ ।'

'पर यह बात तुम स्वीकार करोगे कि किसी धार्मिक विश्वास को अन्धभाव से अपनाने का वही कुफल हो सकता है जो मुस्लिम विश्वासियों

 ने लाखों की संख्या में निरपराध काफिरों की निरर्थक सामूहिक हत्या द्वारा प्रदर्शित किया था, अथवा जहाद धर्मी ईसाई विश्वासियों ने "

"कोई भी नयी सृष्टि तभी हो सकती है जब उसके पूर्व प्रलय की सामूहिक विध्वंसक शक्तियों का ताडव मचे," बीच ही में मेरी बात काटते हुए वीरेन्द्र ने कहा, "उस सामूहिक ध्वंस की ही मिट्टी पर नयी रचना सभव हो सकती है। यह ठीक है कि कुछ पौराणिक धर्मों के अध अनुयायियों ने अपने से भिन्न धर्मावलबियों की निरर्थक सामूहिक हत्या की थी। पर हम मार्क्सीय धर्मावलबियों के आगे एक निश्चित योजना है, जो एक सामूहिक और स्थायी कल्याणकारी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की ओर निरन्तर अग्रसर होती चली जा रही है। मैं इस बात पर भी ज़ोर देना चाहता हूँ कि स्थायी शांति ही हम लोगों का लक्ष्य है और उसके लिये हम लोग भरसक शान्तिपूर्ण उपाय ही काम में लाना चाहते हैं। पर उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हिंसावादी पूजीपति राष्ट्र विघ्न डालेंगे तो हम लोग उसका सामना करने से पीछे नही हटेंगे।"

मैंने इस बात पर गौर किया कि वीरेन्द्र ने आज के सारे वाद-विवाद में पहली बार स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया कि वह मार्क्सवादी है। इसके पहले उसने जन आन्दोलन के सम्बन्ध में जितनी भी बातें कही थीं वे सब अस्पष्ट और अनिश्चित थी और कम्यूनिस्ट आन्दोलकों के कट्टरपन का उसने एक प्रकार से विरोध ही किया था।

उसकी इस निश्चित स्वीकारोक्ति से मेरे भीतर बहुत देर से दबा हुआ आवेग फूट पड़ा। मैंने कहा—"तब क्या सामूहिक हिंसा और सामूहिक विनाश होकर ही रहेगा? पृथ्वी के इतिहास में जितना मानवीय रक्त अब तक उसकी मिट्टी के ऊपर बह चुका है वह क्या इस हद तक अपर्याप्त है कि फिर एक बार रक्त के प्यासे देवताओं को सतुष्ट करने के लिये लाखों मानवीय बकरों का बलिदान होना ही होगा? दूसरे देशों की बात जाने दो, पर तुम्हारे देश में तो गाधी के अहिंसावादी शांति का आदर्श, प्रयोग और परिणाम प्रत्यक्ष हो चुके हैं। तुम लोग परिवर्तन के सिद्धान्त पर विश्वास किया करते हो और स्थितिशीलता की निंदा करते

हो । तब क्यों क्रांति के उन्हीं पुराने हिंसात्मक उपायों का
ही एक मात्र अवलंबन पकड़े बैठे हो ? केवल इसीलिये कि मार्क्स ने हिंसा का पथ निर्देशित किया है ? पर यह क्यों नहीं सोचते कि मार्क्स द्वारा निर्देशित पथ सौ वर्ष पुराना हो चुका है और इन सौ वर्षों के भीतर संसार को जो मूलतः नये अनुभव हुए हैं वे मार्क्स की कल्पना में थे ही नहीं। स्वयं मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियम से हिंसा और अहिंसा के बीच के पुराने संघर्ष ने एक तीसरी शक्ति को जन्म दिया है—वह है प्रतिरोधात्मक अहिंसा। इस नयी शक्ति का नया प्रयोग क्या नहीं तुम्हारे दलवाले करना चाहते ? सब विषयों में तुम लोग अपने को परिवर्तनशील बनाते हो केवल हिंसा के क्षेत्र में ही स्थितिशील क्या बने रहना चाहते हो ? याद रखो हिंसा के जिस अपूर्वकल्पित पथ को पश्चिमी और पूर्वी, दोनों परस्पर विरोधी गुट बड़ी तेजी से अपनाते चले जा रहे हैं वह अन्त में दोनों गुटों को ही मिटाकर छोड़ेगा। पिछले विनाशक युद्ध से जो सबक मिल चुका है उसमें यदि संसार के दो परस्पर विरोधी महा-गुटों की रक्त पिपासा शांत होने के बजाय और अधिक भड़क उठेगी तो यह निश्चित है कि उस ताडव लीला के बाद पूँजीवाद और साम्राज्यवाद तो मानो स्वयं ही विलीन हो ही जायेंगे, पर साथ ही तब मार्क्सवाद भी धरातल से एकदम मिट जायगा। इसलिये तुम भारतीय कम्यूनिस्टों के ऊपर बहुत बड़ा दायित्व आ पड़ा है। तुम लोग अगर अन्ध अनुकरण की प्रवृत्ति से मुक्त होकर ठंडे मस्तिष्क से, शान्त और तटस्थ भाव से गम्भीर विचार करो एक मौलिक सूत्र द्वारा एक सर्वमंगलकारी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक बिलकुल ही नये साधन को अपना सको तो तुम्हारा और तुम्हारे साथ ही सारे देश का—बल्कि सारे संसार का—कल्याण निश्चित हो जायगा, पर यदि पश्चिमी कम्यूनिस्टों की रीति को अन्धभाव से अपनाकर हिंसा द्वारा ही हिंसा के निराकरण का पथ अपनाओगे तो मानवता के लिए एक महागर्त ही खोदने में समर्थ होगे।"

वीरेन्द्र व्यंग्यपूर्वक मुस्कराया, बोला—'तुम अभी इन सब मामलों में बच्चे हो। तुम नहीं जानते कि मार्क्सीय सिद्धान्तों की विजय यथार्थवादी भावना के साथ एक रूप में जुड़ी हुई है। प्रतिहिंसा द्वारा हिंसा पर

विजयी होकर तब ससार मे सुख और शातिमय राज्य स्थापित करना माक्सवादियो का ध्येय है। अहिंसा का महत्व माक्सवादी खूब समझते हैं। अहिंसावाद को जहाँ एक बार अपनाया नही उसके साथ पूँजीवादी सभ्यता के सभी उपकरण एक एक करके आ जुटेंगे और हम लोगो की सारी याचना ही एकदम गुड-गोबर हो जायगी।'

"तो क्या अहिंसा पूँजीवादी सभ्यता से अविच्छिन्न रूप से जुडी हुई है ? आज ससार के जितने भी पूँजीवादी राष्ट्र हैं वे क्या अहिंसा के सिद्धात को ही अपना मूलमन्त्र माने हुए हैं ? तुम लोग इस ज्वलन्त सत्य से प्रति आँखें क्या बद किये हो कि हिंसा के महास्त्रो को आज पूँजीवादी राष्ट्र जिस परिमाण मे एकत्रित किये चले जा रहे हैं उस परिमाण मे एकत्रित करना न रूस के लिये सम्भव है न किसी दूसरे कम्युनिस्ट राष्ट्र के लिये ? हिंसा से हिंसा पर विजय कभी नही पाओगे यह ध्रुव निश्चित है। अधिक से अधिक यह होगा कि दोनो परस्पर हिंसा रत गुट समान रूप से विनष्ट हो जायँगे। हिंसा का जो उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त प्रलयकर रूप इस युग मे देखने मे आया है यदि माक्स उसकी कल्पना कर पाता तो कभी हिंसा को साधन न बताता जाता। पर जसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, उसकी कल्पना मे यह बात थी ही नही। अतएव समय आ गया है कि तुम लोग—माक्स के नवीनतम अनुयायी—युग की बदली हुई परिस्थितियो को देखते हुए अपने आदर्श की उपलब्धि के लिये एक नये ही साधन का—प्रतिरोधात्मक अहिंसा को—अपनाओ। गाधी द्वारा निर्देशित इस चरम अस्त्र के भीतर अनन्त सभावनाएं निहित हैं। आज के विश्वव्यापी प्रचड हिंसात्मक वातावरण मे केवल वही गुट अन्तत विजयी सिद्ध होगा जो इस अस्त्र को पूरी लगन, पूरी तत्परता और पूरे विश्वास के साथ अपना सकेगा। अन्यथा परिणामहीन, निरर्थक सामूहिक विनाश अवश्यभावी है।

४५

मोटर आदमियों और सवारियों की भीड़ के बीच में धीमी गति से जा रही थी। थोड़ा-सा भी रास्ता पाते ही वीरेन्द्र मोटर की चाल कुछ बढ़ा देता था, पर थोड़ी थोड़ी दूरी पर रुक रुक कर चलने के लिये बाध्य होना पड़ता था। किसी तरह चौरंगी पार करके हम लोग डलहौजी की ओर मुड़े और ग्रेट ईस्टर्न होटल के नीचे पहुँच गये।

ऊपर जाकर मैंने अपना कमरा खुलवाया। वीरेन्द्र ने कहा—"मैनेजर से कह दो कि तुम अभी कमरा खाली कर रहे हो और किराया चुका कर, सामान निकलवाकर ठेले में लदवा देने के लिये कह दो। कोई मोटर-टैक्सी मिल जाय तो उसमें भी सामान जा सकता है।

इतनी देर तक वीरेन्द्र के साथ जिस विषय पर, जिस ढंग से वाद विवाद चल रहा था उससे मेरे अनजान में मेरे भीतर मेरा इरादा बदलने लगा था। मैंने संकोच को बलपूर्वक झाड़कर बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—"देखो वीरेन्द्र, अगर तुम बुरा न मानो और मेरी बात का कोई गलत अर्थ न लगाओ तो एक बात कहूँ।"

शायद मेरी गम्भीर मुद्रा और बात कहने का कुछ बदला हुआ ढंग देखकर वीरेन्द्र कुछ चौंका। उसके कपाल में और आँखों के इर्द गिर्द कुछ सिकुड़न भी पड़ गयी थी। बोला—"कहते क्या नहीं?"

"तुमसे इतने वर्षों बाद आज अचानक मिलन हो गया, इससे बढ़कर खुशी इधर मुझे नहीं हुई। मनिया से विवाह हो जाने से जो खुशी हुई थी आज की खुशी अगर पूरी नहीं तो बहुत कुछ उसके निकट पहुँचती है। तुम्हारा मकान भी मैंने देख लिया है और तुमने भी मेरा होटल देख लिया है। इसलिये हम दोनों प्रतिदिन एक-दूसरे से जब चाहें तब मिल सकते हैं।"

"पर तुम्हारा मतलब क्या है, साफ-साफ शब्दों में कहते क्या नहीं?" काफी खीझ भरे स्वर में वीरेन्द्र बीच ही में बोल उठा।

"मेरा मतलब—मैं तुमसे यह अनुरोध करना चाहता था कि हम दोनों को होटल ही में रहने दो। क्या अपने यहाँ रहने का आग्रह करके

अपने मन की वर्तमान अनिश्चित अवस्था म व्यर्थ की परे शानी मोल लेना चाहते हो ?

वीरेन्द्र का चेहरा क्षण भर के लिये एकदम फीका पड गया। दूसरे ही क्षण उसन तानी दौड गयी और तीसरे क्षण उसने दृढ स्वर म कहा—'मै देखता हूँ कि तुम्हारा मूखतापूर्ण सकोची स्वभाव अभी तक वैसा ही बना हुआ है जसा कालेज के दिनो म था। दूसरो के मनोभावो के सम्बन्ध म तुम्हारे मन म तरह-तरह के निराधार सन्देह उत्पन्न होते रहते हैं और उनका अर्थ तुम अपने वहमी स्वभाव के अनुसार विचित्र रूप से लगाते रहते हो। पर याद रखो इस बार मैं तुम्हारे मकडी के जाले मे फसने से रहा। मां का भूत पूरी तरह झाडे बिना मानगा नही। मैं भी एक जिद्दी आदमी हू, इतना तो तुम भी मानोगे। चलो मनजर के पास। तुम नही चलते तो मैं स्वयं उसका हिसाब चुका आता हूँ।' और वह चलने के लिये मुडा।

मैंने उसका हाथ पकडते हुए कहा—'अरे भाई, जरा ठहरो भी। कुछ देर सुस्ता लिया जाय। चाय वाय पीने के बाद चले चलेंगे जल्दी क्या है।"

'अच्छी बात है तब जल्दी आडर दो चाय के लिये—बल्कि काफी मँगाओ।

मैंने घन्टी का बटन दबाया। थोडी देर म एक बेटर आ पहुँचा। मैंने उसे दो आदमियो के लिये काफी लाने के लिये आडर दे दिया। वीरेन्द्र एक सोफा पर आराम से बठ गया था। मैं भी उसके सामने एक कुर्सी पर बठ गया।

'आज एक नया ही अनुभव हुआ तुमसे मिलकर, मित्र।' मैंने तनिक मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा।

'क्या नया अनुभव?' उसने उसी तरह आधे लेटे हुए कुछ अनमने भाव से पूछा।

'तुम्हारा एक ऐसा रूप आज मैंने देखा जिसकी कल्पना कालेज के दिनो म मैं स्वप्न म भी नही कर सकता था। सोचता हूँ कि मनुष्य के जीवन म किन्ही अज्ञात सम्मिलित कारणो से न जाने कब कसा

परिवर्तन आ सकता है, यह कोई नहीं बता सकता। एक अच्छे-खासे जमीदार का इकलौता लड़का, हास विलास और विनोद में जिसका प्रारम्भिक जीवन बीता हो—एक दिन जनक्रांति के पीछे पागल हो उठेगा, यह स्वाभाविक नहीं लगता। पर प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, इसलिये उसे असत्य और अस्वाभाविक कहकर टाला भी नहीं जा सकता।"

"एक बात तुम्हें इस सिलसिले में बता दूँ" सामने की ओर झुक कर वीरेन्द्र बोला, "मेरा जन्म और पालन पोषण सामंतवादी परंपराओं में घिरे हुए वातावरण में अवश्य हुआ है। पर एक बात का पता तुम्हें शायद ही है। कालेज के दिनों में तुम्हें यह बताने का कोई मौका ही कभी नहीं आया कि मेरे पिता में सामंतवर्गीय रक्त बीस विस्वा वर्तमान रहने पर भी मेरी रगों में पचास प्रतिशत निम्न वर्ग का रक्त वर्तमान है। मेरी मां एक कहार की लड़की थी। उसके बाप दादे पुश्तों से हमारे परिवार में दासता का पेशा अपनाये हुए थे—किसी जबर्दस्ती या दबाव से नहीं और न किसी कानूनी लिखा पढ़ी के अनुसार ही। स्वेच्छा से, स्वाभाविक रूप से, सहज पशु-बुद्धि से, पीढ़ी-दर-पीढ़ी माँ के कुल का प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव कर लेता था कि आजीवन उस जमीदार परिवार की प्राणपण से सेवा के अतिरिक्त और कोई दूसरा कर्तव्य उसका नहीं है। उन्हें कोई वेतन नहीं मिलता था। न कभी वेतन का कोई प्रश्न ही उठता था न उसकी कोई आवश्यकता ही मेरे मातृकुलवालों—मेरे पितृकुल के दासों—को कभी महसूस होती थी। अनिवार्य रूप से आवश्यक कामों के लिये उन्हें सब अपने आप मिल जाता था। अपने कौलिक दासत्व के प्रति परिपूर्ण आस्थावान—बल्कि गर्व का अनुभव करनेवाले—शिक्षा-संस्कृति और बुद्धि-वैभवहीन वर्ग में मेरी माँ का जन्म हुआ। निम्नतम वर्ग के उस शोषित परिवार में मेरी माँ ने कैसा आश्चर्यजनक रूप कैसे पाया, वंश विज्ञान के किस नियम के अनुसार ऐसा संभव हुआ, यह रहस्य अभी तक ठीक से मेरी समझ में नहीं आया। केवल रूप ही नहीं, शील और गुण में भी वह अद्वितीय थी। उनके सारे व्यक्तित्व में रूप में रंग में हँसने में, बोलने में, उठने में, बैठने में,

चलने मे, फिरने मे, ऐसा सहज-स्वाभाविक आभिजात्य पाया जाता था कि किसी भी अनजान व्यक्ति के मन मे यह शका उत्पन्न नही हो सकती थी कि उसका जन्म किसी कुलीन परिवार मे नही हुआ है। एक स्निग्ध, सयत मुसकान, जिसमे करुणा घुली रहती थी सब समय उसके मुख पर छायी रहती थी। वह बहुत धीरे से, बडी ही कोमल वाणी मे बोलती थी। तुम मेरे घनिष्ठतम मित्र हो और मेरे सारे बुर्जुआ सस्कार (यदि वे कभी किसी मात्रा मे मेरे भीतर रहे हो तो) धुल पुछ चुके हैं। इसलिये इस सबध मे अपनी जानी-सुनी बातो को सही-सही बताने मे कोई व्यर्थ का सकोच मैं तुम्हारे आगे नही करूगा। मेरे एक विश्वस्त बूढे नौकर ने जिसने मेरे जन्म से ही मुझे अपनी गोद मे खिलाया था, स्नेह के साथ मुझे यह बता दिया कि मेरी मा का प्रेम पिता जी से विवाह के पहले ही स्थापित हो चुका था। पिता जी अपने परिवार मे सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होने अपनी कौलिक प्रथा के विरुद्ध खुला विद्रोह करने का साहस किया। वह भी मेरी ही तरह अपने पिता के इकलौते लडके थे। उनके बडे दो भाइयो की मृत्यु छुटपन मे ही हो चुकी थी। इसलिये परिवार के लोग उनसे डरते थे। जब उन्होने मेरी माँ के सबध मे यह जाना कि वह गर्भवती हो चुकी है तब उन्होने निश्चय किया कि वह उससे विवाह करके ही रहेगे। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे अपनी माँ के आगे यह प्रस्ताव रखा। उनकी माँ से उनके पिताजी को भी उनके इरादे की सूचना मिली। सारे जमीदार-परिवार मे तहलका मच गया। पिताजी को रोकने के लिये कोई भी प्रयत्न उठा नही रखा गया। पर वह चट्टान की तरह अडिग रहे और उन्होने स्पष्ट शब्दो मे अपने घर वालो को यह चेतावनी दे दी कि यदि वे उसी महीने मेरी माँ के साथ विधिपूर्वक उनका विवाह नहीं करते तो वह माँ के साथ ईसाई बन जायेंगे और ईसाई धर्मानुसार विवाह करेंगे। इकलौते बेटे के इस दृढ निश्चय का पता जब माँ-बाप को लग गया तब उन्होने और कोई चारा न देख घर मे ही माँ के साथ पिताजी का विवाह कौलिक विधि के अनुसार कर दिया। विवाह होने के प्राय सात मास बाद माँ ने मुझे जन्म दिया। मेरे दादा को पिताजी के व्यवहार से ऐसा सदमा पहुँचा कि

तीन ही महीने बाद वह चल बसे। यह तो हुई मेरी सुनी बात। जानी बात यह है कि मेरे पिताजी गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। सब लोग उनसे डरते थे। मां भी अपवाद नहीं थी। पर उस डर में भी मां उस असीम सुख का अनुभव करती थी। दोनों के प्रेम में विवाह के बाद भी तनिक भी अंतर नहीं आया। मां की मृत्यु तक वह अटूट बना रहा। जब मां की मृत्यु हुई तब मैं केवल नौ साल का बच्चा था। पर बचपन की उस मधुर स्मृति से मैं उसके अंतर को जिस वास्तविकता के साथ जान पाया हूं, यदि वह अधिक जीती होती तो शायद उस यथार्थ ज्ञान में आज धुएं के धब्बे पड़ गये होते। उसकी मृत्यु के बाद पिताजी ने परिवारवालों के लाख अनुनय विनय और प्रयत्नों के बावजूद दूसरा विवाह नहीं किया। पिताजी के संबंध में मेरा मनोभाव ठीक क्या था, इसका स्पष्टीकरण और विश्लेषण बहुत कठिन है। यह निश्चित था कि वह मुझसे बहुत स्नेह करते थे, जैसा कि संपूर्ण स्वाभाविक था। पर अपने उस स्नेह को खुलकर व्यक्त करने में उन्हें संकोच होता था। इसलिये बड़े रूखे और उदासीन ढंग से वह मुझसे बातें किया करते थे। और उनका वह रूखा ढंग मुझे कभी पसंद नहीं आया। अपनी किशोरावस्था तक उनके प्रति मैंने अपने मन में कभी प्रतिस्नेह का भाव जैसे पाया ही नहीं। तब तक मेरी बुद्धि इस हद तक विकसित नहीं हुई थी कि मैं उनके स्वभाव के ऊपर की रूखी और खुरदुरी परत के नीचे छिपी हुई कोमलता का परिचय पा जाता। इसलिये मेरे भीतर उनके विरुद्ध जैसे एक विद्रोह की भावना-सी धीरे धीरे भरती चली जा रही थी। आज जब मैं अपने मन का विश्लेषण करता हूं तब मुझे ऐसा लगता है कि मेरे उस विद्रोह का संभवतः एक गूढ़ मनोवैज्ञानिक कारण भी था। मेरे पिता उसी वर्ग और उसी वंश से संबंधित थे जिसने पीढ़ी दर पीढ़ी मेरे मातृकुल वालों को बेदाम का गुलाम बना कर रखा था। जब से इस बात की जानकारी मुझे हुई तब से अपने पितृकुल वालों के विरुद्ध मेरे अनजान में जैसे एक विद्वेष का भाव भर उठा था। चूंकि मेरी मां प्रोलेतेरियन थी, इसलिये मैंने भी अपने को बराबर प्रोलेतेरियन ही माना है। अपने पितृवंश के कुछ संस्कार निश्चय ही मेरे

भीतर रहे होंगे—और शायद आज भी किसी हद तक वर्तमान हैं—पर उन पर मैं बहुत कुछ विजय पा चुका हूँ और जल्दी ही पूरी विजय पा जाने की आशा रखता हूँ ।"

अपनी माँ का किस्सा सुनाकर उसने अपने जीवन का एक नया रहस्य मेरे आगे उद्घाटित किया। अपने पितृकुलवालों के विरुद्ध विद्वेष की बात बताते हुए गर्व से जैसे उसकी छाती फूल रही थी। मैं उसके मुख पर चढ़ने और उतरने वाले प्रत्येक हलके से हलके रंग पर गौर कर रहा था। उसकी आँखों के अत्यंत गंभीर भाव में कहीं कृत्रिमता का कोई चिह्न नहीं था। सहज-स्वाभाविक रूप से सरल और स्पष्ट शब्दों में उसने जैसे अपना कलेजा उतारकर मेरे आगे रख दिया था।

ब्वाय काफी ले आया था। मैं दो प्यालों में काफी ढालता हुआ बोला—"पर तुमने तो अभी बताया कि तुम्हारी माँ के स्वभाव में एक सहज शालीनता पायी जाती थी। तुम्हारी ही बातों से मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारी माँ के भीतर प्रोलेतेरियन वर्ग के संस्कार वर्तमान नहीं थे।"

"प्रोलेतेरियन संस्कार क्या सभी व्यक्तियों के जीवन में बाहर उछलते-कूदते फिरते हैं! वे निश्चय ही उसके सचेत मन के भीतर दबे पड़े होंगे।"

एक टुकड़ा टोस्ट का मुँह में डालते हुए मैं वीरेन्द्र की आँखों द्वारा जैसे उसके भीतर खुदा हुआ उसके अंतर्जीवन का सारा इतिहास पढ़ने का प्रयत्न करने लगा। दो घूँट काफी पी चुकने के बाद मेरा खोया हुआ साहस जैसे लौट आया। वीरेन्द्र अनमने भाव से काफी पी रहा था। टोस्ट के प्रति स्पष्ट ही कोई प्रलोभन उसे नहीं हो रहा था।

मैंने कहा—"तो पितृकुल के प्रति तुम्हारे विद्वेष और विद्रोह ने ही आज तुम्हारे मन में समस्त उच्चवर्गों के विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना भर दी है?"

"कम से कम एक कारण तो यह अवश्य ही है।" उसी अनमने भाव से वह बोला।

"कभी-कभी मुझे ऐसा लगने लगता है," अंतिम घूँट समाप्त करते हुए मैंने कहा—"कि कुछ अवसरवादियों को छोड़कर शेष जितने भी नवयुवक वामपक्षीय नेताओं द्वारा परिचालित आंदोलनों में भाग ले

रहे हैं उन्हें जीवन में किसी-न किसी कारण से अवश्य ही कोई गहरी चोट पहुँची होगी—विशेष कर उन नवयुवकों
की बात मैं कह रहा हूँ जो आज अपने प्राणों का मोह एकदम त्यागने के साथ ही दूसरों के प्राणों के प्रति भी निर्मम हो उठे हैं। जिन्होंने बिना किसी निश्चित और सुस्पष्ट ध्येय के 'मरो और मारो' इस सिद्धान्त के पालन को अपने जीवन का मूलव्रत बना लिया है।'

जो मरने को तैयार है, अपने प्राण का तनिक भी मोह जिसे नहीं है उसे दूसरों को मारने का भी पूरा अधिकार है। उसके अधिकार को छीनने की शक्ति इस विश्व में किसी को भी नहीं है' यह कहते हुए वीरेन्द्र सीधा होकर सीना तानकर बैठ गया। उसकी आँखों में एक अस्वाभाविक प्रकाश चमक रहा था। मैं कुछ डर गया। चुपचाप, सशंकित दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। वीरेन्द्र कुछ क्षणों तक अपनी उसी जलती हुई दृष्टि से जैसे मेरे भीतर के समस्त कोमल संस्कारों को दग्ध करने का प्रयत्न करता रहा। उसके बाद बोला—'तुम सामूहिक हिंसा के उस रूप की कल्पना कर ही नहीं सकते जो आज के युग में मानव की अस्वाभाविक प्रवृत्तियों और असाधारण परिस्थितियों की चरम परिणति के रूप में जल्दी ही एक दिन तुम्हारे सामने आयेगा। जैसा विच्छिन्न, अव्यवस्थित, और नाना विषमताओं में पूर्ण जीवन इस युग में समग्र विश्व की मानवता बिताने को विवश है उसका 'सवलाइमेशन' केवल सामूहिक हिंसा की प्रलयकारी आग ज्वालाओं से ही हो सकता है।' और उसकी कल्पना में स्थित उस भावी अग्नि की लपटें जैसे उसकी दहकती हुई आँखों में महाकाल की रक्तजिह्वा की तरह लपलप कर रही थी।

मैं चौंक उठा। भीत और म्लान दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ बोला—'तुम इस सर्वनाशकारी प्रवृत्ति को 'सबलाइमेशन' कहते हो? इस घोर विकृति को तुम परम सुकृति के रूप में प्रचारित करना चाहते हो?''

''प्रचार का प्रश्न बाद में आता है—मैं तो अपने आंतरिक विश्वास की बात तुम्हें बता रहा हूँ,' उसी शांत, गम्भीर तथापि सामर्थ्यपूर्ण रूप से हिंस्र दृष्टि को मेरी आँखों में डालते हुए वीरेन्द्र ने कहा।

 मैं अपने सब तर्क भूलकर बेवकूफों की तरह उसकी ओर देखता रह गया। वह उसी शांत तथापि दृढ़ स्वर में कहता चला गया— 'धीरे धीरे मैं इस विश्वास पर पहुँच रहा हूँ कि आज के युग के मनुष्य के लिये मरणधर्मी बनने के अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि आज के अहिंसावादी को सड़ गलकर, भूख और रोग का शिकार बनकर मरना पड़ेगा और हिंसावादी को अपने प्रतिपक्षियों की हत्या के बाद। जब मौत को वरण करना ही है तब क्यों विवशता से ऐसा किया जाय? क्यों न पूरे समारोह के साथ वह मरण-उत्सव मनाया जाय? महत्वाकांक्षाहीन उद्देश्यरहित वचित्र्यशून्य जीवन बिताते हुए, रोग-व्याधि का शिकार होकर सड़ गलकर विच्छिन्न रूप से मरने को बाध्य होने के बराबर कापुरुषता दूसरी कोई हो सकती है मैं नहीं समझता। सामूहिक रूप से बाजे-गाजे और नाच गान के साथ, किसी एक विशेष क्रान्तिकारी राजनीतिक मतवाद के ताल में ताल मिलाते हुए रक्त की होली खेलकर मरने में जो सुख है जीवन की जो सार्थक परिणति है, उसकी कल्पना तुम्हारे समान बुर्जुवा संस्कारों के घोसले की शुतुरमुर्गीय सुरक्षा की सीमा में बंधे हुए लोग नहीं कर सकते, जो नाक से नकसीर निकलते ही, रक्त की एक बूँद कहीं देखते ही घबरा उठते हैं। मानवीय रक्त का महत्व अवश्य है पर वह महत्व है उसके बहाने में उसके स्वाभाविक प्रवाह को भीतर ही भीतर रुँधे रहने में नहीं। यह धरती, जो मानव जीवन का क्रम इतने युगों से कायम रखे हुए है न जाने कब बंजर हो गयी होती उसके सारे जीवन प्रदायक तत्व न जाने कब लुप्त हो गये होते, यदि बीच-बीच में राजनीतिक उथल-पुथल और क्रान्तियों के कारण उसकी मिट्टी पर सहज रूप से मानवीय रक्त न बहता रहता। व्यापक संहार द्वारा महामरण के हाथों में बिखेरे गये वे ही रक्त बीज फिर फिर जीवन के नये-नये रूपों को पृथ्वी पर प्रस्फुटित करते रहते हैं। मार्क्सवादी इस सत्य को जान में या अनजान में समझ चुके हैं, इसीलिये उनकी लाल क्रान्ति का महत्व है। और केवल इसी सत्य को अनुभव करनेवाले ही निकट भविष्य में समस्त विश्व में विजय का लाल झण्डा फहराने की क्षमता रखते हैं?

मेरे मुंह से बरबस निकल पड़ा—"उफ !" मैं देख रहा था कि वह तर्क और उपदेश से एकदम परे ऐसी गहराई में डूब चुका था जहाँ से उबर सकना किसी भी मनुष्य के लिए शायद ही संभव हो। कुर्सी पर पीठ अड़ाकर पैर आगे की ओर फैलाकर और दोनों हाथ दोनों ओर पसार कर हताश अवस्था में मैं आधा लेटा हुआ सन्नाटा खींचने लगा।

कुछ देर तक सारे कमरे में मृत्यु मौन सन्नाटा छाया रहा। सहसा वीरेन्द्र उठ खड़ा हुआ और बोला—'चलो, अब काफी देर हो चुकी है।

मैं भी उठा। नीचे जाकर होटल का पूरा बिल चुकाने के बाद मैंने अंगरेज मैनेजर को वीरेन्द्र के मकान का पता लिखा दिया और कह दिया कि मेरा सामान वहाँ पहुँचाने का प्रबन्ध कर दो। जरूरी सामान के तीन बक्स, जिनमें मनिया के कपड़े और गहने और मेरे निजी कपड़े भी थे एक कुली का ऊपर से जाकर मैं नीचे उतरवा लाया और वीरेन्द्र की मोटर के पीछे उन्हें रखवा दिया। उसके बाद हम लोग लौट चले।

मैं वीरेन्द्र की बगल में ही, आगेवाली सीट पर बैठा हुआ था। वीरेन्द्र एकदम मौन था और मनोयोग से मोटर चला रहा था। मोटर जब कुछ दूर निकल गयी तब मैंने कहा—'तुम्हारी बातें सुनकर मैं जाने क्यों, बहुत घबरा उठा हूँ।'

घबराने की कोई बात नहीं है," मेरी ओर बिना देखे ही अत्यन्त गम्भीर भाव से वीरेन्द्र ने कहा, 'तुम और तुम्हारे साथी दूसरे बहुत से सपने लिए 'सुरक्षा' के जिस टीले पर बैठे हुए हैं, वह ज्वालामुखी के मुहाने पर स्थित है इसकी सूचना मिल जाना तुम लोगों के लिए बहुत आवश्यक है। इसलिए अभी से सावधान हो जाओ। घबराने से कोई लाभ नहीं होगा

'तुम मेरी बात गलत समझ रहे। घबराहट मुझे अपने लिए उतनी नहीं है जितनी तुम्हारे लिए।'

"हा हा हा !" एक मायावी, भौतिक हँसी वीरेन्द्र के मुँह से निकल पड़ी। मैं आतंकित हो उठा। "पारिवार की विनाशपुरी के

गक होने के ठीक पूर्व वेस्युवियस की हरी भरी चिपटी चोटी पर खेल-कूद मे मग्न जनता भी यही सोचती थी कि वह सुरक्षा की चरम स्थिति म है" मोटर को एक घोड़ागाड़ी की बगल की ओर घुमाते हुए वीरेन्द्र न कहा— अरे मर लिये घबरान की जो बात तुमन कही उससे यही प्रमाणित होता है कि या तो तुम झूठे हो या निपट मूर्ख। अपनी अनुभावनाओं का विश्लेषण यदि तुम ईमानदारी और ममझदारी से करने म समर्थ होते तो कभी इस तरह की बात मुह स न निकालते। सच्चाई तो यह है कि तुम और तुम्हारी ही स्थिति के दूसरे व्यक्ति अपनी विलासितापूर्ण जीवन की जड़ताग्रस्त शान्ति म विघ्न पड़ते देखकर, अपन अलस सुख के स्वप्न के सहसा भग होने की आशका स घबराये हुए है। यदि तुम लोग अभी से वास्तविकता के लिये तयार नही रहोग, तो यह निश्चित है कि एक दिन अचानक तुम लोगो के ऊपर एसी बिजली गिरेगी कि फिर उससे कभी उबरना सभव न होगा। इसलिये सावधान!'

उसकी बात की और कहने क ढग की एक ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव मरे मन पर पड़ा कि आग उस विषय की चर्चा को बढाने या तर्क करने का साहस ही मुझे नही हुआ। मरे मन पर एक अजीब सा आतक छा गया, जिसने मेरी जबान को जकड़ सा लिया।

जब मोटर न वीरेन्द्र के मकान क फाटक के भीतर प्रवेश किया तब मुझे याद आया कि मैं अकेला नही हू, मरे साथ मनिया भी है—वह भोली भाली पहाड़ी पछी जो ऊपर अनत नीलाकाश म एकाकी उड़ान भरती हुई दिन रात अपने अनजान म किसी एक नीड की खोज म भटकती हुई, न जाने भाग्य के किस रहस्यमय चक्र से, उस अकूल समुद्र म एकाकी तरते वाली मरी पालयुक्त नाव स आ टकराई है। उसी पाल पर नीड निर्माण करने के अतिरिक्त और कोई चारा उसके लिय नहीं रह गया है। वह नाव डूबी तो उसके साथ उसका वह नीड भी सदा के लिय गक हो जायगा।

यह विचित्र, विभ्रामक कल्पना पल मे मरे अतमन को तल स सतह तक मथ गयी और फिर सहसा उसी प्रकार अनत शून्य म विलीन भी हो गयी।

हम लाग वार से उतरे तव नीचे न मनिया दिखायी
। शोभना भाभी। एक नौकर न वीरेन्द्र को सूचित
ा कि बहूजी का आदेश है कि ज्योंही हम लौट आवें त्योंही हम ऊपर
ल्या जाय। फलत हम दोनों सीढ़ियों से होकर ऊपर चले गये।
ऊपर किसी भी कमरे में उन लोगों का कोई चिह्न नहीं दिखायी
ा। एक नौकरानी ने आकर बताया कि दोनों बहुएँ रसोई के कमरे
ई और वहीं हम लोगों को बुलाया गया है। वीरेन्द्र के मुह पर आश्चर्य
चिह्न दिखाई दिये।

वहां क्या कर रही हैं वे ? और हम लोग वहाँ जाकर क्या करें !
ना हो गया हो तो डाईनिंग रूम में ले आओ।"

नौकरानी के मुह पर कौतुकपूर्ण मुसकान झलक रही थी। मुसकान
और अधिक परिस्फुट करती हुई कृत्रिम लाज भरे स्वर में बोली—
दोनों मिलकर खाना बना रही हैं।'

'हो हो हो!" वीरेन्द्र अट्टहास कर उठा। उस अट्टहास से मुझे
गा कि जो गाढ़े काले बादल आकाश में घिरते चले आ रहे थे वे
ा के एक प्रबल झोंके से फटकर साफ हो गये।

'चलो नृपेन्द्र, देखें क्या तमाशा चल रहा है।

वह मुझे कई बरामदों में होकर चक्कर खिलाता हुआ उत्तर की
ओर वाले, एकान्त प्रान्त में स्थित एक कमरे में ले गया। दरवाजे पर से
ी हम लोगों ने देखा, एक परात में मैदा गुंधा हुआ रखा है, एक नौकर
उसमें से भाग निकालकर टिकिया बनाता चला जा रहा है मनिया एक
क करके उन टिकियों को उठाती हुई पास ही एक थाली पर रखी हुई
ोठी या तरह की कोई चीज उठाकर उनमें भरती चली जा रही है, एक
ौकरानी उन्हें बलती जाती है और भाभी जी कचौरियाँ तलती जा
रही हैं। इसे देखते ही दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। वीरेन्द्र भी फिर
एक बार अट्टहास कर उठा और मैं भी हँसी न रोक पाया।

भाभी जी की ओर देखकर वीरेन्द्र बोला— 'यह अच्छा नाटक तुम
लोगों ने रचा है। महाराज कहाँ गया ?

भाभी जी आँखें नचाती हुई बोलीं—"आज देखकर नयी बहू को

 लेकर, पहली बार हम लोगों ने यहाँ आये हैं। आज अपने हाथ से खाना बनाकर खिलाना होता है, और बहू की बनायी चीज भी चखनी पड़ती है। इसलिये मैंने महाराज को छुट्टी दे दी है।

'बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया!' कहकर वीरेन्द्र ठठाकर हँस पड़ा। फिर बोला—'बहू ने कोई खास चीज बनायी है क्या ?"

मैंने कहा—'वह केवल एक ही चीज ठीक से बनाना जानती है, और जब कोई विशेष अतिथि घर पर आता है तो उसे वही चीज खिलाती है।' यह कर मैंने इंगित से मुस्कराते हुए मनिया की ओर देखा।

भाभी जी ने पूछा—"वह क्या चीज ?"

'कुम्हड़े का हलवा!'

सब लोग जोर से हँस पड़े। मनिया स्वयं भी हँसने लगी। भाभी जी ने कचौरी बनाना तक बंद कर दिया। हँसते हँसते उनकी आँखों में आँसू आ गए थे।

वीरेन्द्र जब कुछ संभला तब उसने भाभी जी से पूछा—"क्या सच मुच यही बात है ?'

भाभी जी ने सिर हिलाकर बताया कि ठीक यही बात है और फिर बेतहाशा हँसने लगीं। अत्यधिक हँसी के कारण उनसे बोला नहीं जा रहा था।

काफी देर बाद भाभी जी कुछ सँभलीं और फिर कचौड़ी तलने लगीं। उसके बाद नौकर को उन्होंने आज्ञा दी कि वहीं पर हम दोनों के लिये कालीन बिछा दिया जाय। जब हम लोग कालीन पर बैठ गये तब दो पीढ़े थालियाँ रखने के लिये हमारे आगे रख दिये गये। मैं मेज पर खाने का आदी था और संभवतः वीरेन्द्र भी। पर वह नया अनुभव मुझे बुरा नहीं लगा, बल्कि विशेष प्रिय ही मालूम हुआ। कुछ विशेष प्रकार की तरकारियाँ, मांस, मछली, चटनी, रायते आदि से कटोरों और तश्तरियों से थालियाँ और आस-पास की जगह घिर गयी। कुम्हड़े का हलुआ, जिसके ऊपर पिस्ते कतरकर छोड़ दिये गये थे भाभी जी ने थाली के बीच में सजाकर रख दिया। यह स्पष्ट ही उनकी दुष्टता थी।

वीरेन्द्र ने सबसे पहले वह हलवा ही मुँह में डाला। एक कौर खाने ही अत्यंत गम्भीर भाव से बोला—"सच मुच बहुत अच्छा बना है! यह क्या सचमुच कुम्हड़े का हलवा है?" मेरी ओर देखकर उसने कहा।

मैंने थोड़ा-सा चखकर कहा—"हाँ है तो कुम्हड़े का ही!"

"बहुत ही अच्छा बना है!" उसने अपनी बात दुहराई। प्लेट पेट करके भाभी जी से बोला—"और दो!"

"अरे, तब क्या हलवे से ही पेट भर लोगे?" भाभी जी ने कहा। "वह की बनायी चीज के प्रति ममता होना स्वाभाविक है, पर इस हद तक अच्छा नहीं!" और यह कहकर भाभी जी ने, न जाने क्यों, एक बार व्यङ्ग भरी मुस्कान और तिरछी दृष्टि से मेरी ओर देखा।

"एक प्लेट तो कम से कम और खाने दो, उसके बाद टोकना!" वीरेन्द्र ने कहा।

फिर एक बार हँसी का फौवारा छूट पड़ा। भाभी जी ने दुबारा वीरेन्द्र की प्लेट हलवे से भर दी।

मैं भाभी जी की तली हुई कचौड़ियाँ खाता चला जा रहा था। अपनी ही कचौड़ियाँ थीं, जो केवल एक बंगाली महिला ही बना सकती है। सबसे बड़ी बात यह थी कि बंगदेशीय प्रथा की तरह वे तेल में नहीं बनायी गयी थीं और न वनस्पतीय घी में। विशुद्ध देसी घी भाभी जी ने न जाने कहाँ से प्राप्त कर लिया था।

४९

भोजन कर चुकने के बाद मेरा शरीर अलसाने लगा। एक तो यात्रा की थकावट, उस पर वीरेन्द्र से जीवन मरण सम्बन्धी अत्यन्त गहन विषयों पर लम्बा वाद विवाद और उस पर भी भोजन की गुरुता। मेरा अंग-अंग न जाने किस रस भर गया था।

जो कमरा मुझे दिखाया गया वह साफ-सुथरा और सुसज्जित था। आमने सामने दो स्प्रिंगदार पलँग लगे हुए थे, जिन पर दो नीले रंग की झालरदार सुजनियाँ बिछी हुई थीं। उत्तर की ओर बीच में एक छोटी-सी गोल मेज एक खम्भानुमा लकड़ी पर खड़ी थी, और उस पर पीले रंग का जालीदार टेबिल-क्लाथ बिछा था। उसकी अगल बगल में दो कुर्सियाँ आमने सामने रखी हुई थीं। हरे रंग का फर्श शीशे की तरह चमक रहा था। दो पलँगों के बीच में एक ईरानी कालीन बिछा हुआ था। नौकर ने एक पलँग पर से सुजनी हटा ली। मैं हलकी सी रेशमी रजाई के भीतर घुस गया और झालरदार परों के तकिये के ऊपर सिर रख कर चित लेट गया।

"और कोई चीज दरकार है बाबू!" कलकतिया नौकर ने पूछा।

"बस और कुछ नहीं चाहिए। बाहर से किवाड़ फेर देना।"

नौकर चला गया और धीरे से उसने बाहर से किवाड़ फेर दिए।

मैं परम आराम का अनुभव करता हुआ ऊपर छत की ओर देखने लगा, जिस पर रंगीन 'टाइलों' के टुकड़ों से नाना गोलाकार चक्र, षट्कोण, चतुष्कोण और त्रिकोण बने हुए थे। छत की ओर देखते हुए मेरी दृष्टि बाईं ओर की दीवार पर पड़ी जिस पर तीन बड़े बड़े चित्र त्रिकोण के रूप में सजे हुए टँगे थे। सब से ऊपर कार्ल मार्क्स का शेर की-सी दाढ़ी और अयाल वाला सुप्रसिद्ध चित्र था, बाईं ओर लेनिन का चित्र था, जिसकी छोटी-सी किन्तु गहन रहस्यात्मक अर्धोन्मीलित आँखें जैसे इस दौर में महास्वप्न की आधी सफलता के बाद भूत और वर्तमान के हवाई पर्दे को पार कर किसी अज्ञात भविष्य की परिपूर्ण सफलता को अपना लक्ष्य बनाए हुए थीं, दाईं ओर महात्मा गांधी का चित्र था, जिसमें विश्व विजयी मौन गम्भीर, सहज शांत, अव्यक्त मुसकान भरी अभिव्यञ्जना स्पष्ट झलक रही थी। उसके बाद मैंने दाईं ओर दृष्टि घुमायी। वहाँ भी तीन उसी आकार में चित्र उसी त्रिकोणात्मक रूप से सामने वाले चित्रों से सामंजस्य रखते हुए, टँगे थे। सबसे ऊपर कृष्ण का चित्र था। चित्र स्पष्ट ही किसी योग्य कलाकार द्वारा अंकित किया गया था, जो योगिराज कृष्ण के गहन रहस्यात्मक और साथ ही विश्व

म एक निश्चित धारणा रखता हो। उसके नीचे
ार इसामसीह और दाइ और महात्मा बुद्ध के चित्र थे।

सोचने लगा कि कुछ ही समय पहले मैं जिस हिंसावादी क्रांतिकारी
तें सुन रहा था उसके घर मे महात्मा गाधी, कृष्ण, इसा और बुद्ध
दर कैसे सभव हुआ ? वीरेन्द्र के चरित्र और स्वभाव के भीतर
उदारमवता का आभास मुझे छात्र-जीवन से ही मिल चुका था,
का नया और बदला हुआ विकसित रूप आज की बातो मे मुझे
था और ये चित्र भी उसी का निदर्शन कर रहे थे। एक ओर
मार्क्स और लेनिन और दूसरी ओर बुद्ध, ईसा और गाधी, इन दोनो
र विरोधी व्यक्तियो की समान पूजा यह किसी साधारण व्यक्ति
भाव की बात नही है, यह तथ्य मेरे आगे ज्वलत रूप में
स्पष्ट हो गया।

वीरेन्द्र के विचित्र और जटिल व्यक्तित्व के सम्बन्ध म सोचते हुए
मेरी आँखें लग गयी, यह मैं न जान पाया। जब आँखें खुली, तब
देखा कि मनिया मेरे सिरहाने बैठी हुइ बँगला वर्णमाला की एक
...य म लिये समवत अक्षरो को पहचानने का प्रयत्न कर रही है।
मैंने अँगडाई लेते हुए अलस स्वर में पूछा—"क्या मैं बहुत देर तक
ा था ? क्या बजा है ?"

'तीन बजे हैं,' मनिया न कहा—"अब आज रात तुम ठीक से सो
पाओगे।"

'यह बँगला-पुस्तक तुम कहाँ से ले आयी ?' लेटे ही लेटे उसकी
पर हाथ रखते हुए मैंने पूछा।

यह मद-मधुर स्वर से खिल-खिलाकर हँसी, 'तुम्हारी भाभी ने
है। कहने लगी—'तुम बँगला सीखो, मैं हिन्दी सीखूँगी। तुमसे हिन्दी
कुछ पुस्तकें ला दने के लिये उन्होंने कहा है।"

'क्या ? हिन्दी के प्रति अचानक उनका इतना प्रेम कैसे उमड उठा ?
तुमको बँगला सीखने का इतना आग्रह वह क्या कर रही हैं ?

"उनका हिंदी प्रेम कोई नया नहीं है मनिया बोली—

"उन्होंने मुझे बताया कि विवाह के पहले से ही वह हिन्दी जानती रही हैं और हिंदी की काफी किताबें पढ़ भी चुकी हैं। पर अब वह अपने हिंदी ज्ञान को अधिक बढाना चाहती हैं। मैंने उन्हें बताया कि तुम हिंदी-साहित्य के अच्छे जानकार हो। उन्हें साहित्य से प्रेम है इसीलिये उन्होंने तुमसे कुछ अच्छी साहित्यिक पुस्तकें ला देने के लिये कहा है। मैंने जब उन्हें बताया कि तुमसे परिचय होने के पहले मैं निपट गँवार थी और परिचय हो जाने के बाद कुछ ही महीनों के अर्से में मैंने अपना हिंदी और अँगरेजी भाषाओं का ज्ञान अच्छा बढ़ा लिया, तब उन्होंने कहा कि तुम बँगला भाषा भी बहुत जल्द सीख सकती हो। मैं भी सोचती हूँ कि एक नयी भाषा का ज्ञान यदि हो जाय तो बुरा क्या है।"

कुछ देर मौन रहने के बाद मैं बोला— मुझे आशा नहीं थी, मनिया, कि तुम भाभी जी से इतनी जल्दी इस हद तक हेलमेल बढा लोगी।"

"क्या? मेरे सम्बन्ध में तुम्हारे इतने बड़े अविश्वास का कारण क्या है?

तुम मराठी हो, और किसी भी विजातीय वातावरण में हिलना तुम्हारा स्वभाव नहीं है।

जब तुमसे मैं इतनी जल्दी हिल गयी थी तब भी इस सम्बन्ध में तुम्हारी राय नहीं बदली? आँखों में एक मार्मिक मुसकान झलकाते हुए मनिया ने कहा जब पहले पहल तुमसे मेरा परिचय हुआ था तब तुम क्या मेरे लिये कुछ कम 'विजातीय' थे?

उसने एक ऐसी भूल की ओर मेरा ध्यान आकर्षित कर दिया जिस पर कभी एकांत से विचार ही मैंने नहीं किया था। सचमुच प्रारम्भ में मैं मनिया के लिये जिस हद तक विजातीय रहा हूँगा उस हद तक भाभी जी किसी भी अवस्था में और किसी भी स्थिति में नहीं हो सकती थीं। सहसा यह सत्य भी मेरी आँखों के आगे झलक गया कि कोई भी नारी किसी भी वातावरण में किसी भी दूसरी नारी के लिये विजातीय नहीं हो

सकती। प्रत्येक नारी का सनातन मातृ-हृदय किसी भी दूसरी नारी के मातृ हृदय के तार को एक क्षण में पकड़ लेता है।

भाभी जी ना भाभी जी, यदि कोई एस्किमो नारी भी होती तो ऐसी परिस्थिति में उससे मनिया का सौहार्द पहले ही क्षण में स्थापित हो गया होता, यह सत्य पलभर में मेरे आगे सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट हो उठा। पर—मैंने सोचा—प्रत्येक पुरुष प्रत्येक नारी के लिए प्रथम परिचय के काफी समय बाद तक विजातीय रहता है। मिल्लिया का समझना और उससे हमसब बनाने में मनिया को एक दिन का—सम्भवतः एक क्षण का—भी समय नहीं लगा, पर मुझे वह काफी दिनों तक सन्देह और शंका की दृष्टि से देखती रही। सम्भवतः पुरुष प्रकृति की, पुरुष हृदय की यह विजातीयता ही उसके प्रति नारी के आकर्षण का कारण है। यह विजातीयता जहाँ एक ओर उस चीज़ को ठेलती है वहाँ उसी वेग से उसे बरजस सामने की ओर भी ठेलती है। और ठेले जाने की यह क्रिया—यह चुम्बकीय खिंचाव—कभी-कभी ऐसा प्रबल होता है कि उसके लिये अकूल समुद्र में कूद पड़ने या चट्टान से टकराकर उस पर अपना सिर पटकने के लिए भी वह स्वेच्छा से राज़ी हो जाती है। और उसी प्रकार पुरुष के लिए नारी भी उतनी ही विजातीय है। यही कारण है कि पुरुष एक ओर उसके प्रति प्रबल वेग से आकर्षित होता है और दूसरी ओर उसके प्रति उतना ही शंकित रहता है उससे कतराता रहता है। युगों का साहित्यिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि जहाँ एक ओर पुरुष नारी के मोहिनी रूप और मातृत्व के सौंदर्य का गुणगान करते-करते नहीं थका है, वहाँ दूसरी ओर उसे कलंकित करने, उस पर हीन से हीन अवगुणों को आरोपित करने से भी बाज नहीं आया है। यह विरोधाभास सृष्टि का आदिम रहस्य है और यह रहस्य ही पृथ्वी के कठोर सघर्षमय, अस्थिर और असामञ्जस्यपूर्ण जीवन को अनिश्चित इतना बनाये हुए है।

मन में उत्पन्न ने से प्रकार में यह सत्य मेरी आँखों में चकाचौंध लगा गया। मैंने मनमन भाव में कहा—'तुम ठीक कहती हो मनिया, मैं ही गलती पर था। मुझे दुःख है कि मैं तुम्हें अभी तक नहीं समझ पाया। अभी तक तुम्हारे सम्बन्ध में मेरे मन में इस प्रकार की भ्रान्तियाँ बनी

हुई हैं। तुम बहुत महान हो मनिया, तुम्हारी आत्मा के विस्तार का पार पाना मुझ जसे सकीण प्रकृति पुरुप द्वारा सभव नही है। तुम "

भावुकता के प्रवाह म बहकर मैं न जाने और भी क्या क्या कह जाता। पर सहसा मनिया ने बीच ही म अत्यत स्नेह भरे स्वर मे टोकते हुए कहा—"अरे, तुम्ह क्या हो गया आज ? इस तरह की बातें क्यो करते हो ? मुझे लगता है कि आज किसी कारण से तुम्हारा मन बहुत खिन्न है।'

मैंने अक्सर देखा है कि नारी की आश्चयजनक अतद ष्टि के आग कभी कभी सारे मनोवज्ञानिक विश्लेपण को हार मानना पडता है। मेरी खिन्नता का कोई भी व्यक्त कारण नही था और न तब तक इस बात की ओर मेरा ध्यान ही गया था कि मैं खिन्न हू। पर मनिया क सुझाते ही वह झीना पदा फट पडा जो उस समय तक मरे भीतर की अज्ञात वेदना को मुझसे छिपाये हुए था। मुझे लगा कि म सचमुच खिन्न रह रहा हू और वह खिन्नता मेरे अवचेतन म मरी निद्रावस्था म भी मेरी सपूण आत्मा को छाये हुए थी। मनिया के सुझाने से मैं केवल उस वेदना के प्रति सचेत नही हुआ बल्कि उस दबी हुई वेदना का कारण भी मेरे आगे स्पष्ट हो गया। वीरेन्द्र स सुबह मेरी जो बातें हुई थी उन सबका एसा सचयात्मक प्रभाव मरे अतमन पर पडा था कि उसने मेरे बहुत भीतर, अणु अणु म एक अजीब-सी बेचनी का मीठा विष सचारित कर दिया था। इतनी देर तक उस बेचनी को अपने अनजान म भातर ही भीतर दबाता हुआ मैं उसक प्रति उपेक्षा का भाव रखता जा रहा था। पर वह विष दबने वाला नही था और धीरे धीरे अत मन स ऊपर ही उठता चला जा रहा था। मुझे याद आया कि वीरेन्द्र की बातो ने मेरे मन की अपेक्षाकृत शाति को केवल आनेवाली ग्लानि का चेतना म ही नही झकझोरा था, वरन स्वय उसके व्यक्तिगत भविष्य के सबध म भी एक ऐसे रहस्यमय आतक का पूर्वाभास मेरी अतश्चेतना म भर दिया था जिसके अत्यत अस्पष्ट स्वरूप क सम्बन्ध मे कोई निश्चित धारणा करने मे मैं अपने को एकदम असमथ पा रहा था। 'घबराने की कोई

बात नहीं है।" वीरेन्द्र ने उसे मुझे दिलासा देने के उद्देश्य से कहा था पर यह जानना कठिन था कि दिलासा वह मुझे दे रहा था या स्वयं अपने को। उसकी सारी बातों से मुझे लगा था कि कोई अज्ञात किन्तु अनिवार्य चक्र उसे किसी ऐसी होनी की ओर बरबस ठेले लिए जा रहा है जिसके लिए पूरी तैयारी करने का उपयुक्त समय ही उसे नहीं मिल पाया है। अन्तर का जो अनुपेक्षणीय आदेश उसे उस अज्ञात और अस्पष्ट लक्ष्य की ओर खुद-ब-खुद चले जाने के लिए मिला है वह ऐसा आकस्मिक है कि उसका पालन किस ढंग से करना चाहिए यह वह ठीक से समझ ही नहीं पा रहा है, और एक विचित्र भँवरजाल में पड़ गया है। पर इतना वह जरूर निश्चित रूप से समझ चुका है कि उसका पालन हर हालत में करना है और जल्दी ही करना है। ऊपर से उसने आनेवाली क्रान्ति के संबंध में कितनी ही बड़ी बड़ी भारी भरकम बातें क्यों न कही हों, भीतर से वह स्वयं भी यह निश्चित रूप से समझे बैठा है कि वह उसके लिए पूरे तौर से तैयार नहीं है और पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ उस ओर कदम नहीं बढ़ा सकता। पर आत्म विश्वास हो चाहे न हो, उसे आगे उस ओर कदम बढ़ाना ही होगा। उसके लिए जो अज्ञात आदेश उसे किसी अज्ञात दिशा से मिला है उससे मुँह मोड़ने को उसे प्रेरित कर सके ऐसी शक्ति विश्व में कहीं भी नहीं है। उस आदेश में युग की चेतना का कितना हाथ है और किसी अलक्ष्य अंतरंग प्रवृत्ति का कितना है, इस पर दृढ़ चित्त से एकान्त में विचार करने का अवकाश ही उसे नहीं है। जो आह्वान अनिर्दिष्ट दिशा से आया है उसका अनुगमन एक प्रण-बद्ध सैनिक की तरह उसे करना होगा, केवल इतना ही वह जानता है। और ऐसा आह्वान जीवन में दूसरी बार नहीं आया था यह भी निश्चित है।

वीरेन्द्र की इन बातों से मेरे आगे यह बात भी स्पष्ट हो चुकी थी कि उस आह्वान के और युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़ने की अन्तिम निर्दिष्ट तिथि के बीच जो अत्यन्त स्वल्प अवकाश का समय उसे मिला है उतने समय में बीते युग के अवशिष्ट संस्कारों को झाड़ फटकार कर साफ कर देना होगा। पर वे अवशिष्ट संस्कार इस कदर चिपचिपे हैं कि वे केवल झाड़न-

 हुइ है। तुम बहुत महान हो मनिया, तुम्हारी आत्मा के विस्तार का पार पाना मुझ जसे सकीर्ण प्रकृति पुरुष द्वारा सभव नहीं है। तुम "

भावुकता के प्रवाह म बहकर मैं न जाने और भी क्या-क्या कह जाता। पर सहसा मनिया ने बीच ही म अत्यन्त स्नेह भरे स्वर मे टोकते हुए कहा—"अरे, तुम्हें क्या हो गया आज ? इस तरह की बातें क्या करते हो ? मुझे लगता है कि आज किसी कारण से तुम्हारा मन बहुत खिन्न है।'

मैंने अक्सर देखा है कि नारी की आश्चर्यजनक अतद प्टि के आगे कभी कभी सारे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को हार मानना पडता है। मेरी खिन्नता का कोइ भी व्यक्त कारण नही था, और न तब तक इस बात की ओर मेरा ध्यान ही गया था कि मैं खिन्न हू। पर मनिया के सुझाते ही वह झीना पर्दा फट पडा जो उस समय तक मेरे भीतर की अज्ञात वेदना को मुझसे छिपाये हुए था। मुझे लगा कि मैं सचमुच दिन भर खिन्न रहा हू और वह खिन्नता मेरे अनजान म मेरी निद्रावस्था म भी मेरी सपूर्ण आत्मा को छाये हुइ थी। मनिया के सुझाने से मैं केवल उस वेदना के प्रति सचेत नहीं हुआ, बल्कि उस दबी हुई वेदना का कारण भी मेरे आगे स्पष्ट हो गया। धीरेन्द्र से सुबह मेरी जो बातें हुई थी उन सबका ऐसा सचयात्मक प्रभाव मेरे अतमन पर पडा था कि उसने मेरे बहुत भीतर, अणु अणु म एक अजीब-सी बेचनी का मीठा विष सचारित-सा कर दिया था। इतनी देर तक उस बेचनी को अपने अनजान म भीतर ही भीतर दबाता हुआ मैं उसके प्रति उपेक्षा का भाव रखता जा रहा था। पर वह विष दबने वाला नही था और धीरे धीरे मेरे मन मे ऊपर ही उठता चला जा रहा था। मुझे याद आया कि धीरेन्द्र की बातो न मेरे मन की अपेक्षाकृत शाति को केवल आनेवाली ग्लानि की चेतना म ही नहीं झकझोरा था, वरन स्वय उसके व्यक्तिगत भविष्य के सबध म भी एक ऐसे रहस्यमय आतक का पूर्वाभास मेरी अतश्चेतना म भर दिया था जिसके अत्यन्त अस्पष्ट स्वरूप के सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा करने म मैं अपने को एकदम असमर्थ पा रहा था। घबराने की कोई

बात नहीं है !" वीरेन्द्र ने जैसे मुझे दिलासा देने के उद्देश्य से कहा था पर यह जानना कठिन था कि दिलासा वह मुझे दे
रहा था या स्वयं अपने को। उसकी सारी बातों से मुझे लगा था कि कोई अज्ञात किंतु अनिवार्य चक्र उसे किसी ऐसी होनी की ओर बरबस ठेले लिये जा रहा है जिसके लिये पूरी तयारी करने का उपयुक्त समय ही उसे नहीं मिल पाया है। समय का जो अनुल्लंघनीय आदेश उसे उस अज्ञात और अस्पष्ट लक्ष्य की ओर बुनकर चले जाने के लिये मिला है वह ऐसा आकस्मिक है कि उसका पालन किस ढंग से करना चाहिये यह वह ठीक से समझ ही नहीं पा रहा है, और एक विचित्र भँवरजाल में पड़ गया है। पर इतना वह जन निश्चित रूप से समझ चुका है कि उसका पालन हर हालत में करना है और जल्दी ही करना है। ऊपर से उसने आनेवाली क्रान्ति के संबंध में कभी ही बड़ी-बड़ी भारी भरकम बातें क्या न कही हों, भीतर से वह स्वयं भी यह निश्चित रूप से समझ रहा है कि वह उसके लिये पूरे तौर से तयार नहीं है और पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ उस ओर कदम नहीं बढ़ा सकता। पर आत्म विश्वास हो चाहे न हो, उस ओर उसे कदम बढ़ाना ही होगा। उसके लिये जो अज्ञात आह्वान किसी अज्ञात ही दिशा से मिला है उसमें मुह मोड़ने को उसे प्रेरित करे ऐसी शक्ति विश्व में कहीं भी नहीं है। उस आदेश में युग की चेतना का कितना हाथ है और किसी अलक्ष्य अनदेखी प्रवृत्ति का कितना है, इस पर दृढ़ चित्त से एकान्त में विचार करने का अवकाश ही उसे नहीं है। जो आह्वान अनिर्दिष्ट दिशा से आया है उसका अनुगमन एक प्राण-बद्ध पुतले की तरह उसे करना होगा केवल इतना ही वह जानता है। और ऐसा आह्वान जीवन में दूसरी बार नहीं आया था यह भी निश्चित है।

वीरेन्द्र की इन बातों से मेरे आगे यह बात भी स्पष्ट हो चुकी थी कि उस आह्वान के और युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़ने की अन्तिम निर्दिष्ट तिथि के बीच जो अत्यन्त स्वल्प अवकाश का समय उसे मिला है उतने समय में बीते युग के अवशिष्ट संस्कारों को झाड़-बुहार कर साफ कर देना होगा। पर वे अवशिष्ट संस्कार इस कदर चिपचिपे हैं कि वे केवल झाड़न-

३३० पटकारने से साफ नहीं होना चाहते। उन्हें धोकर घिसकर, रगड़कर या किसी रासायनिक प्रयोग से साफ करना होगा। मैं देख रहा था कि उसकी वर्तमान बेचैनी का कारण ही यह है कि वह आदेश के पालन के पूर्व पूरी सफाई चाहता है, जो बहुत कठिन सिद्ध हो रही है।

और उसकी यह बेचैनी भी विस्ट थी। मैंने बार-बार इस बात पर गौर किया था कि अट्टहास करने के समय भी उसकी वह भीतरी बेचैनी उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। उसका अट्टहास भी जैसे उसके अंतर की विफलता की पुकार थी।

मैंने मनिया से कहा— तुम ठीक ही कहती हो मनिया, मेरे चित्त में आज शायद अकारण ही एक उदासी सी छा गयी है शायद यह दिन में सोने का फल है क्योंकि इसका आदी मैं नहीं रहा हूं।

जीजी से जब मैंने बताया कि तुम सो रहे हो तब उन्हें भी आश्चर्य हुआ। उन्होंने ठीक से बताया नहीं, पर मुझे लगा कि वह तुमसे कुछ बातें करना चाहती हैं।

मुझसे बातें करना चाहती हैं? मनिया के इस प्रश्न का आश्चर्य से दुहराता हुआ मैं उठ उठा, कोई खास बात या—

' या प्रेमालाप! तुम यही पूछना चाहते थे न? कहकर मनिया अत्यंत धृष्टतापूर्वक खिलखिला उठी।

मुझे उसका यह परिहास कतई पसंद नहीं आया। उसके इस परिहास में मुझे आश्चर्य भी कुछ कम नहीं हुआ। उसके पहले मैंने मनि उसके मुंह से प्रेम अथवा स्त्री-पुरुष के शृंगारात्मक संबंध विषयक किसी प्रकार की चर्चा नहीं सुनी थी। मैंने बार-बार उस कट्टर पवित्रता-वादि पाया था। इसलिये आज अचानक उसके मुंह से ऐसा परिहास सुनकर जिसे मैं अनुचित मानता था मुझे एक धक्का सा लगा।

मैंने उसकी हँसी में तनिक भी योग नहीं दिया। अत्यंत गंभीर मुद्रा बनाते हुए मैंने तनिक तिरस्कार भरे स्वर में कहा—' इस तरह अनुचित बात मुंह से निकालना तुम्हें शोभा नहीं देता, मनिया! जो जी के प्रति मेरे मन में श्रद्धा की जो भावना जग उठी है वह तुम्हारे या

और किसी के परिहास से खंडित नहीं हो सकती, यह विश्वास मुझे है। फिर भी तुमसे मेरा यह अनुरोध है कि भविष्य में भाभी जी को लेकर इस तरह के व्यंग या विनोद की बात मेरे आगे न किया करना।"

'तुम क्या सचमुच नाराज हो गये ?" अपने दाहिने हाथ में मेरा गला जकड़ती हुई मनिया बोली, "मुझे माफ कर दो। मैंने तुम्हें पीड़ा पहुँचाने के लिये ऐसा नहीं कहा था, विश्वास मानो। जीजी ने ही मुझे बताया कि देवर भौजाई के बीच प्रेम-सम्बंधी परिहास की बातें चलती हैं—इस देश का यह रिवाज है, नहीं तो मैं कभी—"

जीजी की क्या शिकायत कर रही हो ? कहती हुई सहसा भाभी जी भीतर चली आयीं। मुझे पता नहीं था कि दरवाजा खुला है। मनिया की असावधानी मुझे बहुत खली।

मनिया को मेरे गले में हाथ डाले हुए देखकर वह सहसा लौट चलने ही को थीं कि मैंने कहा—"बैठिये, आपसे कुछ जरूरी बात करनी है।"

मनिया उसी क्षण हाथ हटाकर पलंग पर से उठ खड़ी हुई और बहू सा मुँह बनाकर सामने खड़ी हो गयी। मैंने संकेत से उससे भाभी जी के लिये एक कुर्सी ले आने को कहा। मनिया जब कुर्सी उठाने लगी तब तक भाभी जी स्वयं जाकर दूसरी कुर्सी उठा लायीं। जब दोनों अपनी अपनी लायी हुई कुर्सियों पर बैठ गयीं तब मैंने भाभी जी से कहा—"आप अपनी देवरानी के रंग ढंग तो देख ही चुकी होंगी और अभी यह जो कुछ कह रही थी वह भी पूरा नहीं तो अधूरा तो सुन ही लिया होगा। देवर भौजाई के रसमय सम्बन्ध की जो बात आपने इसे बतायी होगी उसका यह कुछ विचित्र ही अर्थ लगाने जा रही थी। मैंने जो टोका तो अब नाराज हो गयी है।'

मनिया ने एक बार तीखी, भावेनिक दृष्टि से मेरी ओर देखा, जैसे यह जताना चाहती हो कि मैं ऐसी बात कह रहा हूँ जो नहीं कहनी चाहिए, और फिर आँखें फेर लीं।

' अरे तो आपने क्या टोका मेरी भोली और भली देवरानी को ?" यह कहकर भाभी जी स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगीं।

मनिया अधिक सकुचित होकर और कुछ सिमटकर नीचे की ओर देखने लगी।

"देवर भौजाई के रसमय सम्बन्ध की बात चलाते हुए तुम पति-पत्नी के रसमय सम्बन्ध की बात क्यों भूल गयी बहन ?" मनिया को मनाने का प्रयत्न करती हुई भाभी जी बोलीं। "लाला की तनिक सी परिहास की बात से तुम नाराज हो गयी ?" और वह फिर धीरे से उसकी पीठ थपथपाने लगी जैसे वह एक नन्हा सी बच्ची हो।

और मनिया सचमुच नन्ही-सी बच्ची ही थी। भाभी जी कुछ ही घन्टा के परिचय से उसे ठीक समझ गयी थी।

उसने सिर बिना उठाये ही भाभी की बात का उत्तर देते हुए कहा—"वह मेरे तनिक से परिहास से क्या बिगड गये !

भाभी जी को स्पष्ट ही इस सरल मान-लीला से अच्छा कौतुक का अनुभव हो रहा था। उनका सुन्दर सा गोरा उजला मुख चमक उठा था, और घनी काली बरौनियों के बीच में दो बड़ी-बड़ी नीली आँखों में जैसे पुलक छलक उठा था।

मेरी ओर देखकर उन्होंने प्रश्न किया—"आखिर बात क्या हुई थी ?

मैंने अपनी ओर से बिना कुछ जोड़े घटाये मनिया के और अपने शब्दों को ठीक-ठीक दुहरा दिया। जब मैंने मनिया द्वारा 'यवहृत प्रेमालाप' शब्द का उल्लेख किया तब भाभी जी ऐसी खिलखिला उठीं कि हँसते हँसते उनकी आँखों से आँसू निकल आये। कुछ देर बाद आँसुओं को पोंछती हुई बोलीं—'तब बाबा, इस सारे झगड़े में पहला अपराध तो मुझे तुम्हारा ही लगता है। इतनी सी बात के लिये बहन से बिगड़ने की क्या आवश्यकता थी ? बेचारी ने सरल भाव से एक हलका सा परिहास कर दिया तो क्या हानि हो गयी ?

भाभी जी के मुँह से निकला हुआ 'तुम' सम्बोधन मुझे इस कदर सहज स्वाभाविक और प्यारा लगा कि मैं कृतज्ञता भरी आँखों से उनकी स्निग्ध सुन्दर छवि की ओर देखता रह गया। मुझे लगा कि उनसे मेरा परिचय आज का नहीं उस दिन से है जब मैं पालने में लेटा हुआ,

हाथ पाँव नचाता हुआ, परिपूर्ण कुतूहल भरी विस्मित आखों से अनजान विश्व को समझने का प्रथम प्रयास करता रहा
हूँगा। जो सहज स्नेह-सम्बन्ध उस समय उनकी बातों से और व्यवहार से प्रकट हो रहा था वह ऐसा मुक्त लग रहा था कि कहीं कण-मात्र भी अवरोध नहीं दिखाई देता था।

भाभी जी के उस सहज मुक्त भाव और बेतकल्लुफी का प्रभाव मनिया पर भी पड़े बिना न रहा। वह सिर उठाकर मेरी ओर देखती हुई बोली—'सुन लिया तुमने? मुझे निपट मूर्ख जानकर लगे थे मुझ पर बिगड़ने! मैंने कौन-सी ऐसी अनुचित बात कही थी? बड़े आये बिगड़ने वाले!"

उस भोलेपन पर कौन खिन्न न होता! मैं पुलकित होता हुआ भी मन्द मन्द हँस पड़ा और बोला—"अच्छा, अब मैं मान गया कि गलती मेरी ही थी। अब तो माफ कर दो!"

बड़े आये माफी चाहने वाले! पहले क्या डाँटा था?' और उसकी आँखों से बरबस दो बूँद आँसू टपक पड़े।

'अरे, पगली कहीं की!" भाभी जी ने उसके गले पर अपना बायाँ हाथ डालकर उसका सिर धीरे से अपनी ओर करते हुए पुचकार भरे स्वर में कहा। "यह तो रोने भी लग गयी। शान्त हो जा! अब तो झगड़े की कोई बात नहीं रही।" और वह अपने दायें हाथ की लम्बी-लम्बी, पतली उँगलियों को धीरे—बहुत धीरे—उसके सिर पर फेरने लगीं। मनिया ने भी, जैसे किसी अज्ञात रहस्यमय आकर्षण से अपना सिर उनकी गोद में छिपा लिया—जैसे माँ की ममता की युगों से दबी हुई भूख को पहली बार तृप्ति पाने का अवसर मिला हो। भाभी जी की घनी काली बरौनियाँ स्नेह जल से भीग कर चमकने लगी थीं। मनिया के सिर पर हाथ फेरती हुई वह शून्य स्थित किसी अनन्य बिंदु की ओर अपनी प्यारी-प्यारी, सुंदर, स्नेह-सरस आँखें गड़ाये हुए थीं। अपनी आँखें पोंछने के लिए उनका एक भी हाथ खाली नहीं था।

मैं भाव मुग्ध होकर विस्मित आँखों से वह अपूर्व दृश्य देखता

 रहा। कुछ देर बाद मनिया ने धीरे से अपना सिर हटा लिया और मृदु मुसकान भरी दुष्टतापूर्ण तिरछी आँखों से वह मेरी ओर देखने लगी। अच्छी तरह धुल चुकने के बाद उसकी अभिमानी आँखों में एक ऐसा निखार आ गया था जो मुझे बहुत प्रिय लग रहा था। मैंने भी संकेत भरी मुसकान से उसकी संधि सूचक दृष्टि का मौन उत्तर दिया। भाभी जी ने अवसर पाकर बड़ी सफाई से अपनी आँखें पोंछ डालीं।

"बहू मां, चाय यहां ले आऊं?" कलकतिया नौकर ने (जो उच्चारण से बिहारी लगता था) दरवाजे पर से पूछा।

'नहीं ड्राइंग रूम में ले चलो। कहकर भाभी जी हड़बड़ाती हुई उठ खड़ी हुई। उसके बाद मेरी ओर देखती हुई बोलीं— उठो लाला, अब कब तक पलंग पर बैठे रहोगे? वह बड़ी देर से तुम लोगों का इंतजार कर रहे हैं। मैं तुम लोगों को सूचित करने आयी थी और यहाँ आकर तुम दोनों के बीच के झगड़े का फैसला करते में सब भूल गयी। चलो उठो! मैं चलती हूं। तुम दोनों चले आना नीचे ड्राइंग रूम में जल्दी ही। और वह बड़ी तेजी से बाहर निकल गयी।

सचमुच, मैं वीरेन्द्र के अस्तित्व को ही कुछ समय के लिये एकदम भूल-सा गया था। भाभी जी ने जब उसकी याद दिलायी तब मैं भी हड़बड़ाता हुआ उठा। कपड़े बिना बदले ही, चप्पल पहनकर जब चलने लगा तब मनिया बोली—' कपड़े निकाल लाऊँ? इस वेष में जाओगे तो जेठ जी हँसेंगे।

"वह हँसेगा इसीलिये तो इस वेष में जा रहा हूँ। चलो तुम भी अब अधिक देर न करो।

वह फिर कुछ न बोली और चुपचाप मेरे पीछे-पीछे हो ली।

५०

"हो तुम नंबरी बूर्जुवा, इसमे कोई शक नही !" वीरेंद्र ने मुझे देखते ही परिचित अट्टहास के स्वर मे कहा ।

"बूर्जुवा तो मैं हूँ ही, यह तुम्हारा कोई नया आविष्कार नही है," मैंने हँसते हुए कहा, "और शायद नंबरी भी हूँ । पर यह बताओ कि इस समय किस बात से तुम्हारा ध्यान मेरी इस विशेषता की ओर गया ?"

"पहली बात यह कि जाडे के दिनो मे भी दिन मे सोना यह एक टिपिकल बूर्जुवा का ही गुण है । दूसरी बात यह कि जैसी अस्त-व्यस्त वेशभूषा मे तुम चाय पीने आये हो वह भी एक बूर्जुवा की ही विशेषता है—घुंघराले बाल आधे बिखरे हुए, हरे रंग का पुलोवर गले पर केवल आधा लौटाया हुआ, उसके नीचे सिलेटी रंग की गरम कमीज, उसके साथ सौ-सौ सिकुडनो सहित डिवन के लट्ठे का सफेद, झलझलाता हुआ पायजामा और उस पर पीले रंग का फुदनेदार इजारबंद नीचे को लटकता हुआ—क्या लखनौवा ठाठ है तुम्हारे !" और यह अपनी ही बात पर दुगुने जोर से ठठा कर हँस पडा ।

"मैंने कहा न था !" मनिया एक बार मेरी ओर और एक बार वीरेंद्र की ओर देखती हुई मुझे उलहना देती हुई बोली ।

"तब तुम्हारी भी यही राय है कि यह पक्का बूर्जुवा है ? मुझे बडी खुशी हुई अपनी बात का समर्थन पाकर ?" और फिर अट्टहास ।

मनिया भाभी जी की बगल मे बैठ गयी और मैं वीरेंद्र के पास ।

भाभी जी चारो प्यालो मे चाय ढालती हुई वीरेंद्र को संबोधित करती हुई बोली— "तुम बात-बात मे लाला की हँसी उडाया करते हो, यह अच्छी बात नहीं है । कम से कम अपनी बहू का तो लिहाज किया करो । बेचारी योंही सिमटी सिकुडी-सी रहती है !" उनके मुख पर एक दबी हुई मुसकान झलक रही थी ।

"यह बात तुम बहू की अनुपस्थिति मे मुझे सुझाती तो इसका कुछ फल भी होता !"

अबकी अट्टहास की बारी मेरी थी । मैंने मनिया की ओर देखा । इस बार उसके मुख पर सहज प्रसन्नता का भाव झलकते हुए देखकर

मैं समझ गया कि जेठ जी के प्रत्येक व्यंग और परिहास को वह सहज रूप में ही ग्रहण कर रही है।

जलपान की चीजों में बागबाजार के प्रसिद्ध रसगुल्ले, भीमनाग के सदेश, रसमलाई और समोसे (जिन्हें भाभी और वीरेन्द्र 'सिंघाड़े' कह रहे थे) यही प्रमुख थे। घर की बनी कोई चीज न थी।

एक रसगुल्ला मुंह में डालते हुए वीरेन्द्र बोला—' रसगुल्ला चाहे बागबाजार का ही क्या न हो इसमें वह स्वाद हो ही नहीं सकता जो सुबह कुम्हड़े के हलवे में मिला था।

इस बार उसके चेहरे पर हँसी का लेश भी नहीं था। पर भाभी जी और मैं बिना हँसे न रह सके।

'*हँसी की बात नहीं है। सचमुच हलवा बहुत अच्छा बन गया था। मैं तो* बहू से यह अनुरोध करना चाहता था कि वह कोई और नयी चीज अपने ही हाथ की बनी खिलावे। पर तुम लोग चूंकि यह बात हँसी में उड़ा देना चाहते हो, इसलिये अब मुझे साहस नहीं होता।"

"तुम जरूर अनुरोध करो बहू से, भाभी जी ने कहा, 'मुझे तो इससे लाभ ही होगा। क्योंकि बहुत दिनों बाद कुछ नया पकवान खाने को मिलेगा। कलकतिया चीजों से तो अब मुझे भी अरुचि होती जाती है।

'बहू कोई तिब्बती चीज बनाकर हम लोगों को खिलाओ, वीरेन्द्र ने आग्रहपूर्वक कहा।

मनिया ने सहज प्रसन्नता भरी पूरी दृष्टि से वीरेन्द्र की ओर देखा और तब बोली— 'तिब्बती चीज तैयार करने के लिए चंवर गाय का पनीर चाहिए—वह भी महीनों का सुखाया हुआ! बिना उसके कोई अच्छा तिब्बती पकवान बन ही नहीं सकता! और तो और, अच्छी *तिब्बती चाय भी बिना पनीर के नहीं बन सकती।"*

'तब तो अवश्य यह पनीर कहीं से प्राप्त करनी होगी।

' वह केवल तिब्बती व्यापारियों ही से मिल सकती है। मनिया ने कहा।

"मैं जानता हूँ। दार्जिलिंग में मैंने तिब्बती व्यापारियों को इसे

बेचते देखा है। बहुत दिनों तक मेरी यह धारणा रही कि वे लोग कपड़ा धोने का साबुन बेचते हैं। बाद में किसी ने बताया कि वह साबुन नहीं चँवर गाय की पनीर है।'

"वही क्या चँवर गाय की पनीर है? भाभी जी ने एक घूट चाय पीने के बाद पूछा और फिर बोली— अरे बापरे! उसको बनी चीज खाने से तो मैं मोम से बनी चीज खाना बहतर समझूँगी। उफ!" उन्होंने नाक भी सिकोड़ते हुए इस तरह सिर हिलाया जैसे उनका सारा शरीर सिहर उठा हो।

मैंने भाभी जी की ओर देखते हुए कहा—' मेरी ससुराल की चीज के प्रति ऐसी अरुचि जताकर आप मेरा अपमान कर रही हैं भाभी जी!"

भाभी जी चाय का घूट गटकती हुई खिलखिल करके हँस पड़ी। वीरेन्द्र ने भी जोर का ठहाका मारा।

'सचमुच मैं यह बात भूल ही गयी थी कि तिब्बती लोग तुम्हारे ससुराल वाले हैं! तब तो उस चीज का मैं सिरमाथे रखती लाला! अब तो मेरे लिए यह जरूरी हो गया है कि मैं कहीं-न-कहीं से उस ताहफे का प्राप्त करूँ। और जिस दिन मुझे वह प्राप्त हो जाय उस दिन मैं निश्चय ही तुम्हारी ससुराल के दो चार सज्जनों को भी निमन्त्रित करूँगी!'

इस बात पर ऐसा कहकहा मचा कि दो-तीन नौकर घबराकर बाहर से भीतर चले आये। वीरेन्द्र तो स्वयं अपने अट्टहास के धक्के से कुर्सी सहित पीछे की ओर गिरते गिरते बचा। मनिया इस कदर लोटपोट हो गयी थी कि उसने अपने प्याले में से चाय गिराकर अपनी साड़ी खराब कर डाली। उस एस मुक्त रूप से हँसते हुए उनको पहले मैंने कभी नहीं देखा था। मेरा भी बुरा हाल था। भाभी जी स्वयं अपने ही परिहास की धुमनी से अपने को सँभाल नहीं पाती थी।

हँसी का जोर जब कम हुआ तब वीरेन्द्र अपनी चमकती हुई आँखों में भीग आया को बायें हाथ से पोछता हुआ बोला—' आज तुम लोगों

 के आ जाने से बड़ा ही सुख मिला भाई। बहुत दिनों बाद ऐसा अवसर आया।"

उसके बाद उसने बायाँ हाथ ऊपर उठाकर घड़ी में समय देखा। फिर भाभी जी से बोला—"बतन में चाय हो तो एक प्याला और मिलाओ इसी बात पर!"

सभी लोगों के प्याले दूसरी बार खाली हो चुके थे। इस बीच नौकर एक बतन में चाय का पानी और लाकर रख गया था। भाभी जी ने एक एक करके सबके प्यालों में फिर से चाय ढाली।

जब सब लोग चाय पी चुके तब वीरेन्द्र ने फिर एक बार अपने हाथ की घड़ी पर नजर डाली और सहसा गम्भीर मुख मुद्रा बनाते हुए मुझसे बोला— पाँच बजने को हैं। मुझे एक आवश्यक काय से जाना है। तुम अपनी भाभी और बहू को साथ लेकर चाहे नहर की ओर घुमा लाना चाहे झील की ओर। मैं रात में आठ-नौ बजे के करीब लौटूंगा, तब फिर मिलेंगे। यह कहकर वह सहसा उठ खड़ा हुआ और दूसरे ही क्षण बाहर निकल गया। हम लोग भी उठकर दरवाजे के पास खड़े हो गये। बाहर उसकी 'कार' खड़ी थी। उस पर बैठकर वह स्वयं ही ड्राइव करता हुआ चला गया।

उसके इस आकस्मिकता से चले जाने पर सारे कमरे में एक गम्भीर वातावरण छा गया। हम लोग जब फिर से उठ गये तब भाभी जी ने बरबस निकलती हुई लम्बी साँस को दबाने का व्यर्थ प्रयास करते हुए कहा— आजकल प्रतिदिन यह किसी गुप्त सभा की बैठक में सम्मिलित होने न जाने कहाँ जाते हैं। आज सचमुच यह बहुत दिनों बाद हँसे। तुम लोगों के आने से आज प्राय दो वर्ष बाद मैंने इन्हें इनके पिछले रूप में पाया। नहीं तो पिछले दो वर्षों से मैं यही देख रही हूँ कि विनोद की किसी भी बात में रस नहीं ले पाते। घर रहते हैं तो या तो कोई अखबार या मार्क्सवाद सम्बन्धी पुस्तक पढ़ने में व्यस्त रहते हैं या अकेले कभी कमरे के भीतर कभी बरामदे में और कभी दालान में टहलते हुए अत्यन्त गम्भीर भाव से न जाने क्या सोचते रहते हैं। मुझसे भी जब बातें करते हैं तब अक्सर यही कहते हैं कि 'हम लुटेरों और डाकुओं के गार्गीदार

बन हुए हैं, शोभना। हम कोई अधिकार नहीं है कि इतनी बडी जमीन पर पूरा हक जमाये रहे हैं जब कि लाखो किसान अपना खून-पसीना एक करके, अपनी हड्डी पसली सुखाकर, हम लोगो के सुख के साधन जुटाने म व्यस्त हैं और स्वय अपने लिये भरपेट मोटा अन्न भी नहीं जुटा पाते, इतने बडे बँगले मे राजसी ठाठ से रहकर हम दो प्राणी हजारो किसानो और मजदूरो का कौर छीनने म देशव्यापी रक्त शोषको का साथ दे रहे हैं, यह तुम समझे रहो। जब-जब तुम सुस्वादु व्यजन का एक एक कौर मुह मे डालती हो तब-तब यह याद करती रहो कि तुम इस देश के उन असख्य श्रमिको के रक्त का स्वाद पा रही हो जो जीवन म अपना सब कुछ दे देने को विवश हैं, जो अपना सब-कुछ गँवाये बठे हैं, और जिनके उबरने का कोई भी रास्ता आज की बूर्जुवा सरकारें नहीं खोलना चाहती। मैं भी इस पाप मे तुम्हारा और तुम्हारी और अपनी कोटि के दूसरे लोगो का साथ दे रहा हूँ। मेरे पिछले जीवन की कुछ ऐसी विवशताएँ, कुछ ऐसे सस्कार रहे हैं, जो अभी तक मुझे इस पाप से मुक्त होने से रोके हुए हैं। पर मैं तुमसे सच कहता हूँ कि प्रतिक्षण मेरी यह विवशता मुझे सौ-सौ बिच्छुओ के से डक मारती रहती है। एक एक कौर जब मैं मुह म डालता हूँ तो मुझे वह कालकूट से भी कडवा लगता है। बार-बार मेरी इच्छा होती है कि अपना सब-कुछ लुटाकर सर्वहारा बन जाऊँ और उस सब-कुछ गवायी हुई जनता के साथ समान स्तर मे मिलकर उन्ही के सगठित प्रयत्नो से स्वय अपनी और दूसरे सपत्तिशालियो की सपत्ति को जन साधारण म समान रूप से वितरित कर पाऊँ। मैं निकट-भविष्य म ऐसा कर नही पाऊँगा। पर रह रहकर यह भावना मेरे मन म हजारो सुइयाँ चुभाती रहती है। मेरी इस भावना का परिणति कहाँ और किस रूप म होगी, मैं कह नहीं सकता। इसी तरह के लेक्चर वह समय असमय मुझे पिलाते रहते है।

भाभी जी के सुन्दर, और प्रकट म सौम्य मुख पर एक मर्म विदारक करुण छाया घिर आयी। मैं और मनिया निस्तब्ध और निर्वाक होकर उनकी ओर देख रहे थे। वह कहती चला गया—' मैं कई बार उनसे कह चुकी हूँ कि लाखो आदमी ऐसे है जो अपनी अच्छी सामाजिक स्थिति

के लिये तनिक भी ग्लानि का अनुभव किये बिना भी उच्च आदर्शों का पालन किये चले जाते हैं और विश्व कल्याण के लिये प्रयत्नशील रहते हैं, तुम भी उन्हीं की तरह शांति के साथ धैर्यपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन किये चले जाओ। मन को इस तरह अशांत रखने से न तो तुम्हें व्यक्तिगत संताप प्राप्त होगा न उससे समाज का ही कोई हित हो सकेगा।' पर वह मेरी इस तरह की बातें सुनकर या तो चीनकर बिना कुछ बोले चल देते हैं, या तिरस्कार के स्वर में कहते हैं कि 'तुम मेरा दृष्टिकोण कभी नहीं समझ पाओगी, सबसे बड़ा दुःख मुझे इसी बात का है। तुम्हें समझाना दीवार पर सिर पटकने के बराबर है। सच पूछो तो मेरे जीवन में सब से बड़ी रुकावट तुम्हीं हो। तुम्हारे समान एक अदनी-सी नारी ने मेरे और दुनिया के बीच इतना बड़ा व्यवधान खड़ा कर दिया है कि मुझे आश्चर्य होता है। तुम न होती तो आज मैं विश्व में अकेला होने पर भी लाखों करोड़ों की जनता का एक अविभाज्य अंग होता। मेरा सब से बड़ा दुर्भाग्य और सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि तुम्हारे द्वारा खड़े किये गये व्यवधान को न लाँघने की शक्ति अपने में पाता हूँ न तोड़ सकने की।' उनकी इस तरह की बात से मैं बुरी तरह तिलमिला उठती हूँ। केवल तीन दिन पहले की बात है सुबह चाय पीते पीते उन्होंने इसी तरह की जली-कटी बात मुझे सुनायी। मैं रह न सकी और उत्तर में बोल उठी—'तुमने क्या इसी लिये मुझसे विवाह किया था कि एक दिन उसे तोड़ कर निकल जाओगे? तब तो तुम अकेले थे और तब भी निश्चय ही इसी तरह के क्रांतिकारी विचार तुम्हारे रहे होंगे—तब भी तुम्हारी अलमारी में साम्यवाद-संबंधी पुस्तकों का ढेर लगा रहता था। तब क्या उस समय तुमने जानबूझ कर इतनी बड़ी रुकावट अपने सिर पर डाल ली? आज जो मैं तुम्हारे और दुनिया के बीच इतना बड़ा व्यवधान खड़ा किये हूँ इसका कारण यह कदापि नहीं है कि आज तुम्हारे राजनीतिक और सामाजिक विचार बदल गये हैं, इसका कारण स्पष्ट ही यह है कि तुम मुझसे ऊब गये हो और मुझसे छुटकारा पाने के लिये भीतर ही भीतर बुरी तरह छटपटा रहे हो। मुझसे छुटकारा पाने की इस भावना को दबाने के लिये तुम्हारा मन अपने

आपको धावा देने के लिए यह विश्वास जगा रहा है कि जनक्रान्ति की आग में फाँद पड़ने में ही जीवन की एकमात्र
सार्थकता है। अपने भीतरी भावों का ठीक ठीक विश्लेषण कर पाओगे तो समझ जाओगे कि वह क्रान्ति की सच्ची लगन नहीं, बल्कि पलायन की प्रवृत्ति का पागलपन है जो भूत की तरह तुम्हारे सिर पर सवार हो गया है। मेरी बात सुनकर उन्होंने शायद हँसने का प्रयत्न किया पर 'उफ!' कह कर दाँत पीसकर रह गये। फिर बोले—'अंग्रेजी की इस कहावत से तुम भी परिचित होगी कि शैतान भी अपनी सफाई में धर्म-पुस्तक के उद्धरण दे सकता है। तुम अपने सकीर्ण स्वार्थ की सफाई में मुझे मनोवैज्ञानिक पाठ पढ़ाना चाहती हो। सचमुच विवाह के पहले मैंने तुम्हें गलत समझा था। तब मैं यह समझता था कि जिस प्रकार मेरी बीमारी में रात रात भर जगकर मेरी परिचर्या करके तुमने मेरे प्राणों की रक्षा की है उसी प्रकार तुम बराबर जीवन मरण में मेरा साथ देती रहोगी। आज युग की पुकार बहुत तीखी हो उठी है। कानों के पर्दों तक को फाड़ डालनेवाली उस पुकार के प्रति तुम बहरी हो तो दूसरा भी बहरा रहे, यह सोचकर तुम कितना बड़ा अन्याय मेरे प्रति कर रही हो, यह अभी तुम नहीं समझ पाओगी। पर जल्दी ही एक दिन आयगा जब वास्तविकता निरावरण रूप में तुम्हारे आगे खड़ी हो जायगी। तुम जान-बूझकर तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर उनका विकृत अर्थ लगा रही हो। जानती हुई भी यह नहीं जानना चाहती हो कि अगर केवल तुमसे निकल भागने के लिये ही मुझे कोई उपाय ढूँढ़ना होता तो उसके लिए अपने भीतर क्रान्ति का विस्फोट उत्पन्न करने इतना बड़ा आडंबर रचने की आवश्यकता ही क्या थी! बड़ी आसानी से मैं ऐसा कर सकता था। मेरी इस सुस्पष्ट सहृदयता और ईमानदारी का कुछ दूसरा ही अर्थ लगाकर तुम मेरे साथ कितना बड़ा अन्याय कर रही हो यह ज्ञान एक दिन तुम्हारे आगे स्वयं ही प्रकाश में साफ हो जायगा। तुम अपने स्वभाव के एक ऐसे पहलू का परिचय मुझे दे रही हो जो इतने दिनों तक मुझसे छिपा था। इस बात से मुझे बड़ी भारी पीड़ा पहुँची है—बड़ी ही मार्मिक—पर इतने पर भी मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे प्रति प्रेम के बंधन

को छिन्न करने का बल अपने भीतर नहीं पाता। मेरी इस दुर्बलता से लाभ उठाकर तुम कड़ी से कड़ी बात कहती जाओ इसका पूरा अधिकार तुम्हें है। मैं अभी इसका कोई प्रतिकार करने में असमर्थ हूँ।' और मेरा उत्तर सुनने के पहले ही वह उठकर चल दिये। मैं अपने कमरे में जाकर खूब रोयी—जी भर कर फफक फफककर। सचमुच मैंने तैश में आकर उनसे बड़ी अनुचित और कटी बात कह दी थी। यह मेरा अन्याय था, यह मैं जानती हूँ। पर तुम्हीं बताओ लाला मैं क्या करूँ? उनकी जैसी मानसिक स्थिति चल रही है उसे देखते हुए मैं अपने मन को स्थिर नहीं रख पाती। मेरे और उनके विचारों और भावों में जमीन आसमान का अन्तर आ गया है और दिन पर दिन वह अंतर बढ़ता ही चला जाता है। हो सकता है मेरी संकीर्ण स्वार्थ बुद्धि ही मुझे उनके विचारों में उनका साथ देने से रोक रही हो। पर मुझ जैसी साधारण नारी से इससे अधिक की आशा वह करते ही क्यों हैं! वैसे वह मुझसे अक्सर कहा करते हैं कि 'तुम अपने को साधारण नारी क्या समझती हो? तुम शिक्षा प्राप्त हो और चाहो तो गहन से गहन आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक विषयों को समझकर उनकी छानबीन करके जनता के प्रति अपने यथार्थ कर्तव्य से परिचित हो सकती हो। तुमसे भी साधारण नारियाँ क्रांति की आग में कूदकर अपने प्राणों की बाजी लगाकर जन आंदोलन में कूद पड़ी हैं। तुम भी यदि मुक्त हृदय से मेरा साथ देने को तैयार हो जाओ तो मेरे भीतर के सब द्वंद्व सभी मानसिक उलझनें दूर हो जायें। पर मैं चाहने पर भी अपने भीतर न तो इतना बड़ा बल पाती हूँ न यह विश्वास ही मेरे भीतर जम पाता है कि क्रांति—वह क्रांति जिसके छिटपुट नमूने मैं आजकल कलकत्ते की सड़कों में देख रही हूँ, सच्चे अर्थों में जनता को कल्याण के पथ पर ला पायगी। हो सकता है—मेरे मन की इस रुकावट का कारण वे संकीर्ण संस्कार हों जिनमें मैं बचपन से पली हूँ! पर कारण चाहे जो भी हो मेरी स्थिति की वास्तविकता यही है जो मैंने अभी बतायी है। आज तुम बड़े मौके से आये हो, लाला! मैं पहले ही परिचय से समझ गयी थी

कि आज मुझे ऐसा व्यक्ति मिला है जिसके आगे मैं अपना जी खोलकर इतने दिनों से जमे हुए भार को हलका कर सकती हूँ। वह तुम्हें अपने सगे भाई से बढ़कर मानते हैं, यह मैं पहले ही क्षण जान गयी थी। इसलिए तुम्हारे आगे न वह अपनी कोई बात छिपायेंगे न मैं ही छिपा पाऊँगी। मेरा भाग्य अच्छा था कि मुझे बहन भी ऐसी मिली है जिसके स्वभाव में सहृदयता कूट कूटकर भरी हुई है। इसलिए तुम दोनों के आगे जी हलका करके मुझे जो शान्ति मिल रही है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। तुमसे मेरा एकांत अनुरोध है लाला, कि मुझे कोई ऐसा रास्ता सुझाओ जिससे मैं वर्तमान मानसिक संकट से उबर सकूँ—'

एक बूँद आँसू टपक कर उनके ऊपरी ओठ तक चला गया था, तब भी उन्होंने उसे पोंछा नहीं। मेरी कर्तव्यविमूढ़ता की सी स्थिति हो रही थी। यदि मैं किसी उपन्यास या कहानी का नायक होता तो स्पष्ट शब्दों में या तो यह कह देता कि "तुम भी अपने पति के पथ का अनुसरण करती हुई आगे पीछे की कोई बात सोचे बिना ही मशाल में कूद पड़ो?' या यह कहता कि "अपने पति को भरसक समझाकर उन्हें इस रास्ते पर चलने से विरत करो और इतने पर भी वह न मानें तो उनका संग ही त्याग दो।' पर जीवन की वास्तविकता बिलकुल भिन्न होती है। मैं इन दो में एक भी बात की सलाह भाभी जी को नहीं दे सकता था। जहाँ तक जन क्रांति का प्रश्न था, मैं स्वयं इतने अधिक विरोधी संस्कारों से जकड़ा हुआ था कि भाभी जी उसकी कल्पना तक नहीं कर सकती थीं। जन क्रांति से पहले उसके अनुकूल मन क्रांति की आवश्यकता थी। और वह केवल उन नेताओं द्वारा ही संभव हो सकती थी जो पावक-कीट की तरह कठोर संकटों की वज्र शक्ति अपने भीतर रखने के साथ ही-साथ क्रांत द्रष्टा महामनीषी भी हों, जो केवल नारेबाजी, छिटपुट षड्यन्त्र की कारवाइयों और निरर्थक हिंसावादों तक ही अपने कर्तव्य को सीमित न रखकर अपने विराट स्वप्न के अनुकूल ही व्यापक दृष्टि भी रखते हों, मानव-जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्य की भीतरी और बाहरी पथ रेखा जिनकी गहरी अन्तर्दृष्टि के आगे सुस्पष्ट हो चुकी हो, जो इस-

काल के अनुसार यथार्थ के प्रति पूर्ण सजग रहकर क्रांति के महारथ के संचालन की योग्यता और समर्थता रखते हों। पर देश में ऐसे महानेताओं का निपट अभाव मेरे आगे सुस्पष्ट हो रहा था। मैं देख रहा था केवल उन अधकचरे नेताओं को जो केवल बाहर से उधार लिये हुए नारों की चिनगारियों के बल पर एकदम हरी लकड़ियों से महाकाल की आग सुलगाने का स्वप्न देख रहे थे जिसके फलस्वरूप यत्र-तत्र केवल ऐसा धुआँ उठता दिखायी देता था जिससे आँखों में धुंध छाने और आँसू गिराने के सिवा और कोई फल देखने में नहीं आता था। स्वयं वीरेन्द्र भी अपने अंतर्मन में इस वास्तविकता का अनुभव कर रहा था उसकी उलझी हुई बातों से यह तथ्य मेरे आगे सुस्पष्ट हो चुका था। इस पर भी वह जो परिपूर्ण आत्म बलिदान के लिये छटपटा रहा था इसका कोई दूसरा ही रहस्यमय कारण था जिसका स्वरूप मेरे आगे पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो पाता था। उसके पीछे निश्चय ही कुछ तो व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक कारण थे (जिसका कुछ-कुछ संकेत वह स्वयं भी दे चुका था) और कुछ सामूहिक। भाभी जी ने खीझ के आवेश में उसके मनोभाव का जो विश्लेषण किया था उसमें सत्य का कुछ अंश था या नहीं और था तो किस हद तक था यह मैं अभी तक नहीं जान पाया हूँ। पर प्रश्न यह था कि मैं भाभी जी को क्या पथ सुझाता? वीरेन्द्र की बेचैनी के मूल कारण चाहे कुछ भी रहे हों पर वह थी ज्वलंत सत्य, इतना भाभी जी भी समझे हुए थीं और मैं भी। यह भी स्पष्ट था कि वीरेन्द्र की उस बेचैनी ने भाभी जी के आगे जो समस्या खड़ी कर दी थी वह किसी भी हालत में उपेक्षणीय नहीं थी। वह उनके निज जीवन मरण की समस्या थी जिसका समाधान एक-न-एक रूप में होना अनिवार्यतः आवश्यक हो उठा था। पर मुझ जैसे दुर्बल व्यक्ति से उन्होंने इस सम्बन्ध में सहायता की आशा क्या सोचकर की थी?

मैंने कहा—"भाभी जी मैं समझ नहीं पाता कि आपको क्या सलाह दूँ। वीरेन्द्र ने आज सुबह मेरे आगे जो विचार प्रकट किये हैं उससे इतना मैं निश्चय समझ चुका हूँ कि जिस घने अँधेरे में ढके हुए पथ की ओर कदम बढ़ाने का निश्चय उसने किया है उससे उसे डिगाने की शक्ति

किसी में नहीं है। उसकी नकली बनावटी नहीं है। जो प्रेरक शक्ति उसे किसी अज्ञात दिशा की ओर ठेले लिये जा रही है वह आधे रास्ते में उसे छोड़ देगी, ऐसा संभव नहीं है। आप अपनी ममता और विश्वास के अनुसार जिस हद तक उसका साथ दे सकती हैं उस हद तक दें और उसके बाद किसी भी प्रत्याशित या अप्रत्याशित परिस्थिति के लिये अपने को तैयार रक्खें।

मेरे शब्दों में जो एक अज्ञात गहन-गंभीर उदासी भरी हुई थी उसका छुनहा प्रभाव भाभी जी पर निश्चय ही पड़ा होगा। मैं देख रहा था कि उनके सहज-सुन्दर गोरे-उजले मुख पर संगमरमर पत्थर की-सी एक निस्तब्ध जड़ता छा गयी थी। कुछ देर तक वह एकटक, निश्चल और विमूढ़ भाव से मेरी ओर देखती रहीं। उसके बाद एक लंबी सांस खींचकर धीरे से बोलीं—'इधर कुछ दिनों से रह रहकर एक अजीब-सी आशंका जागती और प्राण में मेरा गला पकड़ती रहती है। जब मैं अकेली होती हूँ तब मुझे अपने चारों ओर 'हाय हाय!' का-सा क्षीण स्वर सुनायी पड़ता है। दिन-दहाड़े मुझे लगता है कि कुछ विचित्र-सी छाया-मूर्तियां—जो जितनी ही भयावनी लगती हैं उतनी ही दयनीय भी—मेरे कमरे के आस-पास प्रतिक्षण सर्द आहें भरती रहती हैं। मनुष्य-शरीर की ठठरियों के जो चित्र और माडल मैंने देखे हैं उन्हीं की तरह वे छायामूर्तियां लगती हैं। वे क्यों मुझे घेरे रहती हैं, किसके या किनके लिए हाय हाय करती हैं इसका कोई आभास मैं नहीं पाती। एक ठंडी सिहरन रह रहकर मेरी रीढ़ के भीतर दौड़ जाती है। जब वह कहीं चले जाते हैं और मैं कमरे में अकेली कुछ सोचने लगती हूँ तभी इस तरह की कल्पना प्रत्यक्ष सत्य की तरह मुझे धर दबाती है। कभी-कभी मैं इस कदर डर जाती हूँ कि अपनी नौकरानी को पुकारकर उसे अपने पास बिठा लेती हूँ और उससे कहती हूँ कि वह अपने और अपनी सहेलियों के बचपन के और ब्याह के किस्से सुनाये। वह बड़े चाव से सुनाती है और मैं भी उतने ही चाव से सुनती हूँ। उन किस्सों को सुनकर अपने बचपन की और उस अवस्था में मन में उठने वाले सुंदर सुनहरे सपनों की याद करके मैं उन भयावनी छायामूर्तियों को किसी मंत्र से

भगाने का प्रयत्न करती हूँ। तुम लोगो के आ जाने से कितना बल मिला है यह मैं ही जानती हूँ। आज बहुत दिनों बाद मुझे यह अनुभव हुआ है कि मैं मनुष्यों के बीच म हूं। लाला, तुम लोग मेरे भाग्य से अचानक ऐसे आ गये हो जैसी पुरानी कथाओं म कहा गया है कि द्रौपदी की करुण पुकार सुनकर भगवान स्वय आ पहुँच थे। अब तुम लोगो से मेरी यह एकात प्रार्थना है कि इस हालत म मुझे—हम लोगो को—छोडकर कही न जाना। यह तुम्ही लोगो का घर है। वह तुम्हे अपने सगे भाई से भी बढकर मानते हैं और तुम भी उन्हे ऐसा ही मानते हो यह मैं देख चुकी हूं। इतना बडा मकान है और हम केवल दो प्राणी हैं। न कोई पीछे वाला रह गया है न कोई आगे है। आगे की कोई आशा भी नही रह गयी है। वहन ने मुझे बताया है कि अभी तक तुम्हारा भी करीब-करीब यही हाल है—हालाकि आगे की उम्मीद है (यह कहते हुए भाभी जी के विषाद म्लान मुख पर मुसकान की एक क्षीण रेखा झलक पडी)। जो भी हो, इतना स्पष्ट है कि तुम्हारे लिये कोई बधन नही है। इसलिये मैं तुमसे—और वहन से भी—यह अनुरोध कर रही हूं लाला कि तुम लोग अब हमें न छोडना। अब तुम जाओगे तो मैं निश्चय ही दूसरे ही दिन पागल हो जाऊँगी।'

अतिम वाक्य पूरा होते-न होते भाभाजी का गला रुँध आया और उसके बाद वह सहसा आँचल से मुह ढाँपकर फफक फफककर रोने लगी—जैसे हिस्टीरिया का दौरा आ गया हो।

उनके उस अप्रत्याशित आवेग से मैं अत्यत विचलित हो उठा। मेरी बुद्धि इस कदर घबरा गयी थी कि मैं कुछ सोच ही नही पाता था कि उस परिस्थिति म मेरा क्या कर्तव्य है। कल के पुतले की तरह मैंने देखा कि मनिया सहसा उठ खडी हुई और भाभी जी की कुर्सी के पीछे जाकर बडे स्नेह से उनकी पीठ पर हाथ फेरती हुई पुचकार-भरे स्वर म बोली—'न घबराओ जीजी हम तुम्हे छोडकर कही नही जायेंगे। तुम मेरी बडी अच्छा जीजी हो, तुम्हारे साथ रहने से बढकर सुख और हम क्या होगा! शात हो जाओ! न रोओ!"

और कोई समय होता तो मुझे भोली मनिया को अपने बचकाने स्वर में बड़ी बूढ़ियों की तरह सात्वना देते हुए देख कर निश्चय ही हँसी आ जाती। पर भाभी जी के अंतर से जो निदारुण मर्म वेदना आर्त क्रन्दन के रूप में फूट पड़ी थी उसने एक ऐसा भयावह वातावरण उत्पन्न कर दिया था जिसमें किसी भी बात पर हास्य के लिये बिंदु मात्र स्थान नही रह गया था। बल्कि मनिया के नारी हृदय से जो सहज-स्वाभाविक समवेदना उबल उठी थी उसमें मेरा हृदय गद्गद् हो उठा और मैंने उसके प्रति आतरिक कृतज्ञता का अनुभव किया, जैसे वह भाभी जी को नही, बल्कि स्वय मुझे सात्वना दे रही हो। सात्वना देते हुए स्वय मनिया की आँखें छलछला आयी थी। पर उन गीली आँखों मे मैंने देखा कि एक अपूर्व दृढ़ता, एक स्वस्थ, सबल साहसिकता झलक रही थी। करुणा और साहस का ऐसा सुदर सम्मिश्रण केवल एक स्वस्थ मातृ हृदय मे ही सभव हो सकता है। मुझे सबसे बड़ी प्रसन्नता यह देख कर हुई कि मनिया ने मेरा रुख जानने की तनिक भी परवा न करके, मेरे सकेत की तनिक भी प्रतीक्षा किये बिना ही, स्वय अपने भरोसे अपने ही उत्तरदायित्व पर भाभी जी को आश्वासन दिया। यदि वह ऐसा न करती तो उस सकटपूर्ण क्षण मे मेरी क्या दशा हुई होती यह मैं ही जानता हूँ।

भाभी जी का फफकना धीरे धीरे कम होता जाता था जैसे मनिया के पूर्वकीय स्पर्श ने उनके भीतर जमे हुए हाहाकार को लौहकणों की तरह बाहर खीच लिया हो। वह अभी तक आँचल से अपना मुह ढाँपे था। उन्हें कुछ शात होते देखकर मनिया ने ध्यान मग्न-सी होकर दाहिने हाथ की तर्जनी से उनके सिर के ऊपर अत्यन्त दृढ रेखाओं से एक कल्पित त्रास चिह्न अकित किया। सब प्रकार की मानसिक भीति और बाधाओं को दूर करने का रामबाण उसके परम विश्वासी हृदय के लिये एक मात्र वही त्रास चिह्न था। जब-जब वह अपने या किसी दूसरे के ऊपर त्रास चिह्न अकित करती थी तब-तब वह मग्न हो जाती थी। लगता था जैसे उसकी सपूर्ण आत्मा उसकी दो बद आँखों के भीतर समा गयी हो। उस समय उसका प्रशात रूप अत्यत सम्मोहक, आश्चर्यजनक और

आकर्षक लगता था और देखने वाले के हृदय में अगाध श्रद्धा और सम्भ्रम का भाव जगाता था। मध्ययुग के ईसाई सन्तों और सन्यासियों के चित्रों में उनके मुख पर जो अलौकिक रोमांच का भाव पाया जाता है ठीक वैसा ही भाव ऐसे अवसरों पर मनिया के मुख पर भासित पाया जाता था। इस बार भी मैं मुग्ध दृष्टि से उसकी सुश्री की उस अपूर्व सुंदर अभिव्यक्ति को निहार निहार कर पुलकित हो रहा था। श्वास का चिह्न अंकित कर चुकने के बाद भी मनिया कुछ देर तक उसी ध्यानावस्था में आँखें बंद किये रही। इस समय उसके मुख पर सहज भोलेपन और चंचलता के भाव का लेश भी नहीं दिखायी देता था। लगता था जैसे मानवीय ज्ञान और भावनाओं के विकास का जो चरम उत्कर्ष हो सकता है उसे इस आश्चर्यमयी नारी ने किन्हीं रहस्यमय अलौकिक सूत्रों से अपने भीतर समाहित कर लिया है और उसी की प्रतिच्छाया एक स्निग्ध नवनीत रूप में उसके मुख पर विभासित हो रही है।

कुछ देर बाद जब मनिया ने आँखें खोलीं तब ठीक उसी समय भाभी जी ने भी एक झटके से अपने मुख पर से गाढ़े नील रंग की साड़ी का आँचल हटा लिया। जैसे किसी टेलीपैथिक तार द्वारा दोनों के मनोभाव एक दूसरे में अविच्छिन्न रूप से जुड़ गये हों। मनिया पीछे खड़ी थी और भाभी जी उसे देख नहीं सकती थीं। केवल उसके हाथ के (और शायद मन के भी) स्पर्श का अनुभव कर सकती। मैंने आश्चर्य से देखा कि भाभी जी के मुख पर कुछ ही क्षण पहले घिरे हुए विषाद और नैराश्य के घने काले बादलों के स्थान पर एक प्रशांत ज्योतिर्मय आभा झलक रहा था। उनकी आँखें और बरौनियाँ अब भी गीली थीं—जैसे क्वार के महीने में एक भावस्मिक झड़ी के बाद आसमान एकदम साफ होकर निखर आया हो और प्रभात की सोने की पीली धूप में पेड़ों की पत्तियों में गिरने वाले अवशिष्ट वर्षा-कण मोती की बूंदों की तरह चमक रहे हों।

इस सम्बन्ध में मुझे तनिक भी संदेह न रहा कि यह मनिया के ही चुम्बक-स्पर्श के जादू द्वारा सम्भव हुआ है। मुझे वह दिन फिर एक बार याद आया जब मैंने अपने हिप्नोटिक प्रभाव में इस आश्चर्यमयी

नारी के विद्रोही जिप्सी-हृदय को बाँधकर अपनी ओर खींचने में सफलता पायी थी। तब की मनिया में और आज की मनिया में आकाश-पाताल का जो अन्तर आ गया था उसकी थाह मापने की शक्ति मुझ में नहीं थी।

भाभी जी ने सहज स्निग्ध भाव से मृदु मृदु मुसकान से मेरी ओर देखते हुए कहा—"क्षमा करना लाला, मेरे पागलपन को। उस समय मुझे जाने क्या हो गया था। मैं अपने को रोक न पायी।

उनकी बात से मेरी भावमग्नता भंग हुई। मैंने कहा—'नहीं भाभी, उसमें पागलपन की कोई बात नहीं थी। वह एक साधारण-सी बात थी। अब उठो हम लोग कहीं घूम आवें। घर में बैठे बैठे अक्सर जी उचट जाता है और अकारण ही घबराहट मालूम होने लगती है। उठो! चलो मनिया तुम भी कपड़े बदल लो।'

भाभी जी चुपचाप उठीं और हम तीनों ऊपर अपने अपने कमरे में जाकर कपड़े बदलने लगे।

कपड़े बदल चुकने के बाद जब हम लोग नीचे उतरे तब भाभी जी ने ड्राइवर को पुकारा। वीरेन्द्र छोटी कार ले गया था। बड़ी ट सीटों वाली कार गराज में थी। कुछ देर बाद ड्राइवर उसे ड्राइंग-रूम के सामने वाली बरसाती में ले आया। जब हम तीनों पीछे बैठ गये तब ड्राइवर ने बंगला में भाभी जी से पूछा—'कहाँ जाना होगा?'

'झील की तरफ चलें, क्यों बहन!'' मनिया से, जो हम दोनों के बीच बैठी हुई थी, भाभी जी ने पूछा।

मनिया नतमाथ मुस्कराती हुई बोली—''मुझे तो इस नयी जगह में यार में कुछ भी पता नहीं है। आप लोग जहाँ ले चलेंगे वहीं चली चलूँगी।'

अन्त में झील की तरफ चलने की ही बात तय हुई।

५९

जब हम लोग झील से लौटकर आये तब पता चला कि वीरेन्द्र अभी तक वापस नहीं आया है। काफी देर तक हम लोग उनका इन्तजार करते रहे। अन्त में भाभी जी ने कहा, "लक्षण से प्रकट है कि वह आज रात में बहुत देर में लौटेंगे और तब तक उनकी प्रतीक्षा में बैठे रहना बेकार है।" उन्होंने हम लोगों से आग्रह किया कि हम लोग खाना खा लें और आराम करें। मुझे यद्यपि उनका यह प्रस्ताव नहीं जँचा, तथापि उनके बार बार आग्रह करने पर मैंने अधिक विरोध करना भी उचित नहीं समझा। मैंने और मनिया ने प्राय अनिच्छा से थोड़ा बहुत चख लिया। भाभी जी ने हमारा साथ नहीं दिया। वह वीरेन्द्र के लिये ठहरी रहीं। खाना खाने के बाद भी हम लोग काफी देर तक बैठे रहे, पर वीरेन्द्र नहीं आया। अन्त में भाभी जी की आज्ञा से हम दोनों अपने कमरे में आराम करने चले गये।

जब हम अपने कमरे में जाकर अपने अपने पलंग पर लेट गये तब मैं अपने सफरी बैग से एक पुस्तक निकाल कर पढ़ने लगा। दिन में काफी सो चुका था, इसलिये नींद नहीं आती थी। मनिया धीरे से आकर मेरे पलँग पर बैठ गयी और मेरे बालों पर हाथ फेरती हुई धीरे से बोली— 'मैं एक बात तुमसे पूछना चाहती हूँ।'

पुस्तक आँखों के आगे से हटाकर उसकी ओर देखते हुए मैंने कहा— "कहो क्या बात है?

"जेठ जी के बारे में आज जो बातें जीजी ने बतायीं उन्हें मैं ठीक से समझी नहीं। अपने संबंध में जो देशव्यापी रक्तशोषकों का साथ न्न की बात उन्होंने बतायी उससे उनका आशय क्या है? मेरी इच्छा होती है कि अपना सब कुछ लुटाकर सर्वहारा बन जाऊँ और सब कुछ गँवायी हुई जनता के साथ मिलकर स्वयं अपनी और दूसरे सम्पत्तिशालियों की सम्पत्ति को जनता में समान रूप से वितरित कर पाऊँ यह बात भी मेरे आगे स्पष्ट नहीं हो पायी है। जिस क्रांति का हवाला जीजी बार बार दे रही थीं उसके सम्बन्ध में भी कोई जानकारी मुझे नहीं है।

मैंने कहा—'यह सब समझाने के लिये बड़ा विस्तृत विवरण

तुम्हें सुनाना होगा। फिर कभी सुनाऊँगा। इस समय आराम करो।'

"न! अभी समझाओ!" प्राय बालकों की तरह मचलते हुए मनिया ने कहा।

मैं उठ बैठा। भरसक संक्षेप में और यथासंभव सरल रूप में मार्क्सवादीय सिद्धांत की व्याख्या उसके आगे करने का प्रयत्न किया। उसके बाद बताया कि आज की विश्वव्यापी आर्थिक विषमता के कारण संसार में सर्वत्र कभी अशांति मची हुई है और असंतोष छाया है। इस अशांति और असंतोष को दूर करने के लिये एक बहुत बड़ा अंतरराष्ट्रीय दल नंगी भूखी जनता को और कम्युनिस्ट और अभावग्रस्त मजदूरों का सर्वनिमानियों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये उकसा रहा है। कलकत्ते में जो उपद्रव प्रतिदिन होते रहते हैं वे भी किसी हद तक उसी विद्रोह से सम्बंधित हैं। वीरेन्द्र भी क्रांति के पथ पर है।

मैं मानता हूँ कि मैं अपनी बात को ठीक से समझाने में असमर्थ रहा। समझा सकना सम्भव भी नहीं था। पर मनिया अत्यंत ध्यान पूर्वक मेरी बातें सुन रही थी। उसके मुख पर एक गहन गंभीर छाया घिर आयी थी। लगता था जैसे वह विश्वव्यापी विनाश के आसन्न विस्फोट की कल्पना से अत्यंत चिंतित हो उठी हो। सम्भवतः उतने ही से उसने अपने मन में सारी विश्वव्यापी राजनीतिक और आर्थिक स्थिति के सम्बंध में एक विशेष धारणा बना ली थी।

एक लंबी साँस भरती हुई वह बोली—"क्या इस समस्या के हल का दूसरा कोई उपाय नहीं है? क्या हिंसा के बिना इसका उचित समाधान सम्भव नहीं है?"

"जिस दल से वीरेन्द्र सम्बंधित है वह कई उपदलों में विभक्त है। उनमें से एक उपदल का यही विश्वास है कि हिंसा के बिना वे लोग अपने लक्ष्य में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। हालांकि, जहाँ तक मैं जान पाया हूँ, स्वयं वीरेन्द्र का ऐसा विश्वास नहीं है, बाहर से वह भले ही कभी-कभी उग्र विचार प्रकट कर बैठता हो।"

ऐसे गलत विश्वास को वे लोग क्या अपनाये हुए हैं ? प्रेम और अहिंसा को वे लोग रुकावट क्या मानते हैं ?"

'इसलिये कि उनकी राय में प्रेम और अहिंसा उस तरह जमी हुई आर्थिक दीवार को भेदने म असमथ हैं जिसे कुछ मुट्ठी भर लोगो न अक्षय कवच की तरह अपने को सुरक्षित कर रखा है—बहुसंख्यक जनता को हर तरह से वंचित करके।

'मुझे विश्वास नहीं होता। यह ठीक है कि प्रेम और अहिंसा अपनी प्रारंभिक अवस्था में दुर्बलता के ही लक्षण से लगते हैं। पर निरंतर प्रयोग करते रहने से अंत में उनकी विजय अनिवाय है। प्रभु ईसा के जीवन का उदाहरण हमारे सामने है।"

"पर प्रभु ईसा के सिद्धांत की विजय को जितना समय लगा उतने समय तक सत्य, प्रेम और अहिंसा की विजय की प्रतीक्षा करने का धैर्य आज के व्यस्त युग में पीड़ित और विद्रोही जनता में नहीं है।' मैंने एक सूखी हंसी हंसते हुए कहा।

मनिया कुछ क्षण तक मौन भाव से गंभीर चिंता में मग्न-सी मेरी ओर देखती रही। उसके बाद बोली—'अच्छा एक बात मेरी समझ में नहीं आती। जब संसार में चारों ओर आर्थिक विषमता और राजनीतिक अधिकार प्रसारिता के कारण घोर असंतोष भावना और अव्यव[illegible] हुई है, और संसार भर [illegible] साधारण की यहरी व भीत[illegible] ह की आग सुलग [illegible] रहा है तब वे मुट्ठी भर [illegible] सारी आर्थिक औ[illegible] शक्ति बटोरकर [illegible] [illegible] [illegible] का इसमें [illegible] [illegible] [illegible] और आपम [illegible] बुद्धि क्या [illegible]

अपनी गुजर अच्छी तरह कर सकता है। कई देशों पर राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा रखने वाले महानता के लिए केवल एक साधारण सी कुटिया और छोटे-से बालक का क्षेत्र पर्याप्त है। तब क्या ये लोग अपनी शेष सारी शक्ति को अधिकाधिक सम्पत्ति-संचय की प्रवृत्ति को, अपनी इस प्रकार की योजनाओं को सामूहिक हित के लिये त्याग नहीं देते? वे लोग पढ़े लिखे अवश्य होंगे और उनकी दृष्टि शक्ति इस हद तक क्षीण नहीं हो सकती कि विश्व-जनता के असंतोष, विश्व व्यवस्था में फैली हुई गड़बड़ी, और विश्व-व्यापी विध्वंस की जो विराट योजनाएं स्वयं उन्हीं के द्वारा या उन्हीं के कारण चल रही हैं उन्हें देख ही न पाते हों। तब सब कुछ जानने और समझने पर भी वे आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के अधिकाधिक संचय का मोह छोड़ क्यों नहीं पाते? वह क्यों नहीं सोच पाते कि इस मोह की स्थिति में वे स्वयं सब काल के लिए सुरक्षित नहीं रह पायेंगे? यदि वे लोग शान्तिपूर्वक स्थिति की यथार्थता पर विचार करें और इसके लिए अपने द्वारा पुंजित अर्थ और संचित राजनीतिक शक्ति को विश्वजनता में समान वितरण करने के लिए सम्मिलित रूप से तैयार हो जायं, तब रातों रात पृथ्वी पर के नारकीय जीवन की विषमता स्वर्गीय समता में परिणत हो जाय, और सच्चे अर्थों में विश्व-व्यापी शान्ति और व्यवस्था कायम होने के साथ ही वे स्वयं व्यक्तिगत रूप में भी अपनी वर्तमान स्थिति की अपेक्षा कई गुना अधिक सुख और शान्ति में रह सकेंगे। इतनी बड़ी समस्या का इतना सरल समाधान हो सकने की इस संभावना की ओर क्या उन लोगों का ध्यान नहीं जाता?'

मैं दंग रह गया मनिया के उस निपट भोलेपन से भरे हुए किन्तु साथ ही मार्मिक रूप से सुलझे हुए समाधान पर! केवल परिपूर्ण रूप से निश्छल और सभ्यता के कुसंस्कारों की कालिमा से एकदम रहित, सर्वथा शुद्ध और निर्दोष अन्तःप्रज्ञा से ही इस प्रकार का सुझाव निकल सकता था। कुछ देर तक मैं अकपट विस्मय और श्रद्धा भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। उसके बाद एक लंबी सांस भरता हुआ बोला— तुमने समस्या का जो हल सुझाया है वह निश्चय ही

बहुत सरल, सुदर और सच्चा है मनिया, पर मानव-स्वभाव बडी ही विचित्र जटिलताओ से भरा है। जोक की तरह वह वक्रगति से चलता है, यद्यपि जल सर्वत्र समतल और समान होता है। उदाहरण के लिये दूर क्या जाती हो, मुझी को लो। मैं निश्चय ही कोइ पूँजीपति नही हू और न मेरे पास इतनी बडी सपत्ति है जो किसी विशेष गणना म आ सकती है। पर कुछ लाख रुपयो का ठिकाना मरे पास अवश्य ही है और यह तुम भी मानोगी कि इतना धन हम दो प्राणियो के निर्वाह के लिये आवश्यकता म सकडो—बल्कि हजारो—गुना अधिक है। फिर भी क्या मैं उसे उन लोगो म वितरित करने के लिये तयार हू जो निपट अभाव से ग्रस्त हैं और उस अभाव के कारण अत्यत दयनीय दुदशापूर्ण जीवन बिताने के लिये बाध्य हैं? स्वय तुमने कभी इस बात के लिए मुझ पर विशेष जोर नही डाला भले ही कभी भावुकतावश इस तरह का सुझाव मेरे आगे रख दिया हो। जब मुझ जसे एक अदने से धनी व्यक्ति का यह हाल है तब जो लोग विराट सपत्ति के सचय की मोह माया का स्वाद पा चुके हैं उनसे यह आशा कसे की जाय कि वे सब सम्मिलित रूप से अपनी सारी सचित अर्थ शक्ति त्याग देने का निश्चय करें? वे तब तक उस महामोह के फदो से अपने को और दूसरो को जकडे रहेंगे जब तक वे यथार्थ ही कारणो से उन्हें खोलने के लिये विवश न होगे। विश्वव्यापी बद्ध मानवता की व्यापक मुक्ति सरल उपायो से सहज रूप से कभी सभव न होगी यह निश्चित है। बिना बाहर के भीषण आघातो के मानवीय व्यवस्था के शक्ति मद से मत्त ठेकेदारो की अतरतम चेतना जाग्रत हो सकेगी ऐसी कोई सभावना मुझे नही दिखाई देती।

तब क्या अत म हिंसात्मक शक्तियो की—मानवीय आत्मा के भीतर घर की हुई दानवीय प्रवृत्तियो की—विजय होकर ही रहेगी? ईसा, बुद्ध और गाधी के सत्य, प्रेम और अहिंसा के महामत्र युग युग म अरण्य रोदन की तरह निष्फल होते रहेंगे? अत्यन्त हताश भाव से मनिया ने कहा।

'नहीं, वे निष्फल नहीं होंगे। पर यह भी ठीक है कि इतने महान् आदर्श जल्दी सफल भी नहीं होंगे। मानवता आज तक की सर्वाधिक

वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद कभी शैशव अवस्था का पार नही कर पायी है। मानव प्रकृति के भीतर महान प्रवृत्तियो के जो बीज निहित हैं उनके विकास के लिये सभ्यता के दस हजार वर्षो का काल दस वर्षा के बराबर भी नही है। जब तक वे बीज पनपकर विकास की प्रौढावस्था पार नही कर लेते तब तक उनका कोई फल देखने मे नहीं आयगा। उसका यह लडकपन अभी और चलता रहेगा, जब तक वह विविध अनुभवो स परिपक्व यौवन की स्थिति प्राप्त नही कर लेगी। ज्ञानियो को अत्यत धैर्य से उस महास्थिति की प्रतीक्षा करनी होगी। जब तक वह स्थिति नहीं आती तब तक पैगंबरो और महापुरुषो को शूली पर चढते रहना होगा।"

मनिया तब तक आँख मूदकर ध्यानावस्थित हो चुकी थी। अपने आगे क्रास का एक कल्पित चिन्ह बनाकर उसने अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा पूर्वक शून्य की ओर दोनो हाथ जोडे। कुछ देर तक वह उसी भावमग्न अवस्था मे बैठी रही। उसके बाद अपने पलँग पर जाकर पीछे से लेट गयी। मैंने ऊपर वाली बत्ती बुझा कर अपने पलँग के पास रखा हुआ टेबिल लैंप जलाया और अपने बक्स से एक पुस्तक निकाल कर लेटे लेटे पढने लगा। प्राय पन्द्रह मिनट बाद मेरी आँखे झपने लगी और मैं बत्ती बुझाकर सो गया।

दूसरे दिन तडके जब मेरी आँखें खुली तब कमरे की बत्ती जली हुई थी। मनिया फर्श पर माता मरियम और शूली पर लटके हुए ईसा के दो फ्रेम मे बँधे हुए चित्रो को रखकर उनके आगे सिर झुकाये घुटने टेके हुए, हाथ जोडे ध्यान मग्न बैठी थी। मैं तनिक भी विघ्न डालना उचित न समझकर धीरे से करवट बदलकर आँखें बद किये रहा।

काफी देर तक मैं उसी अवस्था मे लेटा रहा। जब मनिया ने स्वय, मुझे जगाने के उद्देश्य से, पुकारा तब मैंने आँखें खोली। उठकर मैं स्नानादि के लिये चला गया, लौटकर कपडे बदलकर जब इतमीनान से अपने कमरे मे बैठ गया और मनिया से दिन के कार्यक्रम के सम्बन्ध मे बातें करने लगा तब सहसा भाभी जी ने भीतर प्रवेश किया। उनके पीछे एक नौकर एक 'ट्रे' मे चाय लिये चला आया। मैंने प्रस्ताव किया कि

वीरेन्द्र को भी जगाकर ड्राइंग रूम में साथ ही
जाय। भाभी जी ने बताया कि वीरेन्द्र रात में कुछ
के साथ आये दो बजे लौटकर आया था और काफी देर तक
आपस में बहुत धीमी आवाज में—अपने कार्यक्रमों के रूप पर—
करते रहे। उसके बाद जब लड़के चले गये तब वह चुपचाप पलँ
लेट गया। मुश्किल से दो घंटे सो पाया होगा कि उठकर हाथ मुँह
वह फिर बाहर निकल गया। भाभी जी से केवल इतना ही कह
वह किसी आवश्यक काम से जा रहा है बारह बजे तक लौटेगा।

हम तीनों वहीं पर चाय पीने बैठ गये। चाय पीते हुए भाभी
उदास भाव से कहा— इधर कुछ दिनों में उनका यहाँ कम रहन
बल सुबह न जाने उन्हें कैसे मेरे साथ चलकर झील की सैर क
अवकाश मिल गया।

मैं चुपचाप चाय पीता रहा। मनिया भी कुछ न बोली। वीर
अनुपस्थिति में मन कुछ भारी भारी सा लग रहा था।

चाय पी चुकने के बाद मैं मनिया को भाभी जी के साथ छ
अकेला, निरुद्देश्य भाव से निकल पड़ा। बसों और ट्रामों को
पकड़ता हुआ बालीगंज से भवानीपुर, वहाँ से धर्मतल्ला, वहाँ से
स्क्वायर और फिर श्यामबाजार तक जा पहुँचा। प्रत्येक स्थान पर
कर या तो किसी पार्क में कुछ समय के लिये विश्राम कर लेता य
दूर तक फुटपाथ पर पैदल चलकर शहर के व्यस्त जीवन का अव
करने लगता। लौटते हुए कालेज स्क्वायर में पुस्तकों की एक दुक
चला गया और मनिया के आग्रह के अनुसार कुछ पुस्तकें खरीदीं।
सभी पुस्तकें विकास-योजनाओं से सम्बन्धित थीं। कुछ तो गांधीवादी
कोण से लिखी गयी थीं और कुछ मार्क्सवादी दृष्टिकोण से।
लौटकर घर पहुँचा और मनिया के हाथ में सारा बंडल रख दि
उसने तत्काल उसे खोलकर एक बार सभी पुस्तकों को उलट पु
देखा, उसके बाद एक विशेष पुस्तक को चुनकर उसी क्षण बैठे
से पढ़ने लग गयी।

तब से मनिया ने नियमित रूप से उन पुस्तकों का अध्ययन

कर दिया। सुबह दिन में, सन्ध्या को रात में, जब भी उसे अवकाश मिलता वह पढ़ती ही रहती। मैं भरसक उसके अध्ययन में बाधा न पड़ने देता। धीरे धीरे उन पुस्तकों में उसकी दिलचस्पी इस हद तक बढ़ती चली गयी कि सन्ध्या को भी वह बाहर निकलना नहीं चाहती थी। दो एक दिन मैं हठ पूर्वक उसे सन्ध्या को बाहर घुमाने ले गया, पर बाद में जब उसका घर ही पर अध्ययन करने का हठ बढ़ता गया तब मैंने भी आग्रह करना छोड़ दिया।

उधर नीरेन्द्र का यह हाल था कि २४ घंटा में प्रायः १८ घंटे वह घर से बाहर रहता था। पहले दिन वह कुछ घंटों का समय मुझे कैसे दे पाया, इसी बात पर मुझे आश्चर्य होने लगा। इसका एक कारण शायद यह था कि अपने मन में भरी पड़ी जिन भावनाओं और विचारों को वह खुलकर भाभी जी के आगे भी ठीक से व्यक्त नहीं कर पाता था उन्हें किसी ऐसे निरपेक्ष व्यक्ति के आगे खोलकर रखने की इच्छा उसके मन में कई दिनों से जोर मार रही थी जो उसकी मनोवेदना के प्रति सहृदय होने के साथ ही उसके विचारों को समझ भी सकता हो। जो भी हो दूसरे दिन से उसने फिर अपना कोई विचार मेरे आगे प्रकट नहीं किया। उसके लिये अवकाश ही उसे नहीं मिलता था। सुबह उठते ही वह चल देता था। किस समय लौटकर आवेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं था। बारह, एक, और कभी-कभी दो भी बज जाते थे। इसलिये उसके साथ खाना खाने के लिये ठहरे रहना हम लोगों के लिये प्रायः असम्भव हो उठा था। आकर जल्दी से दो कौर मुंह में डालकर दो एक साधारण बातें भाभी जी के साथ करके वह फिर हड़बड़ी के साथ बाहर में घटकर चल देता था। कहाँ जाता था और क्यों, इसका पता लगा पाना प्रायः असम्भव था।

५२

इस प्रकार वीरेन्द्र अपने गुप्त कार्य चक्रों में व्यस्त था और मनिया अपने अध्ययन में। फलतः इच्छा से हो या अनिच्छा से, शोभना भाभी का और मेरा सम्पर्क बढ़ता चला गया। यहाँ तक कि संध्या को भी अक्सर मुझे उनके साथ अकेले घूमने को जाना पड़ता था।

प्रारम्भ में कुछ दिनों तक सान्ध्य भ्रमण के समय मनिया के साथ न रहने से मुझे बड़ी खिन्नता का अनुभव होता था पर बाद में धीरे धीरे उसकी अनुपस्थिति की आदत सी पड़ने लगी। वस भाभी का निकट सम्पर्क मुझे पहले ही से अच्छा ही लगता था। उनके मुख की सुन्दरता में सब समय जो एक ताजगी रहती थी वह मुझे बहुत प्रभावित करती थी। घनी काली बरौनियों से आवृत्त अपनी बड़ी-बड़ी आँखों की भाव विह्वल दृष्टि से जो बिजली की-सी चपल प्रकाश रेखा शायद न चाहने पर भी, वह मेरे प्रति फेंकती रहती थी उससे कुछ दिनों तक मैं सहमा सा रहा। बार बार उस बिजली से सामना होने पर मैं अपनी चिलमिलाती हुई आँखों को फेर लेता था और इस प्रकार उसके प्रभाव से बचने की कोशिश करता था। पर धीरे धीरे जब आन्त बनती चली गयी तब मैं ढिठाई के साथ उस विद्युत दृष्टि का सामना करने लगा और वह मुझे अच्छी लगने लगी।

पर कई ढंगों से जानने का प्रयत्न करने पर भी मैं यह न जान सका कि भाभी उस समय में किसी भी हद तक मुझसे प्रभावित हैं और मेरे प्रति आकर्षित हैं जिस रूप में वीरेन्द्र के व्यक्तित्व का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा था। यह स्पष्ट था कि मेरे प्रति उनके मन में एक सहज विश्वास का भाव घर किये हुए था और मैं वीरेन्द्र से वर्षों पहले से घनिष्ठ भ्रातृ भाव में बँधा हुआ होने के कारण ही इतनी शीघ्रता से उनकी आत्मा के निकट आ पाया था। पर हम दोनों की आत्मा की निकटता कभी किन्हीं भी परिस्थितियों में अन्यथा रूप धारण कर सकती है इसकी कोई कल्पना न मेरे सचेत मन में एक क्षण के लिये भी कभी जगती थी न उनके मन में जगने की ही कोई सम्भावना दिखाई देती थी।

पर इतना मैं जान गया कि श्यामला भाभी मूलतः कवि हैं। उनके स्वभाव की काव्यात्मकता केवल उनके सुन्दर मुख की सहज स्निग्ध सरसता और सुकुमार भावाभिव्यक्ति के द्वारा ही प्रकट नहीं होती थी बल्कि उनके उठने बैठने, चलने फिरने, बोलने चालने की प्रत्येक छोटी से छोटी क्रिया द्वारा भी अनायास ही प्रस्फुटित होती रहती थी। उनकी बाहरी और भीतरी प्रकृति की इस काव्यमयता का भाव मुझे अपनी अंत प्रज्ञा द्वारा उनके प्रथम दर्शन के प्रथम क्षण में ही हो गया था—जब बालीगंज की झील पर अचानक वीरेन्द्र से मेरी भेंट हुई थी और उसकी 'कार' पर मैंने उन्हें बैठे देखा था। मेरी अंत प्रज्ञा ने मुझे ठगा नहीं था, इसके प्रमाण मुझे ज्यों ज्यों अधिकाधिक मिलते गये ज्यों ज्यों भाभी के निकट से निकटतर सम्पर्क में मैं आता गया।

एक दिन संध्या को जब भाभी और मैं 'कार' पर बैठे हुए झील के चारों ओर चक्कर लगा रहे थे तब चारों ओर पूर्णप्राय चन्द्रमा की रुपहली चाँदनी छिटक रही थी। झील पर उठने और गिरने वाली हिलोरें टूट टूटकर अनोखे रेखाओं के रूप में बिखर बिखर पड़ती थीं। भाभी मौन भाव से मेरी बगल में बैठी हुई थीं। सहसा जैसे उनका ध्यान भंग हुआ और उन्होंने प्रस्ताव किया कि नाव पर झील की सैर की जाय। उनकी इस इच्छा में यद्यपि अस्वाभाविकता का लेश भी नहीं था, तथापि मुझे उसकी आकस्मिकता ने क्षण भर के लिए अभिभूत-सा कर दिया। पर दूसरे ही क्षण मैं सँभल गया। शोफर ने कार रोकी और हम लोग उतरकर नावों के अड्डे पर गये। बाद में पता चला कि केवल क्लब के सदस्यों को ही नाव मिल सकती है। भाभी ने बताया कि वह और वीरेन्द्र उसके नियमित सदस्य हैं यद्यपि उस सदस्यता से वे वर्ष में केवल एक ही आध बार लाभ उठा पाते हैं। कुछ समय यह प्रमाणित करने में बीत गया कि हम लोग नाव पा सकने के अधिकारी हैं या नहीं। क्लब के एक परिचित सदस्य की मध्यस्थता से अंत में हमें एक नाव मिल गयी, हम दोनों उस पर बैठ गये।

झील को चारों ओर से घेरने वाली सड़क पर जलती हुई बत्तियों की कतार का सम्मिलित प्रतिबिम्ब, नाव के डाँडों का छपाक छपाक शब्द,

रुपहली लहरों को एक दूसरे को आलिंगनपाश में बद्ध करने की आकुलता—सब मिलकर जीवन के एक दूसरे ही स्वरूप को मेरी—और शायद भाभी की भी—आँखों के आगे रख रहे थे। ज्यों ज्यों नाव आगे बढ़ती गयी त्यों त्यों किनारे पर प्रतिबिम्बित कृत्रिम प्रकाश टूटता चला गया और बिखरी हुई विशुद्ध रुपहली माया प्राणों के तारों को नये नये स्वराघातों से झंकृत करने लगी।

सहसा अस्फुट कलकंठ से भाभी बोल उठीं—'कितनी सुन्दर रात है!'

उनकी भावमग्नता का दुतहा प्रभाव मुझ पर भी पड़ा। मैं भी जीवनानन्द की स्वर्ग और मर्त्य व्यापी लहरी-लीला देख-देखकर झील की उद्वेलित तरंगों की तरह ही पुलक विह्वल होने लगा। लगता था कि जीवन की समस्त विच्छिन्न और बिखरी कड़ियाँ उस एक भाव में समाहित होकर जुड़ती जा रही हैं।

'सचमुच बहुत सुन्दर है!' मैंने कहा। 'आज वर्षों बाद मुझे लग रहा है कि जीवन में अभी तक कुछ भी पुराना नहीं पड़ा है। सब-कुछ नया है, सर्वत्र ताजगी है!'

भाभी चुप रहीं। कुछ देर तक वह भाव विभोर दशा में चकोरी की तरह पूरब की ओर से स्निग्ध, उज्ज्वल हास से पृथ्वी के निवासियों पर आशीर्वाद बिखेरने वाले चन्द्रमा की ओर एकटक देखती रहीं। उसके बाद एक लम्बी उसाँस भरती हुई बोलीं—'अच्छा लाला, यह सब क्या धोखा है, केवल सपना है?'

"क्या?" अनमने भाव से मैंने पूछा।

"यही सब—विश्व के कण-कण में लहराती हुई अपूर्व सौन्दर्य-तरंगें, चेतना के अणु-अणु में नाचने वाली फेनिल स्वप्निल हिलोरें। इन सबका मानव-जीवन से क्या सचमुच कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि जीवन की यथार्थता पर जोर देने वाले लोग कहा करते हैं? सत्य जो कुछ है वह केवल जीवन की हाय-हाय में, परस्पर विरोधी स्वार्थों के हिंसात्मक संघर्ष में और राजनीतिक कूट-चक्रों के दाँव पेचों में?"

'जीवन की यथार्थता पर जोर देने वाले लोगों से तुम्हारा इंगित

ठीक तरह भार है यह मेरे आगे स्पष्ट न होने पर भी [illegible] मैं अवश्य जानता हूँ कि इस तरह का तर्क उपस्थित करने वाले मूर्खों की दुनिया में कमी नहीं है। पर साथ ही यह बात भी हमें नहीं भुलानी होगी कि जीवन की यथार्थता पर महत्व आरोपित करने वाले बुद्ध एवं लोग भी इस संसार में हैं जो इस ओर वास्तविकता को [illegible] नाने के बावजूद [illegible] स्वतःस्फूर्त सौन्दर्य की रहस्यात्मक अनुभूति को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते और न उसे गौण महत्व ही प्रदान करते हैं।"

"तुम्हें शायद मालूम हो होगा कि आज के मार्क्सवादी आलोचक किसी भी रामानिक कल्पना को अथवा मनोवृत्ति कहकर उसका [illegible] किया करते हैं और केवल जन-क्रांति जगाने वाले साहित्य को ही [illegible] देते हैं। जिस स्वप्नमयी अनुभूति से मैं एक समय अभिभूत [illegible] वह उनकी दृष्टि में केवल बुलबुला विलास है। उनके मत से इस प्रकार की अनुभूति मूल जीवन से किसी भी प्रकार सम्बन्धित नहीं है, बल्कि बाहरी आर्थिक कारणों से उत्पन्न एक विशेष वर्ग या एक विशेष विकृत मन स्थिति का परिचायक है।"

भावना भाभी का यह तार्किक रूप मुझे एकदम नया लग रहा था, जिससे मेरे भीतर रस की वृद्धि ही हो रही थी।

"मैं इस मत का अनुयायी नहीं हूँ" मैंने कहा, "पर [illegible] बात आपकी गलत है, भाभी! जीवन की यथार्थता के प्रति स्पष्ट [illegible] मनीषियों के सम्बन्ध में मैंने अभी आपको बताया कि वे मानव की स्वप्नमयी प्रकृति और रहस्यात्मक अनुभूति के प्रति तनिक भी उदासीन नहीं हैं, उनका विश्वास है कि रसात्मक अनुभूतियों के मूल स्रोतों का उद्घाटन करने के पहले यथार्थ जीवन की विकट विषमताओं का निराकरण आवश्यक है। तभी तो मानव शुद्ध भाव से उस विश्वव्यापी सौन्दर्य के अपार रहस्यमय [illegible] सुविधा और अवकाश पा सकेंगे जो भीतरी चेतना-लोक से उमड़ कर बाहरी चेतना-जगत को छाया रहता है और बाहरी चेतना जगत के आँगन से भीतरी-चेतना [illegible] में कम्पन पैदा करता रहता है। इसके लिए यह सौन्दर्यानुभूति कृत्रिम उपायों से

 उत्पन्न बूर्जुआ विलास तक ही सीमित नहीं है, बल्कि आदि काल से विश्व-चेतना के मूल में निहित सत्य है। इतना अवश्य है कि बूर्जुआ समाज ने यथार्थ जीवन के क्षेत्र में शताब्दियों के संघर्ष के बाद अपने लिए कुछ ऐसी विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न कर ली हैं जिनके फलस्वरूप उसे उस मूल सौन्दर्य चेतना का अनुभव करने में अपेक्षाकृत अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो गयी हैं। पर जिन वर्गों को यथार्थ की चक्की में दिन रात केवल पिसते ही रहना होता है उनके लिये इस विशेष रसानुभूति के द्वार अभी तक एकदम बन्द पड़े हुए हैं। इसलिये जो सच्चे *तत्त्वदर्शी हैं उनका यह कहना है कि यथार्थ जीवन के विकास को* सामूहिक रूप से ऐसे स्तर तक पहुँचाना होगा जहाँ सभी वर्गों को सम सुविधाएँ प्राप्त हों जिससे सबको उस सौन्दर्य-चेतना के अनुभव के लिए समान अवसर मिल सके। यही कारण है कि वे पहले उस सामूहिक सम स्थिति को लाने पर जोर देते हैं। इस स्थिति के बिना शोषित वर्ग न तो स्वयं कभी इस सौन्दर्य चेतना के रस द्वारा का अपना लिये लाभ पायगा, न दूसरों को—आप और हम जैसे लोगों को—उसके पूर्ण उपयोग लाभान्वित होने देना चाहेगा। प्रत्यक्ष ही देख न लीजिये कि आप और मैं इस समय उस मूल सौन्दर्यानुभूति का आभास पाने पर भी उसमें पूर्णतया मग्न नहीं हो पा रहे हैं। यदि हम लोग उसमें पूर्णतया मग्न हुए होते तो उसके सम्बन्ध में इस प्रकार तर्क न करते, केवल उसका अनुभव ही करते। वास्तविकता यह है कि आपके मेरे और हमारे ही वर्ग के दूसरे व्यक्तियों के भीतर यह ग्लानि अज्ञात में घर किये हुए है कि विशुद्ध आनन्द और अकलुष सौन्दर्य की इस अनुभूति से दीन जनता की एक अत्यन्त बड़ी संख्या को कृत्रिम और अस्वाभाविक रूप से संगठित उपायों द्वारा वंचित किया गया है। यह ग्लानि हम लोगों को जाने में या अनजाने में सब समय कचोटती रहती है और उस दिव्य अनुभूति के पूर्ण उपभोग में विघ्न डालती रहती है।"

इठलाती, परस्पर अठखेलियाँ करती हुई चाँदनी से धुली लहरें नट खट बालाओं की तरह आँख मिचौनी खेल रही थीं और कलकल खिल खिल नाद से एक-दूसरे को गुदगुदा रही थीं।

भाभी जी अपना ओवरकोट समेटकर ठीक से बैठ गयीं। हम दोनों मौन थे। हमारे चारों ओर जो रूप सागर लहरा रहा था उसमें मन के भीतर उमड़ती हुई भाव धाराएँ मिलकर एकाकार होने के लिये आकुल हो रही थीं। उस अस्पष्ट आकुलता का केवल अनुभव ही किया जा सकता था, वाणी उसके अनुभव में विघ्न ही डालती। शायद इसी लिये हम दोनों में से किसी का मुंह खोलने की प्रवृत्ति नहीं होती थी। डांडों के छपाछप-छपाक शब्द के ताल में ताल मिलाते हुए मन के भी किसी अज्ञात कोने में एक मीठा स्पन्दन उद्वेलित हो उठता था। मीठी मीठी सर्दी से उत्पन्न होने वाली सिहरन मन के भीतर बहुत दिनों से उपेक्षित तारों को झनझना देती थी। शायद उसी सिहरन के कारण भाभी एक अस्फुट सीत्कार मुंह से निकालती हुई फिर एक बार संभल कर उठीं। फलस्वरूप उनके ओवरकोट का छोर मेरे घुटनों को छू गया।

"अच्छी सर्दी पड़ रही है।" मैंने अत्यन्त धीमे स्वर में कहा, भाभी चुप रहीं।

नाव झील के बीच में आ पहुँची, जहाँ तरंगों का हाहाकार भरा स्वर पूरी तीव्रता से कानों में आ रहा था। लगता था जैसे अकूल समुद्र में किसी अनजानी दिशा की ओर हमारी जीवन-नौका बही चली जा रही है। समस्त विश्व लुप्तप्राय है। केवल है, नीचे असीम कामना-सागर का उच्छ्वसित तरंगों का मन्द्र अन्तराल और उधर अनंत गगनव्यापी चांदनी की मूक मुसकान! बीच में पृथ्वी और आकाश के इस अपूर्व अभिसार के साक्षी-रूप हैं केवल हम दो प्राणी।

मैंने दबी हुई जबान से कहा—"भाभी!"

"हाँ!" प्रायः रुंधे हुए गले से अत्यन्त क्षीण और अस्फुट स्वर में भाभी ने उत्तर दिया।

"सर्दी क्या ज्यादा मालूम हो रही है?"

"नहीं!"

फिर सन्नाटा।

तरंगों के आवेग की तीव्रता के कारण 'छप-छप' के स्थान पर अब

'गुड गुड गुडम' था-सा शब्द होने लगा था। तरंगावेग के उसी बढ़ते हुए अनुपात में मन के भीतर उमड़ने वाली धाराएँ भी प्रखरतर हो उठी थीं। भाभी का कोट छूने के लिये मेरा हाथ बरबस बढ़ा ही था कि उन्होंने 'उफ !" कहकर एक लम्बी सांस भरी। न उन्होंने मेरा हाथ बढ़ते हुए देखा था न मेरी उँगलियाँ उनके ओवर कोट का स्पर्श कर पायी थीं। पर ठीक ऐसे क्षण पर उनके मुह से 'उफ !' निकला कि लगता था जैसे वह मन की आँखों से सब कुछ देख चुकी हैं और स्पर्श का अनुभव भी कर चुकी हैं ! मैंने सहम कर हाथ पीछे को हटा लिया।

जब नाव झील के दूसरे छोर के निकट पहुँची तब किनारे पर खड़े नवयुवकों के एक दल के अट्टहास के नाद से भाभी का ध्यान भंग हुआ ऐसा लगा।

"कितने प्रसन्न हैं ये सब लोग !" भाभी ने अस्पष्ट स्वर में कहा।

आज की रात ही ऐसी है कि रोता हुआ मन भी प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकता और हँसता हुआ मन भी किसी अजानी मीठी व्याकुलता में रोये बिना नहीं रह सकता।' कहते हुए मैं स्वयं अनुभव करने लगा कि मेरी इतनी देर तक की भाव मग्नता भंग होकर व्यंग के रूप में अपने को मिटाने लगी है।

४३

नाव लौट चली थी। भाभी ने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। फिर कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा।

सहसा भाभी बोल उठीं— 'अच्छा लाला, कभी बहन के साथ भी नाव में बैठने का सुयोग तुम्हें मिला है ?

'नहीं, क्यों ?

'यों ही पूछ रही थी। अच्छा बहन जितनी भली और भोली है

उतनी ही सुखी भी है, यह मानना होगा। क्यों ? तुम्हारी क्या राय है ''

उनके उस आकस्मिक प्रश्न के भीतर कोई उद्देश्य निहित है या नहीं मेरा समझ में नहीं आ रहा था।

'सुखी है या नहीं, यह तो उसी से पूछने पर मालूम हो सकेगा।" मैंने उदासीनता का भाव जताते हुए कहा।

'अच्छा, भोली तो है ? इतना तो तुम मानोगे ?"

"भोली का अर्थ यदि मूर्ख या अनजान है, तो मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं।

' उसके मूर्ख होने की बात न तो मैंने कही, न उसकी मूर्खता के सम्बन्ध में कोई अनुभव ही अभी तक मुझे हुआ है। शायद वह हो सकता है। पर मेरा आशय था उसके स्वभाव की सरलता से। हम लोगों को उसने बिना तनिक भी आपत्ति जताये चांदनी में नौका विहार करने की खुली छूट दे रखी है। तनिक भी ईर्ष्या का भाव उसके मन में नहीं जगा, न तनिक भी संदेह किसी प्रकार का उसे हुआ। इसे क्या तुम उसके सरल स्वभाव का परिचायक नहीं मानते ?'

भाभी की बात का यह ढंग मेरे लिए बिलकुल नया था। किस बात की चर्चा किस ढंग से करके किस प्रकार की बात परोक्ष रूप से सुझायी जा सकती है इस कला में नारी मात्र की सहज निपुणता से मैं थोड़ा बहुत परिचित पहले ही से था। इसलिए मैंने कुछ सचेत हो जाने का प्रयत्न किया—इस आशंका से कि न जाने उनकी किस बात की लपेट में आकर मैं क्या कह बैठूं।

मैंने कहा—' यदि स्वभाव की सरलता का अर्थ आप हृदय की उदारता मान लें तो मैं आपकी बात से सहमत हो सकता हूं पर मैं उसे अनजान किसी भी हालत में नहीं मानूंगा। मनिया ने हम लोगों को दुर्गम घूमने फिरने की जो खुली छूट दे रखी है वह इसलिए नहीं कि वह इस संभावना के प्रति आँखें बंद किये हुए है कि हमारे इस एकान्तिक दुस्साहस के फलस्वरूप हम दोनों के बीच घनिष्ठता आवश्यकता से बहुत अधिक बढ़ सकती है। जहां तक मैं उसे जानता हूं, मुझे पूरा विश्वास है

कि वह इस संभावना से तनिक भी अपरिचित नहीं है पर जानते हुए भी उसने इस घनिष्ठता के बढ़ने में कोई रुकावट नहीं डाली, इसका अर्थ मैं तो यही समझता हूँ कि मानवीय दुर्बलताओं के प्रति उसके मन में अनंत क्षमा और सहनशीलता का भाव भरा है, जो केवल एक सच्ची ईसाई नारी में ही संभव है।

"तुम क्या सचमुच उसे इतना महान मानते हो लाला, या बन रहे हो।"

भाभी के इस प्रश्न के भीतर तीखे विद्रूप की संभावना बहुत अधिक थी। पर उनके स्वर से उसका तनिक भी आभास नहीं झलकता था। फिर भी उनके प्रश्न के ढंग से मेरा आवेश पूर्ण मात्रा में उभर उठा।

मैंने कहा— "मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ भाभी, कि मैं उसे सचमुच महान मानता हूँ। वह सच्चे अर्थों में ईसाई है। ईसा की आत्मा में निहित आत्म-बलिदान की प्रवृत्ति, पीड़ितों के प्रति आंतरिक समवेदना, पापियों के प्रति करुणा और दुर्बलों के प्रति क्षमा भावना—सब गुण उसके भीतर वर्तमान हैं। भविष्य की बात मैं नहीं कह सकता। न जाने कब किस घटना से, या जीवन की किन कठोर परिस्थितियों से उसकी मानसिकता में अंतर आ जाय, यह कोई नहीं जान सकता। आखिर वह भी मनुष्य ही है। पर आज तक उसके स्वभाव की जो विशेषताएँ मेरे सामने आयीं हैं उन्हें देखते हुए मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि उसका आध्यात्मिक स्तर साधारण मनुष्यों से बहुत ऊपर उठा हुआ है।

भाभी कुछ क्षण तक चुप रहीं, जैसे मेरी बात को ठीक से समझने का प्रयास कर रही हों। उसके बाद बोलीं— पर किसी को पापी या दुर्बल मानने का क्या अधिकार किसी को हो सकता है? क्या पाप है और क्या दुर्बलता, इसका निर्णय कोई मनुष्य कैसे कर सकता है? यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को पापी या दुर्बल मानकर उसके प्रति करुणा या क्षमा का भाव प्रदर्शित करता है तो इसका अर्थ यह है कि वह अपने व्यक्तित्व को दूसरों के व्यक्तित्व से ऊँचा समझता है और इस प्रकार अपने अहंभाव को (चाहे वह आध्यात्मिक अहम् ही क्यों न हो)

तुष्ट करता है। इस प्रवृत्तिको तुम महान् मान सकते हो, पर मैं ता उसकी कायल नही हू !"

भाभी के स्वर म आक्रोश का तीखापन, शायद उनके न चाहन पर भी, स्पष्ट भलक उठा। मैं स्तब्ध था। उनका एक और बिलकुल ही नया रूप मरे आग उभर उठा। मुझे याद आया कि वह वीरेन्द्र की पत्नी हैं, जो अपन को साम्यवादी मानता है। क्रांतिकारी कारवाइयों म प्रत्यक्ष रूप स भाग लन के सम्बन्ध मे वीरेन्द्र के विचारो से उनके विचारो का मेल भले ही न बठता हो, पर नीति अनीति, पाप पुण्य, क्षमा और करुणा के सम्बन्ध म स्पष्ट ही वीरेन्द्र से उनका मतवभिन्य नहीं था। उनकी बात का क्या उत्तर दूँ, मेरी समझ मे नही आया। वास्तविकता यह थी कि इस दृष्टि से मैंने कभी विचार नही किया था। और सबसे बड़ी बात यह थी कि भाभी के तक म सार था, उसे यों ही नहीं उड़ाया जा सकता था। पर मनिया के सम्बन्ध मे यह सोचना भी मुझे असगत लग रहा था कि वह साधारण मनुष्यो से किसी भी रूप मे अपन को ऊँचा उठा हुआ समझती है। बस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से कुछ भी प्रमाणित कर सकना सभव था। इसलिये मैं कुछ सहम गया। पर मनिया के प्रति परोक्ष रूप स किये गये इस प्रकार के आक्षेप के प्रति मैं निरुत्तर भी नहीं रहना चाहता था।

मैंने कहा— 'यह अनुमान आपने कैसे लगा लिया कि मनिया पापियो और दुखिया से अपने को अलग मानकर बहुत ऊँचे से उनके प्रति करुणा और क्षमा की भावना प्रदर्शित करना चाहती है? जहाँ तक मेरा अनुभव है दुर्बलता म अपने को सबके साथ पाकर ही उसके मन म दूसरो के प्रति समवेदना और समानुभूति उमड़ती रहती है। क्षमा करुणा और उदारता मेरे शब्द हैं मनिया के नहीं। मेरा तो यही विश्वास है कि वह अपने को किसी से तनिक भी ऊँचे स्तर पर नहीं मानती, बल्कि उसका मन सब समय सबके ही समान स्तर पर विचरण करता रहता है। इसी लिये वह सबके सुख म समान सुखी, और दुख म समान दुखी अनुभव करता है। विचारक बनकर दूसरो के प्रति न्याय करने की भावना उसके मन म नहीं जगती। किसी अपराधी के प्रति जब वह

आत्मीयता का अनुभव करती है तब स्वयं अपने को अपराधिनी महसूस करके ही वह ऐसा कर पाती है। दूसरों के प्रति उसकी अनुभूति में एक अंतर अवश्य है, यद्यपि स्वयं उस अंतर से परिचित नहीं है। वह यह कि संसार में अधिक व्यक्ति ऐसे पाये जाते हैं—चाहे उनका दृष्टिकोण सैद्धांतिक रूप कितना ही प्रगतिशील क्यों न हो—जो ठीक उसी तरह के अपराधों लिये दूसरों को क्षमा नहीं कर पाते जिन्हें वे स्वयं करते रहते हैं अपने अपराधों को वे अपराध नहीं मानते न अपनी दुर्बलता दुर्बलता। पर दूसरों में इन्हीं प्रवृत्तियों को पाकर वे असहनशील उठते हैं। पर मनिया इस संबंध में सब समय सचेत रहती है कि उस दूसरों की तरह ही मानवीय दुर्बलताएँ वर्तमान हैं इसलि किसी के प्रति उसके मन में न कोई शिकायत है न विद्वेष, असहनशीलता।'

भाभी चुप रही। उन्होंने मेरी बात पूरे मन से सुनी थी या नह इसमें सन्देह है। वह चकोरी की-सी तन्मयता से ऊपर पूर्णचन्द्र के उज्व गाले की ओर देख रही थी।

"तुम ठीक कह रहे हो लाला। पर तुम चाहे जो भी कहो, तुम्हारी मनिया सचमुच बहुत सुखी है। उसके भीतर इस तरह का कोई भी द्व नहीं है।"

'इसका कारण यह है कि वह उस पीड़ित और दलित वर्ग के बीच में जीवन के प्रांगण में उतरी है और उसी वर्ग की ग्लानि हीन अनुभूतियों का लेकर उस प्रांगण से सीढ़ी-दर-सीढ़ी ऊपर को उठती चली गयी है। इसलिये जिस जीवनानंद का क्षणिक अनुभव हम लोग इस समय आधे हृदय से और आधी बुद्धि से कर रहे हैं वह उसका अनुभव सब समय परिपूर्ण—अविभाजित—आत्मा से करती रहती है। उसके लिये सब समय सब कुछ ताजा है, सब कुछ नया है और प्रत्येक नया अनुभव नये रहस्यात्मक आनन्द से भरा है।'

कुछ क्षण चुप रहकर भाभी ने कहा—"सचमुच बड़ी ही

सौभाग्यशालिनी है वह !" कहते हुए उनके स्वर में एक गद्गद् रसविह्वलता टपक रही थी।

"पर इसका अर्थ यह न लगाइयेगा, भाभी, कि उसके दिन सदा परिपूर्ण सुख में बीते हैं। जीवन के जैसे मर्मभेदी कठोर और कड़वे अनुभव उसे हो चुके हैं उसकी कल्पना न आप कर सकती हैं, न मैं ही—तथ्यों से परिचित होने पर भी—ठीक से कर सकता हूँ।

"जैसे ?"

मैंने संक्षेप में मनिया के जीवन का इतिहास—मुझसे मिलन से पहले तक का—भाभी को सुना दिया। मैंने अनुमान लगाया कि भाभी सुनकर एक अवर्णनीय आतंक की अनुभूति से सिहर उठी ! इस अनुमान का एक कारण यह भी था कि जब मैं मनिया की माँ द्वारा उसके पिता की हत्या का किस्सा सुना रहा था तब भाभी अपने स्थान से सरक कर मेरे एकदम समीप आकर बैठ गयी। यहाँ तक कि उन्होंने अपना बायाँ हाथ मेरी पीठ पर रख दिया। उसके बाद मैंने मनिया से अपने प्रथम मिलन से लेकर विवाह तक का किस्सा सुनाना प्रारम्भ किया। जब नाव किनारे पर जा लगी तब किस्सा बीच ही में रोक देना पड़ा।

नाव से उतरकर जब हम लोग ऊपर चले आये तब भाभी ने प्रस्ताव किया कि यहीं एकान्त में किसी बेंच पर बैठकर दास्तान पूरी किया जाय। फलतः हम लोग किसी बेंच की खोज में "चक्कर" लगाने लगे। काफी दूर तक चलने के बाद एक खाली बेंच मिल पाया। हम दोनों उसी पर बैठ गये। मेरा उत्साह तब तक ठंडा पड़ चुका था। पर भाभी ने अत्यन्त आग्रह भरे स्वर में कहा—"हाँ, तो फिर क्या हुआ ?" फलतः मुझे सुनाना ही पड़ा। और जब सुनाना आरम्भ किया तब पूरे विस्तार के साथ—मनिया की एक-एक बात और एक एक अनुभूति का दिग्दर्शन करते हुए—सुनाया। मेरे निकट आने से और सिल्विया के नाग में रहने से उसकी अन्तर्भावनाओं का विकास किस रूप में होता चला गया, उसके विचारों में कैसे परिवर्तन और विवर्तन होते चले गये, इसका वर्णन भी मैं विश्लेषण के साथ करता चला गया।

सब-कुछ सुन चुकने के बाद भाभी ने आवेगवश सहसा अपनी हथेली

२४

मे मेरी बायी हथेली पकड ली और फिर तत्काल ही अपना हाथ हटाते हुए एक लबी सास भरकर कहा— 'लाला, तुम सचमुच महान् हो !'

मैंने उनकी बात सुनी अनसुनी करके कहा—"मैं बताना यह चाहता था कि मनिया का जीवन का चक्र ऐसा रहा है कि अतद्वद्वो से वह भी मुक्त नहीं रही है। पर उसके अतद्वद्वो मे और हम लोगो के अतद्वद्वो म बडा अतर है। अपने बूजुवा सस्कारो के कारण हम लोग जिस प्रकार के अतर्द्वंद्वो के शिकार हैं वे हमारे जीवन के मूल पथ को ही रुद्ध किये हुए हैं पर मनिया उनसे सवथा मुक्त है और इसी लिये व्यक्तिगत जीवन के कडवे से कडवे अनुभव भी उसके विकास का पथ और गति को रोकने म समथ नहीं हैं बल्कि उसके पथ को व और अधिक प्रशस्त करने म ही सहायक सिद्ध हो रहे हैं।"

"ठीक है !" भाभी ने फिर एक बार लबी सास भरते हुए कहा, "पर एक बात मैं तुम्हे बता देती हूँ लाला। तुम जानकर या अनजान म बूजुवा सस्कारो के जो इजेक्शन उसे देते चले जा रहे हो, उनके परिणाम-स्वरूप उसके विचारो और मनोभावनाओ की परिणति अत म कहाँ जाकर होगी, इस सबध म अभी से कुछ नहीं कहा जा सकता है।'

'आपका आशय मैं अभी ठीक से समझा नहीं किस प्रकार के इजक्शनो की बात आप कह रही हैं ?

'उदाहरण के लिये, उसकी धार्मिक भावना को बढावा देते रहने म तुमने कोई बात उठा नहीं रखी है। वह धार्मिक बीज पनपकर अत म क्या रूप धारण करेगा, उसकी क्या विचित्र प्रतिक्रिया उसके भीतर अलक्ष्य में होती जा रही है इस ओर तुम अभी उदासीन हो पर—

'मेरा यह विश्वास है" भाभी की बात काटते हुए मैंने कहा 'कि बूजुवा सस्कारों से रहित उसका मन धार्मिक भावना के भी शुद्ध और स्वस्थ रूप को ही अपनायगा। और यह स्वस्थ धमभावना उस विकृत और सीमित स्वार्थ से दूर ही रखेगी।'

'अभी ठहरते चले जाओ, लाला ! अभी से कोई भविष्यवाणी इस

संबंध में न करो," व्यंग्यात्मक ध्वनि से भाभी ने कहा।

"इसी सिलसिले में एक और बात की ओर भी तुम्हारा ध्यान खींच देना चाहती हूँ। बुरा न मानना। मुझे तो लगता है कि तुमने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये उसके भीतर इस धार्मिक भावना को पनपने दिया है। उसके धार्मिक भावना में डूबे रहने का एक प्रत्यक्ष लाभ तुम्हें यही है कि तुम्हारे प्रति वह बराबर वफ़ादार बनी रहेगी। तुम्हारी अनुपस्थिति में भी 'प्रभु ईसा' के चिंतन में मग्न रहकर वह अकेलेपन का अनुभव नहीं करती, और इस प्रकार तुम्हारी स्वतंत्रता में विघ्न नहीं डालती। नहीं तो तुम इस क़दर निश्चिंत होकर किसी दूसरे की पत्नी के साथ रात्रि-भ्रमण और नौका विहार करते हुए घंटों के लिये घर से ग़ायब रहने का साहस न करते। एक धार्मिक पत्नी प्राप्त करके तुम वैवाहिक बंधन का भी सुख उठाते हो और स्वतंत्रता का भी, और उस अशान्ति से बचे हुए हो जिसका कटु अनुभव तुम्हें उस हालत में प्रतिदिन होता रहता जब तुम्हारा विवाह किसी ऐसी स्त्री से हुआ होता जो इस तरह धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत न होती और जो नारी के अधिकारों के संबंध में पूर्णतया सचेत होती। यह 'प्रभु ईसा' की बड़ी कृपा तुम्हारे ऊपर है।"

'प्रभु ईसा' का उल्लेख करते हुए भाभी के मुख पर व्यंग्य की झलक स्पष्ट हो उठी। पर मैं चकित था उनकी ढिठाई के दूसरे ही रूप पर। 'दूसरे की पत्नी के साथ रात्रि-भ्रमण और नौका विहार' वाली बात वास्तव में बड़ी ही तीखी और चुटीली थी। इतनी देर बाद उनके मुँह से इस तरह की बात निकलेगी इसकी कल्पना मैंने नहीं की थी। साथ ही एक दूसरे कारण से भी मैं तिलमिला उठा था। उनके तीखे व्यंग्य की गहराई में मुझे सचाई का आभास मिलने लगा था—उस सचाई का जिसे इतने दिनों तक मेरा सचेत मन भुलाये हुए था।

मैं इस क़दर हतप्रभ हो गया था कि कोई उत्तर ही मेरे मुँह से नहीं निकल पाता था। मुझे चुप रहते देखकर भाभी ने कहना शुरू किया—'अब चुप क्यों हो लाला? स्वीकार क्यों नहीं करते कि 'प्रभु ईसा' की विशेष कृपा है तुम पर!'

"हाँ है !" मैंने सहसा आवेश में आकर कहा, "पर यह बताइये कि वीरेन्द्र पर किसकी कृपा है ? उसे भी तो आपने खुली छूट दे रखी है। जहा तक मैं जानता हूँ उसे भी अपनी पत्नी के आगे इस बात की जवाबदेही नही करनी पडती कि वह चौबीस घटो म अठारह घटा घर से गायब क्यों रहता है। और उसकी पत्नी के सबध म मेरा यह विश्वास ह कि वह नारी के अधिकारो के सबध म पूर्णतमा सचेत है।'

पलटे मे इस प्रकार का जवाब पाने के लिय शायद भाभी तयार न थी। वह भी तश म आ गयी। बोली—"यह ठीक है कि उनकी पत्नी नारी के अधिकारो क सबध म पूर्णतया सचेत है। यह भी सही है कि उन्हे जवाबदेही नही करनी पडती। पर इसका कारण यह है कि उनकी पत्नी जानती है कि वह किसी दूसरे की पत्नी के साथ रोमास की बातें करने के उद्देश्य स गायब नहीं रहते। दूसरी बात यह है कि वह भी अपनी पत्नी स कभी कोई जवाबदेही नही चाहते। उन्होंने भी अपनी पत्नी का यथेच्छ विचरन की खुली छूट दे रखी ह।'

मैं चकित था। मुझे लगा कि कुछ ही दिन पहले जिस शोभना भाभी का करुणा-कातर रूप मैं देख चुका था वह आज की भाभी से सवथा भिन्न थी। तब क्या उनका करुण रूप कृत्रिम था ? नही वह भी इतना ही—बल्कि इससे भी अधिक—सच्चा था, यह मैं शपथपूवक कह सकता हू। तब क्या उनका नया रूप बनावटी था ? नहीं, वह भी यथाथ था। उसम भी किसी प्रकार की कृत्रिमता का तनिक भी आभास मुझे नही दिखायी देता था। उनकी उलटी-सीधी बातो से मेरी बुद्धि चकराने लगी थी।

सहसा मैंने बिना किसी विचार के ही, अपने बांय हाथ स भाभी के दाहिने हाथ की हथेली पकड ली। इसके बाद भावाकुल होकर मैंने कहा— 'भाभी आज आप क्या सचमुच मुझस नाराज हैं ?

'नहीं तो ! हाथ हटाने का तनिक भी प्रयत्न न करते हुए भाभी न स्वर म तनिक कोमलता घोलते हुए कहा।

'तब आप मुझ पर इस तरह के व्यग क्यो कस रही हैं ? इस तरह के कडे उत्तर क्या दे रही हैं ? ' मेरे स्वर स निश्चय ही मेरी विह्वलता व्यक्त हो उठी होगी।

भाभी ने तत्काल अपना हाथ हटाकर सहज स्निग्ध भाव से कहा—"मुझे क्षमा करना, लाला। आजकल न तो मेरा चित्त ही स्थिर है न दिमाग ही दुरुस्त। किस समय किस कारण से मैं क्या कह बैठती हूँ, बाद में वह स्वयं मुझे याद नहीं रहता। विश्वास मानो, मेरा इरादा न व्यंग करने का था न किसी भी रूप में तुम्हारा जी दुखाने का।"

भाभी की इस बात से पहेली और अधिक जटिल हो उठी। मैं चुप रहा। इसके बाद फिर हम दोनों के बीच कोई बात जम नहीं पायी।

"भाभी उठिये, देर हो गयी है" मैंने कहा, "अकेले में मनिया का जी घबरा रहा होगा।"

भाभी उठ खड़ी हुई। मेरी ओर एक विचित्र दृष्टि से उन्होंने देखा। सुस्पष्ट चाँदनी में उनकी उस दृष्टि की तीक्ष्णता से बिजली की तरह मेरे प्राणों में एक अलग की-सी कंपन दौड़ गयी।

"मनिया के अकेलेपन के खयाल से तुम सचमुच क्या इतने विकल हो, लाला?" मोटर की ओर चलते हुए भाभी ने कहा।

"हाँ!" कहकर मैं फिर चुप हो गया।

जब हम दोनों मोटर में बैठ गये, तब एक अनोखी उदासी की-सी अनुभूति ने मेरे प्राणों को जमे बर्फ से भी ठंडे कुहर से छा दिया। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि केवल आज की सारी सन्ध्या ही नहीं बल्कि मेरा सारा पिछला जीवन भी एक रहस्यमय भ्रमजाल से ढका रहा है, और जिस दिन यह भ्रमजाल कट जायगा उस दिन अपने जीवन की सारी व्यर्थता मेरे आगे सुस्पष्ट हो जायगी।

घर पहुँचने पर कार से उतरते ही मैं सीधे तेज कदम रखता हुआ ऊपर चला गया। मनिया का कमरा भीतर से बंद था। मैंने उँगली से दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुलते ही मनिया के जो दर्शन मैंने किये तो मेरा सारा अवसाद पल में काफूर हो गया। उसके तमतमाये हुए चेहरे पर एक ऐसी उद्दीप्त और उल्लसित आभा अंकित रही थी जिसने मेरे भीतर बड़ी सघनता से जमे हुए कुहर को फाड़कर एक अपूर्व प्रकाश और मीठी गरमी से सारे मन और प्राणों को गुनगुना दिया। मैं चकित सा उस आश्चर्यमयी नारी को देखकर जो अकेले में अपने प्राणों

के भीतर से जीवन के मूल आनन्द के बीज-कणों को इस हद तक विकसित और प्रकाशित करने की क्षमता रखती थी कि अपने आस-पास के सारे वातावरण को उस दिव्य आभा से आलोकित कर देती थी।

"किस ओर गये थे?" अपने स्निग्ध और मधुर मुसकान मुख पर झलकाते हुए मनिया ने प्रायः पुलक-गद्गद् स्वर में पूछा।

"बस मियाँ की दौड़ मसजिद तक!"

"किस मसजिद में गये थे? मुसलमान लोग मसजिद के भीतर आने देते हैं क्या?"

स्पष्ट ही मेरी बात को मनिया ने शाब्दिक अर्थ में ग्रहण किया था। मैं ठठाकर हँस पड़ा। साथ ही मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ कि इस अत्यन्त प्रचलित लोकोक्ति से वह अपरिचित है। मैंने जब उसे उसका अर्थ समझाया तब वह स्वयं अपनी भूल पर हँसने लगी।

मैंने पूछा कि वह अकेले में कितनी प्रसन्न रहा था। क्या पुस्तक के भीतर से उस आनन्द की अनुभूति प्राप्त हुई है या ध्यान से? उसने बताया कि दोनों तरीकों से।

भाभी ने हम लोगों को डाइनिंग-रूम में बुलाया। वीरेन्द्र अभी नहीं आया था। पहले भाभी का इरादा वीरेन्द्र के लिए ठहर रहने का था। उन्होंने हम दोनों को अनुमति दे दी थी कि हम लोग खा लें क्योंकि वीरेन्द्र का कोई ठिकाना नहीं था कि एक बजे आयेगा या दो बजे, पर बाद में मेरे आग्रह करने और समझाने पर कि अनिश्चित स्थिति में रहकर वह अपना खाना बेकार में मिट्टी न करें वहीं हम लोगों के साथ ही बैठने के लिए राजी हो गयीं।

जब हम लोग एक टेबिल पर आकर बैठे तब भाभी ने मनिया से कहा— "बहन, तुम्हें कलकत्ते आये इतने दिन हो गये, पर तुम एक दिन भी बाहर नहीं निकलीं। एक नये शहर में आयी हो, घूमने फिरने देखने-सुनने की कोई इच्छा तुम्हारे मन में नहीं जगती, यह आश्चर्य है!"

"सचमुच! मुझे स्वयं भी इस बात पर आश्चर्य होता है जीजी, कि क्यों मुझे यहाँ घूमने और बाहर की सैर करने की इच्छा नहीं

होती। इतने बड़े शहर में मैं पहली बार आयी हूँ। यहाँ सभी कुछ मेरे लिये नया है। पर, जाने क्या, मुझे यहाँ की भीड़-भक्कड़, चहल-पहल, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। यही जी चाहता है कि दिन भर अकेले भीतर बैठी रहूँ, दिन भर या तो कोई अच्छी पुस्तक पढ़ूँ या अच्छी अच्छी बातें सोचूँ या प्रभु का ध्यान करूँ।"

"मुझे तो यदि एक दिन के लिये भी दिन भर घर में बन्द रहना पड़े तो मेरा तो दम ही घुट जायगा," भाभी ने कहा। "जो भी हो कल तुम्हें हम लोगों के साथ बाहर निकलना ही होगा, यह अभी से कहे देती हूँ।"

"अच्छी बात है," सहज स्निग्ध भाव से मंद-मंद मुस्कराती हुई मनिया बोली, "आपकी जब इच्छा है तब मैं अवश्य चलूँगी।"

मैं मौन भाव से मनिया के मुँह की ओर देख रहा था और मेरे शरीर में, मन में और प्राणों में एक अलौकिक पुलक सिहरन दौड़ रही थी। जो अपूर्व अनिर्वचनीय आभा उसके मुख पर झलक रही थी, उससे उसका सौंदर्य एक नयी महिमा से उद्भासित हो रहा था। उस दिव्य अन्तर में भाव गद्गद् हो रहा था।

जब हम लोग खाना खा चुके तब मनिया और मैं अपने कमरे में चले गये और भाभी अपने कमरे में। दो-तीन दिन से धीरेन्द्र से एकान्त में मिलना ही नहीं हो रहा था। इसका मुझे दुःख था और रात में जाकर भी उससे मिलना चाहता था। पर पलँग पर लेटकर जब एक पुस्तक हाथ में लेकर मैं पढ़ने लगा तब दूसरे पृष्ठ तक पहुँचते-न-पहुँचते मेरी आँखें झपने लगीं और मैं पुस्तक मेज पर रखकर, करवट बदलकर सो गया। मनिया कब आयी यह मैं जान ही न पाया।

48

दूमरे दिन सध्या को भाभी मनिया ग्रौर मैं
'कार' पर बठे तब भाभी ने प्रस्ताव किया कि
के बीच स होकर चला जाय। चूकि मनिय
शहर नही देखा था इसलिये वह चाहती थी कि कलकत्ते के बहिरग स्व
का कुछ ग्रभास उसे मिले। भवानीपुर होकर हम लोग चौ
पहुँचे। वहाँ एक दुकान के आगे 'कार' रुकवा कर भाभी हम लोगो
दुकान के भीतर ल गयी। वहाँ शृङ्गार प्रसाधन की कुछ चीजें खरीद
हम लाग फिर 'कार' पर बठ गये। भाभी न शोफर से कालेज स्क्व
की तरफ चलन के लिय कहा।

सीनट हाल के पास जब कार पहुँची तब सहसा एक ऐसा कौ
हुग्रा जा शायद कलकत्ते की तत्कालीन स्थिति मे भी ग्रसाध
था। ट्रामे ग्रौर बसें रुक गयी थी ग्रौर उनके यात्रियो म भगदड मच
थी। नवयुवको का एक दल सम्मिलित कठ से चिल्ला चिल्लाकर
कह रहा था जो समझ म नही ग्रा पाता था। कुछ ही देर बाद
पता लगा कि नवयुवको के दल ग्रौर पुलिस दल के बीच मुठभेड हो
है ग्रौर नवयुवको का दल उत्तेजित होकर ट्रामो म ग्रौर बसो म
लगान के लिय कटिबद्ध हो उठा है। हमारी कार ग्रप्रत्याशित रू
ऐसी बुरी जगह फँस गयी थी कि न पीछे मोडने के लिये कोई स्थान
गया था न ग्रागे बढने की सुविधा थी, न दायी ग्रोर घूम सकती थ
बायी ग्रार। चारों ग्रोर युद्ध के स नारो की ग्रस्पष्ट शब्दावली ग्रत
भीषण स्वर म कानो म बज रही थी।

सहसा पुलिस का एक ग्रादमी कसे हमारी 'कार' के पास
पहुँचा मैं जान भी न पाया। वह ग्रात्मरक्षा के लिये पीछे हटता
वहाँ ग्राया था या किसी को हटाने क लिये मैं कह नही सकता। मुझ
तो कुछ देखन का ग्रवकाश मिला न कुछ समझन का। पल म एक ल
हृदय घटना घट गयी। मनिया पीछे की सीट पर बायी ग्रोर वाले
म बठी थी। ग्रचानक एक दगी बम की तरह की कोई चीज हम
कार के जिचले भाग स ग्राकर टकरायी। विस्फोट के फलस्वरप
सुई की तरह के तीखे कण छिटककर कार के भीतर भी चले ग्रा

एक कण शायद मनिया के हाथ पर भी जा लगा। मनिया "उफ !" भी न कह पायी थी कि उसी क्षण, पलक मारते न मारते, तेजाब से भरा एक बल्ब 'कार' की खिड़की के आधे खुले शीशे से आकर टकराया और सहसा मनिया एक मर्मभेदी, अस्वाभाविक स्वर में चीखती हुई दोनों हाथों से मुह ढाँपकर परकटे पक्षी की तरह मेरी गोद में आ गिरी। मैं भी प्राय उसके स्वर में स्वर मिलाता हुआ आतंक से चिल्ला उठा। और भाभी तो धाड़ मारकर रो ही पड़ी। स्पष्ट ही हमारी 'कार' के पास खड़े पुलिस के आदमी को लक्ष्य करके किसी ने वह तेजाब भरा बल्ब फेंका था। यह बात बाद में मेरे अनुमान में आयी। उस समय मुझे यह सोचने का अवकाश ही नहीं था कि किसने फेंका और क्या फेंका। उस समय तो मैं खिड़की के बाहर मुह करके गला फाड़ फाड़ कर केवल यही चिल्लाता रहा कि "एक महिला का मुह तेजाब गिरने से जल गया है आप लोग पीछे से हटिये, 'कार' को लौटने का रास्ता दीजिये ! जल्दी ! जल्दी ! नहीं तो उसके मर जाने का खतरा है !" आदि आदि।

रास्ता मिला, 'कार' पीछे की ओर हटी और उसके बाद धीरे धीरे भीड़ से अलग होकर बाहर निकल आयी। मैंने "नौकर" से सीधे मेडिकल कालेज के अस्पताल में 'कार' को ले चलने के लिये कहा।

मैंने सोचा था अस्पताल में जाते ही तत्काल कोई डाक्टर उसका उपचार आरम्भ कर देगा। पर ऐसा नहीं हुआ। लाल फीते के चक्कर से पार होते-होते काफी समय लग गया। मनिया अपना जला हुआ मुह साड़ी से ढँके थी और दाँत पीसती हुई असह्य वेदना को पूरी शक्ति से दबाना चाहती थी, पर बीच-बीच में बरबस कराह उठती थी। मैं दुःख, अधीरता और अस्पताल वालों की ढिलाई और अव्यवस्था पर क्रोध के कारण आप में नहीं था। कभी क्लर्क को डाँट बताता था कभी उन डाक्टरों और कालेज के छात्रों को जो ड्यूटी पर आये हुए थे। पर वे लोग मनिया और दूसरे आहत व्यक्तियों या मरीजों के प्रति एकदम उदासीन होकर, अत्यन्त शांत भाव से खड़े, या तो आपस में गपशप कर रहे थे या बिना मतलब के इधर-उधर

चक्कर लगाते हुए कानून बघार रहे थे। मैंने देखा कि क्रोध से काम नहीं चलेगा और बिना खुशामद के निस्तार नहीं है। इसलिये एक सफेद अचकन पहने हुए सज्जन के आगे, जो या तो स्वयं डाक्टर थे या डाक्टरी का कोर्स समाप्त करने जा रहे थे मिलकर मैंने अनुनयपूर्वक अपनी दयनीय स्थिति प्रकट की और प्रार्थना की कि किसी योग्य डाक्टर द्वारा तत्काल मनिया के इलाज की व्यवस्था करवा दें। उन्होंने कहा कि सब कुछ कायदे से होगा और धैर्य रखने की सलाह दी। भीतर ही भीतर क्रोध से जलते हुए भी बाहर से मैंने शांत भाव से प्रार्थना की कि कृपया मुझे बता दें कि कायदे के अनुसार चलने के लिये मुझे पहले किसके पास जाना चाहिये और फिर किसके पास। उन्होंने कुछ बताया, जिसे मैं ठीक से समझा नहीं और फिर वह बड़ी तेजी से दूसरे वार्ड की ओर चले गये। अंत में एक भले आदमी की राय से मैं सीधे हाउस सर्जन के पास पहुँचा। उन्हें स्थिति की गंभीरता समझायी। उन्होंने ठंडे हृदय से, किंतु शांत भाव से सब-कुछ सुना और तब मनिया को प्राइवेट वार्ड के एक खाली कमरे में भरती करवाया गया। वहाँ स्वयं हाउस सर्जन ने उसे देखा। अपने हाथ से मरहम पट्टी करने के बाद उन्होंने बताया कि मनिया को अभी दो चार दिन अस्पताल ही में रखना उचित होगा। उसके लिये चौबीसों घंटे डाक्टरी परिचर्या की आवश्यकता है। उस कष्ट की हालत में मनिया मेरे साथ से भी वंचित रहे यह प्रस्ताव मुझे पसंद नहीं जँचा। मैंने प्रार्थना की कि मुझे उसे घर ले चलने की आज्ञा दे दी जाय। चाहे जितना भी रुपया लगे मैं घर ही पर उसका इलाज करना पसंद करूँगा। उन्होंने बताया कि चाहे जितना ही रुपया खर्च क्यों न किया अस्पताल में जो डाक्टरी सेवा सुलभ हो सकेगी वह घर पर कदापि संभव नहीं है। लाचार होकर मन मार कर मैंने उनकी बात मान ली।

'पर वह क्या इस कमरे में अकेली रहेगी? कोई व्यक्ति उसके साथ नहीं रह सकता!' मैंने पूछा।

'एक दाई आप को दे दी जायगी, वह चौबीसों घंटे इनके ही साथ रहेगी। उसका वेतन आपको देना होगा।'

मैंने एक लंबी साँस ली। मनिया को सारी स्थिति सम-झाय, उसने कराहना बंद कर दिया था। मरहम पट्टी के बाद वह पत्थर की तरह निश्चल और मौन पड़ी हुई थी। मेरी बात सुनकर उसने अपनी आँखें खोली, जो च्यवन मुनि की तरह वल्मीक में ढके दो छिद्रों-सी दिखायी देती थीं। अत्यंत करुण और वेदना-व्याकुल दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखकर क्षीण स्वर में बोली—"वह ठीक कहते हैं। इलाज के लिए मेरा यहीं रहना आवश्यक है। मेरी कोई चिंता न करो। मैं अकेली ही यहाँ रह जाऊँगी।'

डाक्टर ने बताया कि छः बज चुके हैं, और उस समय के बाद हम लोगों का कमरे में रहना उचित नहीं है। रोज चार और छः के बीच में आकर हम लोग मनिया से मिल सकते हैं।

अत्यंत खिन्न होकर मैंने धीरे से मनिया की हथेली पकड़ी और कहा— 'तो इस समय जाऊँ मनिया? दर्द कमा है?'

'ठीक है। कुछ चिंता न करो! तुम इस समय जाओ। कल समय पर आ जाना।' यह कहकर उसने अपनी तीव्र वेदना से विद्ध दृष्टि को मुसकान से उज्ज्वल करने का अत्यंत क्षीण, और करुण प्रयास किया।

मुझे रुलाई आ रही थी। केवल 'अच्छा!'" कहकर मैंने धीरे से उसका हाथ छोड़ दिया और फिर भाभी से चलने का संकेत करके मैं अनिश्चित पगों से कमरे से बाहर निकल आया।

भाभी के साथ जब मैं मकान पर पहुँचा तब अपने भीतर और बाहर एक अतलव्यापी, असीम शून्यता के अनुभव से मुझे सर्वत्र केवल भायँ भायँ शब्द के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सुनायी देता था। न किसी से कुछ बोलने की इच्छा होती थी न अपने मन में कुछ सोचने की। केवल रह रहकर एक तीव्र तेजाबी जलन की अनुभूति से सारा तन और मन चुन चुन कर रहा था।

मोटर पर से उतरकर मैं हताश और निराधार भाव से ड्राइंग-रूम के एक कोच पर लेट-सा गया। भाभी मौन सांत्वना का-सा भाव मुँह पर लिए हुए मेरे पास ही एक सोफा पर बैठ गयीं। क्या मनिया के

कराहने का शब्द कानों में 'री री !' करके बज उठता था, कभी उस मर्मघाती पीड़ा के बीच में भी उसकी करुण मुस्कान मेरे अंतरतम प्रदेश के किसी रहस्यमय छिद्र से झाँकने लगती थी ! सारी घटना और मेरी सारी भावना की पृष्ठभूमि में जो सामूहिक रूप से प्रचंड हिंसक या प्रतिहिंसक प्रवृत्तियाँ फेनायित हो उठी थीं उनके गर्जन के प्रति मैं उस समय जान बूझकर अपने भीतर के कानों को बंद किये हुए था। अवमन की जिस खिड़की से उस आतंकजनक दृश्य के दिखाई देने और गर्जन-स्वरों के सुनायी देने की संभावना थी उसे मैंने बंद करके भीतर से चिटखनी लगा दी थी। पर खिड़की को इस मजबूती से बंद करने के बावजूद उस युद्ध के से भैरव नाद और तुमुल कोलाहल की आवाज डिब्बा-दर डिब्बा बंद किये हुए रेडियो की आवाज की तरह दबे हुए, तथापि सुस्पष्ट स्वरों में, मेरे कानों में आ रही थी।

मैं असह्य मानसिक पीड़ा से छटपटाता हुआ कौच पर अपनी स्थिति और मुद्रा बदलता जाता था। आभा दायें गाल पर हाथ रखे मौन भाव से कभी मेरी ओर देखती थी कभी फर्श की ओर। स्पष्ट ही उनके मन पर भी आज की घटना का बड़ा ही मार्मिक प्रभाव पड़ा था। मुझे लगा कि वह सांत्वना के रूप में कुछ कहना चाहती हैं, पर कहने के लिये जैसे न तो कोई शब्द ही उन्हें मिल रहा था न स्वर।

मेरी मनोपीड़ा जब बढ़ते-बढ़ते संकट की स्थिति को पहुँचने लगी तब मैंने अपने भीतर से प्रतिरोधात्मक विचार धारा को उत्पन्न करना आरंभ कर दिया। अपनी पीड़ा को क्रोध में बदलकर मैं उठ बैठा।

'कितनी बड़ी मूर्खता है !' सहसा मेरे मुँह से निकल पड़ा।

आभा की अन्यमनस्कता भंग हुई। वह कुतूहल और प्रश्न भरी दृष्टि से मेरी ओर देखने लगी।

मैंने कहा— 'इन क्रान्तिकारियों में न तो सहज बुद्धि रह गयी है न आनुपातिक विवेचन। वे या तो भेड़ों की तरह दूसरों की बुद्धि से परिचालित होकर काम करते हैं या उन हिंसक शिकारी जानवरों की तरह जो अपने शिकार की हत्या करने के बाद फिर उसे सूँघते तक नहीं, गिद्धों और सियारों के लिये उन्हें छोड़ आते हैं। सामने

आये हुए किसी भी व्यक्ति की हत्या होनी चाहिये, ताकि हिंसात्मक वातावरण बना रहे, उसकी अखण्डता मे कोई व्यतिक्रम न होने पावे, यह है उनका उद्देश्य। किसी भी युग मे, किसी भी दश मे, किसी भी क्रातिकारी दल द्वारा इस प्रकार की निरर्थक हिंसा-त्मकता का कोई दृष्टान्त नही पाया गया। केवल बीसवी शती के उत्तरार्द्ध काल के भारत मे ही इस प्रकार के दृष्टात सामने आ रहे हैं "

"हो सकता है," एक लबी साँस भरकर भाभी ने कहा, "पर कौन जाने! इस निरर्थकता के पीछे भी प्रकृति का कोई सार्थक उद्देश्य छिपा हो! यह असभव नही है कि इस प्रकार के निरर्थक हत्या-चक्रों द्वारा आज के युग के विश्वव्यापी हिंसात्मक वातावरण की अस्वाभा-विकता की चेतना विश्व-मानवता के भीतर जग उठे! हिंसा भावना के भीतर छिपी हुई समस्त कुरूपता और वीभत्सता का नग्न रूप इसी प्रकार के भेदाभेद रहित निरर्थक हत्या-कांडों द्वारा सुस्पष्ट तथा परिस्फुट होगा, और तब उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जो नव-चेतना जनता के भीतर जगेगी, बहुत सभव है वह आज के सनिक शक्ति-प्रमत्त राष्ट्रो की आँखें खोलने मे समर्थ हो!"

भाभी के उस आशावादी दृष्टिकोण का कोई प्रभाव मेरे मन पर नही पड़ा। मेरे कानो मे मनिया के कराहने का शब्द अभी तक उसी तीव्रता से गूँज रहा था और कोई भी पारमार्थिक उपदेश मुझे सात्वना दने मे असमर्थ था।

"बेचारी मनिया!" अत्यत विकल भाव से, तनिक रुँधे हुए स्वर मे मैंने कहा, 'मुझे क्या पता था कि हम लोग ऐसे चक्कर के बीच मे जा फँसेंगे। इतने दिनों बाद वह आज बाहर निकली, और आज ही यह काड हो गया! किस आशा मे, किस उल्लास से मैं उसे मसूरी से यहाँ लाया था! उसकी इच्छा नही थी, मैंने ही उस पर जोर डाला था। और आज उफ!"

मेरी आँखें डबडबा आयीं। मैं सुकुमार हृदय स्त्रियो की तरह भावुकता के बहाव में बह गया।

'छि लाला!" भाभी ने सात्वना के स्वर मे कहा, "इस तरह

 घबरा उठोगे तो कैसे काम चलेगा !" और वह अपने स्थान से उठकर कौच पर मेरी बगल में आकर बैठ गयी और अपने अचल से धीरे से मेरी गीली आँखें पोछने लगी।

'मैं सचमुच मे इतना दुर्बल-स्वभाव नही हू भाभी जैसा कि इस समय दिखाई दे रहा हूँ। वह आघातो को सहन करने की शक्ति मुझ मे है। केवल मनिया के कारण ही मैं नही घबराया हुआ हूँ। मेरी इस घबराहट के पीछे और भी बहुत से कारण हैं। मैं देख रहा हू सारे युग की अस्त-व्यस्तता। जन आदोलन के प्रति मेरे मन मे सहानुभूति है। पर मैं देख रहा हू जनता की अध अनुकरण प्रियता अध विद्वेष, और अध विद्रोह। यदि कोई ऐसी सुसगठित, सुयोजनात्मक सुनियमित शक्ति इस आदोलन के पीछे होती जिसने देश काल पात्र का ध्यान रखकर, पीडित विश्व के महान पार्थिव और आध्यात्मिक कल्याण के सुस्पष्ट ध्येय को सामने रखकर चलने की प्रेरणा पायी होती तो भविष्य की उस वृहत सामूहिक हित-सभावना से बल पाकर मैं वर्तमान की बडी से बडी व्यक्तिगत हानि को हँस हँसकर सहन करता और सभवत स्वय भी इस आदोलन मे कूद पडता। पर उसका जो उच्छृखल, अव्यवस्थित असयोजित रूप मैं इस समय देख रहा हू उसकी पीडा असहनीय हो उठी है।'

"फिर भी निराश न होओ लाला अत तक आशा न छोडो, देखते चले जाओ। कौन जानता है। प्रकृति अपने लिए न जाने किन भूलभुलयो के बीच से होकर, किन बीहड जगलो और दुर्गम पर्वतो के बीच से पथ बनाती हुई भटकी हुई मानवता को निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाने की क्या योजना बनाए हुए है। धैर्यपूर्वक देखते चले जाओ।'

मुझे याद आया कि एक दिन भाभी स्वय विकल होकर, अपने चारो ओर हाहाकार भरा निराशाजनक वातावरण देखकर किस कदर घबरा उठी थी और मनिया से और मुझसे उन्होने प्रार्थना की थी कि हम उन्हें किसी हालत मे न छोडें। और आज जब मुझ पर और मनिया पर आ पडी तब उनका सारा दृष्टिकोण ही जैसे बदल

गया। प्रत्यक्ष संकट ने उनके हृदय में एक अभूतपूर्व बल, साहस और आशावादिता का संचार कर दिया। मनुष्य का यह रहस्यमय मन कब कहाँ से बल बटोरता है, कहा नहीं ज सकता।

बुद्धि से मैं भी मामी की बात की ताईद कर रहा था। पर फिर भी मेरे मन का अवसाद और रह रहकर उठनेवाली टीस किसी प्रकार कम नहीं होती थी। मामा से छुट्टी लेकर मैं अपने कमरे में जाकर ल हो गया। पलंग पर चारों खाने चित्त लेटकर चित्त को स्थिर करने का प्रयत्न करने लगा। पर कोई फल नहीं हुआ। मैं उठ बैठा। इच्छा हु कि कोई ऐसी पुस्तक पढ़ी जाय जो वर्तमान की सारी पीड़ा को और भविष्य की संपूर्ण निराशा को भुलाने में सहायक हो और मुझे जीवन मूल केन्द्र में लाकर रख दे। ऐसी पुस्तक कौन हो सकती है, यह सोच में काफी समय लग गया। सहसा एक बिजली-सी मेरे प्राणों के भीत कौंध गयी। कौन पुस्तक मेरे लिये उस समय की मनःस्थिति में उपयु हो सकती है इस संबंध में लेशमात्र भी संदेह मेरे मन में न गया। मैंने सोचा कि जिस पुस्तक ने मनिया के प्राणों में वह आश्च जनक बल संचारित किया था कि असहनीय शारीरिक जलन और मा सिक विकलता से ऊपर उठकर वह मेरे अस्पताल से लौटने समय प्रेम सुमधुर, स्निग्ध मुसकान मुख पर झलकाने में समर्थ हुई थी, उसी क्यों न पढ़ा जाय! छात्र जीवन में मैंने दो एक बार बाइबिल अव पढ़ी थी, पर उसके बाद फिर कभी उसकी ओर मैं आकर्षित न हुअ और उसकी सब बातें मुझे बच्चों के उपयुक्त हितोपदेश से भरी लगी मनिया के बाइबिल प्रेम को भी मैं आज तक उसकी निर्बोध बचक आस्था मानकर दुलराता आ रहा था। पर आज संकट के क्षण में सब बातें मेरे आगे एक दूसरे ही प्रकाश में आने लगीं, जिनकी अस्पष्ट स्मृति मेरे मन में शेष रह गयी थी।

मनिया जिन पुस्तकों को अपने साथ लायी थी उन्हें उसने एक पर सजाकर रख दिया था। उन्हीं में से चमड़े की काली जिल्द में मढ़ी नयी बाइबिल की नयी छपी हुई पुस्तक मैंने उठायी और पलंग पर

कर खोलकर पढने लगा। एकात चित्त से, पूर्ण मनोयोग से, एक एक वाक्य, एक एक शब्द के मूल अर्थ पर बडी बारीकी से विचार करता हुआ पढता चला गया। ल्यूक द्वारा वर्णित ईसा के जीवन, उनके उपदेशो और कार्यों के क्रम का वर्णन पढते पढते मैं उस स्थान पर आया जहा स्वार्थी, ढोंगी भ्रष्टाचारी और सकीर्ण-मन धर्मध्वजियो के प्रलोभन के फेर मे पडकर जुडास इस्कारियट ने चाँदी के तीस टुकडो के लिये ईसा के साथ विश्वासघात किया था और उन्हे उस अर्थ युग के धार्मिक और नतिक रक्षा के ठेकेदारो—हिंसक कुत्तो और भेडियो के हाथ सौंप दिया था। मैं तन्मय होकर पढ रहा था उस महाप्राण की ऊर्ध्वतम आध्यात्मिक मन स्थिति की बात जिसने जुडास की आँखो म विश्वासघात का स्पष्ट आभास देखने पर भी उसे क्षमा कर दिया था। वह अकेला पावन युग के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक नतिक और धार्मिक पतन और युग की रग रग म समायी हुई मोहाधता स कितना ऊपर उठा हुआ था! मैं पढ रहा था उस अनत क्षमाशील और अद्भुत सहनशील महात्मा की बात जो काटो का ताज पहनकर घृणित और लोलुप अध पिशाचो धर्म के नाम पर मानवता का रक्त और प्राण शोषण करने वाले श्मशान के चाडालो के निर्मम उपहास का पात्र बनकर भी अत्यत स्थिर और शात भाव से अविचलित हृदय से सारी परिस्थिति को स्वीकार किये चला जा रहा था। मैं अपने मर्म के अणु अणु म अनुभव कर रहा था उस महामानव की कठोर शारीरिक पीडा का जिसके हाथ और पाँव बडी-बडी नुकीली कीलो के जरिये लकडी पर जड दिये गये थ, जिसे उन्मत्त जनता ने और अविवेकी शासनाधिकारियो ने घृणिततम अपराधी मानकर शूली पर लटकाकर अमानुषिक पीडा पहुँचा कर कुत्ते की मौत मरने के लिये छोड दिया था। मैं कल्पना कर रहा था उस अति-मानुषी अतीन्द्रिय शक्ति-सम्पन्न लोकोत्तर महापुरुष के आश्चर्यजनक आत्मबल की जिसने अपनी असहनीय मर्म-पीडा के बीच म भी यह प्रार्थना की थी कि "हे मेरे पिता, इन लोगो को क्षमा कर दो, क्योकि ये यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं!

मेरी आँखो से कब से आँसुओ की झडी लगनी शुरू हुई थी, मैं जान

नहीं पाया था—ऐसा तन्मय हो गया था उस महान आत्मा के जीवन-वृत्त में।

रात में प्रायः दस बजे किसी ने बाहर से मेरा दरवाजा खटखटाया।

"लाला, क्या सो गये हो?" भाभी की आवाज सुनायी दी।

मैंने दरवाजा खोला। मैंने देखा, भाभी के पीछे वीरेन्द्र तीन लड़कों के साथ खड़ा है।

"ये लोग तुमसे क्षमा मांगने आये हैं," वीरेन्द्र ने अत्यंत कोमल स्वर में कहा। और कहते ही वह उन लड़कों के साथ भीतर चला आया।

कुछ न समझते हुए भी मैंने कहा—"आइये, बैठिये।"

भाभी मनिया के पलँग पर बैठ गयीं, वीरेन्द्र मेरे पलँग पर जा बैठा और दो लड़के दो कुर्सियों पर बैठ गये। एक लड़का खड़ा ही रहा। मैंने उससे भी अपने पलँग पर बैठने को कहा, पर वह हाथ जोड़ता हुआ अत्यंत विनयपूर्वक खड़ा ही रहा। भाभी उठकर बगल वाले कमरे से एक कुर्सी उठा लायीं। वह लड़का उस पर बैठ गया।

मैं वीरेन्द्र की बगल में बैठ गया। उसकी ओर देखते हुए मैंने कहा—"किस बात की क्षमा ये लोग चाहते हैं, मैं कुछ समझा नहीं।"

"आज कालेज स्क्वायर में जो दुर्घटना हो गयी, जिसके फलस्वरूप बहू का मुँह तेजाब से जल गया, उसी के लिये ये सारे क्षमा माँगने आये हैं।"

मैंने सरसरी तौर से एक बार तीनों लड़कों की ओर परीक्षात्मक दृष्टि से देखा—यह अनुमान लगाने के लिये कि इनमें कौन लड़का इस प्रकार की खूनी मनोवृत्ति वाला हो सकता है। पर तीनों में से किसी के भी चेहरे की अभिव्यक्ति में हिंसा और अमानुषिक क्रूरता का कोई आभास मुझे दिखायी नहीं दिया। तीनों शांत, सरल-स्वभाव और सहृदय लगते थे।

स्थिति को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के उद्देश्य से मैंने वीरेन्द्र से पूछा—"क्या इनमें से किसी लड़के ने वह तेजाब भरा बल्ब फेंका था?"

"नहीं," दृढ स्वर में वीरेन्द्र ने उत्तर दिया, "ये लोग जानते भी नहीं कि किसने बल्ब फेंका।"

"तब ये किसकी तरफ से क्षमा माँगने आये हैं?" अत्यंत आश्चर्य से मैंने पूछा।

'इनके दल में जो चंद उत्तरदायित्वहीन व्यक्ति घुस गये हैं और बिना किसी भेदभाव के, अपराधी और निरपराध सब पर निर्विचार भाव से आक्रमण किये चले जाते हैं उनके लिये ये स्वयं अपने को दोषी मानते हैं—उसे अपने संगठन की कमी मानते हैं।'

"ओह, समझा!" कुछ कुछ समझते हुए और एक ठंडी आह भरते हुए मैंने कहा— फिर भी मैं इसमें कोई तुक नहीं देखता कि दूसरों के अपराध के लिये ये क्षमा माँगें। और फिर क्षमा करने वाला मैं कौन होता हूँ! जिस लोगों की मूर्खता का शिकार बनना पड़ा है उससे जाकर क्षमा माँगें मैंने खीझ भरे स्वर में कहा।

'बहू के पास ये लोग हो आये हैं। तुम्हारे चले आने के बाद ही ये लोग गये थे। कमरे में जाने में इन्हें रोका जा रहा था, पर किसी तरह नर्स से अनुनय विनय करके दो मिनट के लिये बहू से मिलने की अनुमति इन्हें मिल गई थी। बहू ने प्रेमपूर्वक इन लोगों के सिर पर हाथ फेरा और आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'इस घटना से गलत रास्ते पर न चलने की शिक्षा ग्रहण करो।' मैं भी गया था। मुझसे बहू ने कहा कि मैं तुम्हें जाकर धैर्य दूँ'

"तब ठीक है' उसी रुखाई से मैंने कहा— अब ये लोग जा सकते हैं। मेरा जी ठीक नहीं है, मैं जरा आराम करना चाहता हूँ।

लड़कों के चेहरों पर एक उदास, निराश मौन-छाया घिर आयी थी। वीरेन्द्र के चेहरे से पता चलता था कि वह भी मेरे व्यवहार से खिन्न है। पर उसने फिर कुछ नहीं कहा और लड़कों को साथ लेकर कमरे से बाहर चला गया। भाभी भी चुपचाप चली गयीं।

५५

दूसरे दिन मैं भाभी के साथ जब अस्पताल पहुँ
तब मनिया चादर ओढ़े बाइँ करवट लेटी हुई थी
सारा सिर पट्टी से ढका था। हमारे आने की आ
उसके कानों तक नहीं पहुँची थी। यह सोचकर कि वह सोयी है, ह
दोनों उसके पलँग के पास चुपचाप खड़े रहे। उसके बाद मैंने धीरे से प
वाली एक तिपाई उठाकर भाभी के बठने के लिये रख दी। न चाहने
भी कुछ खटकने की आवाज हो ही गयी। मनिया ने आँखें खोली। उ
सारे मुँह में केवल दो आँखें और नाक पट्टी से ढकने से बच गयी थी
हम देखते ही उसकी आँखों में एक स्निग्ध करुण मुसकान भर गयी
पट्टी से ढका हुआ उसका चेहरा विचित्र दिखायी दे रहा था और
हालत में उसकी वह मुस्कान अत्यंत दयनीय रूप में मेरे सामने आयी
मेरे भीतर क्रन्दन का ज्वार उमड़ उठा। मैंने बरबस उसे दबाया।

"कैसी तबीयत है, मनिया?" भर्रायी हुई आवाज में मैंने पूछा।

"ठीक है अब अच्छी हूँ," सहज, स्निग्ध और शांत स्वर में मनि
ने कहा।

"रात नींद आयी थी?"

"रात को नहीं सो पायी, पर सुबह आँख लग गयी थी," उ
स्निग्ध करुण मुसकान के साथ मनिया बोली, "तुम्हें नींद आयी कि
आयी, यह बताओ, मेरी चिंता छोड़ो।"

मुझे डर लग रहा था कि जिन आँसुओं को मैंने बरबस दबा र
था वे अब उमड़ ही आयेंगे। पूरी इच्छाशक्ति के प्रयोग से मैंने
इन्हें रोका। भरसक आवाज को स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न क
हुआ बोला—"मुझे भी कुछ देर के लिये नींद आ ही गयी थी।
कैसा है?"

"ठीक है। पट्टी जब खोली गयी थी तब कुछ जरा अवश्य मालूम
थी, पर पट्टी बँध जाने के बाद फिर सब ठीक हो गया। चिंता न क
नर्सें बड़ी अच्छी हैं—और डाक्टर भी। मैं जल्द अच्छी हो जाऊँगी
डाक्टर ने कहा है कि एक सप्ताह बाद मैं घर वापस जा सकूँगी।
बैठ जाओ। खड़े क्यों हो? जीजी, घर का हाल सब ठीक तो है?

जो भी आये थे कल—तुम लोगो से चले आने के बाद तीन लडके भी उनके साथ थे। मुझसे क्षमा मांगते थे। भोले-से मासूम बच्चे थे—बडे ही प्यारे लगते थे विश्वास नहीं होता कि वे इस तरह की हिंसात्मक कारवाइयों में भाग ले सकते हैं'

स्पष्ट ही वह बहुत बोलने की मन स्थिति म थी। एक दूसरी तिपाई उठाकर उस पर बठते हुए मैंने कहा—'तुम्हारी धारणा ठीक है। उन लडको ने भाग लिया भी नहीं था

तब वे क्या क्षमा मागने आये थे? परेशानी भरी दृष्टि से मनिया ने पूछा।

'उनका विश्वास है कि उन्ही के दल के कुछ उत्तरदायित्वहीन लडको ने तेजाब से भरा वह बल्ब फेंका था

पर उनके माफी मागने के ढग से तो पता चलता था जैसे वे स्वय अपने अपराध के लिये लज्जित हो। उन्होंने तनिक सकेत से भी नहीं बताया कि उस काड के लिये वे अपराधी नहीं हैं'

भाभी ने कहा—'यही तो आज के युग की विशेषता है। इस युग मे एक ओर दलगत भावना इतनी प्रबल पायी जाती है कि दल का कोई भी व्यक्ति दल के दूसरे व्यक्तियों की किसी भी कारवाई से अपने को बँधा हुआ मानता है, दूसरी ओर एक ही दल के भीतर ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जिनके अन्तर्विश्वास एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं। कल जो तीन लडके आये थे वे स्पष्ट ही क्रांति के हिंसात्मक रूप पर विश्वास नहीं करते, पर उन्ही के दल के जिन लोगो ने हिंसा का पथ पकडा है उनसे वे अपने को अलग नहीं मानते—उनके साथ वे एक ही इकाई में बँधे हुए हैं। यह विचित्र विरोधाभास सारे युग पर छाया हुआ है। फिर यह देखने में आता है कि सभी दलो के राजनीतिक आदर्शों और गतिविधियों के ऊपर एक घना कुहरा छाया हुआ है और किसी दल की कोई नीति सुस्पष्ट और सुलझे हुए ढंग से किसी के सामने नहीं आ रही है।

भाभी के इस प्रवचनात्मक वाक्य का भाव मनिया कितना समझी और कितना नहीं समझी, यह मैं नहीं बता सकता। शायद उसका

तात्पर्य ठीक से समझने का प्रयत्न करती हुई, वह कुछ देर तक स्तिनमित दृष्टि से उनकी ओर देखती रही। उसके
बाद बोली— 'बड़ा विचित्र युग है यह—अनोखी भ्रान्तियों से भरा हुआ। मैं प्रभु से प्रार्थना करूँगी कि सब को सम्मति दे, सब की बुद्धि को अच्छे मार्ग में ले जावें " उसने अपने हाथ से अपने हृदय के ऊपर 'क्रास' का एक सांकेतिक चिह्न अंकित किया और फिर दोनों हाथ शून्य की ओर जोड़कर ध्यान-मग्न हो गयी।

पीछे से ऐंग्लो इण्डियन नर्स ने, जो एक जवान सुन्दर और स्वस्थ-सी लड़की थी, आकर कहा—"आप लोग इन्हें बहुत बातों में न लगाइये। इन्हें पूर्ण विश्राम चाहिये। ज्यादा बातें करने से शरीर पर और मन पर जो जोर पड़ेगा वह नुकसान पहुँचायेगा।"

उसके बाद पेनिसिलीन की पानी में भिगायी हुई छोटी सी ट्यूबनुमा शीशी को बाहर निकाल कर उसने इंजेक्शन तैयार किया और फिर मनिया को पुकारती हुई बोली—"इंजेक्शन ले लो।"

मनिया ने आँखें खोलीं। नर्स को देखकर प्रेम भरी मुस्कान उसकी आँखों में झलक उठी। "अब और कितने इंजेक्शन दोगी, बहन ?" उसने अँगरेजी में कहा, 'काफी तो हो गये।'

"अभी कहाँ काफी हुए !" नर्स ने भी उसी प्रेम से मुस्कराते हुए कहा, "क्या इंजेक्शन तुम्हें पसंद नहीं ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

'दर्द जो होता है !' बच्चों की तरह मचलती हुई मनिया बोली।

"ओह यह बात है ? पर तुम्हीं ने तो कल मुझसे कहा था—'प्रभु ने शूली पर चढ़ने की पीड़ा को हँसकर सहा, उस पीड़ा के आगे यह पीड़ा तुच्छ है।' अलाव में जलने की पीड़ा तो तुम हँसकर सहन कर गयीं और अब इंजेक्शन की सुई से इस तरह घबराती हो ! लाओ, एक अच्छी लड़की की तरह बायाँ हाथ दो ' अंतिम वाक्य नर्स ने पुचकार भरे स्वर में कहा।

"चलो, तुम बड़ी नटखट हो !" उसी मचलते हुए स्वर में मनिया ने कहा और फिर धीरे से उसने अपना हाथ बढ़ा दिया।

बायीं बाँह पर इंजेक्शन देकर और फिर स्पिरिट से भीगी हुई रुई से इंजेक्शन लगे स्थान को पोंछकर नर्स चली गई। थोड़ी देर बाद एक छोटी-सी शीशी में कोई दवा लाकर मनिया को पिला गयी। मनिया के सिरहाने के तकियों को ठीक से सजाकर मनिया को बिना उठाये ही बिस्तर ठीक से बिछाकर और चादर ठीक से ओढ़ाकर उसकी पीठ को प्रेम से हाथ से थपथपाती हुई बोली—"तुम बहुत बहादुर लड़की हो। जल्दी ही अच्छी हो जाओगी।" और फिर चली गयी।

नर्स के चले जाने के बाद दाई एक गिलास में गरम-गरम दूध लेकर आयी। दूध देखते ही मनिया मुस्कराती हुई भी मुँह बिचकाने लगी। "ऊँ हूँ! मैं दूध नहीं पिऊँगी !" पहले की ही तरह मचलती हुई बोली।

"नहीं बिटिया, ऐसा न करो। मुँह न बिचकाओ। दूध ही तो तुम्हारा एक आधार रह गया है—खाना-पीना तब ही से तुम एक तरह से छोड़ चुकी हो... उठो मेरी भली बिटिया, पी लो !" दाई ठेठ हिन्दी बोल रही थी, बाद में उसी से पूछने पर पता चला कि वह मिर्जापुर की रहने वाली है। कलकत्ते आये उसे बीस वर्ष हो गये हैं और अस्पताल में दाई का काम करते हुए दस वर्ष।

मैंने और भाभी ने भी मनिया पर दूध पी लेने के लिए जोर डाला। दाई स्नेहवश हठ करती हुई उसका दायाँ हाथ पकड़कर उसे धीरे से उठाने का प्रयत्न करने लगी। मनिया कुछ देर तक मचलती हुई आपत्ति जताती रही। उसके बाद अपने आप ही उठ बैठी और गिलास हाथ में लेकर पीने लग गयी।

जब वह दूध पी चुकी तब दाई गिलास ले गयी। थोड़ी देर बाद एक प्लेट पर चार मुसम्मियाँ ले आयी। प्लेट को तिपाई पर रखकर और पास ही एक छोटी-सी मेज पर रखे हुए शीशे के रस-यन्त्र को उठाकर धोने के लिए ले गयी। फिर लौट आयी और एक मुसम्मी उठाकर रस-यन्त्र पर उसे कसकर रस निकालने लगी। पर, इस कला में वह

विशेष पटु नहीं जान पड़ी । रस ठीक से नहीं निकल पा रहा था । भाभी ने उसके हाथ से रस कश ले लिया और स्वय रस निकालन लगी । जब सब मुसम्बिया का रस निकाल चुकी तब स्वय अपने हाथ से मनिया के मुह म गिलास लगाकर उसे रस पिलाने का प्रयत्न करने लगी ।

"जाओ जीजी, मैं कोई दुधमुही बच्ची हूँ !" बच्चा की तरह ही हँसकर मनिया बोली, और उठकर स्वयं अपन हाथ म गिलास लेकर धीरे धीरे पीने लगी । दो घूट पी चुकने के बाद बोली—"पर सब-कुछ मैं ही पिये जा रही हूँ, तुम लोग यो ही बठे हो । जाओ दाई, आठ दस मुसम्बी और ले आओ और इन दोना को रस पिलाओ ।"

"हम लोग कई चीजें पीकर आय हैं और घर जाकर और पियेंगे,' भाभी न कहा "ये सब मुसम्बियाँ और सन्तरे केवल तुम्हारे ही लिये मैं लायी हूँ । इतना रस तुम्हारे लिये क्या का काम करेगा ।"

मनिया फिर बच्चो की तरह मचलती हुई हठ करन जा रही थी कि इतने म वीरेन्द्र उन्ही तीन लडको के साथ आ पहुँचा जिन्ह वह पिछले दिन मेरे पास लाया था । वीरेन्द्र को देखते ही मनिया एकदम गम्भीर बन गयी । उसके प्रति वह आतरिक श्रद्धा और आदर का भाव रखती थी यह बात कई बार पहले भी मेरे आगे प्रमाणित हो चुकी थी । एक घूट म शेष रस समाप्त करके, गिलास तिपाई पर रखकर चादर ठीक से लपेट कर वह पलँग में सिरहाने वाले डडा के सहारे बठ गयी ।

वीरेन्द्र के बठने के लिये कोई तिपाई खाली नही थी । मैं उठकर मनिया के पलँग पर पतान की ओर बठ गया, और वीरेन्द्र स अपन स्थान पर बठन के लिये मैंने आग्रह किया । लडको के बठन के लिये कोई तिपाई खाली नही थी । भाभी न अपनी वाली तिपाई खाली कर दी और दाई न वे दोनो तिपाइयाँ खाली कर दी जिन पर चीजें रखी हुई थी । कुछ देर तक तकल्लुफबाजी चली । अत म भाभी मेरे साथ ही पलँग पर बठ गयी और वीरेन्द्र और दो लडके तिपाइया पर बठ गये । एक लडका खडा ही रहा ।

'क्या हाल है बहू ? ' वीरेन्द्र न पूछा ।

"ठीक है, अब मैं अच्छी हूँ।" मनिया शांत स्वर में बोली। तीनों लड़के अत्यन्त उत्सुक और विस्मित दृष्टि से मनिया की ओर देख रहे थे। उन्हें निश्चय ही वह एक आश्चर्यजनक जीव-सी लग रही होगी—केवल पट्टी से चारों ओर से ढके हुए चेहरे की विचित्र आकृति के कारण ही नहीं बल्कि तीव्र शारीरिक पीड़ा की स्थिति में भी अत्यन्त शांत, संयत और प्रसन्न मनोभाव प्रकट करने के कारण। तीनों लड़कों की उम्र बीस और बाईस के बीच की होगी। तीनों में से एक भी शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट नहीं दिखायी देता था पर तीनों के मुखों पर विचारशीलता और बुद्धिमत्ता की छाप थी। तीनों की आँखों में एक तीव्र रहस्यमय प्रकाश झलक रहा था। साथ ही उस तीव्र प्रकाश के अंतराल में एक हलके और अव्यक्त सुकुमार भाव की अस्पष्ट झाँई भी वर्तमान थी। तीनों सुन्दर सुनहली गीली मिट्टी के कच्चे घड़े लगते थे, जिन्हें काल पटु कुम्हार अब भी जिस रूप में चाहता बदल सकता था जिसे नये साँचे में चाहता नये सिरे से गढ़ सकता था। जो लड़का लम्बा था, वह सम्भवतः तीनों में उम्र में बड़ा था। वह अपनी सुन्दर अधमुंदी सी आँखों की घनी काली बरौनियों के भीतर से एक ऐसा प्रकाश प्रसारित कर रहा था जो 'एक्स' किरणों की तरह पास बैठे हुए अपरिचित—अथवा नव परिचित—व्यक्तियों का बाहरी आवरण भेदकर उनके भीतर की वास्तविकता का ठीक ठीक पता लगा सके। वह एक बार मनिया की ओर अपने उस अंतःप्रकाश की किरणों को फेंकता था और एक बार मेरी ओर। वह हम दोनों के भीतरी व्यक्तित्व को कहाँ तक जान पाया, मैं कह नहीं सकता पर उसके मुख की गम्भीर किंतु तीखी अभिव्यंजना से लगता था मानो वह हम दोनों के भीतर बहुत दूर तक अपना 'सर्च-लाइट' फेंक चुका है।

सब मौन थे। सहसा बायीं ओर बैठा हुआ लड़का लड़खड़ाती हुई हिन्दी में बोल उठा—"बहन जी, हम लोग फिर एक बार आपसे क्षमा याचना करने आये हैं। हम लोग इस बात के लिये अत्यन्त लज्जित हैं कि हम लोगों की गलती से एक निरपराध व्यक्ति को शारीरिक क्षति पहुँची। पर अपना यह सौभाग्य व्यक्त किये बिना भी हम नहीं रह पाते

कि इस अशोभन काड के कारण हमें एक ऐसी वीर रमणी,
एक ऐसी महान् आत्मा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो गया जिसके अपार धैर्य, असीम शान्ति और अनन्त क्षमा भावना में कठोर से कठोर शारीरिक पीडा से भी कोई अन्तर नहीं आ सकता—जिसके विशाल हृदय में अपने पीडकों के प्रति लेशमात्र भी आक्रोश की भावना उत्पन्न नहीं हो पाती। हम लोग बगाली हैं और बगाली बड़े भावुक होते हैं, यह बात आपसे छिपी न होगी। भावुकता के आवेश में हम लोग आततायी और अत्याचारी की हत्या तक करने में नहीं चूकते और उसी भावुकता की ही प्रेरणा से हम कठोर से कठोर आत्म-बलिदान करने के लिये उद्यत हो उठते हैं। यही भावुकता हम जहाँ एक ओर महिषासुर मर्दिनी, काली कपालिनी की पूजा के लिये प्रेरित करती है वहाँ दूसरी ओर आत्म समर्पणशील शान्ति-स्वरूपिणी प्रेमाराधिका राधा के प्रति भी हमारा हृदय श्रद्धा और प्रेम के आभार से गद्गद् हो उठता है। या देवी सर्वभूतेषु रुद्र रूपेण सस्थिता, उसके आगे हमारा हृदय जिस कदर झुक जाता है, या देवी सर्वभूतेषु शान्ति प्रेम क्षमा रूपेण सस्थिता उसके आगे भी हम उतनी ही भक्ति से अवनत हो जाते हैं। यह विरोधाभास हमारी नस-नस में वर्तमान है। आज उसी शान्ति, प्रेम और क्षमा रूप में सस्थित साक्षात् देवी के दर्शन हम हुए हैं। उनके प्रति हम अपनी अकपट श्रद्धा निवेदित करने आये हैं'

उस दुबले पतले और तनिक नाटे से लड़के ने अप्रत्याशित रूप से एक अच्छा-खासा नाटकीय भाषण दे डाला। और कोई अवसर होता तो मुझे हँसी आती, पर मैं ध्यानपूर्वक देख रहा था कि उस निष्कपट-हृदय लड़के के मुख की अभिव्यक्ति में नाटकीय कृत्रिमता का कोई आभास तक वर्तमान नहीं था, बल्कि सच्चे हृदय से, अतरात्मा से निकली हुई निश्छल श्रद्धा भावना ही उसके मुख पर गाढ़े रग से अकित हो रही थी। यह ठीक है कि उसने जो कुछ कहा था वह अपने किताबी ज्ञान के आधार पर ही कहा था, पर उस किताबी ज्ञान के अतराल में उसके अतर का जरा जर्रा बोल रहा था। यहाँ तक कि उसकी आँखों के कोये भाव-विह्वलता के कारण भीग गये थे।

लड़के के भाषण के बाद कुछ क्षणों के लिये एक अनोखा सन्नाटा सारे वातावरण में छा गया। मनिया स्तब्ध और भाव मुग्ध-सी उसकी ओर देखती रह गयी। मैं कह नहीं सकता कि वह लड़के के संस्कृतगर्भित वाक्यों का अर्थ और भाव कितना समझी और कितना नहीं। उसकी पलकें भी गीली हो आयी थीं और पट्टी के भीतर से चमक रही थीं। भाभी भी चकित दृष्टि से लड़के की ओर देख रही थी। वीरेन्द्र की दृष्टि में व्यंग, परिहास और भावाकुलता का एक विचित्र संमिश्रण मैंने पाया। लड़के के दो साथी—एक बैठा हुआ और एक खड़ा—अत्यन्त गम्भीर और स्थिर दृष्टि से एक बार उसकी ओर और एक बार मनिया की ओर देख रहे थे। जो लड़का खड़ा था उसके मुख पर क्षुद्र घृणा और उपेक्षा का-सा अस्फुट आभास झलक रहा था। स्पष्ट ही वह अपने साथी के भाषण से संतुष्ट नहीं था।

उस असाधारण मौन को भंग करती हुई सहसा मनिया बोल उठी—"भाई मेरे, तुम बड़े भोले और भले हो। प्रभु निश्चय ही तुम्हारा भला करेंगे। मैं कोई देवी नहीं, प्रभु की एक साधारण पुजारिणी हूँ। मैं सदा ऐसी नहीं थी। बड़ी गुस्सैल, चिड़चिड़े स्वभाव की और हठीली थी। पर जब से प्रभु ने अपना प्रेम भरा हाथ मेरे सिर पर रखा है तब से सचमुच मेरे स्वभाव में बहुत बदलाव आ गया है! मैं किसी भी बात से नाराज नहीं हो पाती हूँ—चाहने पर भी नहीं।" कहकर वह जैसे अपने 'परिहास' पर स्वयं ही हँसने लगी।

जिस लड़के ने भाषण दिया था उसके मुख का गहँआ रंग मनिया की बात सुनकर पुलक से खिल उठा और उसकी आँखें जैसे भाव-गद्गद् होकर चमकने लगीं। पर जो लड़का खड़ा था उसके मुख पर एक घृणा रमक छाया सुस्पष्ट रूप से परिस्फुट हो उठी। उसने दोनों बैठे हुए लड़कों में से किसी एक को सम्बोधित करते हुए बँगला में कहा—"निशीथ, अब चलो।"

दोनों लड़के उठ खड़े हुए और मनिया की ओर हाथ जोड़कर, "नमस्कार" कहकर जाने लगे। वीरेन्द्र बोला—"ठहरो मैं भी चलता हूँ।" फिर हम लोगों की ओर मुँह करके उसने कहा—"अच्छा, इस

समय चलता हूँ। इलाज तो ठीक ही चल रहा है न ? किसी बात की शिकायत तो नहीं है ?" कहकर उसने मनिया की ओर देखा।

"सब ठीक चल रहा है, शिकायत की कोई बात नहीं है।" मनिया ने कहा।

"तब ठीक है। अच्छा अब चलता हूँ।" कहकर वीरेन्द्र लड़कों के साथ चला गया।

मैं और भाभी वीरेन्द्र के जाने के एक घंटा बाद तक वहाँ बैठे रहे। जब नर्स ने बताया कि समय हो गया और हम लोगों को वापस चले जाना होगा, तब हम लोग भी बाहर चले आये।

५६

मोटर पर बैठकर जब हम लोग बालीगंज के लिये रवाना हुए तब मेरा मन बहुत हलका हो चुका था। पिछले दिन दुर्घटना के बाद से दुःख और आतंक की जिस भयावनी भावना ने दुस्सह पाषाण भार की तरह मेरी छाती को दबा कर रखा था वह हट गयी थी। मनिया के सहज शांत और प्रसन्न भाव का सुनहरा प्रभाव मुझ पर भी पड़ चुका था। यह तो मैं जानता था कि उसकी शारीरिक पीड़ा अभी बहुत-कुछ कमी ही है। स्वयं उसने भी यह संकेत दिया था कि पट्टी खोलते समय उसे कुछ जलन की पीड़ा का अनुभव हुआ था। और उसके 'कुछ' का अर्थ हम लोगों का 'बहुत' है, यह बात भी मुझसे छिपी नहीं थी। फिर भी वह पीड़ा को हँसती हुई सहन किये चली जा रही है और उपचार साध्यतीय नहीं है, यह जानकारी मुझे बहुत सांत्वना दे चुकी थी। इसलिए मैं प्रसन्न था।

भाभी कुछ देर तक किसी चिंता में मग्न-सी मौन बैठी रहीं। मेरा अंतर्मन जान गया कि उनकी उस समय की चिंता मनिया के कारण

 नहीं है, बल्कि कुछ और है। चौरंगी तक वह मौन रही। उसके बाद सहसा उन्होंने उन तीनों विचित्र लड़कों की चर्चा छेड़ दी।

"बेचारे मासूम लड़के! जीवन के अनुभवों से एकदम रहित हैं।" उन्होंने कहा।

"जीवन के अनुभवों से भले ही रहित हों, पर अनुभूतियाँ उनकी बड़ी गहरी और प्रबल हैं।" मैंने कहा।

"यह तुमने कैसे जाना ?"

"उनके मुख के भावों से और जिस लड़के ने बंगालियों की भावुकता की बात कही थी, उसके भाषण से।"

"बंगालियों की भावुकता!" कहते हुए भाभी के सुंदर गौर मुख के आर पार व्यंग्य की तीव्र लहर दौड़ गयी, "यह एक अच्छी किंवदंती अभी तक जनता में प्रचलित है। भावुकता क्या बंगालियों की मोल ली हुई चीज है ? मैं भी तो बंगाली हूँ, पर मेरे भीतर कभी इस तरह की भावुकता नहीं रही जैसी तुम्हारे भैया के स्वभाव में मैं पाती हूँ।"

उनका आशय स्पष्ट ही वीरेन्द्र से था। मुझे उनकी बात से वास्तव में आश्चर्य हुआ। नारी जाति स्वभाव से ही भावुक होती है, ऐसी मेरी धारणा रही है, और सच पूछिये तो भाभी के स्वभाव का जितना कुछ परिचय तब तक मैंने प्राप्त किया था उससे भी मैं यह नहीं सोच पाया था कि वह भावुक नहीं हैं। मुझे याद आया कि उस दिन जब वह वीरेन्द्र के और अपने विचारों में संघर्ष की बात बता रही थीं तब अत्यंत व्याकुल भाव से उन्होंने मुझसे कहा था—"मैं तुमसे यह अनुरोध करती हूँ कि तुम लोग अब हम को न छोड़ना। अब तुम जाओगे तो मैं दूसरे ही दिन पागल हो जाऊँगी।" क्या कोई भावुकतारहित व्यक्ति इस तरह की बात कह सकता है ? फिर मुझे याद आयी उस चाँदनी रात की बात जब हम दोनों झील में नौका विहार कर रहे थे। तब भाभी ने यह तर्क छेड़ा था कि निखिल प्रकृति में बिखरी उस अपूर्व सौंदर्य राशि को धोखा और छलना बताने वाले प्रगतिवादी कहाँ तक सही हैं, और क्या इस प्रकार की उन्मादक सौंदर्य चेतना केवल बूर्जुवा लोगों के मानसिक विलास के

अतिरिक्त और कुछ नहीं है ? मैंने तभी उनसे कहा था कि उस काव्यमयी अनुभूति के क्षण में इस प्रकार का तर्क छेड़ने का अर्थ ही यह है कि हम लोग उस विशुद्ध सौन्दर्य चेतना के यथार्थ अनुभव से वंचित हैं। भाभी तब यह समझती थी कि वह चाँदनी की सौन्दर्य-तरंगों में बही चली जा रही हैं, पर यह धारणा गलत थी, क्योंकि उनके भीतर तब वास्तविक बौद्धिक विचारमूलक द्वन्द्व मचा हुआ था। इस दृष्टि से देखने पर यही सिद्ध होता था कि वह यद्यपि भावुकता के थपेड़ों से बची हुई नहीं हैं, तथापि भावुकता से भी अधिक बौद्धिक अन्तर्द्वन्द्व की तूफानी तरंगों ने उनके सारे व्यक्तित्व को बुरी तरह झकझोर रखा है, इसलिए एक ओर जहाँ उनके भीतर भावोच्छ्वास स्वभावतः उमड़ उठता है दूसरी ओर वह स्वयं अपनी और दूसरों की भावुकता के प्रति खड्गहस्त हो उठती हैं। इस दृष्टिकोण से सोचने पर यह विरोधाभास भी मेरे आगे धीरे धीरे स्पष्ट होने लगा कि वह वीरेन्द्र को अपने से अधिक भावुक क्यों मानती हैं। वीरेन्द्र ने यद्यपि अपने को उन लोगों की पंक्ति के साथ जोड़ लिया था जो भावुकता के विरोधी हैं, तथापि यह भावुकता का ही दूसरा रूप था जो उसे युग की दुर्निवार बाढ़ में नवीन क्रान्तिकारियों के साथ बहा ले गया था, सत्य के इस पहलू की ओर मेरा ध्यान गया। भाभी की इस सूक्ष्म विश्लेषणकारी बुद्धि से मैं चकित था।

मैंने कहा— आपके व्यक्तित्व का एक बिलकुल ही नया रूप मेरे आगे प्रकट हो रहा है, भाभी।"

पर मेरी बात की ओर तनिक भी ध्यान न देकर भाभी बोली— "और बहन को ही लो। वह अज्ञानी नहीं है, पर क्या यह किसी से कुछ कम भावुक है ? 'प्रभु' के प्रति इस तरह द्विधाहीन भाव से निष्कपट विश्वास में समर्पणशील रहने वाली नारी सब समय भाव-मगन में आँखें मूँदे किये किन स्वप्नों में डूबी रहती होगी, इसका ठीक से अन्दाज लगाना कठिन है। यह है असली भावुकता की मनोवृत्ति। मैं यह देखती हूँ लाला, बहन के भीतर एक दिन इस विशुद्ध भावुकता की प्रतिक्रिया की लहरें एक प्रचंड वेग से भभक उठेंगी कि उन्हें रोक रखना किसी के लिए भी सम्भव न होगा।

"भाभी, आप इस कदर क्यो नाराज हैं वीरेन्द्र से और बेचारी मनिया से ?" मैंने अत्यत शात और गभीर भाव से कहा।

"मैं नाराज नही हू,' कुछ चौंककर भाभी ने कहा। ' मेरी बात का गलत अर्थ न लगाना। और फिर बहन से ! बेचारी बच्चा सी भोली और निश्छल है। उससे भला कोई कैसे नाराज हो सकता है ! तुम्हारे मन म इस तरह की धारणा ही क्यो जगी मैं समझी नही। भला उससे मैं क्यो नाराज हूगी " कहकर भाभी ने दाँतो से अपनी जीभ काटी, जैसे कोई घोर अपराध की बात मुह से निकल जाने के बाद उसके लिये पश्चात्ताप कर रही हो।

कुछ क्षण चुप रहकर फिर कहने लगी—'क्या सोचती हुई मैं जाने किस बात से क्या कह गयी ! मेरा इस प्रकार का आशय बिलकुल नही था, लाला !'

' किस प्रकार का आशय ?" तनिक अनमने भाव से मैंने कहा।

'तुम्हारा जी दुखाने का। एसी अच्छी पत्नी को पाकर तुम बहुत सुखी हो। सुख के उस शात सरोवर म एक भी ढेला फेंकना अन्याय है यह मैं मानती हू। मेरे कहने-सुनने म जो कुछ भूल हुई हो उसके लिए क्षमा करना।

और कहते ही उनका गला जैसे भर आया और आँखें भी कुछ गीली-सी हो आयी। अभी अभी वह भावुकता का इस कदर विरोध कर रही थी और दूसरे ही क्षण स्वय भाव विह्वल हो उठी ! इस पहेली को सुल-झाने म मैं अपने को असमर्थ पा रहा था।

वह मेरे अत्यत निकट बैठी हुई थी और उनकी नारगी साडी का बायाँ छोर हवा के वेग से मेरे कोट के साथ अठखेलियाँ कर रहा था। मैं वह अठखेलियाँ देखने म तल्लीन हो गया और मौन बैठा रहा। मनिया की तबीयत अच्छी देखकर मेरे मन म जो एक गुलाबी प्रसन्नता छा गयी थी, उसके ऊपर सहसा एक वाष्प भरी अँधेरी छाया-सी घिर आयी।

जब कार भवानीपुर होती हुई बालीगज की ओर मुडी तब दोनो

के बीच के अगोमत मौन को भंग करने के इरादे से मैंने
कहा—"भावुकता ऐसी चीज है भाभी, कि कोई भी व्यक्ति
चाहे उससे कितना ही घृणा करे उससे बच नहीं सकता। अन्तर
यह होता है कि कुछ लोग अपने स्वभाव की बौद्धिकता या उस
भावुकता को नीचे दबाने में सफल होते हैं और कुछ लोग उस
भी दबाना पसंद नहीं करते। जब भी भाव का आवेग उनके
उमड़ उठता है उसे वे खुलकर उमड़ा देते हैं। इन दोनों में से कि
आचरण प्रशंसनीय है और किसका निन्दनीय, इसका फैसला करने
अधिकारी मैं अपने को नहीं मानता। पर मेरी अपनी यह धारणा है
यदि किसी का भावावेग सहज स्वाभाविक रूप में व्यक्त हो उठे
उसमें कोई बुराई नहीं है, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से
अच्छा है। उससे भीतर जमे हुए बहुत से विकार धुल जाते हैं। भावुक
से खराबी तब आती है जब या तो व्यक्ति उसमें इस कदर डूब जाता
कि अपने अहम के ऊपर उठ ही नहीं पाता और करुणा की सहज
उदार मानवीय भावना को आत्म-करुणा में सीमित कर देता है या कि
अपनी उस भावुकता को कृत्रिम बौद्धिक उपायों से घुमाकर ऐसे हवा
सामाजिक आदर्श का रूप दे बैठता है जिसका जीवन की वास्तविकता
से कोई सम्बन्ध नहीं होता।"

मैं इस तरह बोल रहा था जैसे स्वयं अपने आप में कुछ कह रहा
होऊँ। भाभी के भीतरी कानों तक मेरी बात पहुँची या नहीं मैं कह
नहीं सकता। उन्होंने उत्तर में कुछ नहीं कहा और अनमने ढंग से
मौन बैठी रहीं।

५७

जब कार मकान के अहाते के भीतर प्रवेश करने के बाद रुकी तब भाभी धीरे से उतरी और मैंने भी उनका अनुसरण किया। उन्ही के कदमो से कदम मिलाता हुआ चलने लगा। भाभी ड्राइंग रूम मे प्रवेश करके एक कौच पर आधा लेटने की-सी अवस्था म आराम से बठ गयी। मैं भी उनके पास ही एक सोफा पर चुपचाप बठ गया। कुछ क्षणो तक मन, प्राण और आत्मा को एक अजीब-सी मोहमाया म डुबा देने वाला सन्नाटा छाया रहा। न जाने पिछले कितने युगो से दबी हुई अस्पष्ट आकाक्षाएँ और लालसाएँ सध्या के उस छाया-धकार म मन की किन अँधेरी गुफाओ से उठ उठकर बाहर झाँकने का प्रयत्न करने लगी। एक मम-पीडक और अगाध लाज की सिहरन मेरे सारे शरीर और मन के भीतर दौड गयी। उसके लिये प्रत्यक्ष मे कोइ भी कारण कही नही था। न जाने कौन अज्ञात टेलीपेथिक तरग किसी अजानित मन के सूक्ष्म छिद्रो से प्रवाहित होकर मेरे अन्तमन म आकर टकराने लगी थी। मैं एक अनोखी बेचनी का अनुभव करने लगा।

भाभी की दो मौन—तथापि मुखर—आखो की रहस्यमयी दृष्टि म इस समय एक बिलकुल नया ही भाव-सदेश भरा था, ऐसा मेरे अन्तमन को लगा। उनके गोरे मुख पर एक हलका—बहुत ही हलका—रग चढ आया था जो बडा ही मोहक—और मारक—लग रहा था। न जाने क्यो मेरे मन म सहसा यह प्रवत्ति जगी कि चुपचाप उठकर बाहर चला जाऊँ। पर पाँवो को जसे किसी ने मनो भारी जजीरो स बाँध कर जकड लिया हो।

मोहाच्छन्नता की वह स्थिति आधे मिनट स भी कम समय तक बनी रही होगी, पर उतने ही अर्से म उसन मेरे भीतर की युग युगो की सचित और सोई हुई प्रवत्तियो को उभाडकर अवचेतन मन से लेकर सचेत मन तक एक तूफानी उथल पुथल मचा दी थी।

सहसा भाभी उठ खडी। 'मैं अभी आती हू' कहकर वह कमरे से बाहर चली गयी। एक बहुत ही हलके, मीठे गुलाबी, रूमानी नशे से मेरे तन म और मन म अवशता-सी छा गयी थी। मैं आँखो को

आधा मूँदकर सोफा पर और अधिक आराम से बैठ—प्राय लेट—गया।

प्राय दस मिनट बाद भाभी लौट आयीं। ताजा धुली हुई, चौड़ी नीली किनारी की एक दूध की तरह सफेद साड़ी पहने, माटी व आँवल के गन्ध छार पर बालों का जुड़ा बाँधे, नयी पवित्र सादगी की प्रतिमूर्ति सी वह मेरे पास आकर खड़ी हो गयीं। उनके मुख पर प्रसन्न हाव भाव में, मधुर गति में सहज-स्वाभाविक तरलता और निष्कपट सहृदयता भरी हुई थी जो मुझे एकदम नयी लग रही थी। पर स्वाभाविक लगन पर भी वह सरलता भोलेपन का परिचायक नहीं थी। मेरा अन्तर्मन, न जाने क्या ऐसा अनुभव कर रहा था कि उनके उस नये रूप और नये वेष की सारी अकृत्रिमता के अन्तराल में कृत्रिम नाटकीयता का-सा एक अति अस्पष्ट आभास झाँक रहा है। पर अपनी उस अनुभूति का कोई प्रत्यक्ष कारण मेरे पास नहीं था। प्रत्यक्ष में भाभी का यह रूप मुझे इतना प्रिय लग रहा था कि मैं मुग्ध दृष्टि से कुछ क्षणों तक उनकी ओर देखता रह गया।

"लाला चलो!" अत्यन्त स्निग्ध, मधुर आग्रह भरे स्वर में भाभी ने कहा।

उनकी आवाज से मैं चौंक-सा उठा। मुझे ऐसा लगा जैसे किसी तीसरे ही व्यक्ति ने अकल्पित रूप से कमरे में प्रवेश करके मुझे पुकारा हो।

"कहाँ?" मैंने भाव भाव से पूछा।

"रसोई, रसोई के कमरे में। और सब खाना तैयार है, सिर्फ कचौरियाँ तलकर पकानी हैं। मैं पकाती जाऊँगी, तुम खाते जाओगे। चलो।"

जो काम नौकर या रसोइया कर सकता है, और करता आया है, उसे स्वयं स्वीकार करके भाभी मेरे ऊपर विशेष कृपा कर रही थीं, यह मैं समझ रहा था। उनकी आज्ञा का शिरोधार्य करता हुआ मैं बिना किसी ना-नुच के उठ खड़ा हुआ।

रसोई के कमरे में जाकर भाभी ने एक पीढ़े पर मुझे बिठा दिया और स्वयं अँगीठी के पास बैठ गयीं। एक थाली पर मोटा पट्टी' पोसी

हुई रखी थी, जिसे हल्दी से रंग लिया गया था। नौकर टिकियाँ बनाता जाता था और भाभी उसमे 'पीठी' भरकर बड़े ही नाजुक अदाज से बेलती जाती थी और एक एक करके जलते हुए घी की कढाई म डालती जाती थी।

"बहन ने मुझे बताया है कि तुम्हे मछली बहुत पसद है" मुख पर मृदु मुस्कान भलकाती हुई, और एक भलक अस्पष्ट अर्थ भरी साकेतिक दृष्टि स मेरी ओर और फिर कढाई की ओर देखती हुई भाभी बोली। "मैं बहुत दिनों स सोच रही थी कि तुम्हे एक दिन अपने हाथ से पकाकर मछली की कचौड़ी खिलाऊँ। कुछ ऐसे चक्कर आते चले गये कि उसके लिये मौका ही नहीं आया। आज सुबह, जाने क्यो, अचानक मुझे फिर उसी बात की याद आयी। मैंने नौकर से रोहू मछली लाकर, उबालकर, पीस रखने के लिये कह दिया था ' कहकर भाभी पहली घान की कचौड़ियाँ छन स उतारने लगी।

चटनी, अचार और तरकारियाँ पहले ही से मेरे आगे कटोरो और प्लेटो म सजाकर रख दी गई थी। पहली घान से दो अच्छी तरह तली हुई कचौड़ियाँ छाँटकर भाभी ने मेरी थाली म डाल दी।

'चख कर बताओ, कैसी बनी हैं।" कहते हुए उनके मुख पर स्निग्ध सलज्ज और उल्लास भरी मुसकान भलक उठी। उनका गोरा मुख या तो आग की आँच से या और किसी कारण से तमतमा-सा उठा था।

मैं कुछ न समझता हुआ भी जैसे बहुत-कुछ समझने लगा था। पर उस 'बहुत-कुछ' म स कोई भी बात मेरे आगे स्पष्ट नहीं हो रही थी। केवल एक मीठी-कड़वी, खटमिट्ठी अनुभूति से मन भर गया था, जिससे कचौड़ी के स्वाद म भी चरपरे और कसैले का एक विचित्र मिश्रण मुझे महसूस होने लगा। यह बात मैं एक सेकण्ड के लिये भी नहीं भूल पाता था कि मेरे साथ भाभी के उस प्रसाद को चखने म शरीक होने वाला दूसरा कोई नहीं है—वीरेन्द्र भी नहीं।

फिर भी मैं खाता चला गया और काफी खा गया। कचौड़ियाँ वास्तव म बहुत स्वादिष्ट बनी थी। खाते खाते मैंने कहा—"यह तो मैं पहले ही जान गया था कि आप खाना बनाने की कला म निपुण

पर इस कदर निपुण हैं, यह मैंने आज जाना। वीरेंद्र यह बात मुझे नहीं बतायी थी "

जिस प्रकार स्विच बंद होने पर बिजली की दहकती हुई अंगीठी भक्र एकदम म्लान हो जाती है ठीक उसी तरह वीरेंद्र का नाम सुनते ही भाभी के मुख की चमक पल में विलीन हो गयी। वह सिर नीचा किये चुपचाप कचौड़ी बेलती चली गयी। मैं बड़े संकोच में पड़ गया। मुझसे कौन ऐसी गलती हुई यह मैं ठीक से समझ नहीं पाया, हालांकि अपने अन्तर्मन में मैं यह अनुभव कर रहा था कि वीरेंद्र का उल्लेख मैंने मौके किया है और उसकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया पूर्णतः स्वाभाविक है।

उसके बाद मुझे कुछ भी बोलने का साहस नहीं हुआ, और न भाभी ही कुछ बोलीं। उनके मुख का रंग लाल से सफेद और सफेद से स्याह होता चला जा रहा था। कड़ाई से गरम कचौड़ी उतारकर जब वह मेरी थाली में डालने लगी तब सहसा उनकी दायीं आंख के एक कोने से एक बूंद आंसू टपक कर मेरी थाली के पास गिर पड़ा।

मैं हैरान था। मेरे हाथ का कौर हाथ ही में रह गया। कुछ क्षणों तक बेवकूफों की तरह उनकी ओर ताकता रहा। वह आंखें नीचे की ओर किये कचौड़ी बेलती जाती थीं और बीच-बीच में बायें हाथ से आंसू पोंछती जाती थीं।

"मुझसे कोई बड़ी भूल हो गयी है, भाभी, क्षमा करना।" अपने को न रोक सकने पर मैंने कहा।

भाभी उत्तर में कुछ नहीं बोलीं। केवल एक बार फिर चुपचाप बायें हाथ से आंसू पोंछकर उन्होंने बेली हुई कचौड़ियां कड़ाई में डाल दीं।

कचौड़ी का सारा स्वाद मेरी जीभ में करेले और नीम के सम्मिलित कड़वेपन में बदल गया था। एक घूंट पानी पीकर मैंने किसी तरह उस कड़वे पदार्थ को गले के नीचे उतारा।

हुई रखी थी, जिसे हल्दी से रंग दिया गया था। नौकर टिक्यिाँ बनाता जाता था और भाभी उसमे 'पीठी' भरकर बडे ही नाजुक अदाज से बेलती जाती थी और एक एक करके जलते हुए घी की कढाई म डालती जाती थीं।

"बहन ने मुझे बताया है कि तुम्हें मछली बहुत पसद है" मुख पर मृदु मुस्कान झलकाती हुई और एक झलक अस्पष्ट अर्थ भरी साकेतिक दृष्टि से मेरी ओर और फिर कढाई की ओर देखती हुई भाभी बोली। "मैं बहुत दिनो से सोच रही थी कि तुम्हें एक दिन अपने हाथ से पका-कर मछली की कचौडी खिलाऊँ। कुछ ऐसे चक्कर आते चले गये कि उसके लिये मौका ही नही आया। आज सुबह जाने क्यो, अचानक मुझे फिर उसी बात की याद आयी। मैंने नौकर से रोहू मछली लाकर, उबालकर पीस रखने के लिये कह दिया था " कहकर भाभी पहली घान की कचौडियाँ छने से उतारने लगी।

चटनी, अचार और तरकारियाँ पहले ही से मेरे आगे कटोरों और प्लेटों म सजाकर रख दी गई थीं। पहली घान से दो अच्छी तरह तली हुई कचौडियाँ छाँटकर भाभी ने मेरी थाली म डाल दी।

"चख कर बताओ, कैसी बनी हैं। कहते हुए उनके मुख पर स्निग्ध सलज्ज और उल्लास भरी मुसकान झलक उठी। उनका गोरा मुख या तो आग की आँच से या और किसी कारण से तमतमा-सा उठा था।

मैं कुछ न समझता हुआ भी जैसे बहुत-कुछ समझने लगा था। पर उस 'बहुत-कुछ' म से कोई भी बात मेरे आगे स्पष्ट नही हो रही थी। केवल एक मीठी-कडवी, खटमिट्ठी अनुभूति स मन भर गया था जिससे कचौडी क स्वाद म भी चरपरे और कसैले का एक विचित्र मिश्रण मुझे महसूस होने लगा। यह बात मैं एक सेकेण्ड के लिये भी नही भूल पाता था कि मेरे साथ भाभी के उस प्रसाद का चखने म शरीक होने वाला दूसरा कोई नही है—वीरेन्द्र भी नही।

फिर भी मैं खाता चला गया और काफी खा गया। कचौडियाँ वास्तव म बहुत स्वादिष्ट बनी थी। खाते-खाते मैंने कहा—"यह तो मैं पहले ही जान गया था कि आप खाना बनाने की कला म निपुण

हैं, पर इस कदर निपुण हैं, यह मैंने आज जाना। वीरेन्द्र ने यह बात मुझे नहीं बतायी थी "

जिस प्रकार स्विच बंद होने पर बिजली की दहकती हुई अँगीठी बुझकर एकदम म्लान हो जाती है ठीक उसी तरह वीरेन्द्र का नाम सुनते ही भाभी के मुख की चमक पल में विलीन हो गयी। वह सिर नीचा किये चुपचाप कचौड़ी बेलती चली गयी। मैं बड़े संकोच में पड़ गया। मुझसे कौन ऐसी गलती हुई यह मैं ठीक से समझ नहीं पाया, हालांकि अपने अन्तमन में मैं यह अनुभव कर रहा था कि वीरेन्द्र का उल्लेख मैंने बेमौके किया है और उसकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया पूर्णत स्वाभाविक है।

उसके बाद मुझे कुछ भी बोलने का साहस नहीं हुआ, और न भाभी ही कुछ बोली। उनके मुख का रंग लाल से सफेद और सफेद से स्याह होता चला जा रहा था। कढ़ाई से गरम कचौड़ी उतारकर जब वह मेरी थाली में डालने लगी तब सहसा उनकी दायीं आँख के एक कोने से एक बूँद आँसू टपक कर मेरी थाली के पास गिर पड़ा।

मैं हैरान था। मेरे हाथ का कौर हाथ ही में रह गया। कुछ क्षण तक बेवकूफों की तरह उनकी ओर ताकता रहा। वह आँखें नीचे की ओर किये कचौड़ी बेलती जाती थीं और बीच-बीच में बायें हाथ से आँसू पोंछती जाती थीं।

मुझसे कोई बड़ी भूल हो गयी है, भाभी, क्षमा करना।' अपने को न रोक सकने पर मैंने कहा।

भाभी उत्तर में कुछ नहीं बोलीं। केवल एक बार फिर चुपचाप बायें हाथ से आँसू पोंछकर उन्होंने बेली हुई कचौड़ियाँ कढ़ाई में डाल दीं।

कचौड़ी का सारा स्वाद मेरी जीभ में करेले और नीम के सम्मिलित कड़वेपन में बदल गया था। एक घूट पानी पीकर मैंने किसी तरह उस कड़वे पदार्थ को गले के नीचे उतारा।

भाभी ने जब एक और गरमागरम कचौड़ी मेरे मना करने के बावजूद, हठपूर्वक मेरी थाली में डाल दी तब मैंने कहा—"अब पेट में

तनिक भी जगह नहीं है भाभी, सच मानो। अब मत दे
कहकर पेट पर हाथ फेरता हुआ कुछ अस्पष्ट-सी चि
में मग्न हो गया।

'अभी तो तुमने दो कचौड़िया भी नहीं खायी, लाला, अ
तुम कैसे उठ सकते हो !" कहते हुए उन्होंने सहज स्वाभाविक सि
दृष्टि से मेरी ओर देखा, यद्यपि उनकी आंखें अभी तक गीली थी
चमक रही थी। "अभी कम से कम चार कचौड़ियां तुम्हें और
होंगी नहीं तो मैं बुरा मानूंगी।' उनकी आंखों में एक दुष्टत
मुसकान झलक उठी।

मैं मन्त्र मुग्ध-सा आश्चर्य भरी दृष्टि से उनकी ओर देखता
पाषाण-मूर्तिवत् जड़ बैठा रहा।

उसके बाद वह अत्यंत प्रसन्न भाव से मेरी थाली में एक एक
कचौड़ियां डालती चली गयी और मैं अनमने भाव से बिना किसी वि
के, खाता चला गया। उसी मन स्थिति में न जाने कितनी कचौड़िया
गया। सहसा याद आया कि मैं बहुत खा गया हूँ। 'अब बस
भाभी ! मैंने प्राय चिल्लाकर कहा। तब तक एक और कचौड़ी ड
जा रही थी। मैंने दोनों हाथों में थाली ऊपर उठा ली।

भाभी मेरा यह नाटक देखकर खिलखिला उठी। 'अच्छा, अ
अब नहीं दूँगी,' उन्होंने कहा, 'थाली नीचे रख दो। तुम्हारे व्य
गर्जन के बाद मेरा साहस भी जाता रहा है।

४५

चौके से उठकर हाथ धोकर मैं सीधे अपने कमरे
चला गया। कुछ देर तक पलंग पर चारों खाने चि
लेटा रहा। उसके बाद सहसा हड़बड़ाता हुआ
खड़ा हुआ। रैक पर हिन्दी का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास पड़ा हु

था। एक दिन मैं किसी बुक-स्टाल से उसे खरीद लाया था।
तब से वह वैसा ही पड़ा हुआ था। मैंने उसे छुआ तक नहीं था। आज अचानक उसे पढ़ने की प्रेरणा जगी। उस प्रेरणा के मूल में कौन प्रवृत्तियां काम कर रही थीं, यह स्वयं मेरे आगे स्पष्ट नहीं था।

सोफा पर अधलेटी अवस्था में बैठकर उपन्यास का पहला परिच्छेद खोलकर पढ़ने लगा। दो पृष्ठ भी पूरे न पढ़े होंगे कि भाभी ने कमरे में प्रवेश किया। उनके मुख पर स्निग्ध मधुर मुस्कान के अलावा एक अस्पष्ट लाज की-सी हलकी—बहुत ही हलकी—रंगीन छाया झलक रही थी, ऐसी मेरी धारणा है। या बिजली की बत्ती के कृत्रिम प्रकाश में मेरी ही आँखों को कुछ धोखा हुआ हो।

उनके उस अस्पष्ट लज्जाभास की छाया जैसे मेरे ऊपर भी पड़ गयी। अपने को उस छाया से मुक्त करने का प्रबल प्रयास करते हुए मैंने अपेक्षाकृत क्षीण स्वर में कहा—'बैठो भाभी, खाना खा लिया क्या ?"

हाँ, कुछ-कुछ हुए-से स्वर में भाभी ने कहा, "मेरे आने से तुम्हारी पढ़ाई में विघ्न हुआ इसके लिए मैं दुखी हूँ।"

"ओफ्फोह ! बड़ा तकल्लुफबाजी सीख गयी हो तुम भाभी। यह लखनौवा रंग तुम पर कब से चढ़ा ? बैठो !' कहकर उन्हें बिठाने के उद्देश्य से मैंने यन्त्रवत् उनका हाथ पकड़ लिया और पकड़ते ही तत्काल, जैसे बिजली के धक्के से, हाथ हटा लिया। "बैठो ! मैंने फिर कहा और अपनी बगलवाली कुर्सी की ओर संकेत किया।

भाभी क्षण भर के लिए रुकी, जैसे किसी असमंजस में हो। फिर धीरे से बैठ गयी।

कमरे का सारा वातावरण मुझे एक अनोखी, अजब अवसादमयी अनुभूति से भार-ग्रस्त सा लगने लगा था जिसने मेरे और भाभी के बीच में एक अस्वाभाविक व्यवधान-सा खड़ा कर दिया था। उसे हटाने का पूरा निश्चय करते हुए, वातावरण को सहज-स्वाभाविक बनाने के उद्देश्य से मैंने कहा—'आज तुमने इतना अधिक खिला दिया, भाभी कि कुछ पूछो मत। पेट में अब पानी पीने के लिए भी जगह नहीं रह गयी है हालांकि बड़ी प्यास लगी है।'

 "यह तुम्हारा वहम है। डटकर पानी पियो, कुछ नहीं होगा।' कहकर उन्होंने घंटी का बटन दबाया।

नौकर के आने पर उन्होंने उसे एक गिलास पानी लाने के लिये कहा। पानी आया और भाभी की इच्छानुसार मैं उसे गटक गया।

'देखो जगह निकल आयी न ?" भाभी ने हँसते हुए कहा।

मैं भी हंस दिया।

"इसी तरह सबके लिये जगह निकल आती है,' एक रहस्यमयी मुसकान मुख पर झलकाते हुए भाभी ने कहा, "केवल संकीर्ण मन को उदार बनाने की आवश्यकता है।'

"तुम्हारा आशय मैं कुछ समझा नहीं।' अपनी परेशानी को छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न करता हुआ मैं बोला।

'समझने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। कहकर वह उठने लगीं।

"अरे बैठो भाभी अभी तुम ठीक से बैठ भी न पायी कि उठने लग गयी! तुमसे एक बहुत जरूरी बात मुझे पूछनी है।"

मेरी बात के ढङ्ग से भाभी की आँखों में तीव्र कुतूहल झलक उठा और वह बैठ गयी।

"क्या बात है कहो। परेशानी की सी मुखमुद्रा के साथ उन्होंने पूछा।

'कोई खास बात नहीं है, केवल

"अभी तुम कह रहे थे कि जरूरी बात है और अब कहते हो कि कोई खास बात नहीं है। बड़े अजीब आदमी हो भाई!' कहते हुए एक हलकी-सी खीझ का आभास उनके स्वर में व्यक्त हो उठा।

'तुम इस तरह गुस्सा हो जाओगी तो मेरा रहा-सहा साहस भी जाता रहेगा।"

अच्छा, लो अब मैं गुस्सा-वुस्सा कुछ नहीं हूँ, जल्द बोलो क्या बात है! कहकर वह कुर्सी पर जमकर बैठ गयी। उनके मुख पर इस बार एक कृत्रिम मुसकान का क्षीण आभास वर्तमान था और वह अत्यन्त कुतूहल भरी दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी।

उनके कुतूहल को अधिक बढ़ाकर उन्हें परेशान करना
उचित न समझकर मैंने कहा—"बात कुछ नहीं है, मैं केवल यह जानने के लिये तब से उत्सुक हूँ कि—जब तुम मुझे खाना खिला रही थी तब सहसा मेरी एक साधारण बात से तुम रो क्यों पड़ी।'

"ओह, यह बात!' कहते हुए भाभी के मुख पर सहसा एक गाढ़ी अंधेरी छाया घिर आयी।

दो एक क्षणों तक वह मेरी ओर अनमनी दृष्टि से देखती रही और फिर आँखें कुछ नीची करके दायें हाथ की तर्जनी के नाखून से बायें हाथ के अँगूठे का नाखून खुरचने लगी। कुछ क्षण तक मौन रहने के बाद उन्होंने तर्जनी से साफा के हुये पर सांकेतिक लिपि में कुछ लिखते हुए कहा— मेरे रोने का कोई विशेष कारण नहीं था—मैं रोयी भी कहाँ थी! तुमने एक छोटी सी बात को बहुत बड़ा बनाकर अपने मन में रख लिया है।'

"नहीं भाभी, तुम चाहे कुछ भी कहो, बात वह छोटी कदापि नहीं थी। तुम्हारे वे मौन आँसू किसी भी हालत में साधारण नहीं थे—हालांकि उनका कोई भी कारण मेरे आगे अभी स्पष्ट नहीं हुआ है। मैं केवल अनुमान लगा सकता हूँ, पर अनुमान में वास्तविकता से बहुत अंतर होता है।"

"तुम्हारा अनुमान कभी गलत नहीं होगा यह मैं जानती हूँ।" कहते हुए भाभी ने उमड़ते वा उद्यत आँसुओं को अपनी साड़ी के आँचल से पोंछा।

"यह लो, तुम फिर रो पड़ी। अब से मैं कोई भी प्रश्न तुमसे नहीं करूँगा। इस बार मुझे क्षमा कर दो।" मैंने किंचित मान भरे स्वर में कहा।

'नहीं नहीं ऐसी बात न कहो, लाला। तुम भी अगर नाराज हो जाओगे तो फिर मेरा क्या ठिकाना होगा! तुम नहीं जानते, या जानकर भी अनजान बने रहना चाहते हो, कि मेरे ऊपर क्या गुजर रही है'

मैं चुप रहा। केवल ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखता रहा।

एक बार फिर आँखें पोछकर भाभी ने कहा—"देखते तो हो कि सारा दिन बीत गया, इतनी रात गुजर चुकी, पर अभी तक उन्हें घर आने का अवकाश नहीं मिला। पिछले दो वर्षों से प्रायः यही हाल है। कभी भूले भटके उन्हें भरी सुध भले ही आ जाय, पर अधिकतर यही हाल रहा है। आज तुमने कितने प्रेम से मेरे पास बैठकर मेरे हाथ की बनी गरम गरम कचौडियाँ खायीं। आज वे दिन मुझे याद आ रहे हैं जब वह भी इसी तरह चौके पर बैठकर मेरे हाथ की बनी गरम-गरम चीजें खाने में सुख पाते थे। पर अब तो उन्हें अपनी ही सुध नहीं रहती दूसरों की भावनाओं की ओर ध्यान देने का अवकाश उन्हें कहाँ। पर मैं गलत कह रही हूँ दूसरों की भावनाओं की ओर उनका ध्यान इतना अधिक चला गया है कि अपनी और अपने स्वजनों की ओर से एकदम विमुख हो गये हैं। सच तो यह है कि व्यक्ति का कोई मूल्य उनके लिये नहीं रह गया है—समाज ही उनके लिये सब कुछ बन गया है। पर सभी उनकी तरह अपने व्यक्तित्व को इस कदर मिटा सकने में समर्थ नहीं हैं, यह बात उनके ध्यान में नहीं आती। मुझे ऐसा लगता है कि हम दोनों के सम्बन्ध में कहीं कोई भूल रह गयी है। कभी कभी तो मैं यहाँ तक सोचने लगती हूँ—हालांकि मेरा ऐसा सोचना अन्याय है—कि मुझसे किसी कारण से ऊबकर ही वह शापित जनता के उद्धार में सम्बन्धित आन्दोलन के बीच में कूद पड़े हैं। मैं बहुत कोशिश करती हूँ कि इस तरह के विचार को मन से हटा दूँ, पर यह एक रटन की तरह मेरे दिमाग में जम गया है। मुझे भय है कि यह रटन या तो मुझे पागल बनाकर छोड़ेगी या विद्रोह

क्षण भर के लिये उनकी आँखों में एक अस्वाभाविक-सी चमक भभक उठी—एक विचित्र रूप से भयावनी सी चमक। मैं डर गया। पर दूसरे ही क्षण वह चमक एक म्लान करुण छाया में बदल गयी।

मुझे लगा कि रात के उस अपेक्षाकृत सन्नाटे में उस जनमानवहीन सुनसान मकान में जिस नारी के पास बैठा हुआ हूँ उसके भीतर एक दूसरी ही दुनिया का कोलाहल मचा हुआ है। उस दुनिया का पृथ्वी के प्रत्यक्ष गपप विषपमय जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। वहाँ का जीवन

ऐसा ही हवाई और विजातीय क्यों न हो, अवश्य ही वह बड़ा मादक होगा। उसकी मादकता का आभास मुझे भाभी की स्वच्छन्द सी आत्मा की अभिव्यक्ति से लग रहा था। भले ही उनकी आत्मा की वह स्वप्न माया दुःस्वप्न-छाया हो, पर मेरे लिये उसका आकर्षण आज पहली बार अत्यंत तीव्र और पूर्णिमा की रात्रि के समुद्र की तरह उद्वेलक सिद्ध हो रहा था। अपने व्यक्तित्व को अचानक इस तरह डगमगाते देखकर मैं काँप उठा।

मैं एक भी शब्द सांत्वना के रूप में नहीं बोला। मुझे स्वयं अपने को समझाने की आवश्यकता आ पड़ी थी। केवल मौन भाव से, उत्सुक जिज्ञासा भरी दृष्टि से उनकी ओर देखता रहा।

भाभी भी कुछ देर तक एक अजीब-सी रहस्यमयी जिज्ञासु दृष्टि से मेरी ओर देखती रहीं। उसके बाद सहसा उचककर उठ खड़ी हुईं जैसे किसी भौतिक छाया देखकर भयभीत हो उठी हों, और बिना कुछ कहे कमरे से बाहर चली गयीं।

उनके चले जाने के बाद मैं पलँग पर लेट गया। मन थका हुआ था और शरीर भी मन का अनुसरण करने की ओर प्रवृत्त हो रहा था। लेटते ही आँखें झपने लगीं और मैं सो गया। अस्पष्ट और अव्यक्त अर्थहीन स्वप्न देखने के बाद जब जगा तब पहले तो मुझे लगा कि मैं कई घंटे सो चुका हूँ और रात बीतने पर होगी, पर दूसरे ही क्षण मैं समझ गया कि मुझे सोये दो घंटे से अधिक समय नहीं हुआ है। फिर दुबारा सोने की तैयारी कर ही रहा था कि सहसा कानों में पास ही कहीं बजते हुए वायलिन की मधुर विषाद भरी मूर्च्छना गूँज उठी। मैं नींद की चिन्ता छोड़ भूल गया और एकांत ध्यान-पूर्वक कानों को उसी ओर केन्द्रित किये रहा जहाँ से वह प्राण-ह्लादक स्वर-लहरी तरंगित हो रही थी। पहले लगा कि पास वाले किसी मकान से शब्द आ रहा है। पर बाद में मेरा भ्रम जाता रहा और यह स्पष्ट हो गया कि उसी मकान के किसी कमरे में कोई वायलिन बजा रहा है जिसमें मैं ठहरा था।

मूर्च्छना कभी अत्यंत तीव्र स्वरों में झंकृत हो रही थी, कभी कोई

गला चीरकर रोना हुआ विलाप कर रहा हो, कभी अत्यंत करुण-कोमल क्रन्दन के स्वर मे बदल जाती थी। मेरे भीतर की बहुत दिनो की, बहुत युगो की भूली हुई मीठी वेदनाएँ, और लाखो-करोडो वर्षों से प्राणो के अतल मे दबे पडे अरमान अपनी जडता त्यागकर एक एक करके उमड उठे। मैं उस उन्मादक संगीत की हवाई स्वर-लहरी मे खो गया। किसी के प्राणान्त मन से निकली हुई एक्स किरणों ने प्रत्यक्ष भौतिक जगत के रोम कूपो को भेदकर उसके अतराल म छिपे हुए एक अपूर्व मनोहारी अतीन्द्रिय जगत् को मेरी भीतरी आखो के आगे उद्भासित कर दिया। लगा कि मेरे पिछले जीवन के सारे अनुभव उसे एक क्षण के अनुभव के आगे अत्यन्त तुच्छ और झूठे थे। मैं स्थिर न रह सका। उठ बठा और फिर पलँग मे नीचे उतरकर नगे पाव पिछवाडे की ओर के बरामदे म जा खडा हुआ। मेरा अनुमान ठीक ही था। आवाज उसी मकान से—कोने वाले कमरे से जहा भाभी सोती थी—आ रही थी। चुपके चुपके, दबे पाँवो म धीरे—बहुत धीरे—उसी कोने वाले कमरे की ओर बढा चला गया। वायलिन के थर थर-कपित व्याकुल विह्वल स्वर लबी सिसकारियाँ भरते हुए प्राणों को अधिकाधिक पुलक भरे धक्को से हिल मारते चले जा रहे थे।

५६

ठीक भाभी के कमरे की खिडकी के पास खडे होकर मैंने देखा, कमरे म अँधेरा छाया हुआ था। दरवाजे का एक किवाड खुला था, एक बद था। एक कदम आगे बढकर बद किवाड की आड म खडा हो गया। कितनी देर तक खडा रहा, कह नही सकता—वायलिन के अपूर्व स्वर-सागर म इस तरह निमग्न हो गया था मैं। मेरी चेतना तब लौटी जब एक अत्यत तीव्र,

मर्मान्तक, लवी आकुल झंकार से वायलिन के तारों की तरह मेरे मन के सारे तार एक साथ झनझना उठे। मेरा सारा शरीर एक अजीब-सी पुलक पीड़ा से थरथरा उठा और मेरे हिलने से किवाड़ चरचरा उठा।

"कौन ?" भीतर से आवाज आयी।

इच्छा हुई कि तुरत भागकर अपने कमरे में चला जाऊँ। पर वह मेरी पहली चोरी थी और मैं इस कदर हौलदिल हो उठा कि भागने का भी साहस मुझमें न रहा।

"कौन ?" तीखे किंतु तनिक घबराये हुए से कंठ से फिर आवाज आयी।

"कोई नहीं मैं हूँ—नृपेन्द्र" मैंने दबी हुई आवाज में कहा।

"कौन लाला ?" कहकर भाभी उठकर बाहर चली आयीं। फिर बोलीं—"क्या बात है ? यहाँ खड़े क्यों हो ?" उनकी आवाज में एक अजीब दर्द भरा हुआ था—जो भय से मिश्रित था या विस्मय से मैं कह नहीं सकता।

"यों ही चला आया था," मैंने अपने स्वर में कृत्रिम गाम्भीर्य भरने का प्रयत्न करते हुए कहा, "वायलिन की आवाज बहुत अच्छी लग रही थी। बंद क्यों कर दिया, भाभी, और बजाओ !"

कोई उत्तर दिये बिना ही भाभी भीतर चली गयीं और उन्होंने झट से बत्ती जला दी। जिस स्वप्नमय वातावरण का अत्यन्त मोहक जाल इतनी देर तक मेरी चेतना के चारों ओर तना हुआ था वह बत्ती के प्रकाश में आधे से अधिक छिन्न हो गया।

"आओ, बैठो !" मेरी ओर बिना देखे ही भाभी ने भीतर से धीरे किन्तु गंभीर स्वर में कहा।

मैंने अपराधी की तरह काँपते हुए पैरों से भीतर प्रवेश किया। आमने-सामने दो ऊँचे गद्देदार पलँग बिछे हुए थे, जिन पर दूध की तरह सफेद दो ताजा धुली हुई चादरें बिछी थीं। उन दो पलँगों से त्रिकोण बनाती हुई एक आराम कुर्सी दीवार से प्रायः सटी हुई पड़ी थी। मैं उसी पर धीरे से बैठ गया।

"क्या तुम्हे भी नीद नही ग्रायी ?' भाभी न ग्राधी दृष्टि से मेरी ग्रोर देखते हुए धीरे से कहा।

'मैं तो वेखवर सो गया था। जब ग्रचानक ग्रांखें खुली तब वायलिन का स्वर कानो म गूज उठा। मुझे पता नही था, भाभी, कि तुम इतना ग्रच्छा वायलिन बजा लेती हो। बडी ही उन्मादक स्वर लहरी थी वह!' मैंने सहज भाव से, ग्रकृत्रिम भावुकता के साथ कहा।

भाभी मौन गभीर दृष्टि से सामने वाले पलग की ओर देखती रही। उस स्तब्ध मौन से मेरा आवावेग थम गया। मैंने ग्रनुभव किया कि मैंने भाभी का एकात भाव निमग्नता म विघ्न डालकर वास्तव मे बडा भारी ग्रपराध किया है।

कुछ क्षणों तक कमरे म ग्राधी रात की मृत्यु मौन निस्तब्धता छायी रही। ग्रपने को उस ग्रगामन स्थिति स उबारने के उद्देश्य से मैंने पूछा— क्या वीरेन्द्र ग्रभी तक नही ग्राया?'

'न' फश की ग्रोर देखते हुए भाभी न रूखे स्वर म सक्षिप्त उत्तर दिया।

'बहुत देर हो गयी!'

'ग्राज ग्रायेंगे भी नही—एक ग्रादमी उनका लिखा चिट दे गया है वह ग्रब भी फश की ग्रोर देख रही थी।

क्या लिखा था उसम?' मैंने ग्रकृत्रिम उत्सुकता स पूछा।

उन्हे एक ग्रावश्यक काय मे ग्रचानक श्रीरामपुर जाना पड गया है। दो दिन बाद लौटगे' पलँग पर नाखून स कुछ लिखती हुई भाभी बोली।

'निश्चय ही किसी हडताल या इसी तरह के किसी मामले के सिलसिले म गया होगा?

'हो सकता है। पहले की ही तरह रूखे भाव स भाभी न उत्तर दिया।

'ग्रच्छा भाभी, चलता हूँ।' मैंने सहसा खडे होकर कहा। "वायलिन तो ग्रब ग्राप बजायेंगी नही, मैंने विघ्न डाला, इसके लिए

मा चाहता हूँ।" कहकर मैं अनिश्चित पगों से बाहर दालान में चला आया।

मेरे बाहर जाते ही भाभी ने फिर खट-से बत्ती बंद कर दी। बत्ती बंद होते ही मैं फिर ठिठककर मूर्खों की तरह जहाँ का तहाँ खड़ा हो गया। मेरे पाँव अपने आप हिल रहे थे और सिर भनभना रहा था। क्षण भर के लिये अनिश्चित स्थिति में खड़ा रहा और उसके बाद फिर एक कदम भाभी के कमरे के दरवाजे की ओर लौटा।

'भाभी!' मैंने काँपती हुई आवाज में धीरे से कहा। कमरे के अंधकार में वह कहाँ खड़ी या बैठी हैं, यह मैं कुछ भी नहीं देख पा रहा था।

खट से बत्ती फिर जल उठी। उसके आकस्मिक तीव्र प्रकाश से मेरी आँखें चौंधिया गयीं।

"क्या है?" दरवाजे के पास आकर भीतर से ही, भाभी ने प्रकट में शांत स्वर में, अत्यंत गंभीर मुद्रा में कहा। एक झलक में मैंने देखा, उनके गोरे उजले सुंदर मुख पर, उनकी मोहक, चुम्बकीय आँखों में, भय और विस्मय का लेश भी नहीं रह गया था। उसमें थी केवल शांत, मौन विषाद की एक सहज स्निग्ध छाया।

"कुछ नहीं, केवल फिर एक बार क्षमा चाहता हूँ।' कहकर मैं उसी क्षण बड़ी तेजी से अपने कमरे की ओर लौट पड़ा। मेरे भीतर, जाने कहाँ से, यह आवाज उठ रही थी—'व्यर्थ है—सब कुछ व्यर्थ हुआ जा रहा है! सारा जीवन व्यर्थ चला जा रहा है!'

मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा था कि जीवन की व्यर्थता की याद किस कारण उस विशेष क्षण में मुझे आयी।

अपने कमरे में आकर फिर पलंग पर लेट गया, पर नींद नहीं आती थी। रात भर करवटें बदलता रहा। कानों में वायलिन के वही विल्वाक्ष स्वर गूँज रहे थे। सवेरा होने के कुछ ही समय पूर्व आँख लगी।

"लाला उठो!'

आँखें खोलकर देखा तो भाभी सामने खड़ी थीं। खिड़कियों के शीशों

से धूप छनकर सारे कमरे में फैल गयी थी। मैं दोन हाथों से आँख मलता हुआ हड़बड़ाता हुआ उठा।

"रात में क्या नींद नहीं आयी ?" सहज स्वर में भाभी ने पूछा।

मैंने आँखें मलना छोड़कर उनकी ओर देखा। एक सहज, स्निग्ध शांति का हलका आभास उनकी दोनों आँखों में छाया था। उनमें न तो पिछली रात का विषाद था न विस्मय, नये प्रात का हर्ष था न उल्लास, और न ढिठाई थी न संकोच। सब-कुछ सहज, शांत, संयत और सुंदर था।

'तुम्हारा अनुमान ठीक है, भाभी। सुबह आँखें लगी और मैं बेखबर सो गया। बड़ी देर हो गयी है "

नौकर एक ट्रे में चाय और नाश्ता लेकर आ पहुँचा। ट्रे का एक कोने में रखकर उसने मेरे पलँग के आगे मेज लगा दी और फिर ट्रे को उसी पर रख दिया। सामने की ओर उसने एक कुर्सी भाभी के लिये लगा दी।

"बैठो भाभी।' मैंने कहा।

भाभी धीरे से बैठ गयीं।

'पर मैं अभी नाश्ता तो नहीं कर सकूंगा। हाँ, चाय जरूर पी लूंगा।' मैंने ससंकोच कहा।

भाभी मुस्करायीं। "ठीक है, चाय ही पी लो।' कहकर वह मेरे प्याले में चाय डालने लगीं। अंदाज से चीनी और दूध डालकर उन्होंने प्याला मेरे आगे बढ़ा दिया। मैं प्याला उठाकर धीरे से पीने लगा और पीता हुआ भाभी के प्रत्येक हाव भाव, प्रत्येक अंगभंगी पर ध्यान देता रहा। भाभी ने उसी नाजो अन्दाज से अपने लिये भी एक प्याला बनाकर अपनी न बहुत लम्बी न बहुत चौड़ी बायीं हथेली पर रख लिया और दाहिने हाथ की पतली (किन्तु बहुत लम्बी नहीं) उँगलियों से उसे उठा कर धीरे से उसे होठों से लगा लिया। उसके बाद वह अपनी धनुष की सी भौंहों को खींचकर, आँखों की घनी वाली बरौनियों के पर्दे को पूरा उघाड़कर, उज्ज्वल तथापि रहस्य की छाया से घिरी हुई, आँखों की उच्च दृष्टि से बीच बीच में परीनव की

तरह मेरी ओर देखती हुई धीरे—बहुत धीरे—आधा
आधा घूट करके चाय पीने लगी।

"तुम तो कुछ खा ही नही रही हो, भाभी।" मैंने कुछ कहने के उद्देश्य से कहा।

"तुम क्या नही खाते ?"

"मैंने तो अभी मुह तक नही धोया ! तुम तो नहा चुकी हो, ऐसा लगता है।"

"इस समय मैं कुछ खाती नही।"

क्षण भर के लिए मैं चुप रहा। उसके बाद सहसा बोल उठा—"तुम बहुत महान हो, भाभी !

"इस समय मैं कुछ खाती नही, इसलिए ?" कहते हुए एक व्यंग-मिश्रित तीव्र मुस्कान उनके सारे चेहरे पर दौड़ गयी।

"नही भाभी, इसलिये नही," मैंने गभीर भाव से कहा, "तुम जीवन की गहराइयों के बीच म महान हो।"

"कहे चले जाओ लाला।" वही व्यंग भरी तीव्र मुस्कान मुख पर झलकाती हुई भाभी बोली। "झूठ क्या बोलूं, ऐसी बातें सुनने मे अच्छी लगती हैं !" कहकर वह खिल्ल !' करके हस उठी। उनके हसने म चाय का प्याला छलक उठा और कुछ बूंदें उनकी साडी पर गिर पडी।

मैं झेंपकर रह गया और आँखें नीची करके चुपचाप चाय पीने लगा।

भाभी उसी हँसी के दौर म कहती चली गयी— "अभी तुम कह रहे हो मैं महान् हू, कल कहोगे, मैं पूजनीय हूँ, और परसों न जाने क्या कहने लगोगे ! कहकर वह फिर एक बार खूब जोर से हँसी, पर उनकी इस बार की हँसी म कृत्रिमता स्पष्ट व्यक्त हो रही थी।

मैंने धीरे से, प्राय मरी हुई आवाज मे, कहा— अब तुम मेरी बात का जरा भी भय लगाओ। मैंने तो एक सीधी-सी बात सहज भाव से कही थी।'

"लो, अब तुम बुरा मान गये ! मैंने यह कब कहा कि तुमने सहज

४१६ भाव से नहीं कहा ! पर तनिक दूसर के दृष्टिकोण से भी तो सोचो ! तुम जसे बुद्धिमान समभदार, जीवन क गहरे अनुभवा से गुजरे हुए व्यक्ति के मुह से मुझ जैसी एक अदनी नारी के लिये य शब्द निकलना कि तुम जीवन की गहराइयो के बीच मे महान हो,' आश्चयजनक होने के साथ ही दूसरो के कानो म किस कदर हास्यास्पद लग सकता है इस बात पर विचार करना तुम भूल गये । नही लाला, मैं महान नही हू मैं एक बहुत ही साधारण बल्कि साधारण से भी गयी गुजरी हुई नारी हूँ । यह तुम अगर अभी तक नही जान पाये, तो जल्दी ही जान जाओगे ।

पल मे उनका हँसी का दौर एक गहन गभीर भावावेश मे बदल गया, पर दूसरे ही क्षण उस भय की भावना जगान वाली गभीरता को सहज भाव म बदलती हुई वह बोली— जाने भी दो इन सब व्यथ की बातो को । जल्दी चाय पीकर नहा धो लो और कपडे पहन कर तयार हो जाओ ।"

' कहाँ के लिये ?" मैंने तनिक आश्चय से पूछा ।

'कही घूमने निकल पडेंगे । आजकल घर म बठे बठे जी घबरान लगता है ।"

इसके बाद मैंने फिर कोई प्रश्न नही किया ।

'मैं ड्राइवर से तयार हो जाने के लिये कह आती हू । कहती हुई भाभी चली गयी ।

६० मैं भी उनकी आज्ञा का अनुसरण करता हुआ पलँग पर से उठा और कमरे मे बाहर निकला । स्नानादि से निवृत्त होने और और कपडे बदल कर तयार होने म पूरा एक घटा समय बीत गया । इस बची भाभी दो-तीन बार यह

जानने के लिये आयी कि मैं तैयार हुआ या नहीं। आज तक घूमने के लिये उनकी यह उत्सुकता और हड़बड़ी मेरे लिये नयी बात थी।

अंत में भाभी जब स्वयं पूरी तरह तैयार होकर आयीं तब मैंने उन्हें सिर से लेकर पांवों तक एक सरसरी निगाह से देखते हुए यह अनुभव किया कि उनकी सारी साज-सज्जा और पोशाक-पहनावे में सादगी रहने पर भी कुल मिलाकर एक ऐसा अपूर्व कलात्मक प्रभाव व्यक्त हो रहा था जो वर्णन और विश्लेषण के परे था। मैं कह नहीं सकता कि उस दिन किसी अज्ञात कारण से मेरी आँखें ही धोखा खाने के लिए पहले ही से तैयार बैठी थीं या सचमुच भाभी के व्यक्तित्व में ही एक ऐसी नयी विशेषता उस समय उभर आयी थी जिसका कोई परिचय उस दिन के पहले मुझे नहीं मिला था। प्रत्यक्ष में न उनके मुख पर पौडर और क्रीम का आधिक्य दिखायी देता था न उनके बालों की बनावट में ही कोई नया विशेषता लगती थी। वह हल्के केसरिया रंग की एक मानिपुरी साड़ी पहने थीं और उसके ऊपर, कंधे पर एक काश्मीरी शाल लपटा हुआ था, जो कोई असाधारण चीज नहीं थी। फिर भी, न जाने कहाँ से, एक अपूर्व मोहकता, एक दुर्निवार आकर्षण शीलता उनके समन्वित व्यक्तित्व से निखर रही थी। वह रहस्यमयी मोहकता न पूर्णतः अतीन्द्रिय ही थी और न उसे इंद्रिय-ग्राह्य ही कहा जा सकता है।

नीचे कार तैयार थी। हम लोग उसमें सवार होकर भाभी की इच्छानुसार झील की ओर निकल पड़े।

सर्दी काफी पड़ रही थी। मैं सिहरन का अनुभव कर रहा था—जाड़े के सबब या किसी अज्ञात भय से या और किसी कारण से, ठीक कह नहीं सकता। झील के पास पहुँचकर दोनों उतर पड़े। भाभी ने इच्छा प्रकट की कि झील के चारों ओर टहला जाय। मेरे मन में इस काम के लिये तनिक भी उत्साह नहीं जग रहा था। मैं एक स्थान पर स्थिर बैठकर अपनी मन स्थिति पर शांत भाव से विचार करना चाहता था। पर भाभी के प्रस्ताव का कोई विरोध मैंने नहीं किया।

झील के किनारे ठंडी हवा काफी चल रही थी, जिसके कारण मेरे तन में और मन में सिहरन भी बढती चली जा रही थी। आज भाभी के साथ चलते हुए मैं पहली बार तनिक सकोच का सा अनुभव कर रहा था। उस सकोच में ग्लानि का भी मिश्रण किसी हद तक था या नहीं, वह नहीं सकता। पर उनके एक अपूर्व नये रूप में निखरे हुए व्यक्तित्व का भी आकर्षण मेरे लिये उतना ही दुर्निवार सिद्ध हो रहा था।

उस दिन सुबह से ही मुझे रह रहकर मनिया की याद आ रही थी। केवल याद ही नहीं, मानसिक टेलीविजन की सी किसी रहस्यमयी क्रिया से अस्पताल के उस सारे कमरे का चित्र मेरी आँखों से एक पल के लिये भी हटना नहीं चाहता था जहाँ वह लेटी थी। उसका पट्टी से चारों ओर ढका हुआ चेहरा सुस्पष्ट दिखायी दे रहा था और मैं प्रत्यक्षत उसे पलँग पर करवटें बदलते हुए देख रहा था। बाई ओर करवट बदलने में उसे काफी कष्ट हो रहा था—इतना तक मुझे अनुभव हो रहा था। वैसे मनिया की याद आना और अस्पताल के कमरे का दृश्य कल्पना की आँखों के आगे उतर आना, यह कोई असाधारण बात नहीं थी—बल्कि स्वाभाविक ही था। पर जिस तीव्रता से, प्रत्यक्ष की सी अनुभूति के साथ, वह सारा चित्र मेरे आगे व्यक्त हो रहा था उसे मैं साधारण नहीं कह सकता। क्या किसी टेलीपेथिक क्रिया से मनिया को भाभी के उस दिन के उस नये आकर्षण का ज्ञान हो गया था जिसका प्रबल मोहक प्रभाव पहली बार मुझ पर पडा था। और अपने उसी ज्ञान की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मनिया ने कोई प्रतिक्रियात्मक टेलिपैथिक तरंग मेरी ओर प्रेषित की थी? कुछ असंभव नहीं है—मैंने मन ही मन सोचा।

'लाला तुम एकदम गुमसुम बने हो, बात क्या है?' भाभी के इस उलाहने से मैं जैसे स्वप्न से चौंक पडा।

'बात कुछ नहीं है' मैंने धीरे से कहा 'सर्दी कुछ ज्यादा है।"

'सो तो है ही, इसीलिये तो सुबह टहलने में सुख है—जब बाहर और भीतर साथ-साथ सिसकारियाँ चलने लगती हैं।'

मैंने कुतूहल भरी दृष्टि से उनकी ओर देखा। उनके मुख पर एक

व्यंग भरी रहस्यमयी मुसकान खेल रही थी। उस मुसकान से छिटकने वाली किरणें बड़े तीखेपन के साथ मेरे अंतर में गड़ने लगीं। वह मीठी गुदगुदी नहीं थी, बड़ी तीखी चुभन थी।

मैंने उनकी ओर से आँखें फेर लीं, और चुपचाप चलता रहा।

"यदि तुम्हें आगे बढ़ने का साहस नहीं होता तो यहीं ठहर जाओ।" एक बेंच के पास पहुँचने पर भाभी ने कहा।

उनका यह कथन भी मुझे निगूढ़ अर्थ भरी वक्रोक्ति की तरह लगा। उनकी आँखों का व्यंगात्मक भाव जैसे मेरे अनुमान की पुष्टि कर रहा था।

'आप ठीक कहती हैं।" कहकर मैं हड़बड़ी के साथ बेंच की ओर मुड़ा और एक किनारे पर बैठ गया। भाभी भी मेरे करीब ही आकर बैठ गयीं।

झील की तरंग निर्विकार, निरुद्वेग भाव से बही चली जा रही थीं। चारों ओर मटमैली धुमैली-सी धूप बिखरी हुई थी, जो मन में एक गहरी उदासी का भाव भरती थी। मुझे लगता था जैसे मनिया से बिछुड़े हुए युग बीत चुके हों। पर बीते हुए युगों का वह व्यवधान उसकी स्मृति को भुलाने के बजाय और तीखा, और उज्ज्वल, और स्पष्ट कर रहा था।

उस सर्दी में भी झील के चारों ओर चक्कर लगाने वाले भ्रमणार्थी स्त्री-पुरुषों की कमी नहीं थी।

"बड़ा सुहावना प्रभात है आज का!"

"यह धुमला, अवसाद और उदासी से भरा शीत प्रभात यदि आपको सुहावना लगता है तो निश्चय ही यह आपकी महानता का सूचक है!"

भाभी खिलखिला कर हँस पड़ीं। शायद 'महानता का उल्लेख फिर एक बार, किन्तु दूसरे रूप में, हास उनके भीतर गुदगुदी उठे बिना न रही। पर मैं सोचने लगा कि मेरा व्यंग वह किसी हद तक समझ पायी हैं या नहीं।

जो भी हो, उनकी मुक्त खिलखिलाहट ने मेरे भीतर के उस अव-

साद का कुहरा जसे फट गया, जो इतनी देर तक मेरे मन के बहुत भीतर तक पैठकर मेरी आत्मा के सारे सत्व को ही जसे चाटता चला जा रहा था।

भाभी ने कहा—"तुम्हारे मन के भीतर धुआ है, इसलिये तुम बाहर भी धुआ देख रहे हो। मेरे मन के भीतर उजाला है, इसलिये मुझे बाहर भी सब कुछ उजला और सुहावना दिखायी देता है।" कहकर वह फिर एक बार कुछ अजीब और अस्वाभाविक सी मुद्रा बनाती हुई खिलखिला उठी।

मुझे एक धक्का सा पहुँचा। मैं सोचने लगा कि आज अचानक भाभी के भीतर इतना उजाला कहा से आ गया? उनकी मुक्त खिल खिलाहट से स्पष्ट था कि आज उनके भीतर केवल उजाला ही नहीं बल्कि उल्लास भी भरा हुआ था। उनके पिछले दिन के करुण विषाद च्छान्न भाव स आज क इस उल्लास की सगति कहाँ बठती थी? पर सगति वही बठे या न बठे, भाभी का वह भाव परिवतन मेरे भीतर भी अपना सुनहा प्रभाव से एक अजीब-सी मोहक, रोमाचक और उमगमयी अनुभूति जगा रहा था। मुझे लगने लगा कि सचमुच आज का प्रभात बडा ही सुहावना है। मेरे सारे मन म और प्राण म एक सवथा नयी और ताजा उमग भरने लगी—ऐसी उमग जिसका अनुभव वर्षों पहले कभी हुआ होगा। किशोर वय समाप्त होते ही जब यौवन काल का प्राथमिक स्पश बाहर की और भीतर की आँखो म ऐसा सुरमा लगा देता है कि सवत्र जादू-लोक और परिस्तान की सुनहरी माया और रोमानी रगीनी के सिवा और कुछ भी नजर नहीं आता, वही हाल उस समय मेरे भीतर रा हा रहा था।

मैं स्निग्ध दृष्टि से भाभी की ओर देखता हुआ, पुलक भर स्वर मे बोल उठा— 'भाभी, तुम बहुत भली हो!"

चलो इतने दिनो की परख के बाद अत म तुम जान तो गये कि मैं भली हूँ! कहकर वह फिर खिलखिला उठी।

'नीरू! किसी ने पीछे से बडे तीव्र स्वर म किसी को पुकारते हुए कहा।